Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113035

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113035

सम्पादक
गुलाबराय एम. ए.
महेन्द्र (जेल में)
सहायक सम्पादक
गोपालप्रसाद व्यास

जून १९४१

साहित्य-सन्देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर छपाई के लिए

साहित्य प्रेस का नाम याद रखिए

आपको कुछ भी छपाना हो

हिन्दी-अँग्रेजी के पत्र व पुस्तकें, नोटिस, समाचार-पत्र, रिपोर्ट, सूचीपत्र, लेटरपेपर, बिल, कैशमीमो, रसीद आदि

—तो—

सदैव 'साहित्य प्रेस' को लिखिए

क्यों ?

इसलिए कि आपका कार्य शुद्ध और सुन्दर छपेगा और समय पर किफायत के साथ छाप कर दिया जायगा।

'साहित्य-सन्देश' इसी प्रेस से छप कर निकलता है।

नोट—साहित्यिक पुस्तकों के शुद्ध और कलात्मक-मुद्रण का यहाँ विशेष रूप से प्रबन्ध है।

पत्र व्यवहार का पता—साहित्य प्रेस, आगरा।

समस्त भारतीय पुस्तकालयों को सूचना

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा का

संग्रहालय

साहित्य-रत्न-भण्डार आगरा में हिन्दी-पुस्तकों का संग्रह इतना विशद, इतना उत्तम और इतना उपयोगी है कि भारत के सभी बड़े-बड़े पुस्तकालय यहीं से अपनी माँग पूरी करते हैं। नई-से-नई पुस्तकें जल्द-से-जल्द यहाँ आ जाती हैं और काफी स्टाक में रहती हैं। जिन लोगों ने एक बार भी यह संग्रहालय देखा है, वे इसकी व्यवस्था और पुस्तकों का संचय देख कर दंग रह गये हैं। हमारी अपील है कि आप जब कभी आगरा पधारें तो इस भण्डार का निरीक्षण अवश्य करें और जब भी हिन्दी पुस्तकों की आवश्यकता हो, इसको अपना आर्डर भेजें। सभी बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएँ और सभी श्रेष्ठ प्रकाशकों की पुस्तकें यहाँ हर समय तैयार मिलती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विगत चार महीनों में प्राप्त हुई पुस्तकें

विशेषांकों के प्रकाशन के कारण विगत चार महीनों से हम हिन्दी में होने वाले नवीन प्रकाशन की सूचना पाठकों को नहीं दे सके थे इस बार वे सब एकत्रित कर के दी जा रही हैं। —सं०

आलोचना

१–जयशंकर प्रसाद—श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी १)
२–युग और साहित्य—शान्तिप्रिय द्विवेदी २)
३–प्रेमचन्द—डा० रामविलास शर्मा २)
४–सूर साहित्य की भूमिका—रामरतन भटनागर १॥)
५–उर्दू काव्य की आलोचना—उपेन्द्रनाथ अश्क १)
६–हिन्दी नाट्य चिन्तन—शिखरचन्द जैन १॥=)
७–हिन्दी के तीन प्रमुख नाटककार—शिखरचन्द जैन १=)
८–प्रिय प्रिवास दर्शन—लालधर त्रिपाठी १।)
९–बिहारी का संक्षिप्त अध्ययन—सरोज बी० ए० ।=)

कविता

१–दैत्य-वंश—हरदयालुसिंह २॥)
२–द्विवेदी काव्य माला—सम्पादक देवीदत्त शुक्ल २)
३–उन्मुक्त—सियारामशरण गुप्त १।)
४–वैकाली—जगन्नाथप्रसाद मिश्र हितैषी १॥)
५–आधुनिक कवि—महादेवी वर्मा १॥)
६–प्रलयवीणा—सुधीन्द्र १)
७–कलरव—निरंजनदेव सेवक ।=)
८–बिहारी-सुधा—मिश्रबन्धु ।=)
९–ज्योति—अम्बिकेश १)
१०–विरहगान—महेशचन्द सिंहल ॥)
११–अरमानों की चिता—दीनानाथ व्यास ॥=)
१२–ग्रामवाला—पीयूष १)
१३–शाद्वल—लालधर त्रिपाठी १)
१४–करुण तरंगिणी—गांगेय नरोत्तम व्यास १)
१५–आहट—बैजनाथप्रसाद सिन्हा विस्मृत ॥-)

एकांकी नाटक

१–सप्त रश्मि—सेठ गोविन्ददास २।)
२–यादगार—'चन्द्र' १)

नाटक

१–कुलीनता—गोविन्ददास १)
२–अन्तःपुर का छिद्र—गोविन्दवल्लभ पन्त ।=)
३–मीरा—मुरारि मांगलिक ॥=)

कहानी

१–सवेरा—भगवतशरण उपाध्याय १।)
२–सफर—पहाड़ी १।)
३–आत्मपरिणय—वीरेन्द्रकुमार २)
४–हिन्दी की आदर्श कहानियाँ—संपादक प्रेमचन्द ॥।)
५–सत्याग्रह—अनुरागी ।≡)
६–बारकछाया—रियासती ॥।)
७–रसबिन्दु—पीताम्बर झा ।=)

उपन्यास

१–दादा कामरेड—यशपाल १॥)
२–प्रजामंडल—श्रीनाथसिंह १॥)
३–चार उपन्यास—इलाचन्द्र जोशी ॥)
४–ममता—रामसुन्दरलाल श्रीवास्तव १।)
५–वेदना—सरयू पंडा गौड़ १॥)
६–कुबेर—देवीप्रसाद चवन १।)
७–कार्लमार्क्स और अन्ना—सरस्वती प्रेस ॥)

विविध-विषय

१–जीववृत्ति-विज्ञान—डा० महाजोत सहाय १)
१–भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष—अनु० केशवदेव शर्मा १)
३–नागरिक शास्त्र की विवेचना—गोरखनाथ चौबे ३)
४–अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—भगवानदास अवस्थी १॥)
५–आदर्श नरेश—झावरमल्ल २॥)
६–गांधी मीमांसा—रामदयाल तिवारी ३)
७–विश्व की महिलाएँ—राजेन्द्रसिंह गौड़ २)
८–ब्रह्म विद्या रहस्य—शिवानाथ २)

अभिनव भारती ग्रंथमाला की ४ पुस्तकें

१–भारतवर्ष में जाति भेद—क्षितिमोहन सेन २)
२–मन के भेद—प्रो० राजाराम शास्त्री १।)
३–आधुनिक हिन्दी-साहित्य—स० ही० वात्स्यायन २॥)
४–ब्रह्मांड और पृथ्वी—रामस्वरूप चतुर्वेदी १)

सरस्वती सीरिज में १२ पुस्तकें और छप गयी हैं:-

११—महान अपराधी, १२—मृत्युकिरण, १३—अभिसारिका, १४—मोपासाँ की कहानियाँ, १५—ताया १६–दुर्गेशनंदिनी, १७–हिन्दी साहित्य के निर्माता, १८–डिक्टेटर, १९—झुनझुना, २०—निरपराधी, २१—नरक और २२ वाँ भाग छिपा महल।

हिन्दी साहित्य की सभी पुस्तकों के लिए साहित्य-रत्न-भण्डार आगरा को लिखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी समालोचना के अग्रदूत — मासिक — साहित्य संदेश का ही यह साहस है

जून के अंक की विषय-सूची

१—जन साहित्य—प्रो० रामजीलाल एम० ए० ४५३
२—हिन्दी आलोचना—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ४५७
३—शुक्लजी का कवि हृदय—डा० केशरी नारायण शुक्ल ४६१
४—प्रेमाश्रम का प्रेमपात्र—हजारी प्रसाद द्विवेदी ४६७
५—दो हिन्दी पुस्तकें ग्राम्या और रेखाचित्र—सा० हि वात्स्यायन ४७१
६—चिन्तन के क्षणों में—महादेवी वर्मा एम० ए० ४७४
७—भाषाओं का रचनात्मक वर्गीकरण—राममूर्त्ति मेहरोत्रा ४७८
८—साहित्य परिचय ४८१
९—सम्पादकीय ४९२

हमारे पिछले विशेषांक

१—प्रसाद-अङ्क ... मूल्य ।।।) पुस्तकाकार

२—द्विवेदी-अङ्क ... ,, ।।)

३—उपन्यास-अङ्क ... ,, १)

४—परीक्षा-अङ्क ... ,, ।=)

५—शुक्लाङ्क ... ,, १)

तीसरे वर्ष की सजिल्द फाइल मूल्य ३)

प्रथम द्वितीय वर्ष के स्फुट अङ्क मूल्य ।) प्रति अङ्क

६ महीनों में चार विशेषांक
दो छप गये : दो और भी छपेंगे
* नमूना मुफ्त मंगाइए *

(मूल्य ४) वार्षिक, विद्यार्थियों के लिए ३) पता—साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्भुत योजना

!

हिन्दी-जगत में

?

?

?

सर्वथा नवीन और जीवनोपयोगी साहित्य की रचना

हिन्दी में अब तक जितनी भी ग्रन्थ-मालाएँ छपी हैं, उनका उद्देश्य लोक-रञ्जन के साथ-साथ द्रव्योपार्जन ही रहा है। किन्तु "रामप्रसाद" सिरीज़ का प्रकाशन एक नई दिशा की ओर संकेत करता है। इस सिरीज़ में व्यवसायिक दृष्टिकोण को छूने की इतनी चेष्टा नहीं की गई है, जितनी कि सर्वसाधारण के दैनिक जीवन में आने वाले विकट संघर्षों को हल करने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के आसन पर बिठालने तथा जनता-जनार्दन के संघर्षमय शुष्क जीवन को सरस और जीने के योग्य बनाने के लिए प्रस्तुत सिरीज़ द्वारा उसी की पूर्त्ति करने का एक छोटा किन्तु ठोस क़दम उठाया गया है।

उपर्युक्त सिरीज़ का पहला प्रकाशन **प्रेमचन्द और ग्राम-समस्या** (Rural Uplift) की समस्याओं को सुलझाने वाली अपने विषय की एक अद्भुत पुस्तक है जिसके रचियता बाबू प्रेमनारायणजी टंडन बी० ए०, विशारद हैं। भारतीय ग्राम-संगठन (Rural Development) की रूप रेखा, उसके मौलिक आधार तथा दीन किसानों की असहाय अवस्था का सजीव चित्रण जिस सुन्दरता से प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है, हिन्दी क्या अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी उसका अब तक नितान्त अभाव था। औपन्यासिक सम्राट् स्वर्गीय प्रेमचन्दजी के प्रायः समस्त प्रमुख उपन्यासों के मुख्य विषय, ग्राम-समस्या के विभिन्न पहलुओं पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से गम्भीर और आलोचनात्मक विचार किया गया है और तमाम बातें बहुत सरल और सुबोध भाषा में समझाई गई हैं। मूल्य ॥=)

पुस्तक मिलने का पता—

रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा।

[अपने स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं से लीजिए।] या [साहित्य-रत्न-भण्डार आगरा से खरीदिये]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिर्जा अजीमबेग चगताई के

हास्यरस के दो उत्कृष्ट उपन्यास

१--कोलतार--लेखक मिर्जा अजीमबेग चगतई। चगतई साहब उर्दू और हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों के लिए अपरचित नहीं हैं। जिन्होंने आपकी दो-चार भी कहानियाँ पढ़ी होंगी वह जानते होंगे कि आप लोगों को हँसाने की कला में कितने पटु हैं। आपकी चुटकी कितनी गहरी होती हैं। इस उपन्यास में इतना हास्य, व्यङ्ग और चुलबुलाहट है कि आप इसे एक सांस में पढ़ जायँगे। ऐसा रोचक उपन्यास हिन्दी में आज तक नहीं निकला है। मूल्य २)

२--शरीर बीबी--यह प्रसिद्ध हास्यरस लेखक मिर्जा अजीमबेग चगतई का दूसरा उपन्यास है। यह उपन्यास कोलतार से भी रोचक व दिलचस्प है। एक बार हाथ में लेने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। शरीर बीबी की शरारतें पढ़ते-पढ़ते पेट में बल पड़ जाते हैं। ऐसी निर्दोष हास्य रस पूर्ण पुस्तक हिन्दी में नहीं है, यह इसे पढ़ कर ही ज्ञात होगा। सुन्दर नयनाभिराम कवर से युक्त मूल्य १।) हमारे दूसरे उपन्यास व कहानी संग्रह :—

पतित की साधना—	लेखक पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी	२)
मझली रानी—	लेखक श्री रामकृष्ण वर्मा बी० ए०	२)
देश की आन पर—	लेखक पं० गणेश पांडेय	१)
जादू का मुल्क—	लेखक राहुल सांकृत्यायन	२)
सोने की ढाल—	"	२)
चरित्र-निर्माण की कहानियाँ—श्री व्यथित हृदय		।।।)

मैनेजर—छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग।

बच्चों का एक मात्र मासिक

बानर

सम्पादक--रामनरेश त्रिपाठी

वार्षिक मूल्य २।।)

श्री महादेव देसाईजी—[महात्मा गांधीजी के प्राइवेट सेक्रेटरी] लिखते हैं—बानर बड़ा स्वच्छ उत्कृष्ट और निर्मल रुचि-पोषक मासिक है।

घर में बच्चे हों और आप उनकी उन्नति भी चाहते हों तो 'बानर' के ग्राहक बन कर उनको ज्ञान के प्रकाश में पनपने दीजिये।

पता—
मैनेजर, बानर
हिन्दी-मन्दिर, प्रेस, इलाहाबाद।

श्री गोपालराम गहमरी

जासूस संपादक की ७५ वीं वर्ष गांठ पर उनकी सब पुस्तकें इस महीने में २) में ४ की, ५) में ११) की १०) में २५) की, २०) में ५५) में ३३ में १००) की साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को देंगे।)।। के टिकट भेज कर पूरी सूची मंगा लीजिए।

मैनेजर—
जासूस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप क्या चाहते हैं ?

रस, कला, शिक्षा, मनोरञ्जन, जीवन-पथ-प्रदर्शन ?

— तो —

हमारी प्रकाशित पुस्तकें पढ़िये

श्रीमती उषादेवी मित्रा की नवीन कृति

पथचारी

भावपूर्ण, मौलिक सामाजिक उपन्यास

सचित्र साप्ताहिक पत्र 'देशदूत' की सम्मति—
"सम्पूर्ण उपन्यास में कथानक निर्वाह अत्यन्त खूबी के साथ किया गया है। लेखिका शब्दों में घटनाओं को उपस्थित कर देने में पूर्ण रूप से सफल हुई है। पात्रों का चरित्र-चित्रण तथा कथोपकथन परिष्कृत है। भाषा सरल तथा प्रवाह-पूर्ण है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य १)

श्री जी० पी० श्रीवास्तव की नई रचना

भय्या अकिल बहादुर

हास्य-रस की अनूठी पुस्तक

दो प्रसिद्ध पत्रों की सम्मतियां

—"पुस्तक क्या है हास्य रस का' "शावर-बाथ" है। भीनी-भीनी फुहार लेते जी नहीं भरता। 'हलचल'
—"हास्य रस की यह अनूठी पुस्तक पाठकों से अवश्य आदर प्राप्त करेगी।" 'नोंक-झोंक'

फर्स्ट क्लास गेट अप ! सजिल्द पुस्तक का मूल्य १)

सुन्दर, कलापूर्ण कहानियों के लिए श्रेष्ठ कलाकारों के श्रेष्ठ कहानी-संग्रह पढ़िये।

ठा० श्रीनाथसिंह की चुनी कहानियों का नया संग्रह

पड़ौसी

"—कहानियाँ वास्तविकता से पूर्ण, स्वस्थ प्रबुद्ध और ओजमयी हैं।" 'कर्मवीर' मूल्य १।=)

श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी की कलापूर्ण कहानियों का कला-पूर्ण संग्रह

खाली बोतल

—"सभी कहानियाँ वैविध्य तथा विचार-विकास की दृष्टि से अद्वितीय हैं।" 'देशदूत' मूल्य १।)

श्री पहाड़ी की उच्चकोटि की १२ मनोवैज्ञानिक कहानियों का अनुपम संग्रह

छाया में

—"सभी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक अनुभूति-पूर्ण तथा सुन्दर हैं।" 'देशदूत' मूल्य १)

श्रीमती उषादेवी मित्रा की ललित कहानियों का संग्रह

महावर

यदि आपको सुन्दर रुचिपूर्ण कहानियों से प्रेम है तो 'महावर' अवश्य पढ़िये। मूल्य १)

श्री चतुरसेन शास्त्री की नवीन कृति

वीर-गाथा

वीर-रस की १६ कहानियां। अपने देश, अपने धर्म तथा अपनी आन पर मर मिटने वाले वीरों की वीरतापूर्ण ये अमर गाथाएँ आपके हृदय में एक नया उत्साह और उमंग भर देंगी। सजिल्द मूल्य १)

श्री व्यथित हृदय लिखित

पुरुषार्थी जीवन

संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध महापुरुषों के पुरुषार्थ की रोचक कहानियाँ। हिन्दी साहित्य में आज तक ऐसी पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई।

मिलने का पता—**नेशनल लिटरेचर कम्पनी, १०५, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता।**

हमारी प्रकाशित हिन्दी, बंगला तथा अंग्रेजी की सभी पुस्तकें ए० एच० ह्वीलर के रेलवे स्टाल पर तथा बड़े-बड़े शहरों में प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं के मिलेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ संख्या लगभग २०० रहेगी

नोट कर लीजिए !

भूलिएगा नहीं !!

मूल्य लगभग १।) ग्राहकों को साधारण मूल्य में

सुधा

का श्रावण अंक (विशेषांक)

— १९४१ —

हिन्दी के स्थायी साहित्य की बहुमूल्य वस्तु होगी।

इस अङ्क में क्या होगा ?

चित्र—
भावपूर्ण और कलापूर्ण तिरंगे, दुरंगे, इकरंगे और व्यंग्य।

कविताएँ—
नई स्फूर्ति और जीवनदायिनी

लेख—
विद्वानों के लिखे हुए गंभीर और सामयिक

आज ही मूल्य भेजकर ग्राहक बन जाइए !

विज्ञापन दाताओं के लिए अपूर्व अवसर !!

मैनेजर सुधा : लाटूश रोड : लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा प्रकाशन

एक नजर में

बच्चों के दिलों में नया जोश, अजादी की तड़प, देश के प्रति प्रेम और भक्ति कर्तव्यपालन में अनुराग, सदाचार और सच्चाई में तत्परता भरने वाली अनुपम पुस्तकें।

१—स्वाधीनता के पथ पर	रामेश्वर करुण	|=)
२—वीर गाथा	रामेश्वर करुण	|=)
३—बाल रामायण	गौरीशङ्कर ओझा	|=)
४—वीर रमणी चरित्र	उपेन्द्रनाथ अश्क	|≡)
— अनुपम नाटक —		
१—आदर्श वीरता (ऐतिहासिक)	माया	||)
२—कमला (सामाजिक)	उदयशङ्कर भट्ट	|||)
— काव्य —		
१—बिसर्जन	उदयशङ्कर भट्ट	१)
२—दुर्गा सप्तशती	देवीदत्त शुक्ल	|||)
— समालोचना तथा साहित्य ग्रन्थ —		
१—हिन्दी साहित्य की रूपरेखा	आत्माराम सूरी	१)
२—हिन्दी साहित्य	रामलाल अग्रवाल	||)
३—महात्मा कबीर	हरिहर निवास	१)
४—शान्ति और क्रान्ति के कवि	परमानन्द M.A., M.O.L.	२)
— व्याकरण-निबन्ध और पत्र लेखन —		
१—सूर्य व्याकरण	डा० सूर्यकान्त	|||)
२—प्रबन्ध प्रदीप	माधव	१≡)
३—संक्षिप्त मिडिल व्याकरण	अर्जुनदेव झा	||)
४—सरल पत्र प्रबोध	सुदर्शन प्रसाद	|)
— घरेलू पुस्तकें —		
१—लाण्डरी शिक्षा	बी० पी० माधव	|=)
२—खाना पकाना	बी० पी० माधव	||=)
३—हमारा स्वास्थ्य	पं० दीनानाथ 'चातक'	|||)
— पाठ्य पुस्तकें —		
१—सूर्य प्राइमरी	रङ्गीन	—)|
२—सूर्य हिन्दी रीडर ४ भाग	हरिकृष्ण प्रेमी	१—)
३—सूर्य सुलेख माला ८ भाग		प्रत्येक —)|||

सूरी ब्रदर्स, प्रकाशक तथा विक्रेता, गणपति रोड, लाहौर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज्र-ग्रन्थावली

लेखक—श्री ऋषभचरण जैन

एक लम्बी मुद्दत हो गई और हिन्दी में ऐसी पुस्तकें ढूँढ़े मिलनी बन्द हो गईं, जिनमें सीधी-सादी भाषा में बेलाग बात कह कर समाज के और देश से दुर्गन्धमय कोढ़ की तरफ इशारा किया गया हो। इसका नतीजा यह तो हुआ ही कि उन लोगों को अपने कारनामे खुले-आम करने की सुविधा मिल गई, जिनका पेशा ही इस तरह के प्रपञ्चों-द्वारा समाज के भोले लोगों को उल्लू बनाना था—और अनर्थ भी हुआ कि हिन्दी के उन शौकीनों का शौक भी घट गया, जो जायका बदलने के लिए बराबर कोई न कोई ऐसी पुस्तक चाहते हैं, जो उन्हें उबा न दे। इसी सत् उद्देश्य को सामने रख कर यह पुस्तकमाला प्रकाशित की गई है। अगर आप समाज स्नेही हैं, या उपन्यास के उपासक हैं या प्यार भरी सीधी सी कहानियां पढ़ने के प्रेमी हैं तो इस ग्रन्थावली का १ सेट आज ही मँगा लीजिये।

❀ याद रखने की बातें ❀

'अतिरिक्त-पुस्तक' के अतिरिक्त

भूल कर भी इस माला की पुस्तकें स्त्रियों और बच्चों के हाथ में न दीजिए, क्योंकि यह पुस्तकें जहर की ऐसी शीशियां हैं, जिनका उपयोग सिर्फ विषैले कीटाणुओं को नष्ट करना है। सिर्फ 'मन्दिर दीप' इस माला के अतिरिक्त पुस्तक है और उस पर यह रोक थाम लगाने की जरूरत हम महसूस नहीं करते।

लीजिये—पहली दस पुस्तकों से परिचय प्राप्त कर लीजिये—

१. दिल्ली का कलंक १) (छप गई)	२. दुराचार के अड्डे १) (छप गई)	३. बुर्दा फ़रोश १) (छप गई)
४. चाँदनी रात १) (छप गई)	मन्दिर दीप 'वज्र-ग्रन्थावली' की अतिरिक्त-पुस्तक और हिन्दी-साहित्य का अतिरिक्त-पुस्तक, ३)	५. चम्पाकली १) (छप गई)
६. हर हाइनेस १) (छप गई)		७. मयखाना १) (छप गई)
८. तीन इक्के १) (छप गई)	९. नर्क-धाम १) (छपेगी)	१०. हत्यारा १) (छप गई)

साहित्य-मण्डल, दरियागंज, दिल्ली।

तार का पता—'दरबार'

टेलीफोन नं०—६४५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आवश्यक निवेदन

सरल ज्ञानमाला

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की कितनी कमी है, पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि इस ओर जन-साधारण का ध्यान आकृष्ट हो रहा है परन्तु फिर भी हमारी सम्मति में अभी इस ओर उचित प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। हमारे देश के लिए इस प्रकार के वैज्ञानिक साहित्य की बड़ी आवश्यकता है, जो बाल वृद्ध और बनिता, सबके लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध हो, जो सरल और सुबोध भाषा में लिखा गया हो और जिसे पढ़ कर विज्ञान की सामान्य बातों को जानने की उत्सुकता लोगों में बढ़े।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने **सरल ज्ञानमाला** नाम की एक पुस्तकमाला के प्रकाशन का आयोजन किया है। इस माला में जीव-विज्ञान, ज्योतिष, रसायन शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, राजनीति, इतिहास आदि विषयों पर प्रतिमास सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित होंगी। ये पुस्तकें यद्यपि बालकों के उपयोग की दृष्टि से लिखी होंगी, परन्तु इनमें विज्ञान के गम्भीर से गम्भीर सिद्धान्तों का समावेश होगा। अतएव ये बालकों और विद्यार्थियों के लिए ही लाभप्रद न होकर सर्वसाधारण के लिए भी ज्ञानवर्धक और उपयोगी सिद्ध होंगी! इन पुस्तकों के प्रकाशित करने का यही हमारा उद्देश्य भी है।

हम प्रति वर्ष इस प्रकार की बारह पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। जिनमें से पाँच पुस्तकें प्रायः प्रकाशित हो चुकी हैं। बाकी भी शीघ्र प्रकाशित होंगी।

प्रत्येक पुस्तक १६० से लेकर १८० पृष्ठ तक की होगी। विषय के अनुसार पुस्तकों में काफी चित्र रहेंगे, जैसा आप इस पुस्तक में देख रहे हैं। छपाई, सफाई बहुत आकर्षक और सुन्दर होगी प्रत्येक पुस्तक का मूल्य १) होगा। परन्तु जो सज्जन एक साथ बारह पुस्तकों के ग्राहक बन जायेंगे, उन्हें हम एक वर्ष की प्रकाशित पुस्तकें केवल १०) में देंगे।

जो सज्जन १) पेशगी देकर हमारे पूरे सेट के ग्राहक बनने के लिए आर्डर फार्म भर कर भेज देंगे उनको हम ६ पुस्तकें अपने रियायती दामों पर अर्थात् ५) में वी० पी द्वारा भेज देंगे, उनके पश्चात् उनका १) काट कर बाकी ६ पुस्तकें ४) की वी० पी० द्वारा भेज दी जायेंगी। पोस्टेज प्रत्येक दशा में ग्राहकों के जुम्मे ही होगी। परन्तु जो ग्राहक ५) पेशगी मनीआर्डर या पोस्टल आर्डर द्वारा भेजेंगे उन्हें हम बिना किसी पोस्टेज के ही किताबें डाक या रेल के जरिए भेज देंगे। सरल ज्ञानमाला में पहली पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं और बाकी हो रही हैं—

(१) पदार्थ परिचय (२) नागरिक जीवन (३) जीव की कहानी (४) हमारा शरीर (५) आकाश-दर्शन (६) समाज का विकास (७) जब पृथिवी बनी (८) मानव की जन्म कहानी (९) प्रकृति ज्ञान (१०) भू-तत्व (११) ऋतु विज्ञान (१२) रसायनशास्त्र।

वैज्ञानिक साहित्य-मन्दिर, जार्ज टाउन, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस परिवार

की योजना में मिलने वाली पुस्तकें

चंदे तथा विवरण के लिए नीचे देखिए

(१) भारतीय पुस्तक माला

कायाकल्प [भाग १-२-३]

(ख) स्नेह यज्ञ [भाग १-२-३]

[२] 'हंस' पुस्तकें

(क) मा [भाग १-२-३]

(ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग १-२-३]

(यामा का अनुवाद)

[३] गल्प संसार-माला

१० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं से १२-१५ सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संग्रह

[४] प्रगतिशील पुस्तकें

(क) नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि और पांच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रन्थावली

(क) शोभा ले: इन्द्र वसावड़ा

(ख) संजीवनी ले : 'सोपान'

(ग) प्रायश्चित [भाग १-२ ले : सोपान

[६] जागृत महिला-साहित्य

(क) पिकनिक; लेखिका—कमलादेवी चौधरी

(ख) पिया; लेखिका—उषादेवी मित्रा

(ग) कौमुदी; लेखिका—शिवरानी देवी

[७] आज की किताब

(क) कंटीले तार [भाग १-२]

(ख) जाई-जुई और ६ पुस्तकें

[८] हंस मासिक के १२ अङ्क

[९] 'कहानी' मासिक के १२ अङ्क

'हंस-परिवार' के सदस्य बनिये

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मू० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिये यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों को मात्र २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की मँहगी के जमाने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी यह हमारे दयालु सहायक गण समझ ही सकते हैं। यह संस्था तो सेवा के लिए ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बनने वालों को हम 'हंस परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे।

इस मूल्य में घर बैठे बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी। जिनकी पृष्ठ संख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है, अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर रु० २॥) में १००० पृष्ठ मिलते हैं। इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंगरेजी में भी नहीं है। यह योजना बेजोड़ है। निसन्देह।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा।

[१] १२०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद।

[२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद।

[३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिससे आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं।

[४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों तथा कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे।

[५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ६०० पृष्ठों में उपस्थित किया गया है।

[६] महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न। यह आपके परिवार में पत्नी तथा मा-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे।

[७] 'आज की किताब के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुलझाव रहेगा, अधिकांश तो ये छोटे-उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे।

सरस्वती-प्रेस, बनारस, इन्दौर और लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा नवीन प्रकाशन

सरल अर्थ-शास्त्र (Elementary Economics) पुस्तक युक्त प्रान्तीय इन्टरमीडियेट बोर्ड के अर्थ शास्त्र विषय के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। पुस्तक में विषय को अत्यन्त रोचक तथा सरल बनाने का पूर्ण रूप से उद्योग किया गया है। पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दों की सूची तथा शब्दानुक्रमणिका दी हुई है, जिससे कि पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। उर्दू संस्करण भी है। लेखक—दयाशंकर दुबे एम० ए०, एल-एल० बी० और भगवानदास केला—मूल्य ३)

ग्राम्य अर्थ-शास्त्र (Rural Economics) युक्त प्रान्त के हाई स्कूल और इन्टरमीडियेट बोर्ड की हाई स्कूल परीक्षा के ग्राम्य अर्थ शास्त्र के लिए स्वीकृत है। पुस्तक अत्यन्त सरल तथा रोचक है। उर्दू में भी है। लेखक—दयाशंकर दुबे एम० ए०, एल-एल० बी० और शंकर सहाय सक्सेना एम० ए० बी० काम०, मूल्य १।)

भारत का आर्थिक भूगोल—(Economic Geography of India) युक्त प्रान्त के हाई स्कूल और इन्टरमीडियेट बोर्ड की हाई स्कूल परीक्षा के आर्थिक भूगोल के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है पुस्तक हाई स्कूल के विद्यार्थी तथा जन-साधारण के लिए अत्यन्त उपयोगी है। उर्दू में भी है। लेखक—दयाशंकर दुबे एम० ए०, एल-एल० बी तथा शंकर सहाय सक्सेना एम० ए०, बी० काम मू० १।)

नागरिक शास्त्र की विवेचना (Groud work of Civios)—प्रस्तुत पुस्तक एफ० ए० के छात्रों के लिये लिखी गई है। पुस्तक अत्यन्त सरल तथा रोचक भाषा में लिखी गई है। इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है कि यह ग्रन्थ हिन्दी में ऐसा होना चाहिये जो अंग्रेजी के किसी भी ग्रन्थ से कम न हो। विद्यार्थियों के हित का ध्यान रखते हुए पुस्तक के अन्त में उन तमाम प्रश्नों की एक सूची दे दी गई है जो नागरिक शास्त्र पर शुरू से अब तक यू० पी० इन्टर बोर्ड में पूछे गये हैं। लेखक—गोरख नाथ चौबे एम० ए०—मूल्य ३)

सरल शरीर विज्ञान (Elementary Physiology) यह पुस्तक शरीर रचना ऐसे कठिन एवं जटिल विषय को सरल तथा रोचक बनाया गया है। यह हाई स्कूल तथा इंटरमीडियेट परीक्षाओं की तैयारी करने वाले छात्रों के लिए खास तौर से रची गई है। लेखक—जानकीशरण वर्मा—मूल्य १।।)

विचार-विमर्ष—इस पुस्तक में हिन्दी के सुयोग्य लेखक और समालोचक श्री सद्गुरुशरणजी के विवेचनात्मक लेखों का संग्रह है। सभी लेख सुन्दर साहित्यिक और उच्चकोटि के हैं। पुस्तक ऊँची श्रेणी में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त तो है ही, साहित्यिक ज्ञान वृद्धि के लिये भी बड़ी उपयोगी है। ले०—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी मूल्य १।।)

महाकवि हरिऔध का प्रिय-प्रवास— इस पुस्तक में हिन्दी के महाकवि हरिऔध के प्रियप्रवास नामक महाकाव्य पर भली भांति विवेचना की गई है। पुस्तक ऊंची कक्षा में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के साहित्य ज्ञान विकास के लिए बड़ी उपयोगी है। विवेचना शैली बड़ी गम्भीर, आकर्षक और महत्वपूर्ण है। लेखक-प्रोफे० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री-मूल्य १)

हमारी नाट्य परम्परा—इसमें मुख्य मुख्य नाट्यशास्त्र के अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है व्यर्थ के उन अङ्गों की जिनकी कुछ भी आवश्यकता उच्च कक्षा तक के विद्यार्थियों को नहीं पड़ती, उनका इसमें समावेश नहीं किया गया है। आशा है इससे हिन्दी साहित्य के प्रत्येक विद्यार्थी लाभ उठावेंगे—श्री दिनेश नारायण उपाध्याय 'साहित्यरत्न'—मूल्य १)

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—हिन्दी साहित्य के इतिहास का आलोचनात्मक विवेचन सम्बन्धी एक मात्र ग्रन्थ। इसके लेखक हैं हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वान और प्रयाग विश्व विद्यालय के हिन्दी प्रोफेसर—श्री रामकुमार वर्मा एम० ए०—मूल्य ४।)

सूर साहित्य की भूमिका लेखक रामरतन भटनागर एम० ए० और वाचस्पति त्रिपाठी एम० ए०

रामनारायणलाल, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब कोई बेकार न रहेगा

जिसके पास 'दौलत की खान' पुस्तक है वह एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक है। बेचारे गरीब आदमियों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे अपनी जीविकोपार्जन करके कोई रोजगार कर सकें। यदि थोड़ा पैसा भी है तो उन्हें आसानी से थोड़ी लागत का रोजगार शुरू करने का तरीका ज्ञात नहीं जिसके कारण वे सर्वथा बेकार हैं, हमारी इस पुस्तक को मंगा कर पढ़ें। आप मामूली लागत और मेहनत से अपने शहर और कस्बों व गांवों में इज्जत के साथ काम शुरू करके थोड़े ही दिनों में अमीर बन जायँगे। लोग ऐसी पुस्तक को पाकर छिपाने की कोशिश करते हैं क्योंकि मनुष्य थोड़े ही दिनों में इस पुस्तक से एक बड़ी भारी सम्पत्ति का मालिक बन सकता है।

यदि आप [१] विलायत के बेकारों की भांति केवल कलम दवात के सहारे घर बैठे डाक द्वारा या पचासों आश्चर्यजनक किन्तु बेहद सरल एवं बिला पैसे की युक्तियों द्वारा अच्छी आमदनी करना चाहते हैं। [२] संसार की सुविख्यात कम्पनियों के पेटेन्ट और कई गुणे नफे में बिकने वाली प्रसिद्ध वस्तुओं के मामूली लागत के सच्चे नुस्खे बनाकर मालामाल होना चाहते हैं। विलायत की नई वस्तुओं के नमूने सर्वोत्तम व्यापारिक सलाह तथा संसार की प्रत्येक वस्तु का पता मुफ्त देने वाली फर्मों के पते जानने [३] २, ४, ६ आने से लेकर १०, २०, ५० रुपये की लागत के बेशुमार लाभ के बीसियों सरल रोजगार [४] प्रत्येक व्यापार एवं धन्धे में अच्छी सफलता पाने के गुप्त भेद [५] प्रत्येक बाजार एवं परिवार में धड़ाधड़ बिकने वाली पचासों आसान साधारण लागत और अत्याधिक नफे की वस्तुओं के बनाने तथा बेचने की विधियाँ जान कर अपनी बेकारी, बेरोजगारी, खर्च की तंगी और गुलामी की मार मिटाना चाहते हैं, तो आज ही इस पुस्तक को मंगाइये। मूल्य फी पुस्तक १।।) एक रुपया आठ आना, डाक खर्च ।।)

रूपविलास कम्पनी, नं० ४, कानपुर।

आलोचकों का कहना है—

विचार

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक पत्र है ?

आपका क्या मत है ?

क्या

आप विचार पढ़ते हैं ?

यदि नहीं तो आज ही उसके ग्राहक बनिये।

मूल्य ६) वार्षिक नमूना =) के टिकट भेज कर मंगा सकते हैं। एक प्रति का =)

पता—

मैनेजर—'विचार', ४०२ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश

भाग ४] आगरा—ज्येष्ठ १९९८ वि०; जून १९४१ [अङ्क १०

जन-साहित्य

[प्रो० रामजीलाल एम० ए०]

देश की जागृति, नवराष्ट्र निर्माण-चेतना एवं साहित्य में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दिलचस्पी के कारण आज जन-साहित्य की मांग जोरदार है। इस माँग के करने वाले सज्जनों में से अधिकांश का यह विचार है कि वर्तमान हिन्दी-साहित्य की पृष्ठ-भूमि जन-सामान्य से कोसों दूर है। हमारे देश के राजनीतिक क्षेत्रों में साहित्य के प्रति उदासीनता का कारण यही बताया जाता है कि कवि कल्पना के लोक रचते हैं तथा स्वप्न-पट बुनते हैं, प्रत्युत राजनीतिज्ञ वास्तविकता की कठोर भूमि पर विचरण करते हैं। अतः साहित्य और समाज के बीच खाई दिनों-दिन गहरी होती जा रही है।

इस समस्या पर कुछ विचार करने के पूर्व हमें पहले जन-साहित्य के अर्थों पर विचार कर लेना चाहिए। सामान्यतः जन-साहित्य के कई अर्थ हो सकते हैं। जन-साहित्य का एक अर्थ तो उस साहित्य से हो सकता है जिसकी रचना जनसामान्य द्वारा हो। उच्च वर्ग के बौद्धिक चमत्कारमय साहित्य का विपरीत ही जन-साहित्य हो सकता है। दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि साहित्य चाहे जिस वर्ग अथवा श्रेणी के लोगों द्वारा रचित हो परन्तु उसमें जनसामान्य के प्रति सहानुभूति एवं यदि सम्भव हो सके तो उच्च वर्गों की शोषण नीति का तिरस्कार होना चाहिए। साहित्य वर्गवादी हो और उसका उद्देश्य एक ऐसा शासन हो जिसमें सत्ताधारियों का प्रभुत्व कम एवं कामगरों तथा श्रमजीवियों की शक्ति अधिक हो। जन-साहित्य का एक तीसरा अर्थ यह हो सकता है कि उसकी हृदयद्रावक शक्ति बड़ी विस्तृत हो, उसमें जनसामान्य की भावनाओं का प्रतिनिधित्व हो। वह सामान्य रूप से मनुष्य नामधारी जीवमात्र को प्रभावित कर सके। जन-साहित्य के उपरोक्त तीन अर्थों में एक सामाजिक दृष्टिकोण अन्तर्हित है। जन का अर्थ वर्गवाद के आधार पर स्थित है। परन्तु विवेचन की दृष्टि से जन का अर्थ समाजिकता के बन्धनों से पृथक मनुष्य से भी हो सकता है। अतः इस दृष्टि से जन-साहित्य का अर्थ एक ऐसे साहित्य से होगा जो मनुष्य को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध मनुष्यता की दृष्टि से देखना चाहता है।

अब हमें पहले अर्थ में जनसाहित्य का विवेचन करना चाहिए। हमें यह देखना चाहिए कि विशिष्ट साहित्य कहां तक जनसामान्य के द्वारा रचा जा सकता है और कहाँ तक बौद्धिक चमत्कार से हीन होने पर भी वह शुद्ध साहित्य की कोटि में परिगणित हो सकता है। जहाँ तक रचयिताओं का प्रश्न है साहित्य-सृजन में प्रतिभा की ही आवश्यकता होती है। प्रतिभा विद्वता से पृथक वस्तु है और अवश्य ही मनुष्य अविद्वान होते हुए भी प्रतिभाशाली हो सकता है, एवं साहित्य की रचना कर सकता है परन्तु विद्वत्ता यदि कभी-कभी प्रतिभा का हानिप्रद संयमन करती है तो अधिकांश परिस्थितियों में उसका सुरुचिपूर्ण संयमन ही करती है। सामाजिक परिस्थितियों के कारण आज विद्या और बुद्धि एक ऐसे वर्ग के हाथों में सिमट गयी है, जिसने स्वार्थ के वशीभूत होकर दूसरे वर्गों को उससे वंचित रखा है। परन्तु इस परिस्थिति के कारण हम विद्या और बुद्धि का ही तिरस्कार कर उसे गर्हित नहीं समझ सकते। हम यह नहीं कह सकते कि विद्या एवं बुद्धि के भी वर्गगत भेद हैं। विद्या एवं बुद्धि तो सदा से वाँच्छित रहे हैं और रहेंगे। एच० जी० वेल्स सरीखे विद्वानों का तो यह विचार है कि विद्या और बुद्धि संसार की सुख शान्तिपूर्ण परिस्थितियों का परिणाम है। परन्तु यह सुखशान्ति परिस्थितियों के कारण कुछ थोड़े ही लोगों को मिल सकी। अतः वह तो मानव मात्र के लिए इस प्रकार की सुख शान्ति के स्वप्न देखता हुआ एक ऐसे युग की कल्पना करता है जब मानव मात्र को विद्याबुद्धि सुलभ हो सकेगी। परन्तु विगत महा-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् संसार में एक ऐसा हाहाकार मचा और पूँजीवाद से शोषित जनसमाज इतना भयभीत एवं त्रस्त हो गया कि पूँजीवादियों के पास जो कुछ भी था, उस सब को ही वह भय एवं संशय की दृष्टि से देखने लगा।

इधर जनसामान्य के नेताओं ने एक ओर तो जनता या शोषितवर्ग को शिक्षा आदि के द्वारा ऊँचे बौद्धिक स्तर पर लेजाने का प्रयत्न किया तथा दूसरी ओर उस बौद्धिक विकास पर व्यंगबाण बरसाए, जिसे समाज के कुछ वर्ग अपनी सामाजिक परिस्थितियों के कारण प्राप्त कर चुके थे। कहने का तात्पर्य यह है कि विद्या एवं बुद्धि के क्षेत्र में वर्गवाद की दिवार खड़ी करने के प्रयत्न किये गये। कहना तो यह चाहिए था कि विद्या एवं बुद्धि को वर्गवाद को पुष्ट कर उसे उत्तेजना नहीं देनी चाहिए परन्तु कहा यह जाने लगा कि स्वयं बुद्धि भी श्रीसम्पन्न वर्ग का एक रूप है अतः जन-साहित्य के समर्थक ये माँग उठाने लगे कि जनसाहित्य के रचयिता भी निम्नवर्गों के ही होने चाहिए। वर्ग-संघर्ष के सम्बन्ध में भी एक स्मरणीय बात यह है कि वर्ग समाज की अव्यवस्था से उत्पन्न हुई कोटियाँ हैं जिनकी सतत स्थितियों को अधिक से अधिक दुर्दमनीय कहा जा सकता है। मानवता के उपासक राजनीतिज्ञ जिस भावी विश्वराज्य की कल्पना करते हैं, उसमें वर्ग-संघर्ष का कोई स्थान नहीं है। अतः जन-साहित्य का यह अर्थ चाहे लिया जा रहा हो—पर लिया नहीं जा सकता या जाना चाहिए कि वह निम्न वर्गों में वर्गभावना को उत्तेजना दे। अतः हमें इस बात का आग्रह करने की भी आवश्यकता नहीं कि जनसाहित्य के रचयता भी जनवर्ग के ही हों। साहित्य के लिए यह नियम बनाना कि वह उतनी ही विद्याबुद्धि से सम्पन्न हो, जितनी सामान्यवर्गों के पास है, साहित्य को पंगु बनाकर उसके भावी विकास को भारी ठेस पहुँचाना होगा। लगे हथों जनसाहित्य के सम्बन्ध में बौद्धिक चमत्कार पर भी विचार करलेना चाहिए। ऊपर कहा जा चुका है कि काव्य रचना में विद्याबुद्धि का प्रयोग उत्कर्षदायक ही होता है वह उसे नियमित एवं सुचारू बनाता है। काव्य की प्रभविष्णुता बढ़ाने के लिए यह किन्हीं अंशों में आवश्यक भी है। परन्तु जहां इसका प्रयोग केवल प्रदर्शन एवं खिलवाड़ की दृष्टि से किया जाता है, वहाँ अवश्य ही यह निन्दनीय एवं गर्हित है। हमारे काव्य के रीतिकाल में और इससे कुछ पहले कुछ कवियों द्वारा चमत्कार का व्यर्थ ही प्रदर्शन किया गया। उलटवासियाँ, दृष्टिकूट एवं वस्तुध्वनिमय काव्य इसी प्रकार का था। रीतिकाल के काव्य के अन्तर्गत नायिकाभेद एवं अत्यधिक अलङ्करण की प्रवृति इसी मनोवृत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अन्तर्गत समझी जानी चाहिए। अतः जनसामान्य का ऐसे साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वह भावों में एक स्थायी स्फूर्ति उत्पन्न करने के स्थान में केवल कुछ विद्वानों के मनोरञ्जन की वस्तु हो गया। रीतिकाल की उस प्रवृत्ति के रूप ही प्रतिक्रिया में द्विवेदी-युग का काव्य आया जिसने कविता में सरलता को आदर्श माना। परन्तु प्रतिक्रिया रूप में उठी यह कवितागत सरलता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उसमें भावोन्मेषकारिणी शक्ति बहुत क्षीण पड़ गयी। अतः आज की हिन्दी कविता पर यह बात लागू नहीं हो सकती कि वह बौद्धिक चमत्कार-प्रधान है एवं वह जन-साहित्य के अन्तर्गत नहीं गिनी जानी चाहिए।

हाँ, आज के काव्य में बौद्धिक दृष्टि से एक ऐसी बात अवश्य है, जो उसे जन-साहित्य से विभाजित करती है और वह है लाक्षणिक पदावली का अत्यधिक प्रयोग। लाक्षणिक पदावली स्वयं कोई बुरी वस्तु नहीं; परन्तु लक्षणा का मूल आधार होना चाहिए प्रसिद्धि। परन्तु लाक्षणिक प्रयोगों के लिए यह प्रसिद्धि लोक से भी संग्रहीत होती है और कभी कवि स्वयं भी लक्षणाओं की उत्पत्ति करते हैं। यह बात तो अवश्य ही माननी पड़ेगी कि हमारी भाषा की लाक्षणिक शक्ति की वृद्धि वाँछनीय है। अतः ऐसी अवस्था में प्रश्न यही रह जाता है कि उसका विकास जनता की ओर से हो अथवा कवियों की ओर से जन-साहित्य के समर्थक यह कह सकते हैं कि हम कवियों के अधिकार पर तो कुठाराघात नहीं करना चाहते परन्तु कवियों को नवनिर्माण के पूर्व उतनी लाक्षणिकता तो ग्रहण करनी चाहिए जितनी जनता में प्रचलित है। परंतु बात इससे उल्टी है। इस दृष्टि से अवश्य ही वर्तमान हिन्दी कविता जन-साहित्य से कुछ दूर जा पड़ती है।

जन-साहित्य के सम्बन्ध में रचयिताओं एवं बौद्धिक चमत्कार के प्रश्न के उपरान्त अब यह सामने आता है कि उसका समाज के तथाकथित शोषित वर्गों के प्रति क्या लक्ष्य हो तथा वर्गवाद से उत्पन्न विषमता की ओर से वह उदासीन रहे अथवा उसके शमन वा उत्तेजन में वह क्रियात्मक भाग ले। साहित्य के सम्बन्ध में यह एक जटिल प्रश्न है। यों तो साहित्य के सम्बन्ध में कुछ कला को प्रधानता देता हुआ एवं कुछ जनहित को महत्व देता हुआ प्रश्न सदा से वर्तमान है एवं रहेगा। संसार के साहित्यिक इतिहास में ऐसे भी कलाकार हुए हैं जिन्होंने कम-से-कम प्रत्यक्ष रूप से समाज को प्रधान नहीं रखा है और फिर भी वे वहाँ साहित्यिक माने जाते हैं उदाहरण के लिए अङ्गरेजी में शेक्सपीयर तथा कीट्स एवं हिन्दी में विहारी आदि इसी परिधि के अन्तर्गत आते हैं। इसके विपरीत फ्रांस के प्रसिद्ध क्रांतिलेखक विक्टर ह्यूगो तथा आज से कुछ दिन पहले के रोम्याँ रोला इसीलिए प्रसिद्ध हैं कि उन्होंने साहित्य में समाज को अपना लक्ष्य बनाया है। अमेरिका के अप्टन सिन्क्लेयर तथा भारत के तुलसीदास का महत्व इसी दृष्टि से है कि उनका लक्ष्य समाज है। सच पूछा जाय तो साहित्य के सम्बन्ध में अनेक वादविवाद उपरोक्त दोनों सिद्धान्तों को लेकर ही हैं। परन्तु फिर भी यह मानना पड़ेगा कि कवि का अलाप उन के मुक्त पक्षी के संगीत की तरह केवल आत्म-मनोरंजन के लिए ही नहीं है। यह ठीक है कि शेक्सपीयर तथा विहारी बड़े कलाकार हैं किन्तु यदि उनके काव्य का उद्देश्य पीड़ित समाज के प्रति सहानुभूति होती तो वे और भी बड़े कलाकार एवं साहित्यिक होते। यही तो कारण है कि आज हिन्दी में विहारी का गौरव कम होता जा रहा है। एवं शेक्सपीयर को भी टॉलस्टाय जैसे मनस्वी विद्वान साहित्यिकों की श्रेणी में बहुत ऊंचा स्थान नहीं देते। समाज का पीड़ित वर्ग मानवता का कलंक है। साहित्य की उपयोगिता जीवन से पृथक नहीं है। यदि कलाकार वस्तु स्थिति की उपेक्षा करता है, तो उसके महत्व को ठेस ही लगेगी। यह ठीक है कि महान-कलाकार चरम सत्य, शिव एवं सुन्दर को अपना परम लक्ष्य मानता है एवं जीवन तथा काव्य में उसी की प्राप्ति के लिए सप्रयत्न होता है। परन्तु ये प्रयन्त समाज की पृष्ठ-भूमि के बिना निस्सार एवं फीके हैं। सत्य, शिव एवं सुन्दर का चिन्तन के द्वारा मानवात्मा में जो रूप आता है, उसकी अभिव्यक्ति केवल सैद्धान्तिक न होकर समाज के धरातल पर होनी चाहिए इसके अभाव में उनका मूल्य कुछ भी नहीं रह जाता है। पन्तजी ने लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आज सत्य, शिव सुन्दर करता
नहीं हृदय आकर्षित।
सभ्य, शिष्ट औ' संस्कृत लगते,
मन को केवल कुत्सित।
संस्कृति, कला, सदाचारों से,
भव मानवता पीड़ित।
स्वर्ण पींजड़े में है वन्दी,
मानव आत्मा निश्चित।"

ऊपर के तर्क का यह अर्थ कदापि नहीं कि साहित्य को कला-विहीन कर केवल प्रचार का साधन बनाया जाय। प्रचार तो कवि भी करेगा परन्तु अपने ढंग और अपनी पद्धति पर। अतः हम मान सकते हैं कि वर्तमान हिन्दी कविता का अधिकांश भाग इतना व्यक्ति-प्रधान होता जा रहा है कि समाज से वह दिनों-दिन दूर पड़ता जा रहा है। समाज के घोर हाहाकार एवं चीत्कार के बीच से जो लेखक भाग कर कहीं अन्य सत्य, शिव एवं सुन्दर के लोक रचता है, वह कम-से-कम जन-साहित्य का रचयिता नहीं कहा जा सकता।

परन्तु किसी वर्ग के प्रति सहानुभूति होना एक बात है तथा उसे संघर्ष के लिए उत्तेजित करना दूसरी बात। संघर्ष के लिए उत्तेजना देने पर हमें दूसरे वर्गों के अत्याचारों एवं कलुषित कार्यों का उल्लेख भी करना पड़ता है। काव्य अथवा जीवन के विकास के लिए वर्णन एकपक्षीय कदापि नहीं हो सकता। कर्म को प्रोत्साहन देने के लिए हमें दोनों कोटियों का चित्रण करना होगा। पीड़ित वर्गों के प्रति हमें सहानुभूति का प्रदर्शन करते हुए, उनसे इस बात का आग्रह करना होगा कि वे अपने अधिकारों के लिए झगड़ें। यदि प्रत्यक्ष रूप से हम उनसे ऐसा आग्रह न भी करें, तो भी अवश्यंभावी फल यही होगा कि वे सत्ताधारियों के विरुद्ध खड़े हों। परन्तु वह अनिवार्य है। अतः आज का साहित्य संघर्षपूर्ण होगा ही। यह एक नैसर्गिक प्रतिक्रिया है। आज के हिन्दी-काव्य के नूतनतम स्वरूप में इस प्रवृत्ति के चिह्न दिखाई भी पड़ने लगे हैं। इस दृष्टि से वह जन-साहित्य के अधिक निकट आता जा रहा है।

जन-साहित्य का तीसरा अर्थ यह हो सकता है कि उसकी हृदय-द्रावक शक्ति बड़ी विशाल हो। और इस दृष्टि से उसके चौथे अर्थ मानव को शुद्ध मानव रूप में देखने का भी समाहार हो जाता है। परन्तु व्यापक हृदय-द्रावक शक्ति साहित्य में लक्ष्य होती हुई भी, प्राप्य ही रहती है प्राप्त कभी नहीं हुआ करती। आज कल हिन्दी में कुछ लोकगीतों को लोक-साहित्य के नाम से अभिहित करने की जो चाल चल पड़ी है, उसमें प्रभाव की व्यापकता ही एक कसौटी है। परन्तु सामान्य जन-समाज का लक्ष्य सदा वर्तमान तक ही सीमित रहता है। हम कोरे आकाश कुसुमवत् स्वप्नों की बात तो नहीं कहते, परन्तु फिर भी मनस्वी कलाकार कभी-कभी मानव के लिए अपने चिन्तन एवं विचारणा से ऐसे पथ निर्मित किया करते हैं, जो मानव को तत्कालीन आनन्द न दें, परन्तु उनका लक्ष्य बड़ा महान होता है। परन्तु वर्तमान की घिरी मानवता कभी-कभी उसके महत्व पर मुग्ध नहीं हो सकती। अतः वे उसे अधिक रोचक नहीं लगते। यदि हम प्रभाव की व्यापकता को ही जन-साहित्य की एकमात्र कसौटी मान लें, तो हमें साहित्य का निर्माण एकान्त रूप से जनरुचि पर ही करना होगा। परन्तु साहित्य का कार्य जहाँ एक ओर गिरी मानवता को ऊँचा उठाना है, वहाँ उसकी रुचि को भी समुन्नत करना है। परन्तु जनरुचि की यत्किञ्चित् उपेक्षा करने वाले साहित्यकार को यह मान लेना होगा कि—

"धर्मनीति औ सदाचार का
मूल्यांकन है जनहित,
सत्य नहीं वह जनता से जो
नहीं प्राण सम्बन्धित!"

—(पन्त)

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-आलोचना

[श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त]

हिन्दी-साहित्य में आलोचना का काम लगभग तीन सौ वर्ष पहले के ढर्रे पर चला आ रहा है; यानी बारीकियाँ ढूँढ़ना और बाल की खाल निकालना। साहित्य समाज का प्राणस्वरूप है यह मान कर चलने वाली आलोचना हिन्दी में नहीं-सी है। जिस प्रकार रीति-काल के कवि अलंकार-विवेचन करते थे, वही आज भी हमारे साहित्य-विद्यालयों में हो रहा है, मानो समाज और साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए ही न हों। आज के अंग्रेजी-पढ़े आलोचक अरस्तू और मैथ्यूआर्नल्ड की दुहाई देते हैं। किन्तु आलोचना लिखते समय भूल जाते हैं कि कला जीवन का चित्रण है। जिन आलोचकों ने पाश्चात्य-पद्धति को अपनाया, वे भी हमें साहित्य की बुनियादों तक न पहुँचा सके। उनका आलोचना-शास्त्र केवल सतह का परिवर्तन-मात्र था।

आलोचक का काम गुण दोष-विवेचन समझा जाता है। वह किसी कविता या कहानी की खूबियाँ हमें समझा दे, बस उसका काम खत्म हो गया। वह साहित्य की अन्तरंग समीक्षा कर समाज के आधार-स्तम्भों तक नहीं पहुँच पाता। पहले सामन्ती युग में वह अलंकार गिनता था। आज पूँजीवाद के युग में, वह कल्पना की उड़ान पसन्द करता है। कुछ रूढ़ियों के बल से, कुछ अपनी कल्पना से वह लिख मारता है। फिर एक लम्बी बहस छिड़ जाती है कि आलोचना के मान क्या हों।

यदि आलोचक साहित्य और कला की बुनियादों तक पहुँच कर उनकी विवेचना कर सकता है, तो निश्चय ही वह उन्हें आगे बढ़ने में मदद दे सकता है। साहित्य हवा में नहीं तैयार होता, समाज की वास्तविकता और उसकी संस्कृति का वह सच्चा नक्शा है। आज के संक्रान्ति काल में वह कलाकार उच्च कोटि की रचना नहीं कर सकते, जो समाज की गढ़न से अनभिज्ञ हैं, या उसके प्रति उदासीन हैं। पारखी केवल गढ़न से ही खुश नहीं हो जाता वह सोने का गुण भी देखता है।

आज हिन्दी-आलोचना में कुछ गलतफहमियाँ फैल रही हैं जिनका स्पष्टीकरण जरूरी है। यह भ्रम अधिकतर ऑस्करवाइल्ड के स्कूल की देन हैं और निर्जीव कला के जनक हैं। कुछ फ्रायड, आडलर आदि के विश्लेषण की समूल नकल का परिणाम हैं।

कहा जाता है कि कला युग और समाज के ऊपर कोई अद्भुत सृष्टि है जिसका मूल्य अमिट है। यह कला व्यक्ति विशेष के मन की उपज समझी जाती है, जिसका भौतिक-परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं। कहा जाता है कि कला के आधार जीवन के शाश्वत सत्य हैं जो कि कभी बदलते नहीं। फ्रायड के फैलाए भ्रम अभी हिन्दी आलोचना में एक संकुचित परिधि में सीमित हैं।

यह भ्रम कम अध्ययन और मनन के फल हैं। कला की कसौटियाँ स्थिर करने के लिए समाज-विज्ञान का कुछ परिचय जरूरी है। तभी यह स्पष्ट होगा कि समाज के रूप के अनुसार ही कला का विकास हो सकता है। आज भी हम देख सकते हैं कि रूसी कला जीवन और आशा से ओत-प्रोत है। दूसरी ओर अँग्रेजी और फ्रेंच कलाकारों के प्राण छटपटा रहे हैं। जर्मनी में कला का अन्त हो चुका है और इन परिस्थितियों में उच्च कोटि का कला-निर्माण असम्भव है। दो एक टटपूँजिये लेखक अवश्य गला फाड़-फाड़ कर युद्ध के गीत गाते हैं।

सत्य, शिव और सुन्दर की आराधना को शाश्वत कहा जाता है, यानी जीवन में इनका रूप अपरिवर्तित है। हम जीवन को गतिशील और विकासमान समझते हैं। जड़ स्थावर नहीं। सत्य और सुन्दर के भी अधिकाधिक विकसित मान हमें समाज और कला में मिलते हैं। हबशी के लिए मोटे होठ और चीनियों के लिये छोटे-सूझे हुए पैर—प्लेटो और अरस्तू के लिए दास-प्रथा ही शाश्वत सत्य थी और उनकी समस्त समाज योजनाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आधार। जो सत्य आज हमें शाश्वत दीखता है, कल मिथ्या हो जाता है क्योंकि समाज के बदलते जीवन में हम सत्य का नया तथा विकसित रूप देखते हैं। सूर्योदय और गुलाब भी हमें हमेशा सुन्दर नहीं लगते। एक कवि ने लिखा है—

जब जेब में पैसा होता है, जब पेट में रोटी होती है।
तब हर एक जर्रा हीरा है, तब हरएक शबनम मोती है॥

यह शाश्वत सत्य भी भरे पेट बुर्जुवा आलोचकों की कल्पना है, क्यों कि उनका पेट सतत भरा है।

फ्रायड ने मनुष्य के अन्तर्मन का जो विकृत नकशा खींचा है, वह भी शाश्वत सत्य नहीं, वरन् क्षयग्रस्त विलासी समाज का नकशा है। फ्रायड के अनुसार अधिकतर कला Oedipus Complex की उपज है यानी मां के प्रति पुत्र की वासना जो बचपन से ही चली आती है। यह विचार स्वस्थ समाज पर लागू नहीं हो सकते, यह क्षय रोग के कीटाणु हैं।

हम कला को समाज की जीवनी शक्ति समझते हैं, समाज से अलग अंतरिक्ष की रचना नहीं। जो कला ह्रास-मूलक शक्तियों का शिकार बन जाती है वह निर्जीव हो जाती है और उच्च कला नहीं रह पाती।

आलोचक का लक्ष्य केवल टेकनीक-विवेचना ही नहीं, उसे कला के अन्तस्तल तक पहुँचना चाहिए। इस प्रकार आलोचक केवल मध्यस्थ ही नहीं, वरन समाज और संस्कृति के विकास का साधन भी बन सकता है। यदि आज हम हिन्दी के आलोचकों की ओर दृष्टि डालें तो कितने इस गंभीर उत्तरदायित्व की रक्षा कर रहे हैं?

स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल आधुनिक हिन्दी आलोचना के मुख्य स्तंभ थे। उन्होंने प्राचीन आलोचना शास्त्र और पाश्चात्य कसौटियों को साथ-साथ लेकर हिन्दी साहित्य की छानबीन की और एक स्वतंत्र आलोचना-शैली का निर्माण भी किया। शुक्लजी हिन्दी के गंभीरतम आलोचक थे। टेकनीक के गुण-दोष में उन्होंने सूक्ष्म-दर्शिता दिखाई। मूल में उनका दृष्टिकोण भी रूढ़िवादी था। कला को बनानेवाली बुनियादी शक्तियों तक वह न पहुँचे। जायसी की प्रेम-परम्परा पर पन्ने रंगते ही वह रह गये। किन्तु रूढ़िवादी आलोचना को उन्होंने पराकाष्ठा तक पहुँचाया। सूर, तुलसी और जायसी के उत्कृष्ट अध्ययन उन्होंने हिन्दी साहित्य को दिये। शुक्लजी की दृष्टि अतीत की ओर थी। आधुनिक हिन्दी-साहित्य के निर्माण में उन्होंने हमारा हाथ नहीं बंटाया, बल्कि विरोध ही किया। आज के साहित्य की ओर जब भी उन्होंने दृष्टि उठाई, वह उन्हें खोटा लगा। यह सच है कि इधर, जब कि आधुनिक साहित्य प्रसव-काल की पीड़ा से निकल चुका था, शुक्लजी की उससे कुछ सहानुभूति हो चली थी, किन्तु यह घटना घट जाने के बाद की बुद्धिमानी थी। शुक्लजी ने हिन्दी आलोचना को गंभीर रूप दिया और पुराने ढंग की तू-तू मैं-मैं से बाहर निकाला अतः हमें उनका भारी आभार मानना ही पड़ेगा। किन्तु वर्ग संस्कृति के बाहर कुछ कल्पना करने में भी वह असमर्थ थे। हिन्दी आलोचना के एक प्रकार से वह "रिप वैन विन्किल" थे।

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने कर्तव्य में अधिक सजग हैं और उनकी अनुभूतियाँ अधिक विस्तृत और व्यापक, किन्तु अभी तक आप अपने वर्ग बंधन को तोड़ने में असमर्थ ही रहे हैं। इसका कारण आपका शान्ति-निकेतन के सुकुमार जीवन से सम्पर्क और संस्कृत साहित्य की पटभूमि हो सकता है। हजारीप्रसादजी ने अपने व्यक्तित्व को सर्वाङ्ग बनाने में कुछ उठा नहीं रक्खा है और अपनी ग्रहण करने की क्षमता के कारण आप आगे लीक छोड़ कर भी चल सकते हैं, किन्तु अभी तो आप अपनी पृष्ठ भूमि के बंदी हैं। आप कहते हैं—"कालिदास ने अयोध्या की दारुण दीनावस्था दिखाने के बहाने मानो गुप्त सम्राटों के पूर्ववर्त्ती काल के समृद्ध नागरिकों की जो दुर्दशा हुई थी उसी का अत्यन्त हृदय विदारी चित्र खींचा है। शक्तिशाली राजा के अभाव में नगरियों की असंख्य अट्टालिकाएँ भग्न जीर्ण और पतित हो चुकी थीं। उनके प्राचीर गिर चुके थे, दिनान्तकालीन प्रचण्ड आंधी से छिन्न-भिन्न मेघ-पटल की भांति वे श्रीहीन हो गये थे।" ('रघुवंश') किन्तु द्विवेदीजी उस समस्त संस्कृति का सामन्ती ढांचा पहचानने में असमर्थ हैं। कम-से-कम उसके प्रति आपको घोर ममता अवश्य है। हम द्विवेदीजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कृतज्ञ हैं कि प्राचीन चिन्ता से इतना घनिष्ट सम्बन्ध होते हुए भी नवीन के प्रति आप में उपेक्षा-भाव नहीं :—

'नवीन चिन्ता जितनी भी कच्ची, जितनी भी अल्पवयस्क और जितनी भी अस्थिर स्वभाववाली क्यों न हो उसमें नवीन प्राण हैं और प्राणदत्ता सब से बड़ा गुण है।'

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने आधुनिक साहित्य पर खूब लिखा है। आपकी अनुभूति तरल है, किन्तु उसके पीछे कोई ठोस बौद्धिक तत्व नहीं। अपने जीवन संघर्ष से विवश आप प्रगतिशील शक्तियों की ओर उन्मुख हैं। किन्तु टॉलस्टाय और गांधी का प्रभाव आपके व्यक्तित्व पर अभी तक इतना गहरा है कि आप जीवन के भौतिक आधार तत्वों को मानने में असमर्थ हैं। इसका मतलब यह है कि मनुष्य समाज निर्माण की भौतिकता से बच कर आध्यात्म की शरण ले, यद्यपि शान्तिप्रियजी इतनी दूर नहीं जाते। आप समय के साथ पग मिला कर चलने की पूरी चेष्टा कर रहे हैं और आज के साहित्य-निर्माण में आपने हाथ बटाया है।

हिन्दी आलोचना में प्रगतिशील शक्तियों का अनवरत विरोध श्री इलाचन्द्र जोशी ने किया है। पहले आप पर ऑस्कर वाइल्ड का साया पड़ा और अब आडलर का। आजकल आप बड़े जोर से दुहरा रहे हैं कि हिन्दी के कवि Inferiority Complex के शिकार हैं। यदि इस बात में कुछ भी सच है तो हम इतना कहने से संतुष्ट नहीं हो सकते। हमें पता लगाना होगा कि किन सामाजिक परिस्थितियों में पड़ कर हमारे कवि इस हीनता का अनुभव कर रहे हैं। हमें उन परिस्थितियों को बदलना होगा। जोशीजी मानते हैं कि उनमें अहम् की भावना प्रबल है। आप आलोचना का कोई विरला पथ निकाल कर उस पर चलना पसन्द करते हैं। यह घोर व्यक्तिवाद भी आज की सामाजिक परिस्थितियों का एक अङ्ग है। ऐसे लोगों से यह आशा व्यर्थ है कि वे कला का सामाजिक और ऐतिहासिक "रोल" समझने का प्रयत्न भी करेंगे।

इसके विपरीत हिन्दी आलोचना क्षेत्र में आज भी कुछ ऐसी शक्तियाँ सतर्क और जागरूक हैं जिनके कारण हम हताश नहीं हो सकते। हम कला के सामाजिक ह्रास के कारण समझते हैं और उन परिस्थितियों को ही बदलना चाहते हैं जिनके कारण स्वस्थ कला आज नहीं पनप सकती है। भारतीय समाज और कला की प्रगतिशील शक्तियाँ सङ्गठित हो रही हैं और बल पकड़ रही हैं। विदेशी पूँजीवाद से मोर्चा लेकर हमारी सामाजिक चेतना जाग उठी है और उसका प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ रहा है।

आलोचना में प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व श्री शिवदनसिंह चौहान के हाथ में है। आप यू० पी० प्रगतिशील लेखक संघ के मन्त्री हैं और समाज-विज्ञान का आपने गहरा अध्ययन किया है। आप साहित्य-विवेचना में बुनियादी तत्वों तक आसानी से पहुँच जाते हैं। आप अनुभूति रख कर भी निर्मम बुद्धिवादी हैं। आपकी परख कठोर अग्नि के समान है जिसमें पड़ कर धातु की असलियत का फ़ौरन पता लगता है। बीमारी और व्यक्तिगत उलझनों के कारण परिमाण में अभी चौहान ने अधिक नहीं लिखा, किन्तु जो कुछ भी लिखा है उसमें सचाई के साथ-साथ गहराई है। आपके अनेक निबन्ध 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता', 'छायावादी कविता में असंतोष-भावना', 'पन्त की वर्तमान कविता धारा', 'भारत की जन नाट्यशाला' आदि हमारे आलोचना साहित्य के दीप स्तम्भ हैं।

पन्तजी भी 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में वर्ग संस्कृति के आलोचक के रूप में प्रकट हुए हैं। पन्तजी का अध्ययन गहरा और सुलझा हुआ है। उनका निर्मम बुद्धिवादी दृष्टिकोण उन्हें वर्ग संस्कृति के तत्वों तक पहुँचा देता है। किन्तु वे आपको आकर्षित नहीं कर पाते—

'आज सत्य, शिव सुन्दर करता, नहीं हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट औ संस्कृत लगते, मन को केवल कुत्सित
संस्कृति कला सदाचारों से, भव मानवता पीड़ित
स्वर्ण पींजड़े में है बन्दी मानव आत्मा निश्चित।

पन्तजी का प्रगतिशील शक्तियों के साथ होना आज की एक स्मरणीय घटना है। इसका हिन्दी साहित्य के निर्माण पर गहरा असर पड़ रहा है।

नरेन्द्र शर्मा आधुनिक हिन्दी कविता का विस्तृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन कर रहे हैं। आपके विचारों की रूपरेखा आपके निबन्ध 'हिन्दी कविता के बीस वर्ष' से स्पष्ट भी हो चुकी है।"प्रवासी के गीत' की भूमिका आज के साहित्य की मार्क्सवादी दृष्टिकोण से आलोचना है। 'कला चिरजीवी' में पुरानी संस्कृति के संकुचित अतः क्षणभंगुर रूप पर आपने प्रकाश डाला है।

आज के कवि का जीवन असफलताओं से घिरा है। पग-पग पर वह ठोकर खाता है। उसका गीत उसके कण्ठ में घुट कर विषैला पड़ने लगता है, उसका कातर नाद फैल कर खण्डहरों में गूँज उठता है।

"क्या कंकड़ पत्थर चुन लाऊं ?"

नरेन्द्र ने कवि जीवन के अरमानें और उसकी निराशाओं का तत्व समझ लिया है। इसलिए वह यह कभी न लिखेंगेः—

"जग बदलेगा किन्तु न जीवन"

आज जीवन को बदलने के लिए जग को बदलना आवश्यक हो गया है।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने हाल में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है। साहित्य परिषद् में सभापति के पद से दिये अपने भाषण में आपने प्रगति का पक्ष ग्रहण किया है। साहित्य और समाज में गति और परिवर्तन आप स्वाभाविक मानते हैं। आप यह भी मानते हैं कि आज की परिस्थितियों में समाजवाद ही प्रगतिशील शक्ति हैं, किन्तु आप फिर भी पूछते हैं कि प्रगति का पथ समाज-वाद का पथ ही क्यों हो ? इसका उत्तर तो आप स्वयं ही दे चुके हैं। आज की शक्तियों में समाजवाद की शक्ति ही प्रगतिशील है, अतएव प्रगतिशील कलाकार अथवा आलोचक उस पथ का अनुसरण करेगा। आगे चल कर वाजपेयीजी पूछते हैं कि कुछ दिन बाद समाज का रूप बदलेगा, नये प्रश्न हमारे सामने उठेंगे, तब क्या होगा ? उत्तर स्पष्ट है। नई समस्याओं का सुझाव नई संस्कृति को करना होगा। किन्तु, यह समस्याएँ भौतिक नहीं मनोवैज्ञानिक होंगी। अब तक समाज दो वर्गों में विभाजित रहा है : शोषक और शोषित। समाजवाद इस वर्ग भेद को दूर कर एक वर्गहीन समाज की स्थापना करेगा। इस समाज में मनुष्य का शोषण न होगा और इस प्रकार आदिम युग का अन्त और इतिहास का आरम्भ होगा। नवीन संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य की आर्थिक समस्याएं सदा के लिए हल हो चुकेंगी।

प्रगतिवाद का स्वर हिन्दी-साहित्य में बल पकड़ रहा है। अनेक तरुण साहित्यकार इसके प्रभाव में आ रहे हैं। हमें संतोष है कि पुराने महारथियों का ध्यान भी इधर आकर्षित हो रहा है। हमारा अपना रास्ता साफ है। हिन्दी आलोचना को आज छोटी-मोटी खूबियाँ छोड़ साहित्य के तल तक बैठना होगा। आधारतत्वों तक पहुँचना होगा। आगे का रास्ता सुझाना होगा और भविष्य के निर्माण में मदद करनी होगी। जो आलोचक आज भी बाल की खाल निकालने में ही लगे हैं, समय उनका मुंह न देखेगा और अपनी रफ्तार से बहता ही जायगा।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113035

शुक्लजी का कवि-हृदय

[डाक्टर केशरीनारायण शुक्ल एम० ए०, डी० लिट्०]

शुक्लजी के कविरूप या कवि-पक्ष पर कुछ लिखने के लिए जब श्रीयुत चन्द्रबली पाँडेजी ने मुझसे कहा तो साल भर की बीती घटनाएँ मेरे सामने फिर से घूम गयीं। आज ही कल के दिन थे, मेरी डी० लिट् की थीसिस तय्यार हो चुकी थी। शुक्लजी मेरे निर्देशक थे। उन्होंने अपनी कविताओं का हस्तलिखित संग्रह मेरी सहायता के लिए दे दिया था। थीसिस परीक्षा के लिए भेज चुकने पर मैंने उनकी कविताओं पर एक लेख लिखने की आज्ञा माँगी। शुक्लजी ने कहा कि अभी ठहर जाओ। यह संग्रह लीडर प्रेस में छपने जा रहा है, इसे छप जाने दो, तब लिखो। आज जब मैं लेख लिखने बैठा हूँ तो देखता हूँ कि वातावरण बिलकुल परिवर्तित हो गया है। उनकी कविताओं का संग्रह कुछ कारणों से न छप सका। सब से पहले कविताओं का संग्रह खो गया। निदान किसी प्रकार बड़ी कठिनता से शुक्लजी की कुछ कविताएँ ही मिल सकी हैं। उन्हींके आधार पर यह लेख लिख रहा हूँ। इससे शुक्लजी के कवि-हृदय का कुछ परिचय हो गया, तो बहुत है।

शुक्लजी के साहित्यिक-जीवन का आरम्भ और अन्त भी कविता से ही हुआ। 'मनोहर छटा' उनकी आरम्भिक रचना है। अपने अन्तिम कालेज व्याख्यान के दिन उन्होंने 'यशोधरा' काव्य की "ओ क्षणभंगुर भव राम राम" कविता पढ़ा कर विद्यार्थियों से विदा ली। उस दिन कौन जानता था कि यह उनकी आखिरी राम-राम है।

शुक्लजी प्रायः कहा करते थे कि विश्वविद्यालय में आने से एक पक्ष छूट ही गया। एक पक्ष से उनका आशय हृदय-पक्ष से था, उनकी आन्तरिक अभिलाषा थी कि अवकाश ग्रहण करने पर समालोचक का बाना उतार कर अपने कवि-हृदय की भावनाओं को व्यक्त करेंगे। अवकाश तो उन्हें मिल ही गया परन्तु उनकी चिर-निद्रा में न जाने कितने अन्य लोगों की अभिलाषाएँ उन्हीं के साथ सदा के लिए सो गयीं।

शुक्लजी के साहित्यिक जीवन की विचारधारा का मूलस्रोत उनकी कविता में उमड़ता है। उनकी कविता में उनके जीवन की झलक पायी जाती है। उनमें उनकी आन्तरिक भावना के दर्शन होते हैं। उनकी समालोचना के आदर्श की कुञ्जी भी उनकी कविता में धरी है। उनकी कविता उनके जीवन, व्यक्तित्व और विचार का मन्त्र है। उनकी कविता के भाव आगे चल कर विविध क्षेत्रों में नानारूप से पुष्ट हुए हैं। उनकी कविता उनके हृदय का सच्चा उद्‌गार है। फिर भी शुक्लजी ने अपनी कविताओं को हृदय का उद्‌गार न कह 'हृदय का मधु भार' कहा है क्योंकि इनके सहारे वे "संसार के इन रूखे रूपों के कडुवेपन की झार" सहते चल रहे हैं। वे जानते हैं कि इन्हीं कविताओं के बीच 'प्रथम उमड़ी थी जीवन की यह धार' इसीलिए वे समझते हैं कि—

"लगी रहेगी ताक झाँक यह सब दिन इसी प्रकार।"

शुक्लजी की कविताओं का प्रमुख विषय प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण है। जो लोग शुक्लजी के अधिक निकट रहे हैं उन्हें शुक्लजी का प्रकृति-प्रेम अत्यन्त स्वाभाविक जान पड़ता है। शुक्लजी के जीवन का अधिक भाग मिर्जापुर में बीता जो स्वयं प्रकृति का रम्य प्रदेश है। विन्ध्य की शैलमाला का प्रसार मिर्जापुर तक है। दूसरे उन्हें प्रकृति के बीच पर्यटन का व्यसन-सा था। एक बार उन्होंने अपने विषय में मुझ से कहा था कि मैंने कालिदास का मेघदूत लेकर पूरी यात्रा की है और मेघदूत में निर्दिष्ट कई स्थलों को पहचाना है। ये अपने साथियों के साथ प्रायः विन्ध्य की पहाड़ियों में घूमने चले जाते थे। अपने साथियों और उनके साथ पर्यटन का निर्देश इन्होंने अपनी कविता ('झलक') में कई स्थलों पर किया है।

शुक्लजी का प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण संवेदनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न होकर अधिकतर चित्रात्मक है। इनका विश्वास था कि प्रकृति के सच्चे स्वरूप 'अन्तस् के भावों को जगाने में' स्वयं समर्थ हैं और मनुष्य अपने क्षुद्र भावों का प्रकृति में आरोप कर उसकी विशालता और उसके सच्चे स्वरूप को धुंधला बना देता है। इनका कहना था कि प्रकृति को मानव-भावनाओं का दर्पण न बना कर उसकी रामकहानी पर कान देना चाहिए और उसके रूपों का पर्यवेक्षण करना चाहिए। शुक्लजी ने उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो अपने भावों का प्रकृति पर आरोप कर उसके रहस्य को समझाने का प्रयत्न करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रकृति के विशाल रूप मनुष्य को फैशन के बनावटी और संकुचित घेरे से निकाल कर व्यापक और उदार बनाने में समर्थ हैं :

"प्रकृति के शुद्ध रूप देखने को आंखें नहीं
जिन्हें वे ही भीतरी रहस्य समझाते हैं।
झूठे-झूठे भावों के आरोप से आच्छन्न उसे
करके पाषंड कला अपनी दिखाते हैं।
अपने कलेवर की मैली औ कुचैली वृत्ति
छोपके निराली छटा उसकी छिपाते हैं।
अश्रु-स्वास-ज्वार-ज्वाला नीरव रुदन नृत्य
देख अपना ही तंत्री-तार वे बजाते हैं।"

"नर भव-शक्ति की अनंतरूपता है बिछी,
तुझे अंधकूपता से बाहर बढ़ाने को।
चारों ओर फैले महामानस की ओर देख
गर्त्त में न गड़ा गड़ा हंस कुछ पाने को।
अपनी क्षुद्र छाया के पीछे दौड़ मारने से
सच्चा भाव विश्व का न एक हाथ आने को,
रूप जो आभास तुझे सत्य-सत्य देंगे बस
उन्हीं को समर्थ जान अंतस जगाने को॥"

'अश्रु-स्वास-ज्वार ज्वाला नीरव रुदन' का उस समय रहस्यवादी रचनाओं में बड़ा जोर था। शुक्लजी को अधिकांश रहस्यवादी रचनाएँ पाखंड लगती थीं। इन रचनाओं में सत्यता की कमी उन्हें बहुत खटकती थी। इसी से शुक्लजी ने रहस्यवादी कविताओं की खरी समालोचना की और रहस्यवादी कविता के नाम पर जो बहुत कूड़ा-कर्कट साहित्य में भरा जा रहा था उसे दूर किया। इनका कहना था कि यदि कवि भी सच्ची भावनाओं को तिलांजलि दे देंगे तब तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। रहस्यवाद के प्रतिकूल उन्होंने अपने कथन को 'प्रकाशवाद' कहा है। वे रहस्यवादी कविता की अनर्गल भरमार को रोकने के लिए सब तरह से तैयार हैं—

"धर्म, कर्म, व्यवहार राष्ट्रनीति के प्रचार,
सब में पाखंड देख इतने न हारे हम।
काव्य की पुनीत भूमि बीच भी प्रवेश किन्तु,
उसका विलोक रहे कैसे धीर धारे हम।
सच्चे भाव मनके न कवि भी कहेंगे यदि,
कहाँ फिर जायँगे असत्यता के मारे हम।
खलेगा प्रकाशवाद जिनको हमारा यह,
कहेंगे कुवाद वे जो सह लेंगे सारे हम।"

भावना और जगत् का सच्चा तादात्म्य कविता है:—

"जब रूप में मिले बाहर के भीतर की
भावना से जानो तब कविता का सत्य फल।"

शुक्लजी का प्रकृति-प्रेम बाग-बगीचे की कटी-छटी फूल-पत्ती और बेल-बूटों को देख कर शान्त होने वाला नहीं था। वे प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में घूमने वाले जीव थे, जहाँ प्रकृति के सभी रूपों के सहज दर्शन होते हैं, जहाँ वह पालन करने वाली कोमल जननी भी है और साथ में ही प्रमत्त काली भी, जहाँ वसन्त के मलय समीर का शीतल-सरस-स्पर्श है, वहाँ ग्रीष्म की तप्त उसास भी और जहाँ उसकी विशालता के आगे डींग हाँकने वाले मनुष्य की नरता अपर्याप्त और अकिंचन प्रतीत होती है। उन्होंने मनुष्य को अलग न रख कर प्रकृति के विशाल क्षेत्र में देखा है। मनुष्य को अलग सन्तान मान कर उसे प्रकृति का अंश माना है। आजकल के वैज्ञानिकों के समान वे मनुष्य और शेष जीवों में विशेष-अन्तर नहीं मानते। एक ही तत्त्व की अधिकता और न्यूनता के अनुसार तृण, कीट, पशु और नर बने हैं। इनमें केवल मात्रा भेद है। इस वैज्ञानिक तथ्य को शुक्लजी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यदि जागृति है सत्य, स्वप्न है उसकी छाया,
इन दोनों का साथ सदा से रहता आया।
यह दोरङ्गी छटा नित्य शाश्वत अभङ्ग है,
सोना-जगना दोनों जिसमें सङ्ग-सङ्ग है।
उस छाया के बीच-बीच जो ज्योति फूटती,
अलग-अलग-सी लगती है वह नींद टूटती।
तृण, कृमि, पशु, नर आदि इसी जागृति के क्रम हैं,
जगने में कुछ बढ़े हुए कुछ उनसे कम हैं।"

प्रकृति के विविध रूपों को शुक्लजी ने बड़े प्रेम से देखा है और उनका यथातथ्य चित्रण भी किया है। उन्हें प्रकृति के सरस और रूखे रूपों से बराबर प्रेम था, जहाँ उन्होंने विंध्य से लगे हुए लहलहे खेतों की वसंत सुषमा का मनोहर वर्णन निम्नलिखिति पंक्तियों में किया है :—

"भूरी हरी घास आसपास फूली सरसों है,
पीली-पीली बिंदियों की चारों ओर है प्रसार।
कुछ दूर विरल सघन फिर और आगे,
एक रंग मिला चला गया पीत पारावार।
गाढ़ी हरी श्यामता की तुङ्ग राशि रेखा घनी,
बाँधती है दक्षिण की ओर उसे घेरघार।
जोड़ती है जिसे खुले नीले नभमंडल से,
धुँधली-सी नीला नगमाला उठी धुँआधार।"

वहीं उन्होंने ग्रीष्म की तप्त और जलती हुई लू का वर्णन भी किया है :—

"प्रखर प्रणयपूर्ण दृष्टि से प्रभाकर की
ललक लपट भरी भूमि भभराई है।
पीवर पवन लोटपोट धूल-धूसरित
झपट रहा है बड़ी धूम की बधाई है।
सूखे तृण पत्र लिये कहीं रेणु पुञ्ज उठा
घूर्णित प्रमत्त देता नाचता दिखाई है।
झाड़ औ झपेट झेल झूमते खड़े हैं पेड़
मर्मर मिलित हू-हू दे रहा सुनाई है।"

इसी प्रकार शुक्लजी ने फूलती हुई संध्या और धीरे-धीरे फैलती हुई चांदनी का रमणीय रूप खड़ा किया है :

"पश्चिम दिशा में घने द्रुम-दल जाल मध्य,
देख पड़े अवकाश लोहित प्रदीप्त अति।
और-और पत्र राशि, गह्वरों की श्यामता की,
बढ़ गहराई चली मन्द हुई वायु गति।
खुला रंग धरती का दबता दिखाई दिया,
होने लगी अब तो प्रकाश की प्रकट क्षति।
आकुल विहंग चले वेग से बसेरों पर,
घर फिर चलने की हमने भी ठानी मति।

लीन अभी श्यामता में पेड़ हो न पाए थे कि,
जहाँ-तहाँ गए स्वर्ण आभा से झलक छोर।
टेढ़ी-मेढ़ी धूम कृष्ण शैल शीर्ष रेखा पर,
देख पड़ी झांकती-सी उठी चंद बिम्बकोर।
धीरे-धीरे टीले खपरैल खेत मेंड़ पथ,
धारा में धवल चोखी चांदनी की उठे बोर।
उठ पड़ी मण्डली हमारी एक-एक कर,
बढ़े पांव साथ-साथ सब के घरों की ओर।"

साथ ही पड़ोस की शरपत्र (सरपतवा) नाले के निकट की सूखी तलैया की उपेक्षा भी वह नहीं कर सके और न वह उस लाल गाय को ही भूल सके जो 'पीवर गंठीली ऐंठी जड़ों के समीप बैठी करती जुगाली आँख मूंदे' :—

"सूखती तलैया के चारों ओर चिपकी हुई,
लाल लाल काईयों की भूमि पार करते।
गहरे पड़े गोपद के चिह्नों से अंकित जो,
श्वेत बक जहाँ हरी दूब में बिचरते।
और कुछ काल एक पास के मधूक तले,
मन में सन्नाटे का निराला सुर भरते।
आए "शरपत्र" के किनारे जहाँ रूखे खुले,
टीले ककरीले हैं हिमंत में निखरते।"

प्रकृति के विविध रूपों से इस अगाध प्रेम का एक कारण है, शुक्लजी को प्रकृति जननी-सी जान पड़ती है। प्रत्यक्ष ही है कि जननी के किसी रूप से बच्चों को उदासीनता नहीं होती, प्रकृति केवल मनुष्य की ही माता न हो कर समस्त सचराचर की माता है, इसीलिए वह 'आम और बबूल में न भेद भाव लाती है' और मनुष्य द्वारा बहिष्कृत पेड़ पत्ती को फिर से लाकर उनके बीच में बसाती है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मानव के हाथ से निकाले जो गए थे कभी,
धीरे-धीरे फिर उन्हें लाकर बसाती है।
फूलों के पड़ोस में घमोय, बैर औ बबूल
बसे हैं, न रोकटोक कुछ की जाती है।
सुख के या रुचि के विरुद्ध एक जीव के ही,
होने से न माता कृपा अपनी हटाती है।
देती है पवन जल धूप सब को समान,
आम औ बबूल में न भेद-भाव लाती है।"

प्रकृति की यह व्यापक उदारता और लोगों में न समा सकी हो परन्तु शुक्लजी में तो इसने अपना घर ही बना लिया है—मटर के फैले हुए खेत, प्रकृति की भरी हुई थाल है, जहाँ वे 'बैठते हैं प्रीतिभोज हेतु आस-पास सब पत्तियों के।" वहाँ किसी अधिकार चर्चा का झगड़ा नहीं है :

"अंकित नीलाभरक्त श्वेत नील सुमनों से,
मटर के फैले हुए घने हरे जाल में।
फलियाँ हैं करती संकेत जहाँ मुड़ते हैं,
और अधिकार का न ज्ञान इस काल में।
बैठते हैं प्रीतिभोज हेतु आस-पास सब,
पत्तियों के साथ इस भरी हुई थाल में।
हांक पर एक साथ पंखों ने सर्राटे भरे,
हम मेड़ पार हुए एक ही उछाल में।"

विशाल और उदार प्रकृति की इसी प्रीतिभूमि में शुक्लजी ने मनुष्य के सच्चे रूप की झलक दिखाई है। उसके अनुरागों और संबंधों की चर्चा की है जो प्रकृति से संबद्ध हैं। ग्राम-जीवन और गांवों के जीते जागते रोचक वर्णन इसी के परिणाम हैं। शुक्लजी का मन गांवों की सुषुमा वर्णन में अधिक रमा है। क्योंकि ये प्रकृति के अधिक निकट हैं :—

"ग्राम के सीमान्त का सुहावना स्वरूप अब,
भासता है भूमि कुछ और रंग लाती है।
कहीं-कहीं किंचित हेमाभ हरे खेतों पर
रह-रह श्वेत शुक आभा लहराती है।
उमड़ी-सी पीली भूरी हरी द्रुम पुंज घटा,
घेरती है दृष्टि दूर दौड़ती ही जाती है।
उसी में विलीन एक ओर धरती ही मानों,
घरों के स्वरूप में उठी-सी दृष्टि आती है।"

आधुनिक सभ्यता की कृत्रिमता और आडम्बर से शुक्लजी क्षुब्ध हो उठे हैं क्योंकि इसने मनुष्य को प्रकृति से दूर ढकेल दिया है। प्रकृति से मनुष्य का इस तरह किनारा खींचना ठीक नहीं क्योंकि उसके समुचित विकास के लिए उसकी यह कोरी नरता अपर्याप्त है। जङ्गलों का कटना इसीलिए उन्हें दुःखदायी हो जाता है। धातु के कुछ टुकड़े सभ्यता की ओट में उसे जीवन की मंगल विधायिनी विभूति से दूर फेंक रहे हैं और फलतः एक दूसरे के रक्त-शोषण में मग्न हो रहे हैं।

"कर से कराल निज काननों को काट कर,
शैलों को सपाट कर सृष्टि संहार ले।
नाना रूप रंग भरे जीवन उमंग भरे,
जीव जहाँ तक बने मारते तू मारले।
माता धरती की गोद यह सूनी कर,
प्रेत-सा अकेला पाँव अपने पसार ले।
विश्व बीच नर के विकास हेतु नरता है,
होगी किन्तु अलग न मानव विचार लें।"

"चढ़ी चली आती देख पश्चिमी सनक सब,
हृदय हमारे आज और भी हैं हारते।
जीवन-विधायिनी विभूति जीती-जागती जो,
भूमि के दुलारे निज श्रम से पसारते।
उसे धातु निगड़ से जकड़ बनाके जड़,
पालन प्रसार की समस्त गति मारते।
सोखते हैं रक्त भरपेट कुछ लोग बैठ,
उनका जो तन का पसीना नित्य गारते।"

प्रकृति प्रेम में पगे रहने पर भी शुक्लजी अपने देश और अपनी जाति को नहीं भूल सकते। समय-समय पर उनकी लेखनी से देश-विषयक कविताएँ निसृत होती रही हैं। सूरत कांग्रेस में फूट हो जाने पर उन्होंने बड़ा दुःख प्रकट किया था। उन्हें नेताओं की दलबंदी में जातीय सभा की हानि की पूरी संभावना दिखाई दी। निदान उन्होंने भारतवासियों को मौन मार कर देश सेवा के व्रत के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्साहित किया :—

"किन्तु आज बाईस वर्ष तक कितने झोंके खाती,
अन्यायी को लज्जित करती न्याय छटा छहराती।
यह जातीय सभा हम सब की न्याय ठेलती आई,
हाय फूट तेरे आनन में वह भी आज समाई।
यही समझते थे दोनों दल पृथक पंथ अनुयायी,
होकर भी उद्देश्य हानि की सह न सकेंगे भाई।
किन्तु देख सूरत की सूरत भगे भाव यह सारे,
आशंका तब तरह-तरह की मन में उठी हमारे।
अब तो कर कुछ कृपा कि जिससे एक सभी फिर होवें,
अपने मन की मैल देश की अश्रुधार से धोवें।
जो-जो सिर पर बीती उसको जी से वेगि भुलावें,
मौन मार निज मातृभूमि की सेवा में लग जावें।"

शुक्लजी की एक देश-विषयक कविता "भारत और बसन्त" कथोपकथन की नाटकीय शैली में 'आनन्द-कादम्बिनी' में छपी थी। यह कविता कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें बसन्त के आने पर भारत अपनी दीन दशा का वर्णन करता है। बसन्त उसे उसके प्राचीन गौरव का स्मरण कराता है और प्रतिज्ञा करता है—

"एकहू कण रेणु को जबलों यहाँ हम पाइ हैं।
आइकै प्रतिवर्ष सादर ताहि सीस चढ़ाइ हैं॥"

और भारत के प्राचीन गौरव का वर्णन इन शब्दों में करता है—

"पारसिन को मान मर्दन कियो इन बहु बार।
मेमिरमिस को जाइ ठेल्यौ बाबिलिन के द्वार॥
यव सुमात्रा आदि दीपन थापि निज अधिकार।
कियौ अपने हाथ में सब पूर्व को अधिकार॥"

फिर पश्चिम की कृतघ्नता पर उसे खेद होता है और निर्भीक होकर कहता है—

"विविध विद्या कला कौशल जगत में फैलाय।
कियो अपने जान तो उपकार ही इन हाय॥
हा! कृतघ्न प्रतीचि जन सब सीखि इनते ज्ञान।
विभव मद में चूर सकुचत करत अब सम्मान॥"

फिर बसन्त भारतमहिषी को प्रणाम कर उसके जावा और बाली निवासियों को प्रणाम करता है। सन् १६०६ में इस व्यापक राष्ट्र-दृष्टि और इसके उदार सम्बन्ध के उद्गार कितने दिखाई देते हैं। उनकी प्रार्थना है—

"बाली लम्बक लसै द्वीप है जग ते न्यारे।
बसें तहाँ कछु पूर्व सुवन सन्तान तुम्हारे॥
कह्यो अनेक प्रणाम मातु उन तव चरणन में।
अरु बोले कहि दियो जाइ हम सुखी भुवन में॥
बीस कोटि सम हमहुँ नेह के हैं अधिकारी।
कबहुँ-कबहुँ तो चहिये लेनी खोज हमारी॥"

'खोज' का नाम सुन कर भारतमाता अपने पुत्रों के आलस्य और उद्यमहीनता पर शोक प्रकट करती है। अन्त में भारत की सन्तान सचेत हो अपनी उन्नति की प्रतिज्ञा करती है और बन्देमातरम् की ध्वनि सुनाई देती है। उसका निश्चय और 'प्रण' है—

"सहि चुके जननी बहु यातना,
बचन ना कबहूँ अब टारि हैं।
प्रण करें पर आस किये बिना,
अवसि आपुहि-आप उबारिहैं॥"

राष्ट्रीय जीवन की 'आपुहि आप उबारिहैं' की व्यापक भावना की यह धारा जातीय जीवन के उद्गारों में भी मिलती है। इस भूखण्ड की निराली आर्यमाधुरी का स्वाद वे कभी न भूल सके। प्राचीन पुनीत आर्यजीवन की जो झलक उन्हें अपने घर के पास देखने को मिली इससे उनकी आशा बँध गयी और उनका आनन्द उभर आया। उन्हें पश्चिम की 'नूतन करालता' तुच्छ-सी दिखाई दी—

"पंडित 'श्री विन्ध्य'जी की मधुर सरस वाणी,
भारत की भारती की ज्योति को जगाती है।
वीथियों में स्वच्छ शुभ्र शिष्यों की फिरती हुई,
मंडली पुराना दृश्य सामने फिराती है।
परम पुनीत रीति नीति भरी 'भद्र'जी की,
द्वापर की छाया बट-छाया बीच छाती है।
यों इस भूखंड की निराली आर्य माधुरी का,
नूतन करालता न लोप कर पाती है।"

आजकल की बाबूवाली 'भद्रता' अपने प्राचीन पर्व और उत्सवों को न मना कर हमारे जीवन की प्रफुल्लता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हमसे दूर हटा रही है और हमारे ऐक्य के बन्धन को नष्ट कर रही है। देखिए—

"पर्व और उत्सव प्रवाह में प्रमोद कांति,
सादी मिली-जुली साथ में थी खुली खेलती।
आज वह छिन्न-भिन्न होके कुछ लोगों की ही,
कोठरी में लुकी छिपी कारागार भेलती।
भद्रता हमारी कोरी भिन्नता का बाना धर,
खिन्नता से बहुतों से दूर हमें ठेलती।
हिलमिल एक में करोड़ों की उमंगें अब,
जीवन में सुख की तरंगें नहीं रेलती।"

आजकल हमारे जातीय जीवन में भीषण संघर्ष चल रहा है, पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से एक आंधी-सी उठ पड़ी है जिससे समाज विचलित हो उठा है। इस संपर्क से अधिकांश का जीवन-पथ और भी कंटकाकीर्ण हो गया है। अनेकों के आदर्श के दीपक बुझ चले हैं। बहुतों के जीवन की शान्ति लुट गयी है। वे अंधेरे में भटक रहे हैं। ऐसा ही संकट काल आज से ढाई सौ वर्ष पहले भी उपस्थित हुआ था उस समय गोस्वामी तुलसीदासजी ने हिन्दू जाति में नवजीवन का उत्साह भरा था, सामाजिक और धार्मिक जीवन की उच्छृंखलता को दूर किया था, और कर्त्तव्य-पालन, मर्यादा और उदारता का आदर्श जाति के सामने रखा था, शुक्लजी का दृढ़ विश्वास था कि गोस्वामीजी का आदर्श हमारी आधुनिक समस्या को भी हल कर सकता है। गोस्वामीजी में उनकी अगाध श्रद्धा थी। उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में चित्रकूट वास करें और रामचरितमानस की व्याख्या सच्चे रूप में कुछ अधिकारियों में करें। उनका कहना था कि यह व्याख्या कथावाचकों के समान मनमानी न होगी। भक्त कवियों विशेषतः गोस्वामी तुलसीदास की विशद आलोचना का रहस्य उनके इस विश्वास में निहित है कि हिन्दू जाति के उद्धार का मार्ग राममय होने में है। उनकी 'गोस्वामी और हिन्दू जाति' शीर्षक कविता इसकी पुष्टि करती है :

"...प्रभू की ओर देखने जब हम लगे हृदय में द्वारे।
नए पंथ कुछ चले चिढ़ाने 'वह तो जग से न्यारे'।
अटपट बानी ने जीवन की खटखट से खटकाया।
लोकधर्म के रुचिर रूप पर चटपट पट फैलाया।
...इतने में सुन पड़ी अतुल-सी तुलसी की बरबानी।
जिसने भगवत्कला लोक के भीतर भी पहचानी।
शोभा शक्ति शीलमय प्रभु का रूप मनोहर प्यारा।
दिखा लोकजीवन के भीतर जिसने दिया सहारा।
शक्ति बीज शुभ भव्य भक्ति वह पाकर मंगलकारी।
मिटी खिन्नता जीने की रुचि फिर कुछ जगी हमारी।"

यह है संक्षेप में आचार्य शुक्लजी के कवि-जीवन की कुछ झलक। शुक्लजी के 'बुद्ध-चरित' के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। उसमें भी प्रकृति के अनूठे दृश्य और ग्राम-जीवन के मनोरम चित्र हैं। और है ब्रजभाषा का शिष्ट रूप। ब्रज-भाषा का ऐसा प्रबन्ध-काव्य और कहाँ है ?

अस्तु प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में जिस उदार हृदय के दर्शन शुक्लजी ने कराए, देश के घेरे में जिस व्यापक दृष्टि के प्रसार की आवश्यकता बताई और जातीयता के क्षेत्र में जिस कर्त्तव्य पालन और तत्परता का संदेश दिया, उसी (हृदय की) उदारता, व्यापक दृष्टि और विचारों की तत्परता से अपने व्यक्तिगत जीवन को परिपूर्ण किया और अपने मिलने वालों को अपने आचरण से मोह लिया। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक के परिचय में उन्होंने लिखा है :—

"ये वास्तव में एक बड़े प्रतिभाशाली, भावुक और सरुचि सम्पन्न कवि थे। भद्दापन इनमें न था—न रूपरङ्ग में, न भाषा में न भाव में, न चाल में, न भाषण में।"

यही शुक्लजी के सम्बन्ध में भी बिना किसी संकोच अथवा अतिशयोक्ति के कहा जा सकता है।*

---

* प्रस्तुत लेख हमें शुक्ल-अङ्क के लिए प्राप्त हुआ था, पर समय पर न मिलने के कारण उक्त-अङ्क में न जा सका। —सं०

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमाश्रम का प्रतिपाद्य

[श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी]

मित्रो,

प्रेमचन्दजी के उपन्यासों और कहानियों के सम्बन्ध में साधारण भाव से कह लेने के बाद जब मैंने आप से पूछा कि कोई ऐसा उपन्यास चुनिए जिसको उपलक्ष्य बना कर हम अपने सिद्धान्तों की जाँच कर सकें तो मुझे बिल्कुल उम्मीद नहीं थी कि आप प्रेमाश्रम का नाम लेंगे। मैंने मन-ही-मन चार उपन्यासों को सोचा था और विश्वास कर लिया था कि आप इन्हीं चार में से किसी एक का नाम लेंगे। ये चार हैं—सेवासदन, रङ्गभूमि, कायाकल्प और गोदान। मैं इन चारों को ही प्रेमचन्द की प्रतिभा की चार सीढ़ियाँ मानता हूँ। इन चारों में से किसी एक पर बोलने का अवसर देकर आप मुझे अधिक अनुगृहीत करते, क्योंकि ऐसा करने में मुझे ज्यादा सुविधा होती। पर, आपने जब प्रेमाश्रम चुन लिया तो मैं लाचार हूँ। इसलिए नहीं कि मेरी राय में प्रेमाश्रम बहुत घटिया उपन्यास है, बल्कि इसलिए कि मैंने पिछले वक्तव्य में जो कुछ कहा है उसको अच्छी तरह प्रतिपादन करने के लिए प्रेमाश्रम की अपेक्षा उक्त चारों उपन्यासों में का कोई एक ज्यादा उपयुक्त होता। वैसे प्रेमाश्रम में भी वे सभी विशेषताएँ मौजूद हैं जो प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों मे हैं और यद्यपि स्वर्गीय रामदास गौड़ के बहुत से मित्र सेवासदन की उत्तमता के कारण डर रहे थे कि प्रेमचन्द की दूसरी कृति इतनी चोखी न हो सकेगी परन्तु प्रेमाश्रम को देख कर उनका डर निर्मूल सिद्ध हुआ था क्योंकि "हिन्दी माता के सुपुत्र ने मौलिकता-सागर से मथ कर यह दूसरा रत्न पेश किया जो पहले से कहीं ज्यादा कीमती और सुन्दर है" तथापि मैं यह कहने का साहस कर रहा हूँ कि सुन्दर और कीमती चाहे जितना हो, इस उपन्यास में प्रेमचन्द की वह मौलिक विशेषता गौण हो गयी है जो उनकी अन्य समस्त रचनाओं में पायी जाती है। वह मौलिक विशेषता क्या है, इस बात का आभास मैं संक्षेप में पहले ही दे चुका हूँ। अब प्रेमाश्रम की जाँच करने से यदि वह गौण सिद्ध हो जाय तो आप स्वीकार करेंगे कि आपके इस ग्रन्थ-निर्वाचन ने मुझे जो संकोच में डाल दिया है, वह ठीक है।

नाम—प्रेमाश्रम नाम से अनुमान होता है कि उपन्यास के अन्त में वर्णित प्रेमाश्रम की परिणति ही इस ग्रन्थ का प्रधान प्रतिपाद्य है और उक्त आश्रम के नेता ही ग्रन्थ के वास्तविक नायक हैं। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। इतना जरूर है कि ग्रन्थकार की इच्छा यही रही है कि प्रेमाश्रम की परिणति ही इसका प्रधान प्रतिपाद्य हो और प्रेमशंकर ही इसके प्रधान पात्र हों, परन्तु सब मिलाके उसकी इच्छा सफल नहीं हुई है। ग्रन्थ का प्रतिपाद्य कुछ और ही हो गया है तथा उपन्यास का नायक भी वस्तुतः कोई और ही हो गया है। किसी-किसी समीक्षक ने कहा है कि यह उपन्यास "कृषक जीवन की दयनीय दशाओं तथा मानवीय प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने वाला" और "किसानों और जमीदारों के अधिकार युद्ध की करुण कथा का कलात्मक रूप ही है" परन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो ये दोनों ही बातें प्रेमाश्रम में गौण हो गयी हैं। मुख्य बात कुछ और ही है। देखा जाय वह क्या है?

प्राचीन आचार्यों ने किसी ग्रंथ या प्रकरण के तात्पर्य को समझने के ६ उपाय बताये हैं—

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलन्
अर्थवादो पयत्तीच लिंगं तात्पर्य निर्णये ॥१॥

अर्थात् (१) उपक्रम (आरंभ) और उपसंहार, (२) बार-बार किसी बात की चर्चा, (३) अपूर्वता, (४) फल या प्रयोजम, (५) अर्थवाद या किसी बात की स्तुति-निंदा और (६) उपपत्ति या मुक्ति। ये ६ बातें किसी ग्रंथ या प्रकरण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य-निर्णय में कारण होती हैं। प्राचीन भारतीय-साहित्य में सैकड़ों ग्रन्थों का तात्पर्य इस नियम के अनुसार निर्णय किया गया है और इस प्रकार इस नियम की प्रामाणिकता हजारों वर्षों से अनुभूत और परीक्षित हो चुकी है। एक बार फिर इस नियम के आधार पर एक सम्पूर्ण रतन साहित्यांग की जाँच करने में कोई हर्ज नहीं है।

उपक्रम और उपसंहार—पुस्तक खोलते ही लखनपुर गाँव के किसान साँझ समय बैठे बातें करते हुए दिखायी देते हैं। इनकी बातचीत का विषय शुरू में तो अंग्रेजों की प्रशंसा और अपने देशी हाकिमों और जमींदार की निंदा होती है, पर बाद में जमींदार के चपरासी गिरधर महाराज का आगमन होता है जो 'जबान से सब के दोस्त और दिल से सब के दुश्मन हैं'। ये महाशय आसामियों को घी के लिए रुपये बांटने आये हैं। घी रुपये सेर का कटेगा जब कि बाजार-भाव दस छटाँक का है और जिन्हें रुपये दिये जायँगे उनके पास या तो घी है ही नहीं, या है भी तो बहुत कम। मनोहर रुपये लेने से इन्कार करता है और चपरासी के साथ उसका बतबढ़ाव हो जाता है। गिरिधर कहते हैं—'मनोहर, घी तो दोगे तुम दौड़ते हुए, पर चार बातें सुन कर। जमींदार के गाँव में रह कर उससे हेकड़ी नहीं चल सकती। अभी कारिन्दा साहेब बुलायेंगे तो रुपये भी दोगे हाथ-पैर भी पड़ोगे, मैं सीधे कहता हूँ तो तेवर बदलते हो।' इस पर मनोहर गर्म होकर कहता है—'न कारिंदा कोई काटू है, न जमींदार कोई हौवा है। यहाँ कोई दबैल नहीं है, जब कौड़ी-कौड़ी लगान चुकाते हैं धौंस क्यों सहें।'

परन्तु आगे की कथा बताती है कि कारिंदा सचमुच काटू है और जमींदार हौवा है। सारा गाँव दबैल भी है और लगान ही नहीं लगान के कई गुना बेगार चुकाने पर भी धौंस सहना ही उनका कार्य है। सारा गाँव जमींदार की कोपाग्नि में भस्म हो जाता है। परन्तु जमींदारी प्रथा के नष्ट होते ही, उपसंहार में फिर इसी लखनपुर गाँव में हम देखते हैं कि सारा दुःख-दर्द दूर हो गया है, लोग बड़े आराम से रहने लगे हैं। इस प्रकार उपक्रम और उपसंहार में यद्यपि 'किसानों के जीवन की सच्ची फोटो' खींची गयी है, पर उसका उद्देश्य जमींदारी प्रथा की अनिष्टता दिखाना ही है।

लेकिन यद्यपि ग्रंथकार आदि और अन्त में लखनपुर का यह वर्णन देता है तथापि यह मूल कथा का न तो उपक्रम ही है और न उपसंहार ही। मूल कथा का जन्म-स्थान बनारस है, कर्म-स्थान लखनऊ और गोरखपुर है और अन्त-स्थान गंगा की धारा है। लखनपुर की मनोरंजक कहानी—उसका उत्तेजक आदि, करुण मध्य और सुखकर अन्त—सभी उसी मूल कथा के रंग को गाढ़ा कर देने के लिए हैं। इसके उत्तेजक आदि के नेता जमींदार और उसके चपरासी हैं, करुण मध्य के संचालक मनोहर, विलासी और बलराज हैं, और सुखकर अन्त के स्रष्टा प्रेमशंकर और मायाशंकर हैं, जिनमें से कोई भी मूल कथा के रंग को गाढ़ा या स्पष्ट कर देने के सिवाय और कोई कार्य नहीं करता। इसी से यह स्पष्ट है कि प्रेमशंकर इस कथा के नायक नहीं हैं।

मूल कथा के नायक हैं ज्ञानशङ्कर जिनके चरित्र की पृष्ठभूमिका में प्रभाशङ्कर शुरू से आखिर तक प्रकाश्य-प्रकाशक भाव से वर्तमान है। प्रभाशङ्कर को इस ग्रन्थ में से अगर निकाल दिया जाय तो मूल कथा विना रीढ़ की हो जायगी। जब कि ज्ञानशङ्कर को निकाल देने से वह निर्जीव हो जायगी। दूसरे परिच्छेद में ही ग्रन्थकार ज्ञानशङ्कर के उस स्वभाव का परिचय करा देता है जो सारी कथा को अग्रसर करने के लिए नितान्त आवश्यक है। 'ज्ञानशङ्कर के हृदय में भावी उन्नति की बड़ी-बड़ी अभिलाषायें थीं। वह अपने परिवार को फिर समृद्धि और सम्मान के शिखर पर ले जाना चाहते थे। घोड़े और फिटन की उन्हें बड़ी आकाँक्षा थी। वह शान से फिटन पर बैठ कर निकलना चाहते थे कि हठात् लोगों की आंखें उनकी तरफ़ आकृष्ट हो जावें। चैन से जीवन व्यतीत हो यही उनका ध्येय था।' आराम को अनायास ही पा जाने की आकांक्षा और दारुण अधिकारलिप्सा ज्ञानशङ्कर की प्रकृति-गत विशेषता थी। यही स्वभाव कहानी का वास्तविक उपक्रम है। इस स्वभाव ने ही लखनपुर को विपत्ति के भाड़ में झोंक दिया, उनके हाथों श्वशुर को विष दिलाया, पति-व्रता गायत्री को नियम भ्रष्ट किया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी ही पत्नी विद्या के आत्म-घात का कारण बना और ऐसा मन, वचन और कर्म सम्बन्धी कोई अन्यायाचरण नहीं है जिसे नहीं कराया और अन्त में उन्हें भी ले डूबा। सारी कथा अधिकारलिप्सा—तत्रापि जमींदारी वृत्ति—की दारुण तृष्णा का परिणाम है। जो कोई भी थोड़ा या बहुत इस काजल की कोठरी के सम्पर्क में आया है वही कलङ्कित हुआ है। उबर गये हैं वे जिन्होंने इसे शुरु से ही प्रणाम कर दिया है। प्रेमशंकर ऐसे ही हैं, मायाशङ्कर ऐसे ही हैं, विद्या ऐसी ही है। इस प्रकार मूल कथा के उपक्रम और उपसंहार में भी ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा जमींदारी प्रथा की अनिष्ट-कारिता दिखाना ही जान पड़ती है। किसानों की 'दयनीय दशा और मानवीय प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक विश्लेषण, इसी प्रतिज्ञा के प्रतिपादन के साधन हैं।

अभ्यास—सारी पुस्तक में बार-बार घूम फिर कर ग्रन्थकार स्मरण दिला देता है कि जमींदारी प्रथा ही समस्त अनर्थों की जड़ है। साधारण भाव से वह समस्त अधिकारों के विरुद्ध है पर इस ग्रन्थ का विशेष प्रतिपाद्य जमींदारी प्रथा की अनिष्टकारिता ही है। यही कारण है कि ऐसे पात्रों के कार्यों से भी जो पाठकों की सहानुभूति और आदर योग्य हैं वह इस प्रथा की अनिष्टता सिद्ध करता चलता है। गायत्री और (रायकमलानन्द) पाठकों के सहानुभूति और आदर के पात्र हैं। गायत्री विद्या से कहती है—"तुम बाबूजी (राय कमलानन्द) पर अन्याय करती हो आखिर रुपये कैसे वसूल होते? निर्दयता अच्छी बात नहीं पर इसके बिना काम ही न चले तो क्या किया जाय? तुम्हारे जीजा कैसे सज्जन थे...लेकिन उन्हें भी आसामियों पर सख्ती करनी पड़ती थी। मैंने स्वयं उन्हें असामियों को मुश्कें कस के पिटवाते देखा है। जब कोई और उपाय न सूझता तो उनके घरों में आग लगवा देते थे। और अब मुझे भी वही करना पड़ता है। उस समय मैं समझती थी कि यह व्यर्थ इतना जुल्म करते हैं उन्हें समझाया करती थी पर जब अपने माथे पड़ गई तो अनुभव हुआ कि ये नीच बिना मार खाये रुपये नहीं देते। घर में रुपये रखे रहते हैं, पर जब तक दो-चार लात घूँसे न खालें या गालियां न सुन लें, देने का नाम नहीं लेते। यह उनकी आदत है।" स्वयं राय कमलानन्द अपने दामाद ज्ञानशंकर से, जिसने उन्हें विष दिया था, कहते हैं—"मैं जानता हूँ कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह हमारे वर्तमान लोक-व्यवहार का दोष है। यह सारी विडम्बना इसी जायदाद का फल है। इसी जायदाद के कारण हम और तुम एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं।" फिर इस जायदाद की वास्तविकता क्या है?—'इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। नवाबों के जमाने में किसी सूबेदार ने इस इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था।...अंग्रेजों का जमाना आया और यह अधिकार पिताजी के हाथ से निकल गया। लेकिन राजविद्रोह के समय पिताजी ने तन, मन से अंग्रेजों की सहायता की। शान्ति स्थापित होने पर हमें वही पुराना अधिकार मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है। हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गये हैं। इसी दलाली के लिए हम एक दूसरे के खून से हाथ रंगते हैं, इसी दीन हत्या को हम रोब कहते हैं, इसी कारिन्दागिरी पर हम फूले नहीं समाते। सरकार अपना मतलब निकालने के लिए हमें मालिक कहती है लेकिन जब साल में दो बार हम से मालगुजारी वसूल की जाती है तब हम मालिक कहाँ रहे? यह सब धोखे की टट्टी है। तुम कहोगे यह सब कोरी बकवाद है, रियासत इतनी बुरी चीज है तो छोड़ क्यों नहीं देते? हाँ, यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया हम किसी काम के नहीं रहे। हम पालतू चिड़ियाँ हैं, हमारे पंख शक्ति हीन हो गये हैं। हम में अब उड़ने की सामर्थ्य नहीं है। हमारी दृष्टि सदैव अपने पिंजरे के कुल्हिये और प्याली पर रहती है, हमने अपनी स्वाधीनता को मीठे टुकड़ों पर बेच दिया है।'

मुझे खेद है कि मैं लम्बे उद्धरणों में बात कर रहा हूँ। आप जानते हैं कि मैं उद्धरणों को बढ़ाने में विशेष आनन्द नहीं पाता पर इतनी साफ, जोरदार और मना छोड़ने वाली भाषा की सम्पत्ति मेरे पास कहाँ है? इन उद्धरणों से अधिक स्पष्ट भाषा में हम इस बात को कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट कर सकते हैं ?

अर्थवाद—उपन्यास में प्रधान कथा के उन्नायक चरित्रों के सिवा जितने भी व्यक्ति हैं जितनी भी घटनाएं हैं, जितने भी वार्तालाप हैं वे सभी इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए आते हैं। कभी-कभी वे सरकार की बदनीयती का सबूत लेकर भी उपस्थित होते हैं पर ऐसा एक भी गौण चरित्र नहीं है जो जमींदारी प्रथा के काले चित्र को और भी गाढ़ा न कर देता हो। डाक्टर प्रियनाथ चौपड़ा, बैरिस्टर इर्फानअली, तहसीलदार ज्वाला-सिंह—सभी इस कम्बख्त प्रथा के झपेटे में आजाते हैं। जब कभी वे न्याय का पक्ष लेना चाहते हैं। जमींदार की मोटी रकम का वादा उनके सामने आ खड़ा होता है। सनातन धर्म सभा का भड़कीला अधिवेशन, सैयद ईजाद हुसेन के यतीमखाने का हास्यास्पद स्वांग, ग्रामीणों का सरल अभिनय और रासमंडली की शानदार सफलता—प्रत्येक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस काले धब्बे को और भी काला कर देते हैं। ग्रंथ में जहाँ कहीं भी अनावश्यक वाग्विस्तार वा घटना-योजना हुई है वह सिर्फ ग्रन्थकार के उक्त अभिमत की पुष्टि के लिए हुई है। समीक्षकों ने ठीक ही कहा है कि कथा की रोचकता की दृष्टि से सनातन धर्म सभा का भड़कीला अधिवेशन व्यर्थ है परन्तु इस व्यर्थ योजना का उद्देश्य भी स्पष्ट ही जमींदारी प्रथा की कलंकरेखा और भी स्पष्ट कर देना है। तेजशंकर और पद्मशंकर के भैरव-विश्वास और बलिदान की कहानी एकदम अनावश्यक हैं फिर भी ग्रन्थ में उसे जोड़ने का बहाना ग्रंथकार को यही मिला है कि मायाशंकर की अनायास सम्पत्ति-प्राप्ति इस दारुण बलिदान का कारण थी।

उपपत्ति—जब कभी और जहाँ कहीं भी ग्रन्थकार को अवसर मिला है वहाँ अत्यन्त आप्त पात्रों के मुख से वह यह कहलाने में नहीं चूकता कि जमींदारी प्रथा के मूलोच्छेद हुए बिना कृषकों की दीनता और अकृषकों की चरित्र-भ्रष्टता नहीं दूर हो सकती। इस बात को कहने वाले वे होते हैं जो बड़े-बड़े ताल्लुकेदार हैं, जैसे राय कमलानन्द और गायत्री; जो कानून और अर्थशास्त्र का ज्ञान रखते हैं, जैसे इर्फानअली, जो इस प्रथा के रथ घर्घर से अपनी आत्मा का पिस जाना अनुभव कर चुके हैं, जैसे ज्वालासिंह, दयाशंकर और डाक्टर प्रियनाथ और अन्त में अपने सब से निर्दोष, सब से समृद्ध, सब से होनहार पात्र मायाशंकर से उपसंहार कराते हुए ग्रन्थकार ने मानो समस्त ग्रन्थ का अभीष्ट प्रतिपाद्य कहलवा दिया है। जमींदार 'इसलिए नहीं है कि प्रजा के पसीने की कमाई को भोग-विलास और विषय में उड़ाये, उनके टूटे-फूटे झोंपड़ों के सामने अपना ऊंचा महल खड़ा करे, उसकी नग्नता को अपने रत्न जटित वस्त्रों से अपमानित करे, उनकी सन्तोषमय सरलता को अपने पार्थिव वैभव से लज्जित करे, अपनी स्वाद-लिप्सा से उनकी क्षुधा-पीड़ा का उपहास करे। अपने स्वत्वों पर जान देता हो पर अपने कर्तव्यों से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरंकुश प्राणियों से प्रजा की जितनी जल्द मुक्ति हो, उनका भार प्रजा के सिर से जितनी ही जल्द दूर हो, उतना ही अच्छा हो।' यह केवल कल्पना नहीं है। पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर लखनपुर के सर्वाधिक विश्वसनीय कादिर के मुंह से हम सुनते हैं—'मुक्खी को देखो पहले बीस बीघे का काश्तकार था, १००) लगान देने पड़ते थे। दस-बीस रुपए साल में नजराने निकल जाते थे। अब जुमला २०) लगान है, नजराना नहीं लगता। पहले अनाज खलिहान से घर तक न आता था। आपके चपरासी, कारिन्दे वहीं गला दबा कर तुलवा लेते थे। अब अनाज घर में भरते हैं और सुभीते से बेचते हैं। दो साल में कुछ नहीं तो तीन चारसौ बचे होंगे। डेढ़सौ की एक जोड़ी बैल लाए, घर की मरम्मत करायी, सायबान डाला। हाँडियों की जगह ताँबे और पीतल के बर्तन लिए और सब से बड़ी बात यह कि अब किसी की धौंस नहीं, मालगुजारी दाखिल कर के चुपके घर चले आते हैं। नहीं तो हर दम जान सूली पर चढ़ी रहती थी। अब अल्लाह की इबादत में जी भी लगता है, नहीं तो नमाज भी बोझ मालूम होती थी।' इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य विषय जमींदारी प्रथा की अनिष्टकारिता है।

अब आप प्रश्न कर सकते हैं कि 'तो क्या प्रेमशंकर की सारी तपस्या व्यर्थ है ? क्या प्रेम और भ्रातृभाव का

(शेष पृष्ठ ४८० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो हिन्दी पुस्तकें : ग्राम्या और रेखाचित्र

[श्री स० ही० वात्स्यायन]

आज शायद तीसरा अवसर है जब पुस्तकों की बात करते समय मुझे सब से पहले सुमित्रानन्दन पन्त की पुस्तक का नाम याद आया है। इस बीच उनकी पुस्तक 'ग्राम्या' ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित भी किया है और गहरा आनन्द भी दिया है, क्योंकि इस नयी रचना में उनके भीतर का वह संघर्ष, जो 'युगान्त' में दीखने लगा था और जो 'युगवाणी' में इतना मुखर हो गया था कि कविता खतरे में पड़ गयी जान पड़ती थी, वह संघर्ष मानो एक नया समन्वय पा गया है। 'ग्राम्या' में हम पाते हैं कि 'पल्लव' और 'गुञ्जन' का सौन्दर्योपासक प्रेमी पन्त, 'युगवाणी' के बुद्धि-पूजक पन्त से न केवल लड़ ही रहा है बल्कि उसे पुष्ट कर रहा है, बलशाली और मर्मभेदी बना रहा है। जैसा कि पन्तजी ने अपने निवेदन में स्वयं ही लिखा है उनको ग्राम-जीवन की आजकल की हालत से, उसके गन्देपन, उसकी दीनता, उसके 'क्षुधा-तृषा के क्रन्दन' से कोई आन्तरिक सहानुभूति नहीं है क्योंकि—

सुन्दरता का मूल्य वहाँ क्या
जहाँ उदर है क्षुब्ध, नग्न तन !

ग्रामीणों से उनकी सहानुभूति बौद्धिक है—ठीक वैसी ही जैसी कि 'युगवाणी' में भी थी। किन्तु यह बौद्धिक सहानुभूति कोरे तर्क पर आश्रित नहीं है। इसके पीछे सौन्दर्य की गहरी मांग, उसको पहचानने की अचूक दृष्टि उसे रचने का कोमल आग्रह वर्तमान है। इसीलिए जहाँ चोट खाया हुआ 'बुद्धि प्राण नर' पुकार उठता है—

"यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम—सभ्यता संस्कृति से निर्वासित।"

वहाँ वह उन्हीं ग्रामों की कठपुतले सी—

"छल प्रतिमाएँ भूषन-सज्जित
ये छायातन ये मायाजन
विश्वास मूढ़ नर-नारी-गण"

को देख कर दुःखित भी होता है और फिर तुरन्त ही ग्राम-युवती का पनघट पर आना-जाना, धोबियों का नृत्य, चमारों का 'हुल्लड़-हुड़दंग', कहारों का 'रुद्र नृत्य', 'अमरूदों की लाल-लाल चित्तियाँ', 'झूलती झरबेरी' और 'मखमली टमाटर' देख कर पुलकित भी हो उठता है। इन तीन-चार कविताओं का उल्लेख मैं जान बूझ कर कर रहा हूँ, क्योंकि 'युगवाणी' के बाद बहुत लोगों का ख्याल हो चला था कि अब पन्तजी रूखी और बोझल कविता ही किया करेंगे—शास्त्र बांचा करेंगे ! उनके इस डर को झूठा साबित करने वाली अनेक कविताएँ 'ग्राम्या' में हैं। और जी होता है कि आलोचना की बजाय उन्हें पढ़ कर ही सुना दिया जाय। 'ग्राम-युवती', 'धोबियों का नाच', 'चमारों का नाच' आदि कविताओं में शब्द, अर्थ और छन्द-गति का ऐसा सुन्दर योग है कि पाठक चमत्कृत हो जाय। छन्द की गति के सहारे ही नाच को आँखों के आगे मूर्त कर दिया गया है। पन्तजी ने इस दिशा में अपनी असाधारण प्रतिभा के प्रमाण पहले भी अनेक बार दिये हैं—'युगवाणी' तक में 'झंझा में नीम' वाली कविता में यह चमत्कार फूट निकला था—और अब फिर उन्होंने अपने को शब्द का आचार्य सिद्ध कर दिया है—

"तन पर यौवन सुषमा शाली,
मुख पर श्रमकण रवि की लाली,
सिर पर धर स्वर्ण शस्य डाली
वह मेंड़ों पर आती जाती—
उरु मटकाती
कटि लचकाती
चिर वर्षातप हिम की पाली।
धनि श्याम वरण,

* ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पन्त। प्रकाशक-भारती भण्डार, इलाहाबाद। मूल्य १॥) । रेखाचित्र : प्रकाशचन्द्र गुप्त। प्रकाशक-प्रकाशगृह, इलाहाबाद। मूल्य ॥।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति-क्षिप्र चरण,
अधरों में धरे पकी बाली।"

या फिर धोबियों के नृत्य में—

"उसके पैरों में घुँघरू कल
नट की कटि में घंटियाँ तरल
वह फिरकी-सी फिरती चंचल,
नट की कटि खाती सौ-सौ बल,
लो छन - छन - छन - छन
ठुमुक गुजरिया हरती मन।"

यही शब्द-चेतना एक दूसरे ढंग की कविता में बहुत ही गम्भीर और गहरी छिपी हुई मिलती है। इस ढंग की कविताओं में भाव ही प्रधान है लेकिन वह भाव शब्दों की ध्वनि के सहारे बड़े कलापूर्ण ढंग से पुष्ट किया गया है—

"भारत माता
ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला-सा आंचल
गंगा-यमुना में आँसू जल
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी।
स्वर्ण शस्य पर पद-तल लुण्ठित
धरती-सा सहिष्णु मन कुण्ठित
क्रन्दन-कम्पित अधर मौन स्मित
राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी"

इस श्रेणी की एक और कविता 'राष्ट्रगान' है, जिसमें भारत के जनतन्त्र रूप की उद्भावना की गयी है।

सौन्दर्योपासक जब बुद्धि की चोट से आहत होता है और कभी-न-कभी आहत होना उसके लिए अनिवार्य है ही—तब चोट के तीखेपन को सहनीय बनाने के लिए वह परिहास की—Satire की—शरण लेता है। यही परिहास जहां उसके लिए शान्तिदायक होता है, वहां एक शक्तिशील साधन भी होता है जिससे समाज के सुधार परिवर्तन और नव-निर्माण में बहुत काम लिया जा सकता है। सुमित्रानन्दन पन्त जैसे भावनाशील और sensitive कवि के लिए यह स्वाभाविक ही था कि आधुनिक जीवन का बढ़ता हुआ अन्तर्विरोध उन्हें विचलित करे। उनकी कविता में यह भावना धीरे-धीरे ही प्रकट हुई है—'ग्राम्या' में वह मुखर हो उठी है—

"यहां धरा का मुख कुरूप है
सुलभ यहाँ रे कवि को जग में
युग का नहीं सत्य-शिव-सुन्दर!"

और इसी से उनकी रचनाओं में जहाँ-तहाँ तीखा व्यङ्ग झलकने लगा है। कहीं वह अस्पष्ट है, जैसे 'ग्रामनारी' का वर्णन करते-करते—'अश्लथ उसके उरोज'—इस छोटे से वाक्यांश में ही उन्होंने उस भेद उस contrast को स्पष्ट कर दिया है जो ग्रामनारी के अकृत्रिम जीवन और शहरों की 'काम-वन्दिनी अभिशापित' की 'भाव कल्पित मनोज' की पूजा में है। कहीं वह व्यंग स्पष्ट है जैसे 'स्वीट पी के प्रति' नाम की कविता में, जिसमें अन्योक्ति द्वारा आधुनिक कुल-वधू की भर्त्सना की गयी है—

"शयन-कक्ष, दर्शन-गृह की शृंगार।
कुम्हलाती जाती हो तुम निज शोभा ही के भार!"

और 'आधुनिका' में तो वह और भी स्पष्ट और तीव्र है :—

"तुम सब कुछ हो फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ नहीं सिर्फ तुम नारी!"

आप यह न समझ बैठें कि पन्तजी ने व्यङ्ग की सारी शक्ति नारी पर ही आजमाई है। क्योंकि नारी को तुच्छ समझने वाले पुरुष पर भी उनका कटाक्ष कम तीखा नहीं है, प्रच्छन्न है तो क्या हुआ :—

"घर में विधवा रही पतोहू, लछमी थी, यद्यपि पतिघातिन
पकड़ मँगाया कोतवाल ने, डूब कुएँ में मरी एक दिन!
खैर, पैर की जूती जोरू न सही एक दूसरी आती—
पर जवान लड़के की सुधि कर साँप लोटते, फटती छाती!"

किन्तु यह पन्तजी की सहृदयता का प्रतीक है कि उनकी पुस्तक का आरम्भ भी एक दिव्य कल्पना से होता है—

"फुल्ल रक्त शतदल पर शोभित
युग लक्ष्मी लोकोज्वल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत करों से लुटा रही,
जन-हित जन-बल, जन-मंगल।"

और समाप्त भी एक प्रशस्त-भावना से जो प्रार्थना नहीं, आशीर्वाद है :

"हो धरणि जनों की, जगत स्वर्ग—जीवन का घर,
नव मानव को दो प्रभु! भव-मानवता का वर!"

निस्संदेह भव-मानव की कल्पना करने वाला यह हिन्दी कवि स्वयं भव-मानवता की ओर बढ़ गया है।

शुरू में मैंने सोचा था कि 'ग्राम्या' का केवल नाम लेकर फिर पन्तजी की 'पल्लविनी' की ही चर्चा करूँगा, पर 'ग्राम्या' का नाम लेकर फिर उसी की बात करते चलने का लोभ स्वाभाविक है, यहाँ उसे पढ़ने वाला हर आदमी अनुभव करेगा। 'पल्लविनी' की बात फिर कभी सही!

श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त को हिन्दी-साहित्य पढ़ने वाला प्रायः एक अच्छे आलोचक के ही रूप में जानता है। पर आलोचनाओं के अलावा उनके लिखे हुए छोटे-छोटे रेखा-चित्र भी जहाँ-तहाँ पत्रिकाओं में छपते रहे हैं, और ये अब एक छोटे, सुन्दर और डेलिकेट दीखने वाले संग्रह में प्रकाशित हो गये हैं। इस संग्रह का नाम है 'रेखाचित्र'।

वैसे तो कहानी, काव्य, आलोचना आदि सभी तरह का लेखन लेखक के व्यक्तित्व को प्रतिविम्बित करता है, पर इस तरह के छोटे रेखाचित्रों में, जिन्हें अंग्रेजी में स्केच कहते हैं, लेखक की पर्सनैलिटी का महत्व बहुत अधिक हो जाता है। इस संग्रह को पढ़ कर भी सब से पहले वह व्यक्तित्व ही हमारे सामने आता है—और 'पेट्रोल पम्प' या 'अपराजित' जैसे स्केचों में तो व्यक्तित्व का प्रक्षेपण—Projection—ही रचना का प्राण है। इस ढंग के स्केचों में जो व्यक्तित्व झलकता है उसका मुख्य गुण है तटस्थता—वर्ण्य विषय से अनासक्ति, और एक मानसिक आश्वस्तभाव-धृति। यह बड़ा गुण है, इसलिए और भी अधिक कि आज जैसे संक्रान्ति-युग में समतोल को कायम रख सकना मानसिक शक्ति का द्योतक है। यह जरूर है कि कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होता है कि इस व्यक्तित्व के तटस्थभाव का कारण कहीं-कहीं तो अवश्य यह है कि वह व्यक्तित्व चीजों में गहरा नहीं पैठा है, और जिन भावों की ओर इशारा करना चाहता है वे सौटंच खरे नहीं हैं, मेप्टित हैं।

'रेखाचित्र' के स्केचों में प्रायः ही निर्जीव वस्तुओं को विषय बनाया गया है। एक स्थिर-बुद्धि आलोचक, निर्जीव वस्तुओं का वर्णन करके उसके द्वारा परोक्ष रूप से काल-प्रवाह का, जीवन की बेरोक प्रवहमानता का, चित्रण कराता है। और इस चित्रण से ध्वनित होती है उन निष्प्राण वस्तुओं की तुलना में मानव की, मानवीय उद्योगों की, प्राणिमात्र की नश्वरता। स्केचों में बार-बार इसी चीज पर जोर दिया गया है। एक तरफ 'योगमुद्रा में तीन अजर अमर तपस्वी', 'योगी की मुद्रा' 'स्थायी' आदि शब्द या पद; मुकाबले में 'नए घर', 'नर नारी'—

"फैशन का मेला' रूपवानों का जमघट, पल भर की दीवाली, धन का मद, विजातीय संस्कृति की दासत्व-भरी नकल"

इत्यादि।

'मिट्टी के पुतले' या 'लालाजी' जैसे स्केचों में आज के मध्यवर्ग के जीवन की संकुचित विफलता और जर्जरताका बहुत अच्छा चित्र खींचा गया है। लालाजी की अनथक परन्तु उद्देश्यहीन मेहनत, जीवन की कठोर प्रति-योगिता में उनकी करुण दौड़—और अन्त में टोपी बदलने वाली घटना में उनकी हार भी और शान्ति भी—प्रकाशचन्द्रजी ने शब्दों की किफायत का चमत्कार दिखाया है। यही बात 'जागते रहो' जैसे स्केच में भी दीखती है। घोर रात में चौकीदार की यह पुकार सुन कर चौंकने का अवसर हमारे आपके जीवन में भी आया होगा, पर बीस एक वाक्यों में उसकी सम्पूर्ण करुणा और रहस्यमयता को भर देना एक कुशल लेखक का ही काम है।

'बची हुई आग से उसने चिलम भरते हुए अपनी आवाज उठायी और सन्नाटे के उस गम्भीर विस्तार में पत्थर की टुकड़े की तरह गिर कर खलबली मचाते स्वर में कहा—'जागते रहो!' †

---

† आल इण्डिया रेडियो दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन के क्षणों में

[श्रीमती महादेवी वर्मा]

३

आदर्श जीवन के निरपेक्ष सत्य का पालक है और यथार्थ जीवन की सापेक्ष सीमा का जनक, अतः उनकी अन्योन्याश्रित स्थिति न ऊपर से कभी प्रकट हो सकती है और न भीतर से कभी मिट सकती है। उनकी गति विपरीत दिशोन्मुखी होकर भी जीवन की परिधि को दो ओर से स्पर्श करने का एक लक्ष्य रखती है।

यथार्थ को जैसे-जैसे हम देखते जाते हैं वैसे-वैसे उसकी त्रुटियों को हमारी कल्पना की रेखाएं पूर्ण करती चलती हैं, इसी से अन्त में हम उसकी विषमता पर खिन्न और सामञ्जस्य पर प्रसन्न होते हैं। उदाहरण के लिए हम एक चित्र को ले सकते हैं। उसमें एक बालक रंग के धब्बे ही देखेगा, साधारण व्यक्ति रंग के साथ आकार भी देख सकेगा पर सहृदय कलाप्रेमी रंग-रेखाओं आदि में व्यक्त सामञ्जस्य या विषमता का भी अनुभव करेगा। यथार्थ से उसके मूलगत आदर्श तक पहुँचने का यह क्रम मनुष्य की सामञ्जस्यमूलक भावना के विकसित रूप पर निर्भर रहता है। यथार्थ की त्रुटि जानने का अर्थ यही है कि हमारे पास उस त्रुटि से ऊपर का चित्र है, इसी से यथार्थ का वैषम्य उन्हें नहीं ज्ञात होता जिनके पास सामञ्जस्य की भावना का अभाव रहता है। रेखागणित के समान यथार्थ को जान लेना ही हमें उसके निकट परिचय का अधिकारी नहीं बना सकता; क्योंकि जब तक हम उन तारों से अपने सामञ्जस्य का स्वर नहीं निकाल लेते, वह यथार्थ और हमारे जीवन का यथार्थ, जोड़-फल के साथ रखे हुए गणित के अङ्कों जैसे ही दुर्मिल बने रहते हैं। यथार्थ, यथार्थ से एक नहीं होता, अन्यथा हमारे घरों के खम्भे सहचर हो जाते और वृक्ष सहोदर बन जाते। एक यथार्थ दूसरी सामञ्जस्य की भावना का स्पर्श करके ही अपना परिचय देने में समर्थ हो पाता है और यह भावना जिसमें जिस अंश तक अधिक है वह उसी अंश तक यथार्थ का उपासक है।

आदर्श का क्रम इससे विपरीत होगा, क्योंकि उसमें व्यक्त सामञ्जस्य की प्रत्येक रेखा हमें यथार्थ के सामञ्जस्य या विषमता की स्मृति दिलाती चलती है इसी से यथार्थ ज्ञान से शून्य बालक के निकट किसी आदर्श का कोई मूल्य नहीं हो सकता। यदि किसी कारण से हम कल तक का उपार्जित यथार्थ ज्ञान भूल जावें तो आज हमारे आदर्श का चित्रपट भी शून्य होगा। इस तरह जीवन में वह यथार्थ, जिसके पास आदर्श या स्पन्दन नहीं केवल शव है और वह आदर्श जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं प्रेत मात्र है।

साधारण रूप से हमारी यह धारणा बन गयी है कि यथार्थ के चित्रण के लिए हमें कुछ नहीं चाहिए; परन्तु अनुभव की कसौटी पर यह कितनी खरी उतर सकती है यह कथन से अधिक अनुभव की वस्तु है। आदर्श का सत्य निरपेक्ष है परन्तु यथार्थ की सीमा के लिए सापेक्षता आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य रहेगी, इसी से एक की भावना जितनी कठिन है दूसरे की अभिव्यक्ति उससे कम नहीं। आदर्श का भावन मनुष्य के हृदय और बुद्धि के परिष्कार पर निर्भर होने के कारण सहज नहीं परन्तु एक बार भावन हो जाने पर उसकी अभिव्यक्ति यथार्थ के समान कठिन बन्धन नहीं स्वीकार करती, पूर्ण और सुन्दर स्वप्न देख लेना किसी असुन्दर हृदय और विकृत मस्तिष्क के लिए सहज सम्भाव्य नहीं रहता, पर जब हृदय और मस्तिष्क की स्थिति ने इसे सहज कर दिया तब केवल अभिव्यक्ति सम्बन्धी प्रश्न उसे व्यक्त होने से नहीं रोक पाते। विश्व के स्थूल से सूक्ष्मतर अनेक रूपकों के भरोसे भाषा की कोमल से कठोर तक असंख्य रेखाओं की सहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यता से और भावों के हलके से गहरे तक असंख्य रंगों के सहारे वह बार-बार व्यक्त हो कर सुन्दर से सुन्दरतम, पूर्ण से पूर्णतम होता रह सकता है। आदर्श के सम्बन्ध में अभिव्यक्ति की समस्या नहीं परन्तु अभिव्यक्ति के ग्रहण का प्रश्न रहता है; क्योंकि व्यक्त होते ही वह यथार्थ की परिधि में आ जाता है और इस रूप में, उसे अपना पूर्ण परिचय देने के लिए, दूसरे की सामञ्जस्य-भावना की अपेक्षा होगी।

जैसे वीणा के एक तार से उंगली का स्पर्श होते ही दूसरे का अपने आप कम्पन से भर जाना उनके खिंचे-मिले रहने पर सहज और स्वाभाविक है उसी प्रकार एक व्यक्त आदर्श की अव्यक्त प्रतिध्वनि अनुकूल संवेदनीयता में आभासहीन होती है।

यथार्थ की समस्या कुछ दूसरे प्रकार की है, क्योंकि जो व्यक्त और स्थूल है उसे खण्डशः देख लेना कठिन नहीं पर उन खण्डों में व्याप्त अखण्डता की भावना सहजप्राप्य नहीं। जीवन खण्ड-खण्ड में बिखरा, देश-काल में बंटा और रूप-व्यष्टि में ढला है, परन्तु उसके एक खंड का मूल्य इसलिए है कि वह अखण्ड पीठिका पर स्थित है, उसकी सीमा का महत्व इसलिए है कि वह सीमातीत आधार-भित्ति पर अङ्कित है और उसके एक रूप का अस्तित्व इसलिए है कि वह अरूप की व्यापक समष्टि में ढला है। यदि हम एक सीमित खण्ड को पूर्ण रूप से घेर भी लें तो जब तक हम उसे अशेष जीवन की व्यापक पीठिका पर शेष खण्डों के साथ रख कर नहीं देखते तब तक उसके कभी न घटने-बढ़ने वाले मूल्य का पता नहीं चलता और जब तक हमें इस मूल्य की अनुभूति नहीं होती तब तक उससे हमारी परिचय की निकटता सम्भव नहीं हो पाती,

हमारे शरीर की पूर्णता के ही लिए नहीं उपयोग के लिए भी आवश्यक अंगों का शरीर से भिन्न कोई मूल्य नहीं, कोई महत्व नहीं और कोई जीवन नहीं। भावी चिकित्सक का ज्ञान बढ़ाने के लिए चीर-फाड़ के काम में आने वाले शरीर के अंग उसका ज्ञान बढ़ा कर भी स्वयं सजीव नहीं हो जाते।

कला को चाहे प्राकृतिक चिकित्सा भी कह लिया जावे पर वह ऐसा अस्त्र चिकित्साशास्त्र कभी नहीं बन सकती जिसके जिज्ञासुओं के उपयोग के लिए निर्जीव यथार्थखंड संमवेदन शून्यता के हिम में गाड़-गाड़ कर सुरक्षित रक्खे जावें, कला के यथार्थ को सजीव तो कहना ही है साथ ही जीवन की अशेष विशालता में अपने अधिकार का परिचय देते हुए निरन्तर पाना और अवि-राम देना है अतः उसकी स्थूल रेखा से लेकर व्यावहारिक नियम तक सब अपने एक व्यापक सामञ्जस्य की भावना चाहते हैं। इस प्रकार यथार्थ का प्रत्येक खंड जीवन, अखण्ड जीवन के आदर्श पर आश्रित हुए बिना खण्ड ही नहीं रह सकता।

उदाहरण के लिए हम एक चतुर यथार्थशिल्पी द्वारा निर्मित कृश, दीन और अर्धनग्न वृद्ध भिखारी की मूर्ति को ले सकते हैं। अपनी संसार यात्रा में हमने ऐसे अनेक विरूप खंड देखे हैं जिनके निकट ठहरने की, हमारे व्यस्त जीवन को इच्छा ही नहीं हुई। पर उस मूर्ति से साक्षात होते ही हमारा जीवन अपने सम्पूर्ण आवेग से उसे घेर-घेर कर उसी प्रकार आर्द्र करने लगेगा जिस प्रकार तीव्र गति वाला जल प्रवाह अपने पथ में पड़े हुए शिलाखंड की प्रदक्षिणा कर-कर के उसे अपने सीकरों से अभिषिक्त करने लगता है। हमारा हृदय कहेगा यह मेरा है, हमारी सांस पूछेगी इतना अन्तर किस लिए और हमारी बुद्धि प्रश्न करेगी ऐसा दैन्य क्यों? इस अन्तर का कारण स्पष्ट है। कलाकार ने जब उस खण्ड विशेष को जीवन की अखण्ड पीठिका पर सामञ्जस्य की व्यापक आधार भित्ति पर अङ्कित करके हमारे सामने उपस्थित किया तब वह अपने स्थायी मूल्य और अविच्छिन्न सम्बन्ध के साथ हमारे निकट आया और उस रूप में हमारे जीवन का सत्य उसकी उपेक्षा नहीं कर सका। जीवन-पथ पर कंकड़-पत्थर के सामान बिखरे और खण्डित यथार्थ को हम जो आत्मीयता नहीं देते उसी को अयाचित दिलाने के लिए यथार्थवादिनी कलाएँ उन परिचित और उपेक्षित खण्डों को एक अखण्ड भावना के रहस्यमय अञ्चल में बटोर लेती हैं। जब कला जीवन की व्यापकता का भावन बिना किये मनुष्य, पशु पक्षी आदि के, कैमरे से खिंचे चित्रों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास-पास चिपका कर ही अपने चित्राधार को विराट बनाना चाहती है तब वह रेखाओं के जितने निकट आ जाती है, जीवन से उतनी ही दूर पहुँच जाती है।

आदर्श व्यक्ति विशेष की अखण्ड भावना को रूप देकर उसी रूप की रेखाओं में यथार्थ के संकेत व्यक्त करता है। इसी से उसका क्रम यथार्थ से भिन्न रहेगा। उदाहरण के लिए वह प्रतिमा पर्याप्त होगी जिसमें कलाकार ने पूर्ण रेखाओं और प्रशान्त मुद्राओं की सीमा में एक असीम सामञ्जस्य की भावना भर कर शान्ति को नारी रूपक में प्रतिष्ठित किया है। उसकी रेखा-रेखा से फूटती हुई सामञ्जस्य की किरणें हमारी वाष्प जैसी अरूप और हल्की भावना को धरती की मलिनता से बहुत ऊपर ले जाती हैं और वहां उसे जल की बूंदों-सा, आर्द्रता में गुरु रूप देकर प्यासे कणों पर झर-झर बरसा देती हैं। आदर्श हमारी दृष्टि की मलिन संकीर्णता धोकर उसे बिखरे यथार्थ के भीतर छिपे सामञ्जस्य को देखने की शक्ति देता है, हमारी व्यष्टि में सीमित चेतना को मुक्ति के पंख देकर समष्टि तक पहुँचने की दिशा देता है और हमारी खण्डित भावना को अखण्ड जागृति देकर उसे जीवन की विविधता नाप लेने का वरदान देता है। जब आदर्श जल भरे बादल की तरह आकाश का असीम विस्तार लेकर पृथ्वी के असंख्य रङ्गों और अनन्त रूपों में नहीं उतर सकता, तब शरद के सूने मेघखण्ड के समान शून्य का धब्बा बना रहना ही उसका लक्ष्य हो जाता है।

आदर्श और यथार्थ की कला-स्थिति के सम्बन्ध में एक समस्या और भी है। आदर्श हमारे सत्य की भावना होने के कारण अन्तर्जगत की परिधि में मुक्त हो सकता है और बाह्य जगत में केवल व्यापक रेखाओं का बन्दी रह कर अपनी अभिव्यक्ति कर सकता है। परन्तु यथार्थ हमारी भावना से बाहर भी, कठिन स्थूल बन्धनों के भीतर एक निश्चित स्थिति रखता है अतः उसे इस प्रकार व्यक्त करना कि वह हमारा भी रहे और अपनापन भी न खोये सहज नहीं। पारिजात के साथ पुष्पत्व की, व्यापक और संसार भर के फूलों के लिए सामान्य सीमा के अतिरिक्त रंग, आकार, वृन्त, पल्लव आदि के संकीर्ण बन्धन नहीं हैं, इसी से हम रंगों के ऐश्वर्य, रूपों के कोष और पल्लव तथा वृन्तों की समृद्धि में से अपनी भावना के अनुकूल चुनाव कर के उसे साकारता दे सकते हैं और हमारी इस साकारता के लिए यथार्थ हम से कोई प्रश्न नहीं कर सकता।

इसके विपरीत एक गेहूँ की बाली का भी चित्र बनाने में हमें एक विशेष रंग खोजना होगा, पत्तियों को यथार्थ अङ्कित करना पड़ेगा। वृन्त को निश्चित आकार-प्रकार देना होगा, दानों को यथातथ्य स्थिति में रखना होगा और इतने बन्धनों के भीतर अपनी भावना के मुक्त स्पन्दन से इस संघात विशेष में सजीवता की प्रतिष्ठा करनी होगी।

यथार्थ के सम्बन्ध में हम दार्शनिक के समान यह कह कर सन्तोष नहीं कर सकते कि इसका रंग हमारे नेत्रों ने देखा, कोमलता त्वचा ने स्पर्श की, गन्ध घ्राणेन्द्रिय को मिली, स्वाद रसना ने ग्रहण किया और स्वर श्रवण को प्राप्त हुआ इसलिए यह हमारे स्पर्श, श्रवण, घ्राण, स्वाद और दृष्टि की समष्टि के अतिरिक्त और कुछ नहीं; वैज्ञानिक की तरह उसके रंगरूपों के वैचित्र्य भरे संग्रह को गला-मिला कर जड़ द्रव्य का संघातमात्र बना लेना भी, कलाकार को लक्ष्य तक नहीं पहुँचाता। बालकों के प्रथम पाठ आ से आदमी के समान संज्ञा-ज्ञान बढ़ाना भी कलागत यथार्थ की चरम परिणति नहीं।

यथार्थ स्वयं ही जड़ की सचेतन अभिव्यक्ति है अतः इस अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति का प्रश्न सरलता ही में जटिल है। कलाकार का प्रत्यक्ष सब का प्रत्यक्ष है, इसलिए केवल नवीन रूपों के परिचय से दूसरों के प्रत्यक्ष की परिधि बढ़ाने के लिए उसे उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक दौड़ लगा-लगा कर भौगोलिक विभिन्नताओं में जीवन के विविध रूपों का संग्रह करना होगा।

अपने घर के सामने, न जाने कब से समाधिस्थ सूखे ठूँठ की हम रेखा-रेखा पहचानते हैं और अपने द्वार पर कोमल पौधे कठोर प्रहरी बने नीम को हम, पाताल में बन्दी चरणों से लेकर आकाश में उन्मुक्त शिखा तक जानते हैं। इनका प्रत्यक्ष सम्बन्धी ज्ञातत्व हम कलाकार से पूछने नहीं जायँगे। परन्तु उजेली रात में आदमी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँधेरी में प्रेत और दिन में सूखा काठ बन जाने वाले ठूँठ की अनेक स्थितियां ऐसी हैं जिनसे हम परिचित नहीं। इसी प्रकार बसन्त में मोतियों के चूर से जड़े मरकत परिधान में झूमते और पतझर में चरणों पर बिछे पीले पत्तों के निष्फल वैभव पर अवाक् से नीम की सभी परिस्थितियों की सीमा हम नहीं समाप्त कर सके।

यथार्थ का कलाकार प्रत्यक्ष रेखाओं में किसी अपरिचित अप्रत्यक्ष स्थिति को इस प्रकार अङ्कित करेगा कि उसका प्रत्यक्ष हमारे प्रत्यक्ष पर फैल जावे और उसकी परिधि के भीतर हमें अप्रत्यक्ष का सौन्दर्य, जीवन की अखण्ड सजीवता के साथ प्राप्त हो।

इस सम्बन्ध में यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसी अपरिचित और अप्रत्यक्ष परिस्थितियां न तो ठूँठ की सुलझी रेखाओं में निश्चित अङ्कगणित बन चुकी हैं और न नीम की उलझी शाखाओं में स्थायी रेखागणित हो गयी हैं। वे तो कलाकार की भावना में अस्तित्व रखती हैं। और वह भावना जो इन सब परिस्थितियों में व्यापक और सब प्रत्यक्ष रेखाओं के लिए सामान्य हो सकती है जीवन का अखण्ड आदर्श है। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा यथार्थ आदर्श से भिन्न क्यों माना जावे ? उत्तर उनकी जीवन को व्यक्त करने वाली विभिन्न शैलियों में मिलेगा, जिनके कारण एक का इति दूसरे का अथ बन जाता है। आदर्शवादी कलाकार जीवन की व्यापक भावना को पहले देकर उसके संकेतों में यथार्थ को अङ्कित करता है। इसी से अनेक रूपकों उपरूपकों में ढला परिचित प्रत्यक्ष अपरिचित अप्रत्यक्ष की साकारता देकर ही सफल होता है। यथार्थवादी प्रत्यक्ष का सीमित शरीर देकर हमें उसके व्यापक और अप्रत्यक्ष स्पन्दन की अनुभूति देता है और आदर्शवादी व्यापक जीवन का भावन देकर हमें उसके सीमित रूपों का पता बताता है, दोनों का क्रम दोहरा अतएव कठिन है। इसी से प्रायः एक कलाकार अपनी सृष्टि को केवल अन्तर्जगत में घेर लेता है और दूसरा अपने निर्माण को केवल बाह्य जगत में बिखरा देता है। एक के पास रंग ही रंग रह जाता है और दूसरे के पास मिट्टी ही मिट्टी, अतः एक ओर मिश्रित रंगों से सिद्धान्तों की सेवाहीन चित्रशाला प्रस्तुत की जाती है और दूसरी ओर धूल के खिलौनों का रंगहीन मेला लगाया जाता है। ऐसी स्थिति में आदर्श और यथार्थ को सजाने का क्रियाकलाप, अन्तिम संस्कार के समारोह का विवश, करुण पर निश्चित हुए बिना नहीं रहता। यह क्रम तब तक नहीं बदलता जब तक कलाकार के जीवन का सत्य सौन्दर्य में प्रतिष्ठित होने के लिए विद्रोह नहीं कर उठता और जब यह विद्रोह सम्भव हो जाता है तब कलाकार कठिनाइयों की चिन्ता न करके कण-कण से शिला बने आडम्बर को उसी सहज भाव से छिन्न-भिन्न कर डालता है। जिस सरलता से मा के भ्रूकुंचि-भंग पर हंसता हुआ बालक फीके खिलौने को फेंक कर चूर-चूर कर देता है। तब वह आदर्श और यथार्थ के बीच की खाइयों को जीवन के सहज संवेदन से भरता हुआ उस देश में जा पहुँचता है जहां स्वप्न कभी झूठे नहीं होते, सौन्दर्य कभी पुराना नहीं पड़ता, सूक्ष्म कभी शून्य नहीं बनता और स्थूल कभी निर्जीव नहीं रहता।

* *

उपन्यास-अङ्क की तैयारी में अभी हमें निम्न लेखों की आवश्यकता है। आशा है अधिकारी लेखक बन्धु हमें शीघ्र सूचित करेंगे कि उनके लिए कौन विषय उपयुक्त रह सकेगा। —संपादक

१—विश्व उपन्यास की जाग्रत शक्तियां
२—औपन्यासिक तत्वों का क्रमिक-विकास
३—आज के उपन्यास का टैकनीक
४—फ्रैंच उपन्यास
५—जर्मन उपन्यास
६—रूसी उपन्यासों का नया रुख
७—अंग्रेजी उपन्यासों के प्रमुख लेखक और उनकी प्रवृत्तियां
८—बंगला के बंकिम शरत् और रवीन्द्र का अध्ययन
९—मराठी उपन्यास का उत्कर्ष
१०—गुजराती के पारवारिक उपन्यास
११—उर्दू उपन्यास
१२—हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ दस उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं का रचनात्मक वर्गीकरण

[श्री राममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए०]

[फरवरी अङ्क का शेशांष]

(ग) प्रत्यय (पूर्वसर्ग अन्तःसर्ग परसर्ग) प्रधान भाषाएँ:—तुर्की आदर्श प्रत्यय-प्रधान भाषा है।

विशेषताएँ:—(१) वाक्य-रचना तो व्यवहित होती है, परन्तु शब्द सावयव होते हैं जिनका निर्माण प्रकृति तथा प्रत्यय के स्पष्ट योग से होता है। प्रत्यय का सहज ही पृथक्करण किया जा सकता है—जैसे तुर्की में 'एवलेरिमदन'= एव (घर प्रकृति) + लेर (बहुवचन बोधक प्रत्यय) + इम (मेरा, सम्बन्ध वाचक सर्वनाम) + दन (से, अधिकरणकारक प्रत्यय)। सेव-इश-दिर-इल-मे-मेक=सेव-मेक (प्यार करना, प्रकृति) + इश (परस्पर) + दिर (प्रेरणार्थक क्रिया का चिह्न) + इल (कर्म-वाच्य का चिह्न) + मे (नहीं); नी-चेता=नी (तू, प्रकृति) + चेता (से, करण कारक का चिह्न), इत्यादि।

(२) व्याकरणिक सम्बन्ध प्रत्यय द्वारा प्रकट होते हैं, जैसा कि उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

(३) फारसी की भांति तुर्की में भी सर्वनाम संज्ञा में संश्लिष्ट हो जाता है—जैसे एविम (मेरा घर), एवमुज (उनका घर)। एवन (तेरा घर), एवनिज (तुम्हारा घर), एवी (उसका घर) तथा एवलेरी (उनका घर)।

(४) प्रकृति सदैव अविकृत रहती है, भिन्न-भिन्न व्याकरणिक सम्बन्धों में, संस्कृत-फारसी की भाँति इसके रूप में परिवर्तन नहीं होता, जैसा कि उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है। हाँ सर्वनाम प्रकृति में, अधिक प्रयोग के कारण, कुछ विकार हो जाता है, जैसे उत्तम पुरुष एक वचन सर्वनाम, कर्ताकारक में 'नेनु' होता है परन्तु सम्प्रदान कारक में 'नाकु' होता है।

(५) यद्यपि प्रत्यय में भी विकार नहीं होता, परन्तु इस कारण कि प्रत्यय का स्वर प्रकृति के अन्तिम स्वर के अनुरूप होना चाहिए, कभी-कभी उसका रूप कुछ परिवर्तित हो जाता है जैसे ४ अत् + लेर=अतलर।

(अ) पुरःप्रत्यय (पूर्वसर्ग) प्रधान भाषाएँ:—विशेषता:—प्रत्यय प्रकृति के पूर्व आता है जैसे—'अंबुत बेतु अबचिल बयबोनकल' में रेखांकित पद प्रत्यय हैं।

क्षेत्र:—मध्य अफ्रीका की रांतू, जूलू, सुआहिली आदि भाषाएँ।

(आ) पर प्रत्यय (परसर्ग) प्रधान भाषाएँ:—विशेषता:—प्रत्यय प्रकृति के बाद में आता है।

क्षेत्र:—यूराल-अल्टाई, द्राविड़ तथा कोल परिवारों की भाषाएँ और हंगेरियन।

(इ) सर्व-प्रत्यय (पूर्वसर्ग परसर्ग आदि) प्रधान भाषाएँ:—विशेषता:—प्रत्यय प्रकृति के आदि-अन्त मध्य सब में आता है।

क्षेत्र:—मलाया तथा पूर्वी द्वीपसमूह की मलयन तथा मनलेशियन भाषाएँ।

(ई) ईपत् प्रत्यय-प्रधान :—विशेषता :—प्रत्यय प्रधान होते हुए भी इनका झुकाव समास, व्यास अथवा विभक्ति की ओर है, जैसे जापानी तथा काकेशियन का विभक्ति की ओर, हाउसा का व्यास की ओर तथा बास्क का समास की ओर है।

क्षेत्र:—बास्क, जापानी, काकेशियन, हाउसा आदि पालिनेशियन परिवार की भाषाएँ।

(४) विभक्ति प्रधान भाषाएँ:—

विशेषताएँ:—(१) यद्यपि व्याकरणिक सम्बन्ध

४ बाबू श्यामसुन्दरदास, 'भाषा-विज्ञान' पृष्ठ ४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बोध प्रत्ययों द्वारा होता है, शब्द सावयव होते हैं और प्रकृति-प्रत्यय के योग से बनते हैं, तथापि प्रत्यय प्रकृति में इतने अस्पष्ट रूप से संश्लिष्ट हो जाता है कि उसका विश्लेषण करना कठिन है और यदि संयोग से पृथक्करण हो भी जाय तो उसके मूल रूप का पता लगाना असंभव है, जैसे सं० अक्षः चकोर आदि यद्यपि कृ धातु से बने है, तथापि इनमें प्रत्यय का पृथक् से बताना कठिन है तथा 'अस्मि = अस (धातु) + (मि प्रत्यय, जिससे उत्तम पुरुष एक वचन कर्ता का बोध होता है), परन्तु संस्कृत में मैं अर्थवाला 'मि' जैसा कोई शब्द नहीं मिलता।

(२) प्रत्यय-प्रधान भाषाओं में प्रकृति तथा प्रत्यय अविकृत रहते हैं परन्तु विभक्ति-प्रधान भाषाओं में दोनों में विकार होता है। कभी-कभी तो वे इतने विकृत हो जाते हैं कि उनका अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरणों से इसका स्पष्टीकरण हो जायगा:—

(च) प्रत्यय-विकार :—सं० 'गच्छेताम्' में 'ता' का ताम् 'अगच्छम्' में 'मि' का अम् हो जाता है तथा 'एधि' में 'सि' परिवर्तित और गच्छः में तो पूर्णतः लुप्त ही हो जाता है। इसी प्रकार लै० 'सम' तथा गाथिक 'इम' में 'मि' का 'म' ही शेष रह गया है।

(छ) प्रकृति-विकार:—सं० पिबति में 'पा' का 'पिब', तिष्ठति में 'स्था' का तिष्ठ, गच्छति में गम् का गच्छ, धमति में ध्मा का धम, इच्छति में 'इष' का इच्छ जिघ्रति में घ्रा का जिघ्र अथवा शक्नोति में शक् का शक्नो हो जाता है तथा इयत् में इदम् का अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार सं० अस् ग्री० 'एइमि' में 'एइ', लै० सम में 'स' तथा गा० इम में इ हो जाता है।

(३) किसी-किसी भाषा में अक्षरावस्थान (सुर अथवा स्वर परिवर्तन) से अर्थ भेद होता है जैसे अंग्रेजी में sing—song, bite—bit, tip—tap foot—feet, pock—peck, clip—clap clink--clank, fall—fell तथा swim—swam—swem, take—took, get—got bear—bore इत्यादि में; और अरबी में کتاب (किताब), کتب (कुतब), طائر (तायर), طیور (तयूर) فعل (फेल), فاعل (फाइल), قتل (क़त्ल), قتل (क़तल), قتل (क़ुतल) इत्यादि में।

(अ) बर्हिमुखी विभक्ति प्रधान भाषाएँ :—
विशेषताएँ :—विभक्ति प्रायः बर्हिमुखी होती है और प्रकृति के अन्त में आती है—जैसे अभवम् में 'अम्' भूतकाल की विभक्ति 'भू' के बाद में है (२) ये विभक्तियाँ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में संभवतया स्वतंत्र शब्द थीं उदाहरणार्थ 'ship' shape से, 'ने' सं० तन अथवा एन से, 'को' कृतं अथवा कक्षं से, तथा 'का' सं० कृतः से निकली प्रतीत होती हैं। (३) धातु एकाक्षर होते हैं जैसे कृ, नी आदि। (४) यद्यपि पूर्व विभक्ति अथवा पूर्व सर्ग नहीं होते, तदपि उपसर्ग होते हैं, परन्तु उनका वाक्यान्वय से कोई सम्बन्ध नहीं होता। (५) अक्षरावस्थान भी पाया जाता है परन्तु यह सुर-प्रधान होता है और बल प्रयोग तथा उच्चारण की सुविधा आदि बाह्य कारणों से होता है, जैसे अं० read, lead, learned, ग्री patroktonos, सं० इन्द्रशत्रु, इत्यादि में भिन्न-भिन्न लहजे से उच्चारण करने में अर्थ-भेद हो जाता है। (६) ये यद्यपि भाषाएँ संहित से व्यवहित की ओर अग्रसर हो रही हैं, तथापि शुद्ध समास-रचना की इनमें विशेष शक्ति है।

क्षेत्र:—भारोपीय परिवार की भाषाएँ:—

(आ) अन्तर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाएँ :—
विशेषताएँ—(१) यद्यपि विभक्तियाँ आदि, अन्त-मध्य सब में आती हैं परन्तु शब्द-भेद तथा उनके रूप शब्द के भीतर होने वाले स्वर-परिवर्तन अथवा अपश्रुति से ही बनते हैं, जैसे حكم (हक्म) से حكم (हुक्म), حاكم (हाकिम), حكم (हकम), حكم (हुकम) आदि इस प्रकार अक्षरावस्थान इनमें भी पाया जाता है, परन्तु वह रचना प्रधान होता है और आन्तरिक कारणों से होता है।

(२)—धातुएँ केवल तीन व्यञ्जनों से बनती हैं जैसे فعل (फ़ेल), قتل (क़त्ल), كتب (कतब) आदि।

(३)—इसमें रूप बनाने में धातुओं में अक्षरों का आगम होता है परन्तु इससे वजन अथवा धातु में कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन नहीं होता, जैसे فعل (फ़ेल) से مفعول (मफ़ूल), قتل (क़त्ल) से یقتل (यक़्तुल)।

(४)—फ़ारसी की भाँति सर्वनाम प्रायः क्रिया तथा संज्ञा के अन्त में जुड़ जाते हैं जैसे حکمنی (हकमनी), ضربت (ज़रब-तो) तथा قلمی (क़लम-ई) आदि।

(५)—समास-रचना की शक्ति न होने के कारण इनमें व्यवहृति होने की प्रकृति वहिर्मुख विभक्ति-प्रधान भाषाओं से अधिक है।

क्षेत्र—सेमेटिक तथा हेमेटिक परिवार की भाषाएँ।

उपयोगिता—(१) व्यावहारिक—उक्त वर्गीकरण में निम्नलिखित दोष है—

(क)—वह भाषाएँ जिनमें कोई पारिवारिक अथवा भौगोलिक सम्बन्ध नहीं है एक ही वर्ग के अन्तर्गत ले ली गई हैं—जैसे व्यास-प्रधान वर्ग में चीनी और सूडानी। कहीं-कहीं एक ही वर्ग की भाषाओं की रचना में बड़ा अन्तर है जैसे अन्तर्मुखी—विभक्ति-प्रधान वर्ग में सेमेटिक तथा हेमेटिक भाषाओं में। (ख)—प्रत्यय-प्रधान वर्ग में तो अनेकों भाषा-परिवार हैं। परन्तु व्यास-प्रधान, विभक्ति-प्रधान, अथवा समास प्रधान वर्ग में दो एक ही हैं। (ग)—प्रत्येक भाषा-वर्ग की भाषाओं में अन्य भाषा-वर्गों की रचना के लक्षण तथा उदाहरण पाये जाते हैं जैसे व्यास-प्रधान भाषा-वर्ग की चीनी भाषा में रिक्त धातु विभक्तियों की भाँति प्रयुक्त होते हैं; तथा प्रत्यय-प्रधान और विभक्ति प्रधान भाषा वर्गों में तो केवल प्रकृति-प्रत्यय के भेद अभेद का ही अन्तर है। इसके अतिरिक्त न कोई भाषा-वर्ग पूर्णतः संहित ही है और न व्यवहित ही। (घ)-संसार में कुछ ऐसी भी भाषाएँ हैं जो किसी भाषा-वर्ग में नहीं आतीं जैसे अंडमन की भाषा। अतः व्यवहारिक दृष्टि से यह वर्गीकरण अनुपयोगी है।

(२) विकास-क्रम के अनुसार—उक्त वर्गीकरण के अनुसार भाषाएँ उत्तरोत्तर संहित से व्यवहित और व्यवहित से संहित होती रहती हैं। तदनुसार वे क्रम से समास से व्यास, व्यास से प्रत्यय तथा प्रत्यय से विभक्ति अवस्था को प्राप्त होती हैं और जब विभक्ति अवस्था को प्राप्त होने पर अति संहित हो जाती हैं तो फिर व्यवहित होने लगती हैं जैसा कि इससे स्पष्ट है कि आधुनिक विभक्ति-प्रधान भाषाएँ उत्तरोत्तर व्यवहित होती जा रही हैं। यद्यपि इस विकास-क्रम के मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है। परन्तु भाषा की वर्तमान प्रगति को देखते हुए तनिक इस बात पर विश्वास नहीं जमता कि भाषा एक दम समास अवस्था से व्यास अवस्था को प्राप्त हो गई होगी।

(३) रचनात्मक—वाक्य-रचना समझने के लिए शब्द-भेद तथा उनके रूप जानना तथा शब्द-रचना समझने के लिए प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन करना आवश्यक है। इस वर्गीकरण में इसकी विस्तृत व्याख्या हो जाती है। अतः वाक्य-रचना, वाक्यान्वय, शब्द-रचना तथा व्याकरणिक सम्बन्ध समझने में इससे विशेष सहायता मिलती है।

* *

प्रेमाश्रम का प्रतिपाद्य (पृष्ठ ४७० का शेषांश)

महान् आदर्श इस उपन्यास में अत्यन्त उपेक्षणीय होकर ही आया है ? या फिर साधारण भाव से आप पूछ सकते हैं कि सारा ग्रन्थ एक नकारात्मक उद्देश्य से ही लिखा गया है।' उत्तर में मेरा निवेदन है कि प्रेमशंकर की तपस्या उपेक्षणीय भी नहीं है, उसने अपना महत्वपूर्ण प्रभाव भी डाला है और कहानी को गति देने में मूल कारणों के साथ भी रहा है, परन्तु उसका क्षेत्र एक गौण कथानक होने के कारण वह मूल कहानी का मुख्य उपादान नहीं हो सका है। लखनपुर वाली कहानी केवल उपर्युक्त उद्देश्य (जमींदार प्रथा की अनिष्टकारिता) दिखाने के लिए है और उक्त ग्राम के दुःख-दुर्दशा को दूर करने में प्रेमशंकर के प्रेम का आदर्श बहुत कुछ सहायता करता है—क्योंकि उसी आदर्श के कारण इर्फानअली, ज्वालासिंह और प्रियनाथ किसानों के पक्ष में आ जाते हैं—परन्तु मूल कथानक में उस आदर्श का प्रभाव बहुत ही कम है। इसलिए जहाँ तक प्रेमाश्रम का सम्बन्ध है प्रेमचन्दजी अपने भावात्मक आदर्शों को प्रधानता नहीं दे सके हैं और अभावात्मक आदर्श प्रधान हो गये हैं।*

* शान्ति-निकेतन में हिन्दी समाज के सामने पढ़े गये व्याख्यान का एक अंश। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

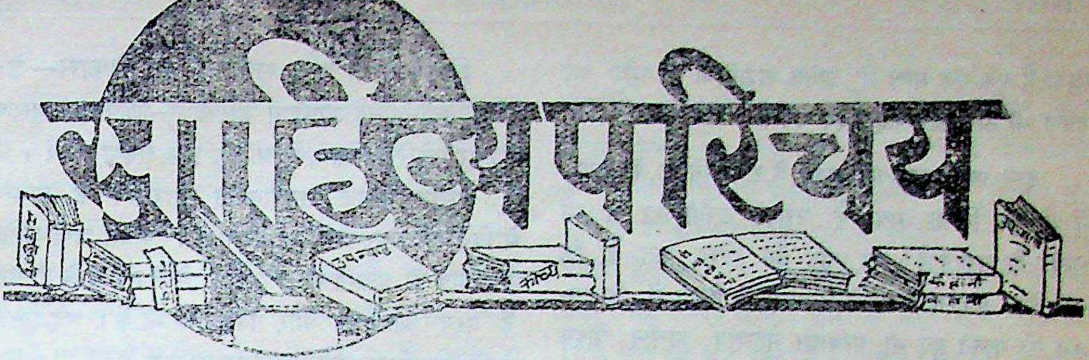

समालोचना

संस्कृत साहित्य का इतिहास–(भाग १–२)–– लेखक–सेठ कन्हैयालाल पोद्दार। प्रकाशक––मन्त्री श्री रामविलास पोद्दार स्मारक ग्रन्थमाला समिति, नवलगढ़। मूल्य प्रत्येक भाग का ४।)

उक्त पुस्तक को साधारणतया एक दृष्टि से हमने आद्योपान्त पढ़ा। पुस्तक के लेखक अनेक साहित्यिक ग्रंथों के रचयिता विद्वान् पण्डित श्रीयुत सेठ कन्हैयालाल पोद्दार हैं। पुस्तक का विषय संस्कृत 'साहित्य' का इतिहास और उसका विकासक्रम है, पर साहित्य शब्द का प्रयोग यहां केवल अलंकार-रसादि-प्रतिपादक साहित्य-दर्पण, काव्य-प्रकाश जैसे प्रकरण ग्रन्थों के अभिप्राय से ही किया गया है।

प्रथम भाग में प्राधान्येन साहित्यिक प्रकरण ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषय को दिखलाते हुए, उनके तथा उनके ग्रन्थकारों के अनुक्रम और समय आदि विषयों का विस्तृत विवेचन है। प्रारंभ में वैदिक तथा पौराणिक काल का उल्लेख भी साहित्यिक विकास के सम्बन्ध में संक्षिप्तरूप से किया गया है। इसके अन्तमें दिया हुआ 'निष्कर्ष' सर्वथा उपयोगी हैं। द्वितीय भाग में काव्य के प्रयोजन तथा हेतु को दिखला कर, काव्य के लक्षण का ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपण करते हुए रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, और ध्वनि विषयक साहित्यिक संप्रदायों का सुन्दर सोपपत्तिक मार्मिक विवेचन किया गया है।

ग्रन्थकारों के समय-निरूपण में विद्वान लेखक ने प्रचलित दूसरी युक्तियों के साथ-साथ अपनी निजी युक्तियाँ भी दीं हैं। कई स्थानों पर दूसरों के सिद्धान्तों की सयुक्तिक समालोचना करने की भी चेष्टा की है एवं साहित्य सम्बन्धी विभिन्नमतों की समालोचना में अपनी स्वतन्त्र विवेचना-पद्धति से भी कार्य लिया है। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ दूसरे लेखकों के मतों तथा उनके द्वारा प्रतिपादित विषयों का केवल संकलनमात्र न होकर एक मननशील विद्वान के स्वतन्त्र अनुशीलन का फल स्वरूप होने से अपनी स्वतन्त्र महत्ता रखता है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक के लिखने में ग्रन्थकार ने गवेषणा तथा विवेचना-पद्धति और अनेक दुरूह ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन का काफी परिचय दिया है। पुस्तक का द्वितीय भाग, प्रथम भाग की उपेक्षा, और भी अधिक महत्व रखता है। और स्पष्टतया विद्वान लेखक के प्रचुर परिश्रम और गम्भीर विद्वत्ता का द्योतक है। द्वितीय भाग में दी गई अलंकार–विवरण–तालिकाएँ अलंकारों के क्रम-विकास का अनुसन्धान करने वालों के लिये विशेषतः उपयोगी हैं।

उपर्युक्त गुणों को देखते हुए यह अत्यन्त खेद का विषय है कि पुस्तक में यत्र-तत्र दिये संस्कृत के पद्यात्मक उद्धरण प्रायः अशुद्ध हैं। यह दोष जो सर्वथा अक्षम्य है पुस्तक के दोनों भागों में, आदि से अन्त तक व्याप्त हैं। समझ में नहीं आता है कि ऐसे विद्वान के ग्रन्थ में ऐसी अशुद्धियाँ किस प्रकार रह गई। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक की उपयोगिता तथा महत्ता इन अशुद्धियों के कारण बहुत कुछ दूषित हो गई हैं। इनके रहते हुए पुस्तक का सदुपयोग कहाँ तक कम से कम छात्र वर्ग कर सकता है यह नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रसङ्ग में यह भी कहना आवश्यक है कि ग्रन्थ के प्रारम्भ में वैदिक काल की चर्चा करते हुए जो अनेक वैदिक मन्त्र दिये गये हैं उनमें तो और भी अक्षम्य अशु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्धियाँ हैं एक एक मन्त्र में अनेक अशुद्धियाँ हैं और कई स्थल भी ठीक ठीक नहीं दिये गये हैं।

इसी प्रकार रामायण आदि के समय-निर्देश के विषय में जो कुछ लिखा गया है उसकी उपयोगिता में भी सन्देह हो सकता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि साहित्यिक प्रकरण-ग्रन्थों के सिद्धान्तों के विषय में विकास-क्रम को मानते हुए भी, ग्रन्थकार महाशय प्राचीन वैदिक तथा रामायण आदि के साहित्य के विषय में इस दृष्टि को नहीं रखते। उदाहरणार्थ, महाभारत तथा रामायण में जो छन्दो-विषयक भेद हैं उसका कारण कहाँ तक विकास-क्रम से समझा जा सकता है—इस विषय में आप कुछ नहीं कहते (देखो भाग १, पृष्ठ २४)। इसी प्रकार यह कहना कि विभिन्न पुराणेतिहासों में अवतार-चरित्रों के विभिन्न रूप से वर्णन का कारण एकमात्र कल्पनाभेद है, (देखो भाग १, पृ० २३) विचित्र सा दीखता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्राचीनतर पुराण आदि धार्मिक साहित्य के विषय में श्रद्धातिरेक के कारण, आप प्रखर समालोचना पद्धति को काम में लाने को तैयार नहीं हैं जिसका पर्याप्त उपयोग आपने अपने मुख्य प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में इसी ग्रन्थ में किया है। इन कारणों से हम ग्रन्थ के उपर्युक्त भाग को अधिक महत्व नहीं देते।

उपर्युक्त त्रुटियों को छोड़ कर जैसा हमने ऊपर कहा है, हम इस ग्रन्थ को अत्यन्त उपयोगी समझते हैं। संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं में तो ऐसा दूसरा ग्रन्थ है ही नहीं। अन्य भारतीय भाषाओं में भी कदाचित् अभी तक ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध न हो। संस्कृत के छात्र इससे पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि इसको मातृभाषा में लिख कर ग्रन्थकार ने हिन्दी का बड़ा उपकार किया है और इसके लिए वे हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। हमारी यही प्रार्थना है कि द्वितीय संस्करण में अशुद्धियों को विशेष ध्यान दे कर शुद्ध कर दिया जावे।

—(डाक्टर) मङ्गलदेव शास्त्री

हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास—ले॰ पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'–प्रकाशक—पुस्तक भण्डार लहेरिया सराय, मूल्य ५), पृष्ठ संख्या ७३१।

प्रस्तुत पुस्तक रामदीनसिंह रीडरशिप के सम्बन्ध में दिये गये व्याख्यानों का संग्रह है। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय की प्रतिभा बहुमुखी है। वे केवल कवि ही नहीं हैं वरन् आलोचक और विचारक भी हैं। यह पुस्तक उनके प्रौढ़ विचार और अध्ययन का फल है।

हिन्दी भाषा और साहित्य के अनेक इतिहास निकल चुके हैं। उनके होते हुए भी इसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसके प्रकाशन को सार्थक करता हैं। यद्यपि इसमें हिन्दी भाषा का विवेचन स्वतन्त्र रूप से अधिक विस्तृत नहीं है तथापि काव्य-धारा के विकास के साथ भिन्न-भिन्न कवियों की भाषा पर कुछ अधिक प्रकाश डाला गया है। यदि भिन्न-भिन्न कवियों की भाषा के साथ भिन्न-भिन्न कालों की भाषाओं का क्रम-विकास दिखा दिया गया होता तो और भी अच्छा होता। अस्तु।

हिन्दी शब्द की प्राचीनता बताते हुए उपाध्यायजी जेन्दावस्था का एक उद्धरण देते हैं जिससे मालूम होता है कि फारिस वाले इस शब्द को हिन्दोस्तान निवासी के अर्थ में बहुत प्राचीन काल से प्रयोग करते आये हैं। वह उदाहरण इस प्रकार से है:—

"चू व्यास 'हिन्दी', बलख आमद
गुस्तास्पजरतुशतरा बख्वाँद"

उपाध्यायजी आर्य जाति को कहीं बाहर से आया हुआ नहीं मानते। अन्य कई विद्वानों के साथ जिनका उन्होंने अपनी भूमिका में उल्लेख किया है उनका मत है कि आर्य जाति भारत के पश्चिमोत्तर भाग से ही आकर भारतवर्ष में ही फैली। विशेष रूप से इस कारण से तो नहीं आप ग्रियर्सन के अंतरङ्ग और बहिरङ्ग विभाग की अपेक्षा चेटर्जी के विभाजन को अधिक तर्क सम्मत मानते हैं।

उपाध्यायजी ने हिन्दी की विभक्तियों, सर्वनामों और क्रियाओं का अच्छा विवेचन किया है जो भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों को लाभकर होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य के आरम्भ के सम्बन्ध में तो उपाध्याय जी ने विशेष कोई नई बात नहीं कही तथापि वे रासो की थोड़ी बहुत भाषा सम्बन्धी परीक्षा कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रासो बारहवीं शताब्दी का ही है और उसमें कुछ प्रक्षिप्त अंश ऐसे हैं जो पन्द्रहवीं शताब्दी के भी कहे जा सकते हैं। रासो में गाथा छन्द का प्रयोग उसकी प्राचीनता का द्योतक है। उस ग्रन्थ में अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है। माघ १९९७ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका में इस सम्बन्ध में एक नई चर्चा चली है। मुनि जिन विजय महाराज ने अपने पुरातन प्रबन्धों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि चन्द बरदायी नाम कल्पित नहीं है। उन प्रबन्धों में चन्द के कहे हुए चार छन्दों में रासो के तीन छन्द अपने विकृत रूप में पहचाने भी गये हैं।

रासो के सम्बन्ध में जो इतिहास सम्बन्धी भूलें बताई गयी हैं उपाध्यायजी ने उनका कोई समाधान नहीं किया है।

विद्यापति के सम्बन्ध में उपाध्यायजी का मत है कि विद्यापति ने जिस प्रकार संस्कृत और अवहट्ट भाषा में ग्रंथ लिखे उसी प्रकार उन्होंने अपनी पदावली हिन्दी में लिखी। उसमें बिहारी प्रभाव है किन्तु उसकी अधिकांश शब्दावली हिन्दी की है। विद्यापति को आप भक्त कवि ही मानते हैं।

उपाध्यायजी कबीर के रहस्यवाद को किसी विदेशी परम्परा का फल नहीं मानते हैं। उनका मत है कि कबीर के विचार बौद्ध सिद्धों और गोरखनाथ की परम्परा का स्वाभाविक विकास है। नामदेव ज्ञानेश्वर द्वारा गोरख की परम्परा में ही आये हैं और कबीरदासजी नामदेव से बहुत कुछ प्रभावित हैं।

जायसी, सूर और तुलसी के सम्बन्ध में अवधी और ब्रज भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। रीति काल के कवियों में देव के बाद आपने श्रीपत को अधिक मुख्यता दी है। उनके दोष निरूपण की आपने बहुत तारीफ की है।

आधुनिक काल का विवेचन करते हुए आपने छायावाद और रहस्यवाद के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण बड़ा उदार रक्खा है। रहस्यवाद के सम्बन्ध में आप कहते हैं:—"यदि समुद्र की अगाधता देखकर लोग किनारा कर लेते तो चमकते मुक्तादाम हाथ न आते········ प्राकाश असीम हो, अनन्त हो तो खगकुल को इन प्रपंचों से क्या काम? वह तो पर खोलेगा और जी भर उसमें उड़ेगा। इसके लिए यह सुख अल्प नहीं" यद्यपि इस ग्रंथ में काव्य की नितान्त आधुनिक प्रवृत्तियों का विवेचन नहीं है तथापि वर्तमान साहित्य का विषयवार ब्यौरा अच्छा दिया गया है। पुस्तक में प्राचीन कवियों के उदाहरण भी अच्छे दिये गये हैं, पुस्तक हर प्रकार से उपादेय है। —गुलाबराय

कविता

"पलाश-वन"—लेखक—श्रीनरेन्द्र। प्रकाशक—शारदा प्रेस, प्रयाग। पृ० सं० ७२ मू० १)

"पलाश-वन" नरेन्द्रजी की तीसरी रचना है। इन कविताओं में रूप-माधुरी गीत-भावना, घनी पीड़ा, संघर्ष और मुक्ति की आकांक्षा आदि गुण मिलते हैं, किन्तु पाठक का ध्यान इन गीतों में एक अकथ असहाय, उदासी और विरक्ति भरे भाव की ओर अनायास ही उठता है—

"जिसने दिया लिया भी उसने,
मन, तुमको क्यों पीड़ा होती?
टिकता भी कितने दिन प्यारे,
ममता का वह मोमी मोती!"

"सह न सका वह उर की ज्वाला,
रह न सका वह बन कर अपना;
गला मोम का मोती, जैसे
ढला दुपहरी का सुख-सपना!"

आगे और भी करुण भाव इन गीतों में आ गया है—

"फिर फिर रात और दिन आते,
फिर फिर होता साँझ-सवेरा,
मैंने भी चाहा फिर आए
बिछुड़ा जीवन-साथी मेरा!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पर मेरे जीवन का साथी
छूट गया सो छूट गया।

"रातों जगा, करवटें बदलीं,
सासें गिन गिन रात बिताई,
किन्तु न पूरा हुआ अधूरा
सपना, उचटी नींद न आई।"

"कच्चे धागे सा सुख-सपना
टूट गया सो टूट गया!"

एक प्रगतिगामी कवि के विचार-पट पर पीड़ा की इतनी लम्बी छाया क्यों? हिन्दी कवि के मस्तिष्क और भावना-जग में आज घोर संघर्ष जारी है। जीवन की कठोर परिस्थितियाँ आज उसके अभिमान को कुचल रही हैं और वह चीख उठता है—

"अच्छा ही हुआ दूर हो तुम,
टुकड़े टुकड़े हो जाता दिल—
अब देख मुझे इतना उदास!"

किन्तु उसका दिमाग उसे अँधेरे में पथ सुझाता है—

"उठो, मुक्ति-पथ के अनुगामी,
अब न कभी पीछे पग धरना!
मन, अब सोच फिकर मत करना
जीवन को निर्बल न समझना!"

इस प्रकार कवि के मन में एक कशमकश निरन्तर जारी है और गीत में व्यक्त होकर उसके हृदय को हल्का करती है।

"पलाश-वन" के कवि ने प्रकृति का रूप नित्य नये आकर्षण से देखा है। "कौसानी", "रानीखेत की रात", "कूर्माचल", "सामने का नीम", "खुली हवा", "आषाढ़", "फागुन की आधी रात", "ज्येष्ठ का मध्याह्न" आदि उदाहरण हैं। इन गीतों में बड़ी सरल भाषा में कवि ने प्रकृति का रूप शब्द-बद्ध किया है—

"गंध रूप-रंग की यह दुनिया
जो अग-जग फल-फूल रही है,
झूल झकोरों में माधव के
सब पिछले दुख भूल गई है;
आज लगे बैसाख नई अंबिया गदराती होगी!"

बसन्त का यह आगम भी कवि के लिए एक लोहमर्षक संदेश लाया है:

"पतझर की सूखी शाखों में लग गई आग, शोले दहके!
चिनगी-सी कलियाँ खिलीं और हर फुनगी लाल फूल लहके!
× × ×
लो, डाल डाल से उठी लपट! लो, डाल डाल फूले पलाश!
यह है बसन्त की आग, लगा दे आग जिसे छूले पलाश!"

"फागुन की आधी रात" और "जेष्ठ के मध्यान्ह" में प्रकृति का रूप और भी विकराल हो उठा है और यह स्पष्ट है कि "पलाश-वन" का कवि हाथीदाँत के मीनारों से बाहर निकल चुका है। 'ज्येष्ठ के मध्यान्ह' का वर्णन देखिए:

"अधबुझी चिताओं के मसान के ही समान सर्वत्र शांति—
डिगती न तनिक तिल भर भी जो त्यों भीषण भूधर दुनिवार!
जब रण समाप्त ज्यों समरभूमि—
है दूर दूर तक धूलि-धूसरित ऊसर का विस्तृत प्रसार!"

"पलाश-वन" से स्पष्ट है कि कवि का जीवन किसी कठोर संघर्ष के बीच से गुजर रहा है। नरेन्द्र आजकल बड़े वेग से लिख रहे हैं और उनकी प्रतिभा निरन्तर विकसित हो रही है। हमें विश्वास है कि आगे चल कर उनकी कविता प्रौढ़तम् रूप में हमारे सामने आवेगी।

—प्रकाशचन्द्र गुप्त

उन्मुक्त—लेखक सियारामशरण गुप्त साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) मूल्य १।)

यह एक प्रबन्ध-काव्य है छन्दबद्ध कहानी। वह संक्षेप में यह है कि कुसुमपुर पर लौहपुर ने आक्रमण कर दिया। स्वर्ण-रौप्य आदि पुरों को वह पहले ध्वस्त कर आया है। अब कुसुमपुर युद्ध में संलग्न हो गया। मनुष्य रक्तपात को अनुचित समझते हुए भी कुसुमपुर वासी युद्ध में आगे बढ़े। लौहपुर के सैनिकों के समक्ष ठहरना कम संभव था, अतः कुसुमपुर के एक निवासी ने भस्मकास्त्र तय्यार किया हुआ है, वह एक अचल यान में लगा दिया जाता है कुसुमपुर उसके बल पर विजय की आशा लगाये हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पर वह यान बिगड़ कर शत्रु के हाथ में चला जाता है। वह उसी की सहायता से कुसुमपुर पर अधिकार कर लेता है। इस युद्ध के बीच में ही गुणधर को युद्ध की हिंसा से वैराग्य हो जाता है, और वह अपने सेनापति की अवज्ञा करता है—मृत्युदण्ड का पात्र है वह; पर मृत्युदंड से पूर्व ही कुसुमपुर शत्रु के हाथ में चला जाता है। तब सेनापति पुष्पदन्त को अपने हिंसा के साधनों पर क्षोभ प्रकट होता है। वह गुणधर के मत से सहमत हो जाता है और अहिंसात्मक युद्ध के लिए सन्नद्ध होता है—इस प्रकार इस काव्य में कवि ने कल्पना की कहानी द्वारा वर्तमान स्थिति के शौर्य को, अत्याचार को, ज्ञान-विज्ञान के क्रूर ताण्डव तथा निर्दोष मानवता के पीड़ित हाहाकार को—हिंसा के प्रोत्साहन और उसके वेग को, साथ ही अहिंसा की फिलासफी और काव्य को शब्दबद्ध करने का उद्योग किया है।

यह काव्य आज के अमानवीय व्यापारों की गहरी आलोचना है, जिसमें शुद्ध मानव के शौर्य और ज्ञान को लांछित करने वाले तत्वों को उभार कर उपस्थित कर दिया गया है। काव्य का आधार मनस्तत्व अवश्य है, पर हृदय रस से भी यह असिक्त नहीं। विचार के साथ करुणा की अवहेलना नहीं। कुसुमपुर कुसुम समान कोमल कमनीय, उसमें बहिन मृदुला तो हृदयवती सेवापूर्ण करुणा, सक्रिय करुणा की मधुर मूर्ति है।

सारा काव्य युद्ध के हिंसात्मक नृशंस युद्ध के विरुद्ध चीत्कार है। इसमें उपरोक्त मुख्य कथानक के साथ कितने ही छोटे-छोटे पताकास्थानक भी मिले हुए हैं। एक दरिद्र बुढ़िया का अपना सर्वस्व दान कर देना युद्ध के लिए; मृदुला के पुत्र की मृत्यु और मृत्यु के उपरान्त मृदुला का उसे स्वप्न में मानव के दानवी कृत्यों के विवेचना करते सुनना—कवि ने इस कृत्यों पर जो विचार किया है वह कुछ पंक्तियों में बहुत स्पष्ट हुआ है :—

"है उनकी आहार क्रिया पशुओं से विकसित,
वे सुसभ्य हैं, ज्ञान और विज्ञान समन्वित।
जब उनकी वह क्षुधा जाग उठती है उनमें,
तब अपनी दुर्वृत्ति पूर्ण करने की धुन में,
कर देते हैं धर्म युद्ध आपस में घोषित;
+ + +
"प्रतिहिंसा में छिपा हुआ निज का अभिमानी,
कोई हिंसक क्रूर स्वयं हममें बैठा था;
जो वैरी में, वही हमारे में पैठा था।
हार हमारी हुई, हेतु इसका है केवल—
हममें कपट, असत्य, पाशविक हिंसा का बल।
वैरी जितना न था.........
+ + +
"हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल,
जो सब का है, वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर—
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर.........
+ + +
"हिंसक भी है नहीं निरा दानव ही दानव;
सोया है अज्ञात दिशा में उसका मानव।
चेतेगा वह नहीं ग्राम्य गुरु के ताड़न से
रोष रहित सप्रेम स्वयं के कष्ट सहन से
कर उसका उन्नयन स्वयं उन्नत होंगे हम।"

श्रीमैथिलीशरण गुप्तजी ने स्थापना में लिखा है "यदि उनका (श्रीसियारामशरण) का शरीर स्वस्थ होता तो मैं इसमें उनसे कुछ और भी कराता। वर्तमान परिस्थिति में तो यही मुझे अपेक्षाकृत अधिक जान पड़ता है।" निश्चय ही स्वस्थ अवस्था में स्वयं श्री सियारामशरण गुप्त ही अपना हृदय उसमें उंडेल देते, पर जैसा भी यह काव्य है आज पठनीय और मननीय है। काव्य सामयिक है क्यों कि वर्तमान सामरिक अवस्था पर रूपक है। युद्ध और हिंसा पर काव्य में इतना अभी तक नहीं लिखा गया था, अतः यह अभिनव भी है। —सत्येन्द्र

कहानी

सिंहगढ़-विजय—लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री। प्रकाशक—पटना पब्लिशर्स, बांकीपुर (पटना)—पृष्ठ संख्या १६७, मूल्य १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुस्तक में दस कहानियां हैं जिन सब की पृष्ठ-भूमि इतिहास की प्रसिद्ध घटनाएँ हैं। पर लेखक के ही शब्दों में "इन कहानियों में ऐतिहासिक सत्य कम है, भावना और कल्पना से तत्कालीन जीवन की ओजपूर्ण रेखाएँ खींची गयी हैं।" ये रेखाएँ कहीं-कहीं तो बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। पहली कहानी 'सिंहगढ़-विजय' में वीरवर शिवाजी के एक प्रबल पराक्रमी योद्धा तानाजी का वृत्तान्त है जो आद्यन्त आकर्षक और प्रभावोत्पादक है। "वसंत" पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता के हरण का वर्णन है। 'लालारुख' में बादशाह आलमगीर की पुत्री लालारुख के सौन्दर्यमय जीवन का चित्र है जिसका अन्त बड़ा सुन्दर है। 'दे खुदा की राह पर' शीर्षक कहानी का कथानक बड़ा करुणापूर्ण है और बहुत ऊँचे आदर्श को लिये हुए है, मुझे सब से ज्यादा वही पसन्द आयी। मुगलिया सल्तनत का खातमा कैसे हुआ यह 'नूरजहाँ का कौशल' से मालूम होता है। 'कैदी की रिहाई' राजपूत वीरता का सुन्दर चित्र है। और 'हथिनी पेट में है' राजपूतों के विनाश की दर्दनाक तस्वीर है। 'शेरा भील' और 'झण्डा' भी वीरता-पूर्ण कहानियां हैं। अन्तिम कहानी है 'पूर्णाहुति' जिसमें भारत के गौरव को नष्ट करने वाले तथा भारतीय स्वतंत्रता की पूर्णाहुति देने वाले और साथ ही साथ मर्दानगी के साथ समरक्षेत्र में जीवन अर्पण करने वाले वीरों की कहानी है। संक्षेप में सिंहगढ़-विजय श्रेष्ठ कहानियों का अच्छा संग्रह है। इस हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष के युग में चतुरसेनजी 'दे खुदा की राह पर' शीर्षक जैसी कुछ और भी कहानियाँ लिख कर उनका संग्रह प्रकाशित करावें तो वे बड़ा पुण्य कार्य करें। —महेन्द्र

१—एलबम या शब्द-चित्रावली—लेखक श्री भारतीय। प्रकाशक—शारदा प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ संख्या १४४, मूल्य ॥≈)

वास्तव में इसके निबन्ध शब्द-चित्र और कहानी के बीच की वस्तु हैं। हाँ, इनमें चित्रण की प्रधानता अवश्य है। अफसर, भाईसाहब शुद्ध चित्रण की दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं। बड़े आदमियों के यहाँ कभी-कभी ऐसे भाई साहबों के दर्शन हो ही जाते हैं जो कुछ न करते हुए भी अपने लिए प्रबन्धाधिकार सुरक्षित कर लेते हैं। जरा चित्र देखिए—

'भाई साहब अब भी वहीं थे—उसी प्रकार अद्धी का धुला कुर्त्ता पहनते, लखनऊ की सादी टोपी पहनते और वही पेटेण्ट काले रंग का पम्प पहनते, चहरे पर वही मुस्कराहट, वही शरीफाना अन्दाज और खुशमिजाजी इसमें तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ था।' खुशमिजाजी के साथ आशावाद और जरूरी था। ऐसे लोग 'कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ' 'मेरुमूलक इव तोरूँ' का सा उत्साह रखते हैं और गहरे पानी में होते हुए भी किनारे पर बैठे खिलखिलाते रहते हैं, चहरे पर विषाद या करुणा की एक रेखा भी नहीं आने देते। अफसर का भी चित्र देख लीजिए—

"अफसर के रहते, लाख काम करते हुए भी मातहत यह नहीं समझ सकता कि उसका भी महत्व है, उसकी भी हस्ती है, उपयोगिता है, सार्थकता है। मातहतों को आत्म-विश्वास, आत्माभिमान, आत्मानुभूति और आत्मसम्मान से बचाने के लिए ही अफसर की सृष्टि होती है।" इस चित्र में कितना सुन्दर व्यङ्ग्य है। वास्तव में मातहतों को वीतराग बनाने में अफसर से बढ़ कर कोई गुरु नहीं है। बनारसी का चित्र कुछ लम्बा हो गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि वर्माजी का वहाँ से कुछ सम्बन्ध है। बड़ा आत्म-गौरवपूर्ण चित्र है।

२—विचित्र अनुभव अर्थात् सरस कहानियाँ—लेखक—श्री भारतीय। प्रकाशक—शारदा प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ संख्या १४३, मूल्य ॥≈)

यह कहानी संग्रह पहली कहानी के नाम पर है। इसमें उन्नीस कहानियों का संग्रह है, जिनमें दश मौलिक हैं और नौ विदेशी भाषाओं से अनुवादित। अनुवादित कहानियों में पुरुष का हृदय नाम की कहानी मुझे बहुत पसन्द आयी। उसमें अपनी ऐसी पत्नी के प्रति जिससे वह प्रेम नहीं करता, मानवता का व्यवहार दिखाया गया है। लेखक महोदय विदेशी कहानियों को देशी चोला पहनाने में बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धहस्त हैं। भारतीयजी की मौलिक कहानियाँ भी बड़ी सुन्दर हैं। मौलाना की बेबसी और दरोगा की होली में पुलिसवालों का अच्छा चित्र खींचा है।

मौलाना साहब पार्क में पड़ी पाई हुई घड़ी को जमा कराने गये, बाप दादों का नाम लिखाना पड़ा, यह तो कोई बात नहीं, उन पर उल्टा चोरी का इलजाम लगाया गया और घड़ी उनसे हथिया ली गयी। ऐसी ही ज्यादतियाँ ईमानदार को बेईमान बना देती हैं। रामाधीन का स्वप्न अछूत के देवदर्शन से सम्बन्ध रखने वाली करुणाजनक कहानी है। इन कहानियों में देहाती चित्र अच्छे हैं। —गुलाबराय

चन्द्रिका—रामस्वरूप व्यास। प्रकाशक—नारी जागरण कार्यालय, प्रयाग। पृष्ठ संख्या ९६, मूल्य ॥।)।

श्री रामस्वरूप व्यासजी की आख्यायिकाएँ नवीन प्रगति की परिचायक हैं। आपने अपनी कहानियों की रचना विशेष दृष्टिकोण से की है। चन्द्रिका में व्यासजी स्वयं लिखते हैं "आजकल स्त्री की सामाजिक अवस्था बहुत गिर गई है तथा जातीय सम्बन्धों पर समाज का दृष्टि-कोण बहुत संकुचित हो गया है। इस सम्बन्ध में क्या कुछ विशालता लाई जा सकती है तथा समाज का दृष्टिकोण कैसे बदला जा सकता है। यह इस दिशा में कुछ प्रयत्न है।" व्यासजी के मत में पुरुष को विशालहृदय होना चाहिए। पुरुष जाति की विचार संकीर्णता के कारण ही नारी जाति को इतने अत्याचार सहन करने पड़ते हैं। व्यासजी इस हृदय की विशालता पर इतना जोर देते हैं कि विवाह बंधन तक को ढीला कर देते हैं। आपके मत से विवाह बंधन में बंध जाने पर भी एक पुरुष अपनी स्त्री को केवल अपनी कहने का निजी संम्पति समझने का अधिकार नहीं रखता। 'मनुष्य या देवता' शीर्षक कहानी में लेखक ने रमाकान्त के मुंह से साफ कहलाया है "मनुष्य मात्र एक दूसरे से प्रेम कर सकता है। यह तो हमारी संकुचित स्वार्थ भावना है कि एक स्त्री एक ही पुरुष से और एक पुरुष एक ही स्त्री से प्रेम करे। यह प्रेम नहीं है, यह तो कब्जा करने की वृत्ति है, भोग और उत्पीडन का मार्ग है। मेरी पत्नी मेरी सम्पत्ति नहीं है, मेरी साथी है, मेरी प्रेम पात्री है—परन्तु वह भी एक स्वतंत्र व्यक्ति है और उसे भी प्रेम करने तथा प्रेम पाने का अधिकार है। पुरुष ने धर्म के नाम पर स्त्री की स्वतंत्रता का यह अधिकार छीन कर भारी अन्याय किया है इत्यादि" व्यासजी की 'पतिदेव' शीर्षक आख्यायिका भी इसी प्रकार के विचारों को प्रकट करती है अर्थात् यदि कोई स्त्री अपने निर्धन पति के साथ प्रसन्न नहीं रह सकती तो उसे पूरा अधिकार है कि वह किसी दूसरे धनी के साथ कुछ समय तक सुख से रहे। इनके बीच में हस्तक्षेप करने का उस स्त्री के पति का कोई अधिकार नहीं। पति महाशय को तो और प्रसन्न होना चाहिए क्योंकि स्त्री केवल अपने पति की तो सम्पति होती नहीं जो वह उसे ताले कुंजी में बन्द रक्खे, वह तो उसकी साथिन होती है, फिर साथी को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य क्या नहीं कर सकता। 'राधा के पत्र' नामक आख्यायिका भी इसी प्रकार के विचारों को दृष्टिकोण में रखकर लिखी गयी है जो हमारी संस्कृति के लिए एक तरह से नवीन है। 'वेश्या' कहानी में तो व्यासजी अपने इस प्रकार के विचारों को बहुत दूर ले गये हैं। आप लिखते हैं "वेश्या वृत्ति और विवाह दोनों में ही स्त्री को शरीर बेचना पड़ता है।" इससे तो यही सिद्ध होता है कि लेखक के मत में विवाह और वेश्या वृत्ति बराबर हैं अस्तु।

मित्र नामक कहानी में व्यासजी ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि जब तक स्त्री पुरुष का सम्बन्ध संकीर्ण तथा शंकापूर्ण रहेगा, जिस समय तक वे एक दूसरे पर पूरी तरह एकाधिपत्य नहीं प्राप्त कर लेते उन्हें शांति नहीं मिल सकती। हृदय में जरा सी शंका को स्थान देने के कारण कितना बड़ा अनिष्ट हो सकता है यही इस कहानी से शिक्षा मिलती है।

'वे विवाहित थे' कहानी में लेखक ने यह समझाने का प्रयत्न किया है कि लड़के लड़कियों का विवाह उनकी रुचि के अनुसार होना चाहिए। अरुचिकर विवाह प्रायः असफल होते हैं जैसा कि इस अख्यायिका से सिद्ध होता है।

'चन्द्रिका' पुस्तक में व्यासजी के सारे विचार पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों के परिवर्तन स्वरूप हैं। अधिकतर आप इसी बात पर जोर देते हैं कि पुरुषों में हृदय की विशालता होनी चाहिए। उन्हें अपने स्वार्थ का त्याग करना चाहिए तथा संकीर्ण विचारों को अपने हृदय से निकाल फेंकना चाहिए। व्यासजी के इन नवीन विचारों से हम सहमत तो हैं परन्तु जिस नवीन मार्ग का आप अनुगमन करना सीखते हैं उससे हम कदापि सहमत नहीं। हम यह भी नहीं चाहते कि एक पुरुष यदि अपनी स्त्री को पर पुरुष से स्वतन्त्रतापूर्वक बोलते देखे तो उसके प्रति हृदय में भांति-भांति की शंका करे और साथ ही यह भी नहीं चाहते कि यदि एक पुरुष अपनी स्त्री को प्रसन्न न कर सके तो उसे इतनी अधिक स्वतन्त्रता दे दे कि वह किसी दूसरे के साथ रह कर सुख-भोग करे। इसका आशय तो यह हुआ कि यदि दूसरे से भी उसे तृप्ति न हो तो वह तीसरे पुरुष के हवाले कर दी जाय, तो ऐसी अनवस्था में भारतीय ललनाओं की लज्जा रूपी अमूल्य मणि का क्या मूल्य रह जायगा? हम यह नहीं चाहते कि प्रेम में कोई बंधन हो, हम ऐसा भी नहीं चाहते जिसमें एक पुरुष अपनी स्त्री को कटघरे में बन्द करके रख दे। प्रेम में स्वतन्त्रता हो परन्तु वह भी किसी सीमा तक। जीवन में दाम्पत्य प्रेम तो अत्यन्त तीव्र और व्यापक माना गया है, कम से कम उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार किसी को नहीं होना चाहिए। बस यहीं हम व्यासजी से सहमत नहीं हो सकते। हमारा अन्तःकरण यह भी मानने को तैयार नहीं कि विवाह और वेश्यावृत्ति बराबर हैं।

लेखक का कहना है कि 'चन्द्रिका' की अधिकतर कहानियाँ सच्ची हैं। इस प्रकार की घटनाएँ विलायत, अमेरिका में हुआ ही करती हैं। आपका यह कथन हम निर्मूल नहीं बताते परन्तु लेखक महाशय को इतना तो सोचना चाहिए कि हमारा देश विलायत नहीं है, यह तो है पुण्य भूमि भारतवर्ष, जहाँ की ललनाएं अपने उज्ज्वल चरित्र के लिए प्रसिद्ध हैं। हमारे मत में तो हमारे पवित्र देश में स्त्रियों को इस प्रकार की स्वतन्त्रता देना एक प्रकार से असंगत-सा है और जो बात असंगत है उसके लिए तर्क-वितर्क कैसा?

—कुमारी कमला भम्भानी

नाटक

प्राणदान—लेखक—श्री 'व्यथित-हृदय'। प्रकाशक-बाल-शिक्षा-समिति, बाँकीपुर। पृष्ठ १३६, मूल्य ॥)

बालकोपयोगी और स्कूलों में खेले जाने योग्य नाटकों का हिन्दी में एकान्त अभाव है। शायद इस संग्रह की रचना इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए की गयी है। पुस्तक में छोटे-छोटे १४ एकांकी नाटक हैं जो अच्छी हिन्दी और सरल शैली में लिखे गये हैं। नाटकों के विषय सभी अच्छे विचारों का प्रचार करने वाले हैं—वे अधिकतर भारत के गौरवयुक्त इतिहास से या सुन्दर भावपूर्ण पौराणिक कहानियों से लिये गये हैं। मोरध्वज का त्याग, अंगुलिमाल का परिवर्तन, राणा और शिवाजी की वीरता आदि के आधार पर ये एकांकी बहुत ही शिष्ट और शिक्षाप्रद हैं। एकांकी के टेकनीक और कलात्मकता पर ध्यान देना शायद पुस्तक के प्रयोजन से परे की बात होगी। जिस उद्देश्य को ध्यान में रख कर यह लिखी गई है—उसके यह पूर्ण उपयुक्त है।

पुस्तक की छपाई अच्छी है और मूल्य भी अधिक नहीं रखा गया है।

—स्वदेशाभरण।

नटी की पूजा—मूल लेखक—श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर। अनुवादक—श्रीभगवतीप्रसाद चन्दोला। मूल्य १)

रवीन्द्र बाबू की प्रतिभा बहुमुखी है किन्तु उनकी सभी कृतियों में उनके कविहृदय का परिचय मिलता है। प्रस्तुत नाटक की कथा बौद्धकालीन है, स्वयं बुद्ध महाराज के समय की जब कि महाराज बिम्बसार राज्य करते थे। इसमें नारी-हृदय की दुर्बलता और सबलता दोनों का ही पूर्ण परिचय मिलता है। और अन्त में पद और मान की अपेक्षा प्रेम और त्याग की विजय होती है।

राजमहिषी और राजकुमारियों की इच्छा के विरुद्ध नटी अपने अनुपम त्याग के कारण पूजा की अधिकारिणी बनती है।

अनुवाद बड़ा सुन्दर हुआ। गीत मूल भाषा में ही रक्खे गये हैं। इससे उनके संगीत सौन्दर्य की पूर्ण रक्षा होती है।

—गुलाबराय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागयज्ञ—लेखक—श्री स्वामी सत्यजी, उपनाम दरबारीलालजी। प्रकाशक-सत्याश्रम वर्धा, सी०पी०, मू०॥)

इसकी कथा वस्तु का आधार है महाभारत में वर्णित जनमेजय के सर्पयज्ञ की कथा। उसका आश्रय लेकर एक सुन्दर नाटक का रूप दिया गया है। नाग नामक एक जाति थी, साँप नहीं। इस वंश का सम्बन्ध मनुष्य जाति से था। आर्य और नागवंश का झगड़ा बहुत पुराना था। इसी को लेकर यह नाटक निर्मित हुआ है। इस नाटक के लिखने का उद्देश्य यह है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल कर एक देश और एक कौम के अङ्ग बनें, क्योंकि हिन्दू मुसलिम मेल हुए बिना कोई चैन से नहीं रह सकता। इस छोटे से नाटक में धार्मिक उदारता, छूत-अछूत, नारी अपहरण, मूर्तिपूजा, गो बध इत्यादि विषयों पर भी समय की दृष्टि से अच्छा प्रकाश डाला गया है। समाज-सुधार की दृष्टि से ही नाटक का निर्माण हुआ है। प्रत्येक सुधारक इसको यदि समाज-सुधार दृष्टि की से देखेगा तो निस्सन्देह वह इससे लाभ उठा सकता है। इस नाटक में गद्य की प्रचुरता है। पद्य तो चने के खेत में एकाध उपजे पौदे के समान कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होता है। कुल तीन ही अङ्कों में यह नाटक समाप्त हो जाता है। नाटक का यद्यपि इसमें पूरा लक्षण नहीं घटता फिर भी हम इसे अन्य एकाङ्की नाटकों के समान नाटक कह सकते हैं। ऐसे राष्ट्रीय नाटकों की सचमुच बड़ी आवश्यकता की पूर्ति इस नाटक ने की हैं। पाठक पढ़ें और आनन्द लें। —हरिदत्त शास्त्री।

बालोपयोगी

प्रबन्ध-बोध—लेखक-श्री धर्मवीर 'प्रेमी' बी० ए०, मूल्य ॥।)

इस पुस्तक को लेखक ने छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को लेखन-कला सिखाने की दृष्टि से लिखा है। आज कल हिन्दी की जो विकसित अवस्था है उसे देखते हुए यह पुस्तक अधिक से अधिक कक्षा ८ तक के विद्यार्थियों के काम की है। निबन्ध तथा पत्रों के अतिरिक्त लेखक ने लेखन-कला तथा पत्र-कला पर भी पुस्तक के आरम्भ में थोड़ा प्रकाश डाला है। पुस्तक में ४७ निबन्ध तथा १४ पत्र दिये गये हैं। पुस्तक में प्रयुक्त भाषा सरल और मुहाविरेदार है परन्तु कहीं-कहीं भाषा बहुत ही बेमुहाविरेदार भी हो गई है जैसे—"यहाँ पर मैं छात्रावास में बड़े कुशल पूर्वक हूँ और नित्य प्रार्थना किया करता हूँ कि आप भी सभी कुशल पूर्वक हों।"—कई मील में को इस नगर का विस्तार है। पहाड़ी नगर होने के कारण मकान नीचे ऊंचे में को बने हुए हैं।" इत्यादि। —"सरोज"

वीर अभिमन्यु—लेखक-ज्योतिषी राधेश्याम द्विवेदी, प्रकाशक-पं० प्रभाशंकर शुक्ल, प्रताप प्रेस, मथुरा। मूल्य ≈)

यह पुस्तक जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात हो जाता है वीर अभिमन्यु का चित्रण करती है। लेखक ने इसके द्वारा इस वीर के जीवन की एक झांकी हमारे सामने उपस्थित की है। जिसमें उसकी वीरता का अच्छा वर्णन है। —शिवदत्त शर्मा

देशभक्ति की कहानियाँ—लेखक-व्यथित हृदय, प्रकाशक-ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर। पृष्ठ ५२, मू०।≈)

बालकों में उच्च विचार और देशभक्ति के भाव भरने के लिए देशी-विदेशी १९ ऐसी कहानियों का इसमें संग्रह किया गया है जिनमें देश पर बलिदान होने की कथाएं हैं। इस दृष्टि से यह पुस्तक अत्यन्त उपादेय है पर इसका मूल्य इसके प्रचार में बाधक होगा। साधारण कागज पर छपी ५६ पृष्ठ की इस कथा पुस्तक का मूल्य ≈) या ।) होना चाहिए था। —म

छत्रपति शिवाजी—लेखक-श्री गुर्तो सुब्रह्मण्य एम० ए० विशारद। प्रकाशक-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग। पृष्ठ ६०, मूल्य ।)

यह एक सरल और रोचक जीवनी है जिसमें वीर रस का सुन्दर प्रवाह है। बालक और बालिकाओं के लिए शिवाजी की यह जीवनी अत्यन्त उपयोगी है। इसमें शिवाजी के जीवन की उन्हीं घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है जिनसे उसका व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट होता है। शैली मनोरंजक है। —शिवदत्त शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवारियों की कहानियाँ—लेखक श्रीव्यथित हृदय प्रकाशक—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस। पृष्ठ १२३ मूल्य ॥≈) ।

इस पुस्तक में जानवरों की पीठ की सवारी से लगा कर वर्फ पर सरकने वाली पहियों की गाड़ी और भिन्न-भिन्न शक्तियों से चलने वाले थलयानों, जलयानों और वायुयानों का वर्णन है। वर्णन कथोपकथन के रूप में है और उसकी भाषा भी सरल है। वर्णन में सिद्धान्तों की अपेक्षा इतिहास पर अधिक जोर दिया गया है। बच्चों की किताब में सिद्धान्तों पर जोर देना भी ठीक नहीं था। चित्रों से पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। —गुलाबराय

सीख की कहानियाँ (दो भाग)—लेखिका-श्री श्यामाबाई शर्मा। प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली। पृष्ठ ३१, मूल्य प्रत्येक का ≈)।

इसमें लेखिका महोदया की ६ मनोरंजक और शिक्षा प्रद कहानियाँ हैं। जो बच्चों के लिए एक आदर्श सामने लाती हैं। भाषा सरल है और अक्षर बड़े हैं, अतः बालकों के लिए उपादेय है। वास्तव में इस प्रकार की कहानियों की बच्चों के लिए आवश्यकता है। इसका खूब प्रचार होना चाहिए !

वीर शतमन्यु—लेखक श्री सभामोहन अवधिया विशारद, स्वर्ण सहोदर। प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। पृष्ठ ५२, मूल्य ।)

इस पुस्तक में बालक और बालिकाओं के लिए वीर रस पूर्ण एक पौराणिक कहानी, जिसमें वीर शतमन्यु की कथा सरल, रोचक और ओजपूर्ण शैली में वर्णित है, कविता में लिखी गई है। बालक बालिकाओं के लिए पुस्तक उपयोगी है।

मेवाड़ की अमर गाथाएँ—लेखक बा० प्रभूदयाल मीतल। प्रकाशक-अग्रवाल प्रेस, मथुरा। पृष्ठ ६२, मूल्य ।)

इस पुस्तिका में लेखक की एक भूमिका के अतिरिक्त मेवाड़ की आठ गाथाएँ हैं। ये गाथाएँ हमें इनमें वर्णित घटनाओं के विशेष समीप पहुँचाती है। बालकों के लिए यह पुस्तिका विशेष उपादेय है और कदाचित यह लिखी भी उन्हीं के लिए है। सभी घटनाएँ एक प्रकार से अमर हैं और वे अपना विशेष स्थान भी रखतीं हैं। इसकी भाषा सरल तथा बालकों को प्रभावित करने वाली है। मेवाड़ के राजपूत वीर और वीराङ्गनाओं के त्याग, प्रतिज्ञा-पालन, कष्ट सहन तथा साहस आदि का अच्छा चित्रण है। शैली भी मनोरञ्जक है। बालकों के लिए ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है। यह पुस्तक बाल-पुस्तकालयों में संग्रहणीय है। हाँ प्रेस की अशुद्धियाँ अवश्य रह गयी हैं जो कहीं-कहीं अखरती हैं। —शिवदत्त शर्मा

स्त्रियोपयोगी

सती अनसूया—लेखक-श्री बेणीराम त्रिपाठी। प्रकाशक-भार्गव पुस्तकालय, बनारस। पृष्ठ संख्या १३२, मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक में सती अनसूया का जीवन चरित्र सुललित भाषा में लिखा हुआ है। सती स्त्रियों के तपोबल के चमत्कार को दिखाना इस पुस्तक के लेखक का प्रधान विषय रहा है, जिसे वे आदि से अन्त तक कुशलता के साथ निबाह ले गये हैं। पुराणों की कथाओं को लोक सुलभ करना तनिक कठिन कार्य होता है लेकिन "श्रीमाली" जी ने इस गद्य-पद्यात्मक उपाख्यान में काफी सफलता प्राप्त की है। पुस्तक स्त्रियों के पढ़ने योग्य है।

पर्दा निवारण जरूरी क्यों ?—लेखिका-श्री विद्योत्तमा देवी शर्मा, विशारदा। प्रकाशक-राष्ट्रीय साहित्य मण्डल, कलकत्ता। पृष्ठ १५, मू० ~)॥

नर और नारी का पारस्परिक संबन्ध, पर्दा प्रथा की ऐतिहासिकता और वर्तमान समय में उसकी अनुपयोगिता को लेकर यह छोटी सी पुस्तिका लिखी गयी है। प्रस्तुत पुस्तक का गद्य बहुत ही मार्के का है विशेषकर एक स्त्री लेखिका से ऐसे सुललित गद्य को देख कर प्रसन्नता होती है।

—गो० प्र० व्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुट

लड़खड़ाती दुनिया—जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशक—सस्ता-साहित्य मण्डल, देहली। मूल्य ॥)

पं० जवाहरलाल नेहरू भारत के उन मुट्ठी भर नेताओं में हैं जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का गहरा अध्ययन और मनन किया है। आपके नेतृत्व में ही कांग्रेस का ध्यान विदेशी राजनैतिक शतरंज की चालों पर लगा। साथ ही पं० जवाहरलाल समझते थे कि भारत का संग्राम एक विश्व-व्यापी संघर्ष का ही अंग है और हम दुनिया की प्रगतिशील शक्तियों के साथ मिल कर अपने हाथ मजबूत कर सकते हैं; इस हेतु आपने स्पेन, मिस्र और चीन के राष्ट्रीय नेताओं से मैत्री भी स्थापित की। किन्तु पूँजीवादी शक्तियों में परस्पर वैमनस्य बढ़ता गया और शान्तिपूर्ण उपायों से नाजीवाद का विरोध सफल न हुआ। अतएव युरोप में आज फाशिज्म का बोलबाला है और संसार के अनेक देश लोमहर्षण युद्ध के चंगुल में फँसे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में पं० जवाहरलाल नेहरू ने यूरोप की बीस वर्ष की भूलों पर प्रकाश डाला है। म्यूनिख की नीति की आपने तीव्र और कटु शब्दों में निन्दा की है। युद्ध छिड़ने पर यहाँ भी पं० जवाहरलाल ने ही कांग्रेस की ओर से 'युद्ध के ध्येय' का प्रश्न उठाया था।

किन्तु पं० जवाहरलाल की कांग्रेस में कुछ विचित्र स्थिति है। आप न वाम पार्श्व में हैं, न दक्षिण पार्श्व में। आप गांधीजी के बन्दी हैं। आपकी बुद्धि आपको एक ओर ले जाती है, भावना दूसरी ओर। वर्षों से आप जनता के आन्दोलन की बात करते रहे; अब आप व्यक्तिगत सत्याग्रह में कारावास भोगी हैं। रूस की नीति पर जब आपने आक्षेप किया था, प्रिट आदि विद्वानों ने आपको चुप रहने की सलाह दी थी। आज यह जाहिर है कि रूस ने अपनी सरहदें नाजी आक्रमण से सुरक्षित कर दूरदर्शिता दिखाई थी।

हिन्दी-जनता संसार-चक्र की गतिविधि समझने के लिए उत्सुक है। यह हर्ष की बात है कि सस्ता-साहित्य मण्डल ने राजनीति के पण्डित और देश के प्रिय नेता पं० जवाहरलाल के निबन्ध कम मूल्य पर जनता के लिए उपलब्ध कर दिये हैं।

—प्रकाशचन्द्र गुप्त

ऋजुपाठ—प्रकाशक—हिन्दी-भवन, लाहौर। पृष्ठ संख्या १५८। मूल्य ॥।)

यह संस्कृत की पुस्तक है। जिसमें स्वर्गीय श्री पं० ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर ने "पञ्चतन्त्र" की बालकोपयोगी कथाओं का सुन्दर एवं उपयोगी संग्रह किया है। यह कलकत्ते में २४ बार छप चुका है। ऐसे ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद अत्यन्त आवश्यक था। श्री पं० भगवद्दत्तजी ने जो कि डी० ए० वी० कालेज लाहौर के रिसर्च विभाग के अध्यक्ष थे तथा सम्प्रति महिला विद्यापीठ लाहौर में कार्य कर रहे हैं, हिन्दी संसार की इस महती आवश्यकता की पूर्ति की है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक बालकों के लिए अत्यन्त उपयोगी हो गयी है। अनुवाद अत्यन्त सरल एवं सुबोध हिन्दी भाषा में लिखा गया है। छपाई में यत्र-तत्र कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं।

कादम्बरी कथासार—सम्पादक बा० गुलाबराय, प्रकाशक गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा। पृष्ठ ६१, मूल्य ।॥=)।

कादम्बरी का नाम हिन्दी तथा संस्कृत के साहित्य सेवियों को खूब परिचित है। इससे अनूठा उपन्यास संस्कृत-साहित्य में मिलना कठिन है, संस्कृत में मूल कादम्बरी के पढ़ने में जो आनन्द आता है वह मूल पाठक ही जान सकते हैं। कथासार की भाषा मूल कादम्बरी जैसी नहीं, यह हो भी कैसे सकता था। लेखक चाहते तो इसे और भी सुन्दर बना सकते थे; पर यह त्रुटि अक्षम्य रही कि कादम्बरी के नायक तक का नाम अशुद्ध छाप दिया, जिस जगह देखो वहीं 'चन्द्रपीड' छपा है 'चन्द्रापीड' नहीं। तालाब का भी नाम गलत छपा है। इन सब बातों के होते हुए भी जो लोग ध्यान से पढ़ेंगे उन्हें कादम्बरी के 'कथावस्तु' का परिचय अनायास ही मिल सकता है।

—हरिदत्त शास्त्री

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामयिक-प्रसंग

शुक्ल-अंक का स्वागत—हमें हर्ष है कि हमारे कृपालु पाठकों ने जो हमारे पास सम्मतियाँ भेजी हैं उनसे ज्ञात होता है कि वे लोग हमारे कार्य से संतुष्ट हैं। 'क्लेशः फलेन पुनर्नवतां विधत्ते' उनके प्रोत्साहन से हमारे कार्य में और भी स्फूर्ति आयगी। आचार्य शुक्लजी की चर्चा हम इस विशेषांक से ही समाप्त नहीं कर देना चाहते हैं। उनके साहित्यिक कार्य के दो-एक पहलू अब भी बचे हुए हैं। अभी तक हम उनके रस सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश नहीं डाल सके हैं। यदि कोई सज्जन इस विषय पर लिखना चाहें तो हम स्वागत करेंगे।

हमारे पास दो एक सम्मतियाँ ऐसी भी आयी है जिनका अभिप्राय यह है कि हमने शुक्लजी की तारीफ ही तारीफ की है, इस अंक में एकाङ्गिता है। पहले तो हम दोष-दर्शन की अपेक्षा लेखक के कार्य को अधिक महत्ता देते हैं। हम किसी के कार्य को समझकर ही उसका मूल्याङ्कन कर सकते हैं। दूसरी बात यह है कि हमने शुक्लजी से मत-विरोध रखने वाले लेखों को भी स्थान दिया है। हम दिवङ्गत आत्मा के सम्बन्ध में कोई बुरी बात न कहने की बात केवल व्यक्ति तक ही रखना चाहते हैं, उसकी कृति तक नहीं। स्वस्थ मतभेद का हमने हमेशा स्वागत किया है श्री जैनेन्द्रजी, श्री सत्येन्द्रजी और इस अङ्क में श्री गुप्तजी तथा रहस्यवाद वाले लेख में शुक्लजी की न्यूनताओं की ओर संकेत किया गया है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—(१) शुक्लजी ने तुलसी पर उन विचारों का आरोप किया है जो उनके कदापि नहीं थे, जैनेन्द्रजी लिखते हैं—शुक्लजी ने अपनी उदारता और प्रगाढ़ विद्या में से इतना कुछ श्रेय तुलसी को दिया है कि तुलसी होते तो लाज में गढ़ जाते और कहते कि मुझे छोड़कर हे मेरे भाई राम नाम का स्मरण करो। (२) शुक्लजी ने तुलसी की वकालत की है समीक्षा नहीं। (३) शुक्लजी ने सूर और तुलसी के सम्बन्ध में विवेचना करते हुए अतर्क को तर्क की प्रतिष्ठा दी है (४) इस अङ्क में गुप्तजी लिखते हैं कि शुक्लजी समालोचना में रिपवेनविंकिल हैं। ऐसी और भी बातें कही गयी हैं। हम लोग शुक्लजी की बकालत नहीं करना चाहते हैं किन्तु तथ्य-निरूपण चाहते हैं। इस दृष्टि से इन प्रश्नों पर जो लिखा जायगा उसका हम स्वागत करेंगे। हमारा यह अभिप्राय नहीं कि ये आपत्तियाँ निर्मूल हैं लेकिन हम यह अवश्य जानना चाहेंगे कि ये किस हद तक साधार है। दो एक प्रश्नों के सम्बन्ध में हम संकेत रूप से कह देना चाहते हैं। तुलसी पर शुक्लजी ने अपने विचारों का आरोप नहीं किया वरन् तुलसी के अध्ययन से जो उनके ऊपर प्रभाव पड़ा है उसका स्पष्टीकरण किया है। तुलसी कोरे भक्त नहीं थे। उनकी भक्ति नीति और मर्यादा समन्वित थी। वे स्वयं लोक-हित के पक्षपाती हैं। वे कविता को न तो स्वान्तःसुखाय ही मानते थे और न केवल कला के लिए। वे हितवादी थे। इस बात को नीचे की चौपाई स्पष्ट कर देगी:—

कीरति भणित भूति भलि सोई
सुरसरि सम सब कर हित होई

वकालत के सम्बन्ध में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि वह वकालत तुलसी की आत्मा को प्रकाश में लाने के लिए है। शुक्लजी ने वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध में जो कहा है वह तुलसी के ही विचारों का स्पष्टीकरण है और यह एक आकस्मिकता है कि शुक्लजी के विचार तुलसी के विचारों से मेल खाते हैं।

शुक्लजी की आलोचना का दृष्टिकोण यद्यपि प्रगतिशीलता का नहीं था तथापि वे पिछड़े हुए नहीं कहे जा सकते। वे उस दृष्टिकोण से परिचित अवश्य थे किन्तु उससे सहमत नहीं थे। ईमानदारी के मतभेद के कारण कोई मनुष्य सोता हुआ नहीं समझा जा सकता। प्रगतिवाद का युग लाने में जितना शुक्लजी ने योग दिया उतना थोड़े ही लोगों ने दिया होगा। उनकी रहस्यवाद और छायावाद की आलोचनाओं ने जीवन से सम्पर्क की आवाज उठा कर प्रगतिवाद के लिए वातावरण तैयार किया, उन्होंने प्रगतिवादी कवियों की प्रशंसा की किन्तु यदि वे अपने को किसी राजनीतिक सिद्धान्त विशेष से सहमत न कर सके तो इसके लिए उनको दोषी न ठहराना चाहिए।

× × ×

परीक्षाङ्क और शुक्लाङ्क के कारण हम पुस्तकों की आलोचनाएं अभी तक नहीं दे सके थे। आलोचनाओं में कुछ देर हो जाने के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। अगले अंक तक हम समालोचनाओं का खाता साफ कर सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्दगी का बेड़ा सुख से पार कराने वाला मनुष्यमात्र के देखने योग्य ग्रन्थरत्न

स्वास्थ्य-रक्षा या तन्दुरुस्ती का बीमा

(तेरहवाँ संस्करण)

लेखक—बाबू हरिदास वैद्य

पृष्ठ-संख्या ४५८ । मूल्य अजिल्द का ३) डाकखर्च ।।।=)

इस ग्रन्थरत्न की अधिक तारीफ करना, सूर्य को दीपक लेकर दिखाना है। इसके पाँच-पाँच और छै छै हजारी १३ संस्करण हो जाना इसकी उत्तमता का काफी सबूत है। आज तक इसकी हजारों प्रतियाँ बिक गईं, पर हमने इसे मँगा कर नाखुश होने वाला एक भी आदमी नहीं देखा।

अगर आप जिन्दगी का बेड़ा सुख से पार करना चाहते हैं, सदा नीरोग और सुखी रहना चाहते हैं, कामशास्त्र और कोकशास्त्र की जरूरी-जरूरी बातें जानना चाहते हैं, शरीर को बलवान और वीर्यवान बना कर मनचाही सन्तान पैदा करना चाहते हैं, बीमार मित्र पड़ौसियों को हर एक रोग के आजमूदा नुस्खे बता कर सुखी करना चाहते हैं, तो आप 'स्वास्थ्य-रक्षा" को हरदम पास रखिए। यह पुस्तक आपको कुराह से हटा कर सुराह पर लगायेगी, भारी से भारी रोग होने पर यह आपको तीरे हदफ का काम करने वाला मुजर्रब नुसखा बता कर रोग से निजात दिलायेगी और जिन गलतियों से रोग होते हैं उन्हें आपको बताकर आपको रोग-राक्षसों के पंजों में फँसने से बचायेगी। इसलिए आप इसे जरूर खरीदें। यह बाबा से पोते तक काम आयेगी। इसके लिए खर्च किया हुआ रुपया, मौका पड़ने पर, एक मिनट में वसूल हो जावेगा। विश्वास न हो, तो नीचे की सम्मतियाँ देखने की तकलीफ कीजिये।

हंस—काशी

"यह पुस्तक स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाली एक श्रेष्ठ पुस्तक है। प्रातःकाल उठने से लेकर रात को सोने तक और जन्म लेने से जीवन के अन्त तक मनुष्य को जिस स्वास्थ्य-सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान की जरूरत रहती है, उसे इस पुस्तक में वैद्यजी ने गागर में सागर की तरह भर दिया है। सब से बड़ी बात तो वैद्यजी ने यह की है कि अपने ५० वर्षों के अनुभूत अनेक दवाओं के अचूक नुसखे-जिनसे आपने हजारों रुपये कमाये, बड़े शुद्ध हृदय से लोकोपकारार्थ इसमें दे दिये हैं ....हम प्रत्येक सद्गृहस्थ से प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी से आग्रह करेंगे कि इस सुप्रसिद्ध पुस्तक की प्रति, अगर उनके संग्रह में न हो, तो अवश्य ही खरीद लें।"

गंगा—भागलपुर

"इन दिनों हिन्दी-प्रेमी-संसार में जो बाबू हरिदास वैद्य का नाम, सन्ध्या की तरह, रटा जा रहा है उसका पहला कारण इस पुस्तक (स्वास्थ्य-रक्षा) का लेखन और प्रकाशन ही है।......वाकई यह पुस्तक "तन्दुरुस्ती का बीमा है" इसकी एक प्रति प्रत्येक घर में रहनी चाहिए।

सहेली—प्रयाग

इसमें उत्तमोत्तम नुसखों का संग्रह भरपूर है। नुसखे वस्तुतः रामबाण हैं। कोई भी ऐसा रोग नहीं है, जिस पर २-४ आजमूदा नुसखे न लिखे गये हों। पुस्तक मनुष्यमात्र के लिए परमोपयोगी है।

मिलने का पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, ३ गंगाभवन, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषतायें हैं—

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएं।
(२) अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।
(३) कहानी, गल्प, एकाँकी नाटक तथा उपान्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्वपूर्ण विवेचनायें।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है

'कहानी'

सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

कहानी के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इण्डियन पी० ई० एन—

'''इसमें जो कहानियां हैं, । वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।'''इस विशेषांक की कहानियां पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं'''यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है'''हिन्दी के प्रेमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'''विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। उनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है'''

श्री सुदर्शन—

'''इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम कीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है। मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'...छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अङ्ग-सर्वाङ्ग सुन्दर है।'''

श्री उषादेवी मित्रा—

'''कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है-अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना'''

श्री देवराज उपाध्याय—

'''कथा-साहित्य सम्बन्धी जितनी पत्रिकायें निकलती हैं, उसमें कहानी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है'''

श्री उदयशंकर भट्ट—

'''पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा'''इस अङ्क की संपूर्ण सफलता के लिये आपको बधाई।'

श्री रवीन्द्र—

Cheap Sentimental कहानियों से मुझे बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश होगई'''

श्री पहाड़ी—

'''कहानी के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी पत्रों की फ़ाइलों में शायद ही मिलेगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-निकेतन दारागंज, प्रयाग की

उच्चकोटि की तीन साहित्यिक पुस्तकें

१—अर्थशास्त्र की रूपरेखा— लेखक—पं० दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल०-एल० बी०
मूल्य ६) अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय।

पण्डित अमरनाथ झा, एम० ए०, एम० आर० एस० प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर की संक्षिप्त भूमिका में लिखते हैं—

"इसकी लेखन शैली चित्तग्राहिणी है, विषय में रुचि उत्पन्न करने की शक्ति इसमें है। सिद्धान्तों को हृदयङ्गम कराने की इसमें योग्यता है। सम्वाद का रूप देकर लेखक ने इसकी मनोरञ्जकता बढ़ा दी है। हिन्दी-साहित्य में इस पुस्तक का सम्मान होगा और विद्यार्थियों का इससे उपकार होगा। ऐसा मेरा विश्वास है।"

२—आरती के दीप— लेखक—श्रीमोहनलाल मेहता मूल्य १)

इसमें बिहार-रत्न राजेन्द्रप्रसाद, साहित्याचार्य पंडित रामवतार शर्मा, सन्त निहालसिंह, डा० के० पी० जायसवाल, डा० गंगानाथ झा, शरत बाबू, राहुल सांकृत्यायन तथा पोप दुरुस दि ७ (रोम) के संस्मरण बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखे गये हैं। कुछ लोगों का मत है कि लेखक इस विषय में अपना सानी नहीं रखता।

३—विचार धारा— लेखक—श्री मोहनलाल मेहता मूल्य १)

इसमें राजनीति और समाज-नीति पर लेखक ने अपने गम्भीर विचार प्रकट किये हैं। इसमें जन साधारण की भावनाओं और समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—व्यवस्थापिका साहित्य-निकेतन, दारागंज-प्रयाग।

घर बैठे डाक्टरी का पूरा ज्ञान करना हो तो!

नीचे लिखी पुस्तकें मँगाइये

डाक्टरी चिकित्सा—डाक्टरी रीति से रोगी का निदान, लक्षण, चिकित्सा—मू० ६)

एलोपैथिक मेटेरिका मेडिका— डाक्टरी औषधियों का पूरा वर्णन, बनाने की विधि, मात्रा, विरोधी दवाओं के नाम मू० ६)

कम्पाउन्डरी शिक्षा—मूल्य ॥)

इन्जैक्शन चिकित्सा, चरित्र [सुई द्वारा इलाज] मू० १॥)

डाक्टरी नुसखे—बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा परीक्षित १)

चिकित्सा के कर्तव्य—१॥)

प्रसिद्ध देशीय औषधियों के अँग्रेजी डाक्टरों द्वारा परीक्षित प्रयोग। कीमत १)

भारतीय बनस्पतियों पर विलायती डाक्टरों के अनुभव—कीमत २)

याद रखो—अगर आपको तन्दुरुस्त रहना है तो इसकी बातें याद रखो। कीमत ।)

कायाकल्प—घर बैठे कायाकल्प करने की विधि व औषधियें। कीमत ।)

जच्चा-बच्चा—सन्तान पैदा होने से लेकर बच्चे के पालन पोषण की विधि। कीमत ।)

सन्तति निग्रह—जो लोग सन्तान पैदा होना पसन्द नहीं करते, उसकी निर्दोष विधियाँ तथा बिना दवा के उपाय बताते हैं। कीमत ।)

पुस्तकों का पैकिंग माफ, डाकखर्च मनीआर्डर जुदा पड़ेगा।

मँगाने का पता—सुख संचारक कम्पनी लि०, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]

कमला

सम्पादक—श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर
सहायक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

मैनेजर, 'कमला', गायघाट, बनारस

नारी जागरण का महान् सन्देश सुनाने वाली हिन्दी की प्रमुख सर्वोत्तम मासिक पत्रिका 'कमला' के प्रकाशन से हिन्दी के पत्र पत्रिकाओं की दुनिया में एक अजीब तहलका मच गया है। हर एक उसकी गम्भीरता और उपयोगिता का कायल हो रहा है। यदि आपको विश्वास न हो तो एक प्रति मँगा कर देख लें। नमूने के लिए ।=) के टिकट भेजिए। वार्षिक मूल्य ४।।) रखा गया है। आज ही चंदा भेजिये या नमूना मँगाइए।

जन्म—निरोध

Birth Control

अर्थात् स्त्री के गर्भवती होने से बचने के उपाय और साधन

लेखक—ए० ए० खान

उपक्रमणिका लेखक—[Lient-Colonel A. N. Bose. M.B.E.M.D. [Lans] F.R.C.P. (Ed.) D. T. M. H. (Camb.) M. R. C. P. (Lond.) I. M. S.]
PRINCE OF WALES MEDICAL COLLEGE, PATNA.

(१) चित्र संख्या ११२ (२) पृष्ठ संख्या ६००, मूल्य ४) कमीशन काटकर ३), डाकखर्च।।
अधिक जानने के लिए भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस से पत्र व्यवहार कीजिए।

विवाहोपलक्ष्य में भेंट देने का महान् वस्तु। क्या ? वही
स्त्री जगत् में हलचल मचाने वाली पुस्तक

क्या आप किसी के पिता और पति हैं ?

यदि हाँ तो

भाभी के पत्र

पढ़िए और अपनी स्त्री तथा कन्याओं को पढ़ाइये,

भूमिका लेखक—कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' बनारसी, लेखक—श्री व्यथित हृदय

मूल्य सजिल्द १)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, ब्रांच, चौक, कचौडी गली, बनारस।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य जगत को दो उपहार

ओस के बूँद

[लेखक—कलाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी]

जो पाठक वाजपेयीजी की कहानियों तथा उनके उपन्यासों से परिचित हैं, उन्हें इस कविता संग्रह को पढ़ कर यह मान लेना पड़ेगा कि वाजपेयीजी कवि की हैसियत से भी कितने सफल और उच्च हैं। नये दृष्टिकोण से लिखी हुई उनकी सर्वाङ्ग सुन्दर कविताएँ इसमें दी गयी हैं मूल्य ।॥)

किरण बेला

[लेखक—कविवर "अञ्चल"]

'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' का यशस्वी कवि अपने इस कविता-संग्रह में सर्वथा प्रगतिशील होकर सामने आया है। आज का युग, अपनी जटिल समस्याओं के साथ, ऐसे ही कवि की वाणी की प्रतिष्ठा करता है। एक-एक कविता सामाजिक वैषम्य और विप्लव का चित्र सामने उपस्थित कर देती है। मू० १)

जर्मन युद्ध में युवती

उद्भ्रान्त किन्तु संयमित प्रेम; जलता उबलता देश प्रेम; अद्भुत साहस; आश्चर्यजनक कौशल; विचित्र घटनाक्रम; विकट युद्ध; विस्मय से डराने वाली कूटनीतपूर्ण चालें; संसार में उथल-पुथल मचा देने वाले सनसनीदार कार्यों का जीता जागता हृदय-हारी वर्णन इसमें एक साथ ही मिलेगा।

आकर्षक रुचित्र गेटअप, उत्तम कागज छपाई; पृष्ठ २७५, मूल्य केवल १॥)

पापी धर्मात्मा

राजनीतिक विवशता के तड़पते-बोलते चित्र, विशाल वैभव के दुर्दमनीय दृश्य, एवं पैशाचिक काण्ड; राजकुमारियों की भीषण प्रणय लीलाएँ; धर्म के विकृत सत्यानाशी स्वरूप तथा निरंकुश शासन के विकराल सच्चे नग्न चित्र इसमें पाठकों को मिलेंगे।

मनमोहक साज-शृङ्गार, बढ़िया कागज-छपाई, पृष्ठ २१६, मूल्य १।)

महामना मालवीयजी, माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन, यूनिवर्सिटियों के वाइसचांसलर, प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक आदि जिनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे हैं और जिन्हें हर एक हिन्दू को अपने पास रखना चाहिए, वे ही हैं :—

बाल्मीकि रामायण

सम्पूर्ण ७ काण्ड, ६६१ सर्ग सचित्र ५६० पृष्ठ मूल्य १॥=)

श्री मद्भागवत

सम्पूर्ण १२ स्कंध, ३३५ अध्याय, अनेक रङ्ग-बिरंगे चित्र, मूल्य १॥=)

महाभारत

सम्पूर्ण सवा लाख श्लोकों की कथा (अध्याय प्रति अध्याय पृष्ठ १००० मूल्य ५)

(रूपान्तरकार पं० भगवानदास अवस्थी एम० ए०)

ज्ञानलोक दारागंज, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य कल्पद्रुम प्रथम भाग का नवीन (चतुर्थ) संस्करण प्रकाशित हो गया

रस मञ्जरी

लेखक—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

यह संस्करण पहिले की अपेक्षा बहुत परिवर्तित और परिवर्द्धित है; छपाई और गेटअप बहुत सुन्दर है। जिस पर भी मूल्य पहिले से कम है।

यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि यह ग्रंथ रस और अलंकार विषय पर हिन्दी में सर्वोपरि प्रमाणित हुआ है। नाट्यशास्त्र, ध्वन्यालोक, काव्य प्रकाश, रस गंगाधर और साहित्य दर्पण आदि अनेक सुप्रसिद्ध ग्रंथों को मन्थन कर आलोचनात्मक शैली द्वारा महत्त्वपूर्ण और गहन विषय को बहुत ही सरलता से समझाया गया है। यह ग्रन्थ केवल हिन्दी के ही नहीं, किन्तु संस्कृत के साहित्यक विद्वानों और विद्यार्थियों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है और इसीसे बड़ी बड़ी यूनिवर्सिटियों में पाठ्य ग्रन्थों में निर्वाचित है।

मूल्य—प्रथम भाग रस-मञ्जरी २) सजिल्द २॥), द्वितीय भाग—अलंकार मंजरी १॥)

मिलने का पता:—

साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति वर्धा से सचालित—मासिक पत्रिका

राष्ट्रभाषा-प्रचार की अग्रदूती

"सबकी बोली"

सम्पादक—काका कालेलकर, श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हर महीने की १५ वीं तारीख को निकलती है

अिसमें आपको राष्ट्रभाषा-प्रचार आन्दोलन की बहुत अुपयोगी ताजी सामग्री, प्रचार आन्दोलन की दिशा के संकेत, विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों के काम की बातें, कहानी, सरल कवित शब्द-चर्चा, सरल शैली के निबन्ध, चरित्र-चित्रण, कभी-कभी परीक्षा-प्रश्नपत्रों के सरल अुत्तर महापुरुषोंकी जीवनियां अित्यादि पढ़नेको मिलेंगी। पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने में भी यह पत्रिका अपनी ओर से यथाशक्ति प्रयत्न करेगी। हिदुस्तान-भर के राष्ट्र-भाषा-प्रेमी अिसके दुवारा अपने विचार तथा अनुभव राष्ट्र के सामने रख सकेंगे हरएक राष्ट्रभाषा-भाषी प्रेमी वार्षिक चन्दा रु० १-४-० भेज कर "सब की बोली" के ग्राहक अवश्य बनें।

हृषीकेश शर्मा

व्यवस्थापक—'सब की बोली', वर्धा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालयों को समृद्ध बनाइये

श्रेष्ठ ग्रन्थ खरीदिए

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर का प्रत्येक ग्रन्थ संग्रह करने योग्य है। हम नीचे कुछ चुने हुए ग्रन्थों ही का परिचय देते हैं। एक कार्ड भेज कर पूरे ग्रन्थों का सूचीपत्र मँगा लीजिए।

अरबी का काव्य-दर्शन—

अरबी के नामी कवियों की वीर, शृङ्गार-नीति-विषयक एक से एक बढ़ कर सूक्तियों का संग्रह और अरबी कविता का आलोचनात्मक इतिहास। मूल्य १)

काला फूल—

फ्रांस के मशहूर लेखक ड्यूमा के लाल्युलिप नुवार का मूल फ्रेंच पर से किया गया अनुवाद। अतिशय सुन्दर, कलापूर्ण और दिलचस्प उपन्यास। मूल्य १॥)

नीति-विज्ञान—

आचार-शास्त्र पर वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा हुआ हिन्दी में एक ही अपूर्व ग्रन्थ। सदाचार की उत्पत्ति और उसका क्रम-विकास। धर्म के उसके मार्ग में अटकाये हुए रोड़े। मू० २।), राजसंस्करण ३)

ज्ञान और कर्म—

स्व० सर गुरुदास बनर्जी चीफ जस्टिस का लिखा हुआ अपूर्व ग्रन्थ। गहरे से गहरे दार्शनिक विचारों से लेकर साधारण से साधारण व्यवहार की भी बातों का विवेचन। मूल्य ३॥)

मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण

प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति का लिखा हुआ मध्यकालीन इतिहास पर आलोचनात्मक ग्रन्थ। एक महान साम्राज्य के उत्थान और पतन की कहानी। उपन्यास की तरह मनोरंजक। मू० ४॥)

कालिदास और भवभूति—

नाट्य-कला के मर्मज्ञ स्व० द्विजेन्द्रलाल राय की लिखी हुई संस्कृत के इन दो महाकवियों की रचनाओं की तुलनात्मक आलोचना मूल्य १॥)

सिद्धार्थ महाकाव्य—

कविवर अनूप शर्मा एम० ए०, एल० टी० का लिखा हुआ खड़ीबोली का अनुपम काव्य। ३)

भारत के प्राचीन राज-वंश—

पहला भाग अप्राप्य। दूसरे भाग में शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग, काण्व, आन्ध्र, शक, पह्लव, कुशान, गुप्त, शशांक, हूण, मौखरी, लिच्छवि आदि राजवंशों के क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास हैं। और तीसरे भाग में राष्ट्रकूटों की तमाम शाखाओं का अब तक का इतिहास है। मूल्य प्रत्येक भाग का ३)

अशोक वन और अनारकली—

तेलुगू भाषा के एक प्रसिद्ध लेखक के लिखे हुए दो एकांकी नाटक। बहुत कलापूर्ण और मनोरंजक। मूल्य ॥-)

छत्रसाल—

महाराजा छत्रसाल के इतिहास के आधार से लिखा हुआ सुन्दर, सरस और उत्कंठावर्धक उपन्यास। भाषा में गद्यकाव्य का आनन्द है। हिन्दी में इसकी जोड़ के ऐतिहासिक उपन्यास हैं ही नहीं। मूल्य १॥)

— नया प्रकाशन —

सुनीता—(जैनेन्द्रकुमार) ॥=)	हिन्दी साहित्य की भूमिका—(ह० प्र० द्वि०) २।)
कुलीनता—(सेठ गोविन्ददास) १)	शिवाजी—(सर जदुनाथ सरकार) १॥)
मानव—(श्रीमन्नारायण अग्रवाल) ।=)	दो फूल—(सत्यवती मलिक) १)

संचालक—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सस्ता साहित्य मण्डल

हिन्दी की एकमात्र प्रगतिशील, सार्वजनिक और लोकप्रिय प्रकाशन-संस्था है

उसके १४ वर्षों का कार्य ही उसकी निश्चित और ठोस प्रगति का तथा लोकप्रियता का जीवित प्रमाण है

- सन् १९४० के अन्त तक मण्डल ने एक सौ पैंतीस पुस्तकें प्रकाशित कीं।
- मण्डल से प्रकाशित इन पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या इकत्तीस हज़ार एक सौ होती है।
- मण्डल के पूरे सेट का दाम एक सौ रुपया होता है।
- इन १४ वर्षों में मण्डल ने अपनी प्रकाशित पुस्तकों की चार लाख चालीस हज़ार प्रतियां बेची हैं।
- इन १४ वर्षों में मण्डल ने वर्ष भर में कम से कम चार हज़ार और अधिक से अधिक साठ हज़ार प्रतिवर्ष की बिक्री की है।

यह सब क्यों और कैसे हुआ ?

इसलिए कि मण्डल ने अपने लाभ की अपेक्षा पाठकों के लाभ का सदैव ध्यान रखा है।
इसलिए कि मण्डल ने हमेशा पाठकों के मन को लुभाने वाला नहीं, बल्कि दृढ़ और शुद्ध बनाने वाला साहित्य दिया है।
इसलिए कि देश के परखे हुये नेता और सेवक मण्डल का संचालन करते हैं।
इसलिए कि राष्ट्र-पुरुषों और नेताओं ने मण्डल को अपने आशीर्वाद दिये हैं।

अतः आप

निःशंक होकर अपने लिये मण्डल से समय पर और रिआयती दाम में पुस्तकें पाने के लिए

'मण्डल' और जीवन-साहित्य (मासिक पत्र) के ग्राहक बनिए।

(सम्पादकः हरिभाऊ उपाध्याय)

"जीवन-साहित्य" जीवनदायी विचारों के अलावा मंडल के अन्य पुस्तकों के समाचार भी देता है।

इस पते से पत्र-व्यवहार करें-

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

—: शाखायें :—

दरीबा कलाँ	अमीनुद्दौला पार्क	खजूरी बाजार
दिल्ली	लखनऊ	इन्दोर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीमा कम्पनी ही क्यों ?

अधिक ब्याज दे सकने का कारण !

बीमा कम्पनी और बैंकों की रुपया देने लेने की नीति में बड़ा अन्तर है। बैंकें अपना रुपया कभी लम्बी मियाद के लिए देना पसन्द नहीं करतीं क्योंकि उन्हें कभी भी रुपए की जरूरत पड़ सकती है, और इसीलिए वे ज्यादा ब्याज भी पैदा नहीं कर पातीं। इसके विपरीत बीमा कम्पनियां सदा यह चाहती हैं कि अगर उनका रुपया सुरक्षित है तो वह ज्यादा से ज्यादा समय के लिए लगा रहे और इसीलिए रुपया सुरक्षित रखते हुए भी वे ब्याज अच्छी पैदा कर लेती हैं और इस दृष्टि से वे बैंकों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं और इसीलिए वे अपने ग्राहकों के लिए ज्याज ब्याज पैदा कर सकती हैं।

स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड

ने सारा खर्च काट कर और जोखिम के लिए रुपया अलग निकाल कर भी ६) प्रतिशत से अधिक ब्याज पैदा किया है और उसी से प्रभावित और उत्साहित होकर स्वदेशी ने अपने यहां रुपया जमा करने की नई योजना निकाली है कि जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति १००) से लेकर १०,०००) तक कम्पनी में डिपाजिट के रूप से निम्न ब्याज पर जमा कर सकता है :—

एक वर्ष को मुद्दत पर	...	३) प्रतिशत
दो वर्ष की मुद्दत पर	...	३॥) प्रतिशत
तीन वर्ष की मुद्दत पर	...	४) प्रतिशत

ब्याज हर छटे महीने मिलता है। विधवाओं, बच्चों और संस्थाओं को यह सूद हर महीने भी मिल सकता है।

सफलता का प्रमाण

रुपया जमा करने की यह योजना जनवरी सन १६४० से शुरू हुई है। इस थोड़े से समय में ही उसमें काफी सफलता मिली है और अधिकाधिक मिलती जा रही है। प्रमाण लीजिए—

१ जनवरी से ३० जून १६४० तक	६ मास में जमा हुए— ३६,४३४) रु०
१ जुलाई से ३१ दिसम्बर १६४० तक	६ मास में जमा हुए—१,००,८४८) रु०
१ जनवरी से ३१ जनवरी १६४१ तक	एक मास में जमा हुए— २६,६५१) रु०
१३ मास में कुल रुपया जमा हुआ	१,७०,२३३) रु०

कम्पनी की मजबूती का प्रमाण

उसने अपने बीमेदारों को अजीवन और मियादी बीमे पर १८) तथा १४) प्रतिवर्ष बोनस दिया है। और हिस्सेदारों को कई वर्ष से ६) प्रतिशत मुनाफा दे रही है।

विशेष ब्यौरा जानने के लिए लिखिए या मिलिए —

श्रीचन्द दौनेरिया मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर

स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

महेन्द्रजी के लिए साहित्य प्रेस, ४३ ए० सिविल लाइन्स आगरा से मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मास की नई पुस्तकें

आलोचना

१—हिन्दी के कवि और काव्य (भाग ३)
श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ३)
२—हिन्दी साहित्य का सरल अध्ययन—
श्री गोपालप्रसाद व्यास ।||)

कविता

१—अभिनव मेघ—अनु० श्री अनिरुद्ध एम० ए० ||)
२—दुर्गावती—श्री राजेश्वर गुरु ।≈)

नाटक

१—विकास—सेठ गोविन्ददास ||≈)

अनुवादित उपन्यास

१—सात इनकलाबी इतवार (तीन भाग)— २||)
२—गाड़ीवानों का कटरा (तीन भाग)— २||)
३—कार्ल और अन्ना ||)
४—कटीले तार (दो भाग)— ||)
५—स्नेह यज्ञ—(दो भाग) २)
६—कोकिला— २||)

राष्ट्रीय

१—शासन प्रणालियाँ—श्री रामचन्द्र वर्मा २||)
२—बिखरे विचार—श्री घनश्यामदास बिड़ला २||)
३—योरोपीय युद्ध और भारत—श्री गाँधीजी ।)
४—देशी राज्यों का दर्जा—श्री प्यारेलाल नागर ।)
५—एक सत्यवीर की कथा—श्री गाँधीजी -)
६—सोने की माया—श्री किशोरलाल ठा० मशरूवाला -)

स्फुट

१—सत्ययुग मीमाँसा—श्री चन्द्र =)
२—आदर्श स्त्रियाँ—श्री हनुमानप्रसाद गोयल ||-)

विषय-सूची

१—नन्ददुलारे वाजपेयीजी के भाषण की समीक्षा और स्पष्टीकरण—
(प्रभाकर माचवे और वाजपेयीजी स्वयं) ४६३
२—छायावाद और प्रगतिवाद—
(शिवनन्दनप्रसाद बी० ए०) ५०३
३—विद्यार्थीगण आलोचकों की आँखों से न देखकर अपनी आँखों से देखें—
(गुलाबराय) ५०६
४—उर्दू से सम्बन्धित तीन हिन्दी पुस्तकें—
(डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी० लिट) ५०६
५—ग्राम्या : पन्तजी की अभिनव कृति—
(प्रो० नगेन्द्र एम० ए०) ५११
६—साहित्य-परिचय— ५१८

हमारे पिछले विशेषांक

१—प्रसाद-अङ्क मूल्य ।||) पुस्तकाकार
२—द्विवेदी-अङ्क ,, ||)
३—उपन्यास-अङ्क ,, १)
४—परीक्षा-अङ्क ,, ।≈)
५—शुक्लाङ्क ,, १)

तीसरे वर्ष की सजिल्द फाइल मूल्य ३)

प्रथम द्वितीय वर्ष के स्फुट अङ्क मूल्य ।) प्रति अङ्क

हिन्दी साहित्य की सभी पुस्तकों के लिए साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा को लिखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक, रोमांचक एवं शिक्षाप्रद चार नये उपन्यास व कहानी-संग्रह

१—नरमेध

रचयिता—श्री सर्वदानन्द वर्मा

जिनके संस्मरण नामक उपन्यास ने उपन्यास-जगत में तहलका मचा कर सन् १९४० के उपन्यासों में अपने को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया था। उन्हीं का इस साल का यह सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। यह उपन्यास क्या है, भविष्य के आर्थिक आधारों पर स्थित समाज की रूपरेखा है। मूल्य १॥)

२—कुचक्र

रचयिता—नरसिंहराम शुक्ल

प्रस्तुत उपन्यास लेखक की ७वीं कृति है। इस उपन्यास में भारत की विख्यात नगरी बम्बई के कुछ प्रसिद्ध व्यापारी पश्चिमी भारत की कुछ रियासतों में व्यापारिक एकाधिपत्य कायम करने के लिए षड़यन्त्र रचते हैं। जालसाजों का एक भयंकर युद्ध तैयार हो जाता है जिसमें दो सुन्दरियों के आ पड़ने से एक अनूठी सरसता और रोमांश आ जाता है। यह उपन्यास वर्णन-शैली, घटनाओं की विचित्रता, तथा सरसता के कारण बेजोड़ है। मूल्य १॥) मात्र।

३—सच्ची रोमांचक कहानियाँ

लेखक—चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य

यों तो आपने सनसनी घटनाओं से पूर्ण तथा रोमांचक कई कहानियाँ पढ़ी होंगी, पर इस पुस्तक की सभी कहानियाँ सच्ची घटनाओं पर लिखी गई हैं जो काल्पनिक कहानियों से भी रोचक तथा रोमांचकारी हैं। आप इन्हें पढ़ कर आश्चर्य रोमांच और करुणा से ओत-प्रोत हो जायेंगे। मूल्य १) सिर्फ।

४—मातृ-मन्दिर

रचयिता—श्री जगदीश झा "विमल"

इस उपन्यास में अपने जन्मस्थान के प्रति मनुष्य के हृदय में कितनी ममता होती है, निराश्रय हो अन्यत्र पाले-पोसे के बाद तिरष्कृत होने पर अनाथ बालक कैसी ग्लानि का अनुभव करता है तथा सर पर सैकड़ों मुसीबतें उठा कर वह किस प्रकार अपने को समर्थ बना कर अपने जन्म-स्थान पर विशाल भवन बनाता है, इन सब बातों का सजीव और ओजस्वी वर्णन मिलेगा। इस उपन्यास को पढ़ कर आप अपने हृदय में पवित्रता, त्याग तथा आशा का संचार पायेंगे।

व्यवस्थापक—छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस परिवार

की योजना में मिलने वाली पुस्तकें
चंदे तथा विवरण के लिए नीचे देखिए

(१) भारतीय पुस्तक माला
कायाकल्प
[भाग १-२-३]
(ख) स्नेह यज्ञ [भाग १-२-३]

[२] 'हंस' पुस्तकें
(क) मा [भाग १-२-३]
(ख) गाड़ीवानों का कटरा
[भाग १-२-३]
(यामा का अनुवाद)

[३] गल्प संसार माला
१० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं से १२-१५ सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संग्रह

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
(क) नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि और पांच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रन्थावली
(क) शोभा ले: इन्द्र वसावड़ा
(ख) संजीवनी ले : 'सोपान'
(ग) प्रायश्चित [भाग १-२
ले : सोपान

[६] जागृत महिला साहित्य
(क) पिकनिक; लेखिका—
कमलादेवी चौधरी
(ख) पिया; लेखिका—
उषादेवी मित्रा
(ग) कौमुदी; लेखिका—
शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
(क) कंटीले तार [भाग १-२]
(ख) जाई-जुई
और ९ पुस्तकें

[८] हंस मासिक के १२ अङ्क
[९] 'कहानी' मासिक के
१२ अङ्क

'हंस-परिवार' के सदस्य बनिये

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मू० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिये यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों को मात्र २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की मँहगी के जमाने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी यह हमारे दयालु सहायक गण समझ ही सकते हैं। यह संस्था तो सेवा के लिए ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बनने वालों को हम 'हंस परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे।

इस मूल्य में घर बैठे बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी। जिनकी पृष्ठ संख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है, अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर रु० २।) में १००० पृष्ठ मिलते हैं। इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंगरेजी में भी नहीं है। यह योजना बेजोड़ है। निसन्देह।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा।

[१] १२०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद।
[२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद।
[३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम् कहानियों का अनुवाद, जिससे आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं।
[४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों तथा कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह १२०० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे।
[५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ६०० पृष्ठों में उपस्थित किया गया है।
[६] महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न। यह आपके परिवार में पत्नी तथा मा-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे।
[७] 'आज की किताब के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुलझाव रहेगा, अधिकांश तो ये छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे।

सरस्वती-प्रेस, बनारस, इन्दौर और लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त भारतीय पुस्तकालयों के लिये !

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा का

संग्रहालय

साहित्य-रत्न-भण्डार आगरा में हिन्दी-पुस्तकों का संग्रह इतना विशद, इतना उत्तम और इतना उपयोगी है कि भारत के सभी बड़े-बड़े पुस्तकालय यहीं से अपनी माँग पूरी करते हैं। नई-से-नई पुस्तकें जल्द-से-जल्द यहाँ आ जाती हैं और काफी स्टाक में रहती हैं। जिन लोगों ने एक बार भी यह संग्रहालय देखा है, वे इसकी व्यवस्था और पुस्तकों का संचय देख कर दंग रह गये हैं। हमारी अपील है कि आप जब कभी आगरा पधारें तो इस भण्डार का निरीक्षण अवश्य करें और जब भी हिन्दी पुस्तकों की आवश्यकता हो, इसको अपना आर्डर भेजें। सभी बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएँ और सभी श्रेष्ठ प्रकाशकों की पुस्तकें यहाँ हर समय तैयार मिलती हैं।

अब कोई बेकार न रहेगा

जिसके पास 'दौलत की खान' पुस्तक है वह एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक है। बेचारे गरीब आदमियों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे अपनी जीवकोपार्जन करके कोई रोजगार कर सकें। यदि थोड़ा पैसा भी है तो उन्हें आसानी से थोड़ी लागत का रोजगार शुरू करने का तरीका ज्ञात नहीं जिसके कारण वे सर्वथा बेकार हैं, हमारी इस पुस्तक को मंगा कर पढ़ें। आप मामूली लागत और मेहनत से अपने शहर और कस्बों व गांवों में इज्जत के साथ काम शुरू करके थोड़े ही दिनों में अमीर बन जायँगे। लोग ऐसी पुस्तक को पाकर छिपाने की कोशिश करते हैं क्योंकि मनुष्य थोड़े ही दनों में इस पुस्तक से एक बड़ी भारी सम्पत्ति का मालिक बन सकता है।

यदि आप [१] विलायत के बेकारों की भांति केवल कलम दवात के सहारे घर बैठे डाक द्वारा या पचासों आश्चर्यजनक किन्तु बेहद सरल एवं बिला पैसे की युक्तियों द्वारा अच्छी आमदनी करना चाहते हैं। [२] संसार की सुविख्यात कम्पनियों के पेटेन्ट और कई गुणे नफे में बिकने वाली प्रसिद्ध वस्तुओं के मामूली लागत के सच्चे नुस्खे बनाकर मालामाल होना चाहते हैं। विलायत की नई वस्तुओं के नमूने सर्वोत्तम व्यापारिक सलाह तथा संसार की प्रत्येक वस्तु का पता मुफ्त देने वाली फर्मों के पते जानने [३] २, ४, ६ आने से लेकर १०, २०, ५० रुपये की लागत के बेशुमार लाभ के बीसियों सरल रोजगार [४] प्रत्येक व्यापार एवं धन्धे में अच्छी सफलता पाने के गुप्त भेद [५] प्रत्येक बाजार एवं परिवार में धड़ाधड़ बिकने वाली पचासों आसान साधारण लागत और अत्याधिक नफे की वस्तुओं के बनाने तथा बेचने की विधियाँ जान कर अपनी बेकारी, बेरोजगारी, खर्च की तंगी और गुलामी की मार मिटाना चाहते हैं, तो आज ही इस पुस्तक को मंगाइये। मूल्य फी पुस्तक १।।) एक रुपया आठ आना, डाक खर्च ।।)

रूपविलास कम्पनी, नं० ४, कानपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सस्ता साहित्य मण्डल

हिन्दी की एकमात्र प्रगतिशील, सार्वजनिक और लोकप्रिय प्रकाशन-संस्था है

उसके १४ वर्षों का कार्य ही उसकी निश्चित और ठोस प्रगति का तथा लोकप्रियता का जीवित प्रमाण है

- सन् १९४० के अन्त तक मण्डल ने एक सौ पैंतीस पुस्तकें प्रकाशित कीं।
- मण्डल से प्रकाशित इन पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या इकत्तीस हज़ार एक सौ होती है।
- मण्डल के पूरे सेट का दाम एक सौ रुपया होता है।
- इन १४ वर्षों में मण्डल ने अपनी प्रकाशित पुस्तकों की चार लाख चालीस हज़ार प्रतियां बेची हैं।
- इन १४ वर्षों में मण्डल ने वर्ष भर में कम से कम चार हज़ार और अधिक से अधिक साठ हज़ार प्रतिवर्ष की बिक्री की है।

यह सब क्यों और कैसे हुआ ?

इसलिए कि मण्डल ने अपने लाभ की अपेक्षा पाठकों के लाभ का सदैव ध्यान रखा है।
इसलिए कि मण्डल ने हमेशा पाठकों के मन को लुभाने वाला नहीं, बल्कि दृढ़ और शुद्ध बनाने वाला साहित्य दिया है।
इसलिए कि देश के परखे हुये नेता और सेवक मण्डल का संचालन करते हैं।
इसलिए कि राष्ट्र-पुरुषों और नेताओं ने मण्डल को अपने आशीर्वाद दिये हैं।

अतः आप

निःशंक होकर अपने लिये मण्डल से समय पर और रिआयती दाम में पुस्तकें पाने के लिए

'मण्डल' और जीवन-साहित्य (मासिक पत्र) के ग्राहक बनिए।

(सम्पादक: हरिभाऊ उपाध्याय)

"जीवन-साहित्य" जीवनदायी विचारों के अलावा मंडल की अन्य पुस्तकों के समाचार भी देता है।

इस पते से पत्र-व्यवहार करें—

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

—: शाखायें :—

दरीबा कलाँ	अमीनुद्दौला पार्क	खजूरी बाजार
दिल्ली	लखनऊ	इन्दौर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य जगत को दो उपहार

ओस के बूद

[लेखक—कलाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी]

जो पाठक वाजपेयीजी की कहानियों तथा उनके उपन्यासों से परिचित हैं, उन्हें इस कविता संग्रह को पढ़ कर यह मान लेना पड़ेगा कि वाजपेयीजी कवि की हैसियत से भी कितने सफल और उच्च हैं। नये दृष्टिकोण से लिखी हुई उनकी सर्वाङ्ग सुन्दर कविताएँ इसमें दी गयी हैं मूल्य ।॥)

किरण बेला

[लेखक—कविवर "अञ्चल"]

'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' का यशस्वी कवि अपने इस कविता-संग्रह में सर्वथा प्रगतिशील होकर सामने आया है। आज का युग, अपनी जटिल समस्याओं के साथ, ऐसे ही कवि की वाणी की प्रतिष्ठा करता है। एक-एक कविता सामाजिक वैषम्य और विप्लव का चित्र सामने उपस्थित कर देती है। मू० १)

जर्मन युद्ध में युवती

उद्भ्रान्त किन्तु संयमित प्रेम; जलता उबलता देश प्रेम; अद्भुत साहस; आश्चर्य-जनक कौशल; विचित्र घटनाक्रम; विकट युद्ध; विस्मय से डराने वाली कूटनीतपूर्ण चालें; संसार में उथल-पुथल मचा देने वाले सनसनीदार कार्यों का जीता जागता हृदय-हारी वर्णन इसमें एक साथ ही मिलेगा।

आकर्षक सुचित्र गेटअप, उत्तम कागज छपाई; पृष्ठ २७५, मूल्य केवल १॥)

पापी धर्मात्मा

राजनीतिक विवशता के तड़पते-बोलते चित्र, विशाल वैभव के दुर्दमनीय दृश्य, एवं पैशाचिक काण्ड; राजकुमारियों की भीषण प्रणय लीलाएँ; धर्म के विकृत सत्यानाशी स्वरूप तथा निरंकुश शासन के विकराल सच्चे नग्न चित्र इसमें पाठकों को मिलेंगे।

मनमोहक साज-शृङ्गार, बढ़िया कागज-छपाई, पृष्ठ २१६, मूल्य १।)

महामना मालवीयजी, माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन, यूनिवर्सिटियों के वाइसचांसलर, प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक आदि जिनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे हैं और जिन्हें हर एक हिन्दू को अपने पास रखना चाहिए, वे ही हैं :—

बाल्मीकि रामायण

सम्पूर्ण ७ काण्ड, ६६१ सर्ग सचित्र ५६० पृष्ठ मूल्य १॥।≡)

श्रीमद्भागवत

सम्पूर्ण १२ स्कंध, ३३५ अध्याय, अनेक रङ्ग-बिरंगे चित्र, मूल्य १॥।≡)

महाभारत

सम्पूर्ण सवा लाख श्लोकों की कथा (अध्याय प्रति अध्याय पृष्ठ १००० मूल्य ५)

(रूपान्तरकार पं० भगवानदास अवस्थी एम० ए०)

ज्ञानलोक दारागंज, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषतायें हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएं।
(२) अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।
(३) कहानी, गल्प, एकाँकी नाटक तथा उपान्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्वपूर्ण विवेचनायें।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है

'कहानी'

सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

कहानी के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इण्डियन पी० ई० एन—

"'''इसमें जो कहानियां हैं, । वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।'''इस विशेषांक की कहानियां पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं'''यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है'''हिन्दी के प्रेमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'''विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। इनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है'''"

श्री सुदर्शन—

"'''इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम कीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है। मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'...छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अङ्ग-सर्वाङ्ग सुन्दर है।'''

श्री उषादेवी मित्रा—

'''कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है-अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना'''"

श्री देवराज उपाध्याय—

"'''कथा-साहित्य सम्बन्धी जितनी पत्रिकायें निकलती हैं, उसमें कहानी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है'''

श्री उदयशंकर भट्ट—

'''पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा'''इस अङ्ककी संपूर्ण सफलता के लिये आपको बधाई।'

श्री रवीन्द्र—

Cheap Sentimental कहानियों से मुझे बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश होगई'''"

श्री पहाड़ी—

'''कहानी के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-निकेतन दारागंज, प्रयाग की

उच्चकोटि की तीन साहित्यिक पुस्तकें

१—अर्थशास्त्र की रूपरेखा— लेखक—पं० दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल०-एल० बी० अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय। मूल्य ६)

पण्डित अमरनाथ झा, एम० ए०, एम० आर० एस० प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर की संक्षिप्त भूमिका में लिखते हैं—

"इसकी लेखन-शैली चित्तग्राहिणी है, विषय में रुचि उत्पन्न करने की शक्ति इसमें है। सिद्धान्तों को हृदयङ्गम कराने की इसमें योग्यता है। सम्वाद का रूप देकर लेखक ने इसकी मनोरञ्जकता बढ़ा दी है। हिन्दी-साहित्य में इस पुस्तक का सम्मान होगा और विद्यार्थियों का इससे उपकार होगा। ऐसा मेरा विश्वास है।"

२—आरती के दीप— लेखक—श्रीमोहनलाल मेहता मूल्य १)

इसमें विहार-रत्न राजेन्द्रप्रसाद, साहित्याचार्य पंडिय रामवतार शर्मा, सन्त निहालसिंह, डा० के० पी० जायसवाल, डा० गंगानाथ झा, शरत बाबू, राहुल सांकृत्यायन तथा पोप दुरुस दि ७ (रोम) के संस्मरण बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखे गये हैं। कुछ लोगों का मत है कि लेखक इस विषय में अपना सानी नहीं रखता।

३—विचार धारा— लेखक—श्री मोहनलाल मेहता मूल्य १)

इसमें राजनीति और समाज-नीति पर लेखक ने अपने गम्भीर विचार प्रकट किये हैं। इसमें जन साधारण की भावनाओं और समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—व्यवस्थापिका साहित्य-निकेतन, दारागंज-प्रयाग।

घर बैठे डाक्टरी का पूरा ज्ञान करना हो तो !

नीचे लिखी पुस्तकें मँगाइये

डाक्टरी चिकित्सा—डाक्टरी रीति से रोगी का निदान, लक्षण, चिकित्सा—मू० ६)

एलोपैथिक मेटेरिका मेडिका—डाक्टरी औषधियों का पूरा वर्णन, बनाने की विधि, मात्रा, विरोधी दवाओं के नाम मू० ६)

कम्पाउन्डरी शिक्षा—मूल्य ॥)

इन्जैक्शन चिकित्सा, चरित्र [सुई द्वारा इलाज] मू० १।)

डाक्टरी नुसखे—बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा परीक्षित १)

चिकित्सा के कर्तव्य—१॥)

प्रसिद्ध देशीय औषधियों के अँग्रेजी डाक्टरों द्वारा परीक्षित प्रयोग। कीमत १)

भारतीय बनस्पतियों पर विलायती डाक्टरों के अनुभव—कीमत २)

याद रखो—अगर आपको तन्दुरुस्त रहना है तो इसकी बातें याद रखो। कीमत ।)

कायाकल्प—घर बैठे कायाकल्प करने की विधि व औषधियें। कीमत ।)

जच्चा-बच्चा—सन्तान पैदा होने से लेकर बच्चे के पालन पोषण की विधि। कीमत ।)

सन्तति निग्रह—जो लोग सन्तान पैदा होना पसन्द नहीं करते, उसकी निर्दोष विधियाँ तथा बिना दवा के उपाय बताते हैं। कीमत ।)

पुस्तकों का पैकिंग माफ, डाकखर्च मनीआर्डर जुदा पड़ेगा।

मँगाने का पता—सुख संचारक कम्पनी लि०, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िन्दगी का बेड़ा सुख से पार कराने वाला मनुष्यमात्र के देखने योग्य ग्रन्थरत्न

स्वास्थ्य-रक्षा या तन्दुरुस्ती का बीमा

(तेरहवाँ संस्करण)

लेखक—बाबू हरिदास वैद्य

पृष्ठ-संख्या ४५८ । मूल्य अजिल्द का ३) डाकखर्च ।||=)

इस ग्रन्थरत्न की अधिक तारीफ करना, सूर्य को दीपक लेकर दिखाना है। इसके पाँच-पाँच और छै छै हजारी १३ संस्करण हो जाना इसकी उत्तमता का काफी सबूत है। आज तक इसकी हजारों प्रतियाँ बिक गईं, पर हमने इसे मँगा कर नाखुश होने वाला एक भी आदमी नहीं देखा।

अगर आप जिन्दगी का बेड़ा सुख से पार करना चाहते हैं, सदा नीरोग और सुखी रहना चाहते हैं, कामशास्त्र और कोकशास्त्र की जरूरी-जरूरी बातें जानना चाहते हैं, शरीर को बलवान् और वीर्यवान बना कर मनचाही सन्तान पैदा करना चाहते हैं, बीमार मित्र पड़ौसियों को हर एक रोग के आजमूदा नुस्खे बता कर सुखी करना चाहते हैं, तो आप 'स्वास्थ्य-रक्षा" को हरदम पास रखिए। यह पुस्तक आपको कुराह से हटा कर सुराह पर लगायेगी, भारी से भारी रोग होने पर यह आपको तीरे हदफ का काम करने वाला मुजर्रब नुसखा बता कर रोग से निजात दिलायेगी और जिन गलतियों से रोग होते हैं उन्हें आपको बताकर आपको रोग-राक्षसों के पंजों में फँसने से बचायेगी। इसलिए आप इसे जरूर खरीदें। यह बाबा से पोते तक काम आयेगी। इसके लिए खर्च किया हुआ रुपया, मौका पड़ने पर, एक मिनट में वसूल हो जावेगा। विश्वास न हो, तो नीचे की सम्मतियाँ देखने की तकलीफ कीजिये।

हंस—काशी

"यह पुस्तक स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाली एक श्रेष्ठ पुस्तक है। प्रातःकाल उठने से लेकर रात को सोने तक और जन्म लेने से जीवन के अन्त तक मनुष्य को जिस स्वास्थ्य-सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान की जरूरत रहती है, उसे इस पुस्तक में वैद्यजी ने गागर में सागर की तरह भर दिया है। सब से बड़ी बात तो वैद्यजी ने यह की है कि अपने ५० वर्षों के अनुभूत अनेक दवाओं के अचूक नुसखे-जिनसे आपने हजारों रुपये कमाये, बड़े शुद्ध हृदय से लोकोपकारार्थ इसमें दे दिये हैं ····हम प्रत्येक सद्‌गृहस्थ से प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी से आग्रह करेंगे कि इस सुप्रसिद्ध पुस्तक की प्रति, अगर उनके संग्रह में न हो, तो अवश्य ही खरीद लें।"

गंगा—भागलपुर

"इन दिनों हिन्दी-प्रेमी-संसार में जो बाबू हरिदास वैद्य का नाम, सन्ध्या की तरह, रटा जा रहा है उसका पहला कारण इस पुस्तक (स्वास्थ्य-रक्षा) का लेखन और प्रकाशन ही है।·····वाक़ई यह पुस्तक "तन्दुरुस्ती का बीमा है" इसकी एक प्रति प्रत्येक घर में रहनी चाहिए।

सहेली—प्रयाग

इसमें उत्तमोत्तम नुसखों का संग्रह भरपूर है। नुसखे वस्तुतः रामबाण हैं। कोई भी ऐसा रोग नहीं है, जिस पर २-४ आजमूदा नुसखे न लिखे गये हों। पुस्तक मनुष्यमात्र के लिए परमोपयोगी है।

मिलने का पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, ३ गंगाभवन, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश

भाग ४] आगरा—आषाढ़ १९९८ वि०; जुलाई १९४१ [अङ्क ११

श्री नन्ददुलारे वाजपेयीजी के भाषण की समीक्षा और स्पष्टीकरण

[श्री प्रभाकर माचवे और वाजपेयीजी स्वयम्]

[श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने गत पूना सम्मेलन की साहित्य परिषद के सभापति के आसन से जो भाषण दिया था उसका विशेष साहित्यिक महत्त्व है। उस पर श्री प्रभाकर माचवे के विचार तथा स्वयं वाजपेयीजी द्वारा उनका स्पष्टीकरण हम अपने पाठकों के विचारार्थ उपस्थित कर रहे हैं। इस विवाद में कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं, उदाहरण-स्वरूप यहां पर तीन प्रश्न दिये जाते हैं।(१) प्रगतिवाद में प्रगति का सच्चा अर्थ क्या है और क्या वाजपेयीजी प्रगति के पारिभाषिक और प्रचलित अर्थों में भेद करते हैं? (२) क्या कवि बनने के लिए जीवन के संघर्ष में पड़ना आवश्यक है? (३) क्या प्राचीन या नवीन साहित्य की महत्ता वर्ग-संघर्ष के माप-दण्ड से ही नापना चाहिए? हम चाहेंगे कि पाठकगण इन समस्याओं पर अथवा इनसे सम्बन्ध रखने वाली और मुख्य समस्याओं पर अपने विचार प्रकट करें।]

—सं०

[अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पूना में हुए २९ वें अधिवेशन की साहित्य-परिषद के सभापति पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का भाषण जब हो रहा था, दर्शकरूप से मैं भी वहां था। और साहित्य-सन्देश के सह-संपादक भी। जब मैं भाषण पढ़ते समय कुछ वाक्य अधोरेखित कर रहा था, सह सम्पादक गोपालप्रसाद व्यास महाशय की इच्छा देखी कि उस भाषण पर मैं अपनी विचार प्रतिक्रिया 'सन्देश' के लिए लिख भेजूँ। फिर मैं व्यस्त रहा, और आज फिर शान्तचित्त होकर मैंने पुनः वह भाषण पढ़ा और अपने मन में उठी हुई आशंकाएँ सात्विक और सैद्धान्तिक चर्चा की दृष्टि से आगे रख रहा हूँ। आशा है हिन्दी के प्रगति-प्रेमी आलोचक और साहित्यकार इस पर अपना मन्तव्य देने की कृपा करें।]

—लेखक

पहले ही कह दूँ कि भाषण बहुत विचार-प्रवर्तक, उद्बोधक और अपूर्व था। मेरा मन्शा प्रगतिशील साहित्यिक की स्थिति से मतभेद व्यक्त करने का है, न कि केवल आलोचना करने का। यहाँ परिच्छेदवार मतभेद रख रहा हूँ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) भाषण का पहला परिच्छेद नामकरण सम्बन्धी है। चूँकि इस भाषण में सर्वत्र विश्लेषण का मापदण्ड काल माना गया है। प्रगति को काल-भेद की परिभाषा में बूझा गया है। आज का प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन काल-परिमाण की भाषा में बात न कर सामाजिक इतिहास की संघर्ष-सरणि और वर्ग-भेद की भाषा में गति को नापता है। वहाँ माप-दण्ड केवल बरस, घंटे, मिनिट न होकर, प्रचलित और प्राचीन अर्थमूल्य, राजनैतिक मूल्य आदि वस्तुनिष्ठ परिस्थितियाँ हैं। अतः नाम पर यह आपत्ति कि पिता का नाम पुत्र रख ले, यही बताती है कि भाषणकार प्रगति का अर्थ पीढ़ियों से समझ रहे हैं, वर्गश्रेणी की सीढ़ियों से नहीं।

(२) 'प्रगति तो प्राकृतिक गति है'। और 'मेरे विचार से तो नहीं।' दूसरे परिच्छेद में दो भ्रमात्मक वाक्य हैं। प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन में जिस 'प्रगति' की ओर लक्ष्य है वह केवल प्राकृतिक गति या चलना या चलते रहना ही नहीं है। विशिष्ट आदर्श की प्राप्ति के हेतु राह के संकटों से टक्कर लेते हुए चलना ही उसका अर्थ है। वह युद्धयमान, विद्रोही और सप्राण, सोद्देश्य गति है—वह अंधेनियति या प्रकृति-परिचालित मात्र गति नहीं। वह 'प्र'—गति है।

एक बात यदि भाषणकार क्षमा करें तो मैं कहना चाहूँगा कि जब कोई व्यक्ति प्रगति की वस्तुनिष्ठ (objective) चर्चा करे, तब जहाँ तक हो 'मैं', 'मेरे', 'मेरा लक्ष्य', 'मेरा विश्वास' आदि शब्दावली का प्रयोग बचे तो अच्छा है क्योंकि वैज्ञानिक आलोचना आत्मनिष्ठता (sbjectivlty) से उठ कर होनी चाहिए। जब-जब कोई आलोचक इस 'मैं' का सहारा लेता है, ऐसा लगता है कि उसके पैर वस्तुनिष्ठ (objective) कारण-परम्परा की निर्मम तार्किकता की चट्टान में पर्याप्त गड़े नहीं हैं; अतः वह भावुकता के अस्थिर प्रवाह में कुछ रस लेता और बहता भी है। यानी वही मेरा पुराना आक्षेप कि वास्तववाद और कल्पनारञ्जन (रोमैंटिसिज्म) के सम्बन्ध में उसके मत स्पष्ट नहीं हैं; वह उन दोनों के बीच झूलता-सा है। या कि सरल शब्दों में कहें—भाव-पक्ष और बुद्धि-पक्ष के सामञ्जस्य (synthesis) का वहाँ अभाव है। हो सकता है कि वाजपेयीजी में वह सामञ्जस्य हो, पर वे उसे व्यक्त न कर पाये हों। वस्तुतः प्रगतिशील आलोचना की परिभाषा में इस अन्य पुरुष (third person) के प्रयोग की ओर ध्यान देना बहुत ही लाजिमी है। अन्यथा प्रथम पुरुष के घेरे में पड़ कर वैज्ञानिक आलोचना भी व्यक्तिवाद की शिकार बन जा सकती है। जो शपथ खा कर व्यक्तिवादी, सौ प्रतिशत व्यक्तिवादी है, उन्हें ही ऐसे प्रयोग क्षम्य हैं। अन्यथा नहीं।

(३) तीसरे परिच्छेद में कुछ भी विवादास्पद नहीं।

(४) 'जनसाधारण को अक्सर ढाल की ओर चलने में ही सुविधा जान पड़ती है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि हमारे आलोचक गण स्पष्टत: कहते रहते हैं न, कि—

(५) 'आप यह न समझें कि मैं साहित्य के लिए किसी रूढ़िवद्ध नीति अथवा आदर्शवाद की सिफारिश कर रहा हूँ।'

जो भी हो, आलोचक किसी भी नीति को आगे रखे, वह उसकी दृष्टि से 'आदर्श' तो होगी ही—क्योंकि नीति स्वयम् विचार क्षेत्र की वस्तु है; और विचार और आदर्श (Idea and Ideal) क्या भिन्न वस्तुएँ हैं? वाद से हम बचें; पर आदर्श से छुटकारा पाना, महान् यथार्थवादी को भी असंभव है, क्योंकि यथार्थ को वह जिस तरह यथार्थ 'समझ रहा है' वही तो मुख्य है, अन्यथा ज्ञाता से शून्य ज्ञेय, अज्ञेय है। और ज्ञान असम्भव है। अतः सभी सौन्दर्य शास्त्रियों ने अन्ततः ज्ञाता-ज्ञेय-सम्बन्ध या वस्तु-निष्ठ आत्मनिष्ठ दृष्टि बिन्दुओं का एकीकरण (subject-object-relationship) को आलोचना या सृजन की महत्ता का माप-दण्ड माना है।

(६) 'उठाना या बैठाना हमें किसी को नहीं है।' बड़ी अजीब बात है! जहाँ एक ओर सुनिश्चित रूप से प्रगति के तीन मूल सूत्र, चैतन्य, वास्तव और सात्विकता पर जोर है; निश्चय अ-गति, 'ज्यों-का-त्यों' वृत्ति, अवास्तव और काल्पनिक, और रजस्-तमस् का निषेध है ही। कौन-सा आग्रह निषेध से खाली है? कौन सी गति सम्भव है अगर हम उठायें भी नहीं और बैठायें भी नहीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती चीज को ज्यों-का-त्यों चलते रहने दें। यह क्या बात हुई ? आखिर कुछ-न-कुछ तो उद्देश्य आवश्यक है ही। अन्यथा गति शब्द का अर्थ ही खोखला हुआ जा रहा है।

(७) इस परिच्छेद के विषय में कोई मतभेद नहीं हो सकता।

(८) 'मैं आशा के गीतों का आग्रह नहीं करता और मैं निराशा के गीतों का भी आग्रह नहीं करता' आखिर आप आग्रह किसी-न-किसी चीज का तो करते हैं या नहीं ? यदि केवल स्थितिस्थापन मात्र (status quo) का आग्रह हो तो वह प्रगति से बिल्कुल असम्बद्ध है।

(९) '''बुद्धिमूलक के बदले विश्वासमूलक प्रगतियाँ भी हुई हैं। किन्तु प्रगतिशील चेतना के रूप में बुद्धि सदैव विकास के साथ रही है।' ये वाक्य मेरी अल्प मति में बिल्कुल समझ में न आये। वाजपेयीजी का आशय स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। क्या वे बुद्धिवाद को बुद्धि पर विश्वास से अतिरिक्ति कुछ मानते हैं ? क्या वे बुद्धि से विश्वास को इतना कटा हुआ और अलग मानते हैं ? क्या वे प्रगति और विकास में कोई विभिन्नता पाते हैं ? यदि पाते हैं तो वह कौन-सी विभिन्नता है ?

(१०) अति शृंगारोन्मुख प्रवृत्तियों का अंग्रेजी भाषान्तर morbid दिया गया है। क्या अति-शृंगारोन्मुखता में वह रुग्णता भी अभिप्रेत है, जो 'मॉर्बिडिटी' में है ? क्या कुमारसंभव या 'निराला' की जुही अति शृंगारमयी हो जाने से मॉर्बिड हैं ?

आप इस परिच्छेद में बताते हैं कि उत्कट वासना प्रगतिशील नहीं, वासनाशून्यता (उदासीनता) प्रगति नहीं, केवल कुतूहल प्रगति नहीं, केवल मनोरञ्जन प्रगति नहीं। तो आखिर प्रगति क्या है ? तो बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक संघर्ष प्रगति का महत्वपूर्ण सूत्र है। आपका यह विश्वास भी है कि साहित्य के इतिहास के आधार पर (क्या विद्यापति की उत्कट वासना या कबीर की निर्गुण उदासीनता उस काल के साहित्य के हिसाब से कम प्रगतिशील थी? या नजीरमियाँ या सॉक्रेटिस की कुतूहल द्वारा मूल प्रश्नों को ग्रहण करने की शैली कम प्रगतिशील थी?) यह कथन वैज्ञानिक सत्य है।

इस परिच्छेद में केवल एक अंश के साथ वैज्ञानिक रूप से सहमत हुआ जा सकता है कि केवल मनोरंजन (यानी सोद्देश्य न होना) प्रगतिशीलता का मूलतत्व नहीं हो सकता। अन्य बातें एक दम अवैज्ञानिक हैं क्योंकि मार्बिडिटी अवश्य प्रगति के लिए हानिकारक है—परन्तु उत्कटता चाहे वह किसी रूप में हो कभी भी अप्रगतिशील नहीं हो सकती। उलटे, प्रगति के लिए उत्कटता आवश्यक है—चाहे वह उत्कट शृङ्गार हो, या करुणा, या विस्मय।

(११) आगे आप कहते हैं कि बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक संघर्ष का नाम है आत्म-चेतना या जीवन-चेतना। परन्तु ध्यान रहे कि प्रगति के लिए अधिक आत्म-चेतना भी खतरनाक हो सकती है। अगर एक आदमी इसी ख्याल में डूबा रहे कि 'मैं' चल रहा हूँ और मैं 'जोर से' चल रहा हूँ, तो संभव है वह चलना भूल कर 'मैं' और 'जोर' के ही चक्कर में पड़ जाय। (Too much self consciousness is detrimental to progress)

हाँ, क्षय के लिए मृत्यु-पूजक साहित्य और क्षय की वरेण्यता के विरोध के साथ कोई भी वैज्ञानिक प्रगतिवादी सहमत होगा।

(१२) 'नवीन' ज्ञान क्या बला है, यह अभी तक मेरी समझ में नहीं आया। ज्ञान आखिर ज्ञान है। उसे क्या कालदेश की सीमाओं से बाँधिएगा ? कृपया वाजपेयीजी समझाएँ कि ज्ञान की प्राचीनता क्या चीज है और नवीनता क्या ? हाँ जानने की पद्धतियाँ बदल सकती हैं; वास्तव ज्ञेय (या अज्ञेय भी) का क्षेत्र वही अपरिवर्तित रहा है और रहेगा।

'जो कवि सामयिक जीवन की जितनी ही महान हलचलों के बीच से गुजरेगा, और साथ ही जितना ही अनुभव प्राप्त होगा, उसकी साहित्यिक भावनाएँ उतनी ही विशाल होंगी।' इसमें से प्रथम अंश से कोई वैज्ञानिक आलोचक सहमत नहीं होगा। कई कवियों के दृष्टान्त दिये जा सकते हैं जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्र रूप से भाग लेते रहे, जेलों में सड़े फिर भी कम कवि ही बने रहे। (देखिए ठाकुर शेरसिंह की 'लारेंज')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने रवीन्द्रनाथ न बन सके। उलटे रवीन्द्रनाथ इसीलिए रवीन्द्रनाथ हैं कि वे एक बार भी जेल के लिए जेल न गये—उलटे सतत सामयिक जीवन की महान हलचलों से तटस्थ और दूर रहे। 'राजार दुलार गेल आमार घरेर सम्मुख पथे' का पं० हजारीप्रसादजी ने दिया हुआ कवीन्द्र के मुख से सुना अर्थ इस कथन की पुष्टि करेगा। आशय, हलचलों में से गुजरना या न गुजरना, यह प्रगतिशील कला की कोई अनिवार्य शर्त्त नहीं हो सकती। अनुभव प्रधानता की राह में जो आ जाय वही कंचन है, ख्वाह वह हलचल हो या हलचल न हो।

रवीन्द्रनाथ ने तो शायद ही कहीं सामयिक समस्याओं का कोई हल कभी भी अपने सुन्दर साहित्यिक निरूपण में दिया हो। बंकिम बाबू ने भी थोड़ा सा ही हलका इशारा 'हल' की ओर दिया था। घरे-बाहिरे' में क्या समस्या का कोई 'हल' है, या 'चार अध्याय' में? रवि बाबू के हल, निबन्ध और भाषाओं में चाहे उन प्रश्नों का दार्शनिक समाधान मिले, उन्होंने साहित्य-सृजना कभी भी सामाजिक समस्याएँ अपने ऊपर ओढ़ लेने और उनके सस्ते छुटकारे बतलाने के लिए नहीं की।

(१३) यहाँ तो वाजपेयीजी ने कलम तोड़ दी है, और कमाल कर दिया है। प्रगति को समय-सापेक्ष्य बतला कर चींटी की गति को भी प्रगति और वायुयान का गति को भी प्रगति सिद्ध कर दिया है। दोनों सापेक्ष हैं। मुझे ग्रीक दार्शनिक जीनों की याद आ जाती है। वह कहता था कि सब से तेज दौड़ाक एचिलस से कछुआ ज्यादह प्रगतिशील है, क्योंकि क्षण के हिसाब से प्रगति कर ही कौन रहा है? सब उस क्षण में उस क्षण के लिए स्थिति-मय ही है। अतः प्रगति सिर्फ शब्द है। सापेक्ष क्षणों की तालिका है। बस!

प्रगति को वाजपेयीजी व्यवहार के तल पर से आते हैं और कहते हैं कि उसमें हमें आज की अवस्था की ओर देखना चाहिए। 'आज' से क्या मतलब। 'आज' भी रोज का नया छपता है। और कल का आज आज नहीं रहता। प्रगति क्या इसी आज कल के घेरे में परिसमाप्त है?

'साहित्य में झुकाव भी कोई अनिवार्य वस्तु नहीं। हम किस दिशा में क्रियाशील हो रहे हैं और किन प्रश्नों को कितनी सफाई के साथ और कितने प्रभावशाली रूप से सामने रख रहे हैं, इतना ही समझ लेना पर्याप्त है।' 'झुकाव' शब्द का अर्थ मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आया, अगर वह 'दिशा की ओर क्रियाशीलता' से भिन्न है। वाजपेयीजी का व्याख्यान ऐसे दसियों परस्पर विरोधी कथनों से भरा पड़ा है।

(१३) मैथिलीशरण या प्रेमचन्द को 'आज का नेता नहीं मानते इतना ही हमारे लिए बस होना चाहिए।' नवीन नेता खोजने की भी जरूरत नहीं। नकारात्मकता प्रगतिशीलता का प्रथम अनिवार्य कदम है। स्वीकार उसे कुछ नहीं है, क्योंकि प्रगति है न वह?

(१४) इन सब परिणामों में जहाँ तक प्राचीन परम्परा के अच्छे गुणों को और प्रयोगशील नवीन के अच्छे गुणों को निबाहने का प्रयत्न है, प्रगति सार्थक है। परन्तु यहाँ भी अन्तिम मुद्दा 'हासोन्मुखी और असंगत होते हुए जीवन के यथार्थ स्वरूप का कलात्मक उद्घाटन।' अजीब है! हासोन्मुखता का क्या कलात्मक उद्घाटन होगा? जब वे पहले ही कह चुके हैं पृष्ठ ३ परिच्छेद ११ में कि 'हम हासोन्मुख या जीवन-विघातिनी कला की कला कह कर प्रशंसा नहीं कर सकेंगे।

(१५) इस परिच्छेद में 'सुनीता' उपन्यास की समस्या बिल्कुल प्रत्यक्ष बताई गई है 'परदा रहित परिवार में परपुरुष के प्रवेश की समस्या।' वाजपेयीजी सुनीता को बहुत स्थूल पाठक की दृष्टि से देखते जान पड़ते हैं। मैं उनका ध्यान जैनेन्द्र के विचार में 'आलोचक के प्रति' नामक निबंध की ओर मैं आकृष्ट करूँगा जिसमें सुनीता की समस्या 'घरे-बाहिरे' की समस्या तर्कान्त (Logical Conclusion) बताई गई है।

साहित्य में हठधर्मी का पक्षपाती न रह कर वैविध्य का पुरस्कर्ता रहना एक बात है और जैनेन्द्र के एक उपन्यास की एक घटना से जैनेन्द्र की सम्पूर्ण मनोभूमि पर आक्रमण को साहित्यिक आलोचना का न्याय-दण्ड मानना दूसरी बात है। वाजपेयीजी के भाषण से यदि कल कोई सौ-फीसदी मार्क्सवादी या प्रगतिशील माना जाने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचक वाजपेयीजी की संपूर्ण मनोभूमि पर आक्रमण करें और कहे कि समाजवाद के आरामकुर्सी वाले रूप पर वाजपेयीजी रीझे हुए हैं; समाजवाद को जीवन में उन्होंने उतारा नहीं है, वह उनकी स्वप्न-परिपूर्ति (wish fulfillment) का एक साधन है, वे अपने भाषण में पूरी तरह वर्ग विरहित (Declassed) न हो सके हैं। वगैरह वगैरह मानस विश्लेषण बिल्कुल वैज्ञानिक कह कर करने लगे तो यह कहाँ तक न्याय संगत होगा, वाजपेयीजी कृपया बतलायें। और नरोत्तम नागर के शुतुर्मुर्ग-पुराण के साथ तो और भी एक बात हैं। वह तटस्थ वैज्ञानिक आलोचना बिलकुल नहीं है, उसके पीछे एक प्रकार के वैयक्तिक मात्सर्य की दुर्गन्ध आती है। इस पुस्तक का उल्लेख वाजपेयीजी ने करके अपनी साहित्यिक सुरुचि का परिचय नहीं दिया है, ऐसा कोई भी प्रगतिशील आलोचक कहेगा। नागरजी की पुस्तक मनोवैज्ञानिक भूलों से भरी पड़ी है, और वह अपरिपक्व विचारों का एक झमेला मात्र प्रस्तुत करती है। सुनीता पर मुझे कुछ नहीं कहना है—'चकल्लस' के भामी-अंक में नागरजी के आग्रह पर मैं उस पर एक लेख लिख चुका हूँ, जो पूरा छापने में उन्होंने अपनी सम्पादकीय प्रामाणिकता तक नहीं बताई, काँट-छाँटकर थोड़ा सा अंश छापा था।

(१६) यह परिच्छेद बिल्कुल ठीक है।

(१७) यह परिच्छेद भी बिल्कुल ठीक है। अच्छा होता अगर वाजपेयीजी सुनीता का नग्नता-प्रसंग उसी प्रसंग की दृष्टि से समझने का और प्रयत्न करते।

(१८) १७ वें परिच्छेद के बाद ही अगले परिच्छेद में उसका विरोध स्वयम् वाजपेयीजी ने किया है। एक ओर वे कहते हैं कलावस्तु की समीक्षा उसके प्रसंगोपात्त की जाय; दूसरी ओर वे त्यागपत्र की मृणाल बुआ शादी उस व्यक्ति के साथ करती ही नहीं तो क्या होता, वाली काल्पनिक धारणा लेकर चलते हैं। मुझे मजाक सूझा है; मराठी में एक कहावत है—'मौसी को मूछें होतीं तो क्या होता? उसे मौसा कहते।' मृणालबुआ की शादी उस व्यक्ति से न होती क्या होता? वाजपेयीजी इस विषय पर कृपया एक दूसरा उपन्यास लिखकर वह घटना बताएँ। जैनेन्द्रजी कहते हैं कि त्यागपत्र और कल्याणी की घटनाओं का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि वे सत्य कथाएँ हैं।। वहाँ हुआ होता 'अगर-मगर' वगैरह की गुञ्जाइश नहीं है। 'ऐसा हुआ है।' अब कहिए? क्या साहित्यकार उस बात को चुने ही नहीं। क्या उसके विषय 'दस आज्ञाओं' या नीति-वचनों से संबद्ध हीं हों? अस्पष्टता त्यागपत्र का दुर्गुण वगैरह बातों से सहमत एक क्षण के लिए हम हो भी लें; परन्तु कृपया जैनेन्द्रजी पर उसके उपन्यास में है ही नहीं उस बात को लेकर आरोप आलोचक न मढ़ें। कल्याणी पर जीवन साहित्य में एक लेख नागरजी ने लिखा है जो सचमुच एक 'अकल्याणी चित्रण' है, वह भी वाजपेयीजी की ही तरह shifting the ground (अर्थान्तरन्यास) नामक तार्किक गलती से भरा है। कल्याणी उस बच्चे को छोड़कर मरी तो क्यों मरी! लेखक ने उपन्यास वहां समाप्त किया तो क्यों किया? अजीब सवाल हैं। नागरजी की आलोचना का सर्वोत्तम उत्तर ये है कि कृपया 'कल्याणी का बचा' दूसरा उपन्यास लिखें, और जैनेन्द्र-ने-न लिखे हुए लेख पर आलोचना करने के बजाय, जैनेन्द्र ने लिखी हुई चीजों को ही दुबारा ध्यानपूर्वक पढ़ें।

गाँधीजी की 'टेकनीक' कहकर जो वाजपेयीजी ने एक महान लोकोत्तर चरित्र पर राह चलते छींटाकसी का श्रेय ग्रहण कर लिया है, वह भी साहित्य परिषद के अध्यक्षीय भाषण की दृष्टि से एकदम अनावश्यक है। गांधीजी के जेल सम्बन्धी आदेशों के ऊपर या अहिंसा की अत्यवहार्यता पर झट से कलम चला देने से पहले (वैसे वाजपेयीजी ने किया होगा ऐसा में विश्वास करता हूँ) वे गांधीजी के समस्त लेखन को एक बार नहीं दो बार पूरी तरह पढ़ जायें तो गाँधीजी पर कृपा होगी, ऐसा मेरा मत है। वैसे गाँधीजी वाजपेयी की सलाह को उपयुक्त मानेंगे या नहीं यह गाँधीजी ही जाने। वाजपेयी की सलाह देने के उपयुक्त न तो वह स्थान ही था न प्रसंग ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है।

(१९) 'सत्य के कलात्मक आभास से भरना' इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वाक्यांश को छोड़कर यह परिच्छेद बहुत सुन्दर है। सत्य को सुन्दर से भिन्न मानने वाला पंथ वाजपेयीजी का जान पड़ता है। प्रगतिशील आदर्शवादी शायद इसके साथ सहमत न होंगे।

(२०), (२१), (२२) सब परिच्छेदों में आलोच्य कुछ नहीं है, सिवा वाजपेयीजी के वैयक्तिक अभिमत के कि प्रेमचंदजी उपन्यासकार की अपेक्षा कथाकार अधिक सफल हैं। इस पर दो राएं हो सकतीं हैं और अधिकाँश जनता शायद उन्हें सफल औपन्यासिकरूप में ही जानती है।

(२३) उपादेय साहित्य की दृष्टि से यह विवेचना बिलकुल अविवाद्य है।

परिच्छेद सं० (२४) (२५) अक्षर-अक्षर से में बिल्कुल सहमत हूँ।

(२६) यह परिच्छेद पुनः भ्रम में डाल सकने वाला है। एक तरफ आप प्रचार को कला का लक्ष्य नहीं मानते दूसरी ओर कहतेहैं कि निश्चय ही समाजवादी विचारों के क्षेत्र हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य के सृजन के क्षेत्र हैं। पुनः मुझे कहने की इजाजत दीजिए कि ये अभिमत वैयक्तिक हैं, वाजपेयीजी के हैं। साहित्य की वैज्ञानिक आलोचना के निःस्व (objective) दृष्टिकोण से प्राप्त निष्कर्ष नहीं।

(२७) वाँ परिच्छेद मेरे उक्त कथन की परिपुष्टि करता है।

(२८) सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाओं में उपदेशात्मकता में तीन साल पूर्व की प्रतिक्रिया वाजपेयीजी ने शायद 'ग्राम्या' पढ़ने पर भी ढूंढी हो, यह पन्तजी के साथ सरासर अन्याय है। पन्तजी की कविता इसलिए प्रगतिशील नहीं कही जाती कि उसमें कम्यूनिष्ट छाप है; परन्तु इसलिए कि उसमें नवनवीन प्राणोन्मेष और जीवन के विस्तृत पक्षों का समाहार है।

(२९) वाजपेयीजी प्रगति के तीन सूत्रों को पृथगात्म मानते हैं, जो पुनः विवाद्य विषय है। नवीन मनोवैज्ञानिक अनुबोध की प्रक्रियां तक में कुछ भी पृथगात्म नहीं मानता। तब ये सूत्र तो केवल सुविधा के लिए किये हुए मनमाना वर्गीकरण (artificfal classification) है।

(३०), (३१), (३२) और (३३) में जो साहित्यिक आधुनिक इतिहास का विहङ्गम रेखाचित्र है उसमें भी कई विवाद्य कथन हैं जिन पर मेरे प्रश्न यों हैं:—

(१) भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' में कौनसी उन्मादयुक्त खुमारी है?

(२) भगवतीप्रसाद वाजपेयी की सब कथाएँ निराशामूलक हैं क्या?

(३) उग्र की हाल की कहानियों में तो आप किमाकार (कुरूप) लौ देखते हैं; और अति-शृङ्गारोन्मुख रचनाओं को अप्रगतिशील बताने वाले वाजपेयीजी नरोत्तमप्रसाद नागर के शुतुर्मुर्ग पुराण को कैसी दीप्ति या लौ या ज्योति, जो कह लीजिये, मानते हैं? मैं इस कथन में उग्रजी का अपमान महसूस करता हूँ। किसी भी आलोचक को यह अधिकार नहीं है कि वह जान-बूझ कर किसी लेखक का अपमान करे। वह तथ्य कथन कर सकता है—उसे निर्णय देने का पक्ष 'किमाकार' 'लौ' वगैरह कहने का क्या अधिकार है? मैंने सुना है कि उग्रजी वाजपेयीजी के भाषण पर बहुत खफा हैं, विशेषतः इस अंश पर। यह तथ्य कथनमात्र है। आरती वाले मेरे अपने लेख में यदि प्रमादवश स्वयंकथन से ऊपर कहीं निर्णय का दम्भ आ गया हो तो मैं उसके लिए बहुत-बहुत क्षमा प्रार्थी हूँ।

(४) 'पी० ई० एन०' गलती से लिखा गया है, वाजपेयीजी का अभिप्रायः 'पी० डब्ल्यू० ए०' से शायद है यानी प्रगतिशील लेखक-संघ से। सुमित्रानन्दन पन्त प्रगतिशील-लेखक-संघ से भिन्नरुचि व्यक्ति हैं, यह आप किस आधार पर कह सकते हैं?

(५) 'अज्ञेय' 'बचन' और 'अञ्चल' की नई भावधारा के उन्नायक किस प्रकार हुए में समझ नहीं पाया। 'अज्ञेय' शायद हिन्दी में तब से लिखते हैं जब 'अञ्चल' ने कविता की एक पंक्ति भी नहीं लिखी हो। और 'अञ्चल' और 'अज्ञेय' में या 'बचन' में भावधारा का तो बहुत ही साम्य है।

(३४) इस परिच्छेद में अध्यापकों और विशेषज्ञों पर 'तटस्थ समीक्षा' का जो भार छोड़ा गया हैं, उससे मैं असहमत हूँ। तटस्थ समीक्षक बनने के लिए यह क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है कि व्यक्ति (acadamician) (वाजपेयीजी के शब्द) ही हों। मेरा तो उलटा मत है कि (acadamician) कोरे विश्लेषक या विवेचक रह जाते हैं, उनमें संश्लिष्ट समीक्षा का माद्दा जरा भी नहीं होता। इन अध्यापकों के साथ अन्य भी लोग हो सकते हैं, यथा नन्ददुलारे वाजपेयीजी जो न तो अध्यापक हैं न कोरे स्पेशलिष्ट !

अन्तिम परिच्छेद (पैरेग्राफ) से मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

अन्त में वाजपेयी जी की इस विस्तृत आलोचना में, सम्भव है, मुझसे गलतियाँ रह गई हों। मैंने केवल अपने मानसिक प्रत्याघातों को व्यक्त रूप दिया है। यदि आलोचना कहीं उच्छृङ्खल या प्रमादी हो तो वे क्षमा करें। क्या मैं आशा करूँ कि वाजपेयीजी मेरी आलोचना पर कुछ कहने लिखने की कृपा करेंगे ? —प्रभाकर माचवे।

* * *

मेरा स्पष्टीकरण

१—प्रगति को मैं काल अथवा पीढ़ियों से नहीं नापता। प्रगति को मैंने नापा है १-रचयिता के मानसिक स्वास्थ्य से (मनोवैज्ञानिक माप) २-परिवर्तनशील समय के अनुरूप विकासोन्मुख शक्तियों की पहचान और समर्थन (ऐतिहासिक माप) और ३—रचना की कलात्मक प्रौढ़ता और पूर्णता से (कला का माप)। मेरे भाषण के ये ही तीन सूत्र हैं जिन्हें समझने में भ्रम न होना चाहिए। 'वर्ग-संघर्ष' शब्द अभी कल का गढ़ा है। निश्चय ही वर्ग संघर्ष आज की एक प्रगतिशील चेतना है किन्तु संपूर्ण अतीत और सम्पूर्ण भविष्य की प्रगति की यही नियामक थी या रहेगी यह में नहीं मानता। मेरी मान्यता है एक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर अब तब हमारे साहित्य की प्रधान धारा प्रगतिशील ही रही है। बल्कि बहुत से नये 'प्रगतिशील' उस धारा को सामूहिक संपर्क से दूर हटाकर और व्यक्तिगत कला-बाजी का केन्द्र बनाकर ह्रास की ओर ले जा रहे हैं।

२—'प्रगति' तो प्राकृतिक गति है, यह मेरा पूर्व पक्ष है। यह मेरा सिद्धान्त नहीं। सिद्धान्त मेरा क्या है यही भाषण में आगे आया है।

३—प्रथम पुरुष का यदि कुछ अधिक प्रयोग हुआ है तो मुख्यतः इस कारण कि वहां मैं एक भाषण कर्त्ता के रूप में उपस्थित था। अन्य पुरुष का प्रयोग मैंने इस लिये भी नहीं किया कि ये मेरे व्यक्ति गत विचार ही समझे जायँ। इन्हें 'प्रगतिशील संघ' जैसी किसी संस्था का 'वैज्ञनिक' आधार प्राप्त नहीं, क्योंकि मैं ऐसे किसी संघ का सदस्य नहीं हूँ।

४—'जन साधारण को अक्सर ढाल में चलने में सुविधा जान पड़ती है।' इस वाक्य को लेकर मुझ पर व्यंग करना व्यर्थ है। यह एक दुखद सत्य है किन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मैंने रूढ़िबद्ध नीति और नये तुले आदर्शवाद का विरोध किया है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि मैं साहित्य के स्वस्थ आदर्श का विरोधी हूँ। मेरे भाषण में भी यह बात स्पष्ट की जा चुकी है।

५—रूढ़िबद्ध आदर्श और बुद्धिमूलक वैज्ञानिक आदर्श में अन्तर है। मैंने पिछले का समर्थन किया है और पहले का विरोध। यदि इस सम्बन्ध में आपको कोई आपत्ति हो तो कहें। मेरी समझ में नहीं आया कि यह दार्शनिक चर्चा यहाँ क्यों छेड़ी गई।

६—'उठाना या बैठाना हमें किसी को नहीं है।' इससे मेरा मतलब यह है कि साहित्य के शृंगार, करुण आदिरस जो मानव की शाश्वत वृत्तियों पर आधारित है भविष्य में भी ज्यों के त्यों रहेंगे। अवश्य इन रसों की योजना समाज की विकासोन्मुख शक्तियों की सहायक बन कर रहेंगी किन्तु वे व्यक्तिगत और सामूहिक 'मानस' का प्रक्षालन करके स्वच्छतर बनाने के लिए रहेंगे। रीति कालीन कवियों अथवा कतिपय आधुनिक प्रगतिवादियों की तरह कोरी उत्तेजना अथवा मादकता या मूर्छा उत्पन्न करने के लिये नहीं। क्या माचवे जी यह कहना चाहते हैं कि रसों की संख्या में भी ख्वाहमख्वाह प्रगति करनी ही होगी ? क्या वे कुछ नये रसों की तजवीज कर सकते हैं ?

८—'मैं आशा के गीतों का आग्रह नहीं करता'। इसका यह आशय नहीं कि मैं स्थितिस्थापन (status quo) का आग्रह करता हूँ। इस प्रसंग में मैंने 'जीवन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतना' का आग्रह किया है। यह जीवन चेतना 'निराशा' के गीत भी गा सकती हैं किन्तु वह निराशा में लिप्त न होगी। निराश स्थिति के प्रति क्षोभ प्रकट करेगी।

९—बुद्धि-मूलक आन्दोलन ही प्रगतिशील नहीं हुए, विश्वासमूलक आन्दोलन भी प्रगतिशील हुए हैं। मेरा सीधा अर्थ यही है। इसका प्रमाण इतिहास है। सिख धार्मिक जागृति के मूल में विश्वास की प्रधानता है, बुद्धि की नहीं। प्रायः नवीन अन्दोलनों का आरम्भ बौद्धिक शक्ति द्वारा होता है। किन्तु उन आन्दोलनों की प्रतिष्ठा और व्यापकता विश्वासमूलक क्रियात्मक शक्तियों द्वारा हुआ करती है। आध्यात्मिक प्रगतियाँ बुद्धि की अपेक्षा विश्वास के बल पर अधिक हुई हैं। मैं यह नहीं कहता कि बुद्धि में विश्वास नहीं हैं अथवा विश्वास में बुद्धि नहीं है। एकाङ्गता तो खतरनाक हो जाती है। यहाँ मैंने बुद्धि या विश्वास की प्रमुखता को ही बुद्धिमूलक या विश्वासमूलक प्रगति कहा है।

१०—अति श्रृङ्गारोन्मुखता और अति उदासीनता तो मानसिक विकार है। ऊंचे अध्यात्मवादी कवियों ने इस उदासीनता का परिष्कार करके उसे दूसरे स्वरूप दिये हैं जो विकृत नहीं है कल्याणकारी हैं। निराला जी की 'जुही की कली' अति श्रृंगारोन्मुखता की श्रेणी में नहीं आती। सोक्रेटीज की शैली कौतूहल पूर्ण भले ही हो उसकी मूल भावना कौतूहल की नहीं है। विद्यापति की 'उत्कट वासना' जहाँ परिष्कृत स्वरूप नहीं पा सकी है और अश्लीलता के निकट पहुँची हैं वहाँ उसका समर्थन मैं नहीं कर सकता।

आप 'उत्कटता' को अप्रगतिशील नहीं मानते। यहाँ उत्कटता से यदि आपका आशय उत्कट विश्वास और विवेक से हो तो इस पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती पर लक्ष्यहीन और विवेकहीन 'उत्कटता' को भी यदि आप प्रगतिशील मानें तो मैं अपनी अल्पमति के अनुसार इससे सहमत न हो सकूँगा। यह विवेक हीन 'उत्कटता' ही आज अनियंत्रित मादकता और 'तामस' में परिणत हो रही है।

११—मैंने यह कहीं नहीं कहा कि बौद्धिक या मनोवैज्ञानिक संघर्ष का नाम है आत्मचेतना या जीवन-चेतना। मैंने मानसिक स्वस्थ्य और विवेक को आत्मचेतना कहा है। जीवन का मैंने सीधा अर्थ किया है जीना। यों खतरा ढूंढ़ा जाय तो किस चीज में नहीं निकलेगा। ? तब तो जीवन ही खतरा सिद्ध होगा। पर इस कारण कोई जीवन का निषेध करने लगे इसमें कौनसी प्रगतिशीलता है ?

१२—'नवीन ज्ञान' बला नहीं है। बलाओं को दूर करने वाला है। विकासवादी कभी अपने ज्ञान को पूर्ण नहीं मानता। प्रकृति के जो जो रहस्य क्रमशः मानवज्ञान की परिधि में आते जाते हैं 'नवीन ज्ञान' है। यह ज्ञान अपरिवर्त्य नहीं है, नित्य विकासोन्मुख है।

ठाकुर शेरसिंह यदि रवीन्द्रनाथ नहीं बन सके तो इसका कारण ठाकुर शेरसिंह का 'महान हलचलों के बीच से गुजरना और अनुभव प्रवण' होना नहीं है। बल्कि इन सुविधाओं के बावजूद भी कोरे शेरसिंह बने रहने में कुछ और ही कारण हैं जिन्हें आसानी से समझा जाता है।

रवीन्द्रनाथ यदि अपने जीवन में एक बार जेल हो आते तो मेरा अपना विश्वास यह अवश्य है कि वे आज की अधिक प्रगतिशील शक्ति होते।

हलचल में होने में और हलचल में न होने में आप कोई अन्तर नहीं मानते यह एक आश्चर्यजनक कलाम है। प्रगतिशीलता की दृष्टि से और भी। क्योंकि हलचल और प्रगतिशीलता तो बहुत कुछ अन्योन्याश्रित हैं। वे करीब करीब समानार्थी ही हैं। यहाँ हलचल से मेरा मतलब जीवनोन्मुखता से है।

१३—यहाँ मैंने ऐतिहासिक तथ्य के रूप में प्रगति को देखा है। चींटी और वायुयान की मिसाल यहाँ कोई मानी नहीं रखता। विकासोन्मुख शक्ति को ही मैं प्रगति मानता हूँ। वर्ग संघर्ष के फिक्रे से मेरा विशेष प्रयोजन नहीं है क्योंकि साहित्य की विवेचना में यह सहायक की अपेक्षा बाधक अधिक हो रहा है। इस फिक्रे की ओट लेकर हम अब तक के संपूर्ण साहित्य के प्रति पराङ्गमुख और अकृतज्ञ हो रहे हैं। और सांसकृतिक ह्रास के लिए रास्ता खोल रहे हैं।

सारी दिक्कत इस दृष्टि भेद के कारण ही उपस्थित हुई दीखती है। अन्यथा मेरा विवेचन किसी ओर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लिष्ट या असंबद्ध है, यह मैं प्रयत्न करके भी जान नहीं पाया। यों 'दसियों' क्या जितनी चाहें परस्पर विरोधी बातें आप जब और जहाँ कहीं ढूंढ़ निकालें।

१४—'ह्रासोन्मुखी और अस्तंगत होते हुए जीवन के यथार्थ स्वरूप का कलात्मक उद्घाटन' यह मैंने प्रगतिशील साहित्य का एक कार्य बतलाया है। इसे आप अजीब कहते हैं और पूछते हैं ह्रासोन्मुखता का क्या कलात्मक उद्घाटन होगा? मैं तो समझता हूँ पूंजीवाद की असमर्थनीय और अकल्याणी व्यवस्था का उद्घाटन या (Exposure) आज के अनेक प्रगतिशील साहित्यिकों का लक्ष्य हो रहा है। 'शा' का संपूर्ण नाटक-साहित्य पुरानी भ्रंशोन्मुखी पद्धति की खिल्ली उड़ाने में ही संलग्न है, इसमें अजीब क्या है? यह तो बहुत ही सजीव है।

ह्रासोन्मुखी या जीवन विघातिनी कला में और ह्रासोन्मुखी जीवन के ह्रासोन्मुख स्वरूप के उद्घाटन में जमीन-आसमान का अन्तर है। माचवेजी इस अन्तर को अवश्य समझने की चेष्टा करें।

जैनेन्द्रकुमार और नरोत्तमप्रसाद का दृष्टि-भेद एक विवादास्पद विषय है मैं इसके विपक्ष में यहाँ कुछ नहीं कहना चाहता। इतना अवश्य कहूँगा कि जैन विवाद प्रणाली को जितनी योग्यता के साथ जैनेन्द्रजी अपना सके हैं, पवित्र जैन आदर्शवाद को उतनी मात्रा में नहीं। एक तो इस जैन आदर्शवाद को समाज के व्यावहारिक जीवन में अवतरित करना स्वतः ही आग के साथ खेलना है। जैन संन्यासधर्म समाज व्यापी प्रयोजन रखता ही नहीं। उस उत्कट वैराग्य-साधना का प्रतीक उपन्यासों की नायिकाओं को बनाना मेरे विचार से समर्थनीय नहीं है। इससे जैनधर्म के सम्बन्ध में बहुत सी भ्रान्तियाँ फैल सकती हैं। उदाहरणार्थ यदि सुनीता अथवा मृणाल या कल्याणी के व्यवहार को जैन सन्यासिनी का व्यवहार मानें तो मालूम नहीं इसे जैन मतानुयायी आचार्य और साधु कहाँ तक उचित समझेंगे?

नरोत्तमप्रसाद का आक्षेप तो दमनमूलक साधना-मात्र पर है। जैनधर्म में ये साधनाएं अधिक कठोरता से बर्ती गयी हैं (या विज्ञापित हुई हैं)। इसलिए स्वभावतः वहाँ इसके अनीप्सित या विकृत पहलू भी अधिक मात्रा में उभर आये हैं। इसलिए नरोत्तमप्रसाद को अपने मत समर्थन में इसी क्षेत्र से सब से अधिक सामग्री मिली है। नरोत्तमप्रसाद का मुख्य साहित्यिक कार्य, जहाँ तक मैं समझा हूँ, निवृत्तिमूलक एकान्तवाद का विरोध करना और स्त्री-पुरुष के सामाजिक सम्बन्धों पर से अनीप्सित दमन की रोक उठा देना है। मैं जहाँ तक समझा हूँ आज के प्रगतिशील साहित्य की यह भी एक मुख्य चेष्टा है। साहित्य में यथार्थवाद की स्थापना के लिए यह आवश्यक समझा जाता है और इसका वैज्ञानिक आधार भी अप्राप्त नहीं है।

१८—गांधीजी के प्रति मेरी दीर्घकाल व्यापी श्रद्धा है। मैंने उनके अधिकांश लेख पढ़े हैं और उनके व्यक्तित्व के प्रति मेरा आदर बढ़ता ही गया है। लेकिन गांधीजी की अहिंसा 'मृणाल' में कहाँ है? वह निश्चेष्ट रहती है और पतन के मार्ग में गिरती जाती है। क्या अहिंसा का यही परिणाम होता है? सच्ची अहिंसा तो दूर, वह तो भद्र अवज्ञा या Passive प्रतिरोध का भी प्रयोग नहीं करती फिर पतिदेव की, अनिच्छापूर्वक भी, अज्ञानुवर्तिनी बनने में क्या सार्थकता है? सार्थकता तो तब होती जब मृणाल के चरित्र में आद्यन्त वह उत्तम अहिंसा उतरी होती। उस अहिंसा के अवतरण पर किसी प्रकार का कायिक पतन क्या कदापि संभव है? माचवेजी चाहें तो इस प्रश्न पर गांधीजी की राय ले सकते हैं। मुझे तो इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं।

माचवेजी गलतफहमी न फैलाएं। मेरी आपत्ति 'मृणाल' के अहिंसात्मक व्यवहार से नहीं है, बल्कि इस बात से है कि सच्ची अहिंसा उसमें है नहीं। जैसा मैं कह चुका हूँ—उसमें एक निष्क्रियता और drift भर है। अहिंसा एक सचेत साधना है निष्क्रियता उस साधना का अभाव है।

१९—'सत्य के कलात्मक आभास से भरना' यही तो कला का सर्वमान्य और अतर्क्य स्वरूप है, जब तक कला में सत्य की प्रतीति या अनुभूति न होगी। यह सच है ऐसा आभास न मिलेगा, तब तक कला कभी अपना अभीष्ट पद पा ही नहीं सकती। सत्य और सुन्दर का तो यहाँ कोई झगड़ा ही नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०, २१, २२—जनता की राय को विवेचन का आधार नहीं बनाया जा सकता। उपन्यासों के उपयुक्त कल्पना की एकसूत्रता (unity of conception) अन्तर्निहित विचार प्रवाह का ऐक्य और समन्वय प्रेमचन्दजी स्थापित नहीं कर सके। इसलिए उनके उपन्यासों में घटनाओं का जाल ही मुख्य रूप से बिछा दीखता है।

२६—समाजवादी विचारों के क्षेत्र हिन्दी में इस समय श्रेष्ठ साहित्य के सृजन के क्षेत्र हैं। इसका कारण मैंने वहीं बता दिया है—क्योंकि उन्हीं क्षेत्रों ने नवीन प्रतिभा को आकर्षित कर रक्खा है। इसमें प्रचार का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

२८—यही तो पन्तजी की नवीन कविता में नहीं है। काव्यात्मक प्रेरणा का ही अभाव है। मूल ही न होने पर शाखा और फल कहाँ? ग्राम्या में उपदेशात्मकता उतनी नहीं जितनी बिहारीलाल की-सी (Peurile) शृङ्गारिकता है।

२९—तीनों में व्यावहारिक भेद कर लेने में मैं कोई आपत्ति नहीं देखता। जरूर ही वे व्यवहार-सुविधा के लिए ही हैं।

३०, ३१, ३२—(१) श्री भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' की मैं पहले भी प्रशंसा कर चुका हूँ (देखिए 'अपराजिता' की भूमिका)। यह रचना अपवाद रूप है! वर्माजी से भविष्य में इस अपवाद को ही नियम बनाने की आशा की जाती है।

(२) श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की अधिकांश रचनाएँ समाज के उच्च और मध्यवर्गों की निराशामूलक प्रवृत्तियों पर आधारित हैं। यह बात दूसरी है कि इनके प्रति तेज व्यंग्य न करके इनकी सामान्य जीवनचर्या का प्रदर्शन मात्र उन्होंने कर दिया हो।

(३) उग्रजी के 'चन्द हसीनों के खतूत' की तुलना में मैं उनकी अब की कहानियों को क्रिमाकार मानता हूँ। उसमें जो जीवन है, जिन्दादिली है वह इनमें कहाँ? उग्रजी मुझ से नाराज होंगे, उनकी एक रचना को दूसरी से कुरूप बताने के कारण, इस पर माचवेजी ही विश्वास कर सकते हैं। उग्रजी को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। ईमानदारी के साथ मतभेद प्रकट करने पर वे नाराज हो सकते हैं, मेरी ऐसी धारणा उनके सम्बन्ध में नहीं है।

(४) श्री सुमित्रानन्दन पन्त प्रगतिशीलता से भिन्न-रुचि व्यक्ति हैं यह मैं उनके काव्य के वर्तमान प्रयोगों (!) को देख कर कह रहा हूँ।

(५) छायावाद से भिन्न काव्यप्रवाह, नये छन्द, नयी भाषा, नई विचारशैली की दृष्टि से मैं इन लोगों को नया उन्नायक मानता हूँ। मैंने कहा है कि पूरे अर्थ में ये प्रगतिशील नहीं हैं। पुरानी लीक से टूटना भी नयी प्रगति का सूचक है। सच्चे अर्थ में प्रगतिशील ये हो सकेंगे या नहीं, यह भविष्य की बात है।

(६) अध्यापकों और विशेषज्ञों के हाथ में आलोचना का भार मैं इसलिए देना चाहता हूँ कि वे खाली बैठे हुए हैं। वे कुछ तो कार्य साहित्य का करें। फिर मैं यह भी अनुभव कर रहा हूँ कि प्रगति के उन्नायक यदि प्रगति के समीक्षक भी बन जायँगे तो साहित्य की सम्यक् माप तैयार नहीं हो पायेगी।

× × × ×

अन्त में मैं कहूँगा कि प्राचीन साहित्य के प्रश्न के साथ उस तरह का खिलवाड़ मैं नहीं कर सकता जैसा कि कुछ प्रगतिवादी कर रहे हैं। भाषा, साहित्य और संस्कृति की उज्वल और अटूट धारा हम 'वर्गवाद' के मोहक शब्द जाल में पड़ कर नष्ट नहीं होने देंगे। इसमें सब से अधिक हानि हमारी अपनी होगी, सब से प्राचीन और समुन्नत साहित्य और संस्कृति वाली आर्य जाति की ही होगी, इसे हम बर्दाश्त नहीं कर सकते।

हम प्रगतिशील साहित्य के प्रेमी हैं, केवल कड़खे सुनाने वाले अथवा दुनिया भर की खुराफात को प्रगतिशीलता के नाम पर चलाने वाले आज के 'प्रगतिवादी' प्रचारकों और प्रबन्धकों के नहीं। मेरा विश्वास है माचवेजी मेरे इस विचार से असहमत न होंगे।

—नन्ददुलारे वाजपेयी

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावाद और प्रगतिवाद

[श्री शिवनन्दनप्रसाद बी० ए०]

कहा जाता है कि छायावाद द्विवेदीयुग की अतिशय इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में उद्भूत हुआ। द्विवेदीयुग ने भाव की अपेक्षा भाषा पर अधिक जोर दिया, भाषा को पाणिनि की ही भाँति व्याकरण की शृंखला में बाँध दिया। आत्मा की अपेक्षा शरीर को अधिक महत्व मिला और हृदय अपनी अभिव्यक्ति की अतृप्त प्यास लिए किसी तिमिरमय कोने में पड़ा रहा, अज्ञात और उपेक्षित। जब हम अपने वाह्य को ही अत्यधिक महत्त्व देने लगे तो हमारा अन्तर पुकार उठा, और हमें इस पुकार का उत्तर देना पड़ा। फलस्वरूप एक प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद आया। भाषा की सहज स्वाभाविकता ने, जो इतिवृत्ति के अनुकूल थी, वाक्वैचित्र्य चित्रमयता एवं अप्रस्तुत योजना के समक्ष सर झुका लिया। काव्य के नन्दन कानन में कल्पना की क्रीड़ा होने लगी। वह मर्मस्पर्शी स्वाभाविकता जो श्री मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं का उपादान है अब नहीं दिखायी पड़ने लगी। उसका स्थान लिया लाक्षणिक वैचित्र्य, अप्रस्तुत प्रतीकों की दूरारूढ़ भावना तथा धुँधले अतएव कष्ट-सिद्ध साम्य पर आधारित चित्रयोजना ने।

अब इस प्रकार की पंक्तियाँ....

"देखी मैंने आज जरा,
क्या ऐसी ही हो जायगी मेरी यशोधरा।"

जिनके भाव सूखी लकड़ी में अग्नि के समान सहज ही चित्त में व्याप्त होकर लोकोत्तर रसात्मक अनुभूति को जन्म देते हैं समय के विरुद्ध (out of date) समझी जाने लगी और कवि भावोन्मेष में कहने लगा—

ले चल मुझे सहारा देकर
मेरे नाविक धीरे धीरे,
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम कथा कहती हो
तेज कोलाहल की अपनी रे!

'प्रसाद' की इन पंक्तियों में रहस्य अपने अर्द्धोन्मीलत नेत्र खोलता-सा है और छायावाद अपनी धूमिल, स्वाप्निल छाया डाल रहा है! किसी परोक्ष सत्ता का अवलम्बन ले प्रणयोद्गार के शब्दों में हृदय की आकुलता की व्यञ्जना रहस्यवाद कहलाई। इसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में भावना की जाती है और आत्मा का प्रेयसी के रूप में। इस हेतु माधुर्य भाव भरित होने पर भी इसमें आध्यात्मिकता का रंग है। छायावाद का यह रूप सर्वांश में महादेवी वर्मा द्वारा ही अपनाया गया। "अन्य कवि प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा-शैली के अर्थ में ही छायावादी कहलाए।" (पं० रामचन्द्र शुक्ल)

अहा! चूम लूं जिन चरणों को
चाँप चाँप कर उन्हें नहीं,
दुख दो इतना, अरे,
अरुणिमा उषा सी वह उधर बही!
'प्रसाद'

जैसी पंक्तियों में विशुद्ध चित्रभाषा शैली या प्रतीक-पद्धति वाला छायावाद है। अंगुलियो को चाँप कर चलने से एड़ियों में लालिमा दौड़ जाती है, बस इसी बात को लेकर कवि ने उषा की अरुणिमा तक अपनी कल्पना दौड़ाई है। इसमें कल्पना का विकास है, पर वह सरसता और स्वाभाविक आकर्षण नहीं जो चरणों के वर्णन में गुप्तजी की इन पंक्तियों में है—

पा कर विशाल कच-भार एड़ियाँ धसतीं,
तब नख-ज्योति मिस मृदुल अँगुलियाँ हँसती।
पर चलने में फिर भार उन्हीं पर पड़ता,
तब अरुण एड़ियों से सुहास-सा झड़ता॥

सीता की मद-मनोहर गति का एक गतिशील चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत के अष्टम सर्ग के इन पंक्तियों में कवि ने खींचा है।

तात्पर्य यह कि यद्यपि छायावाद हृदयपक्ष की उपेक्षा दूर करने को आया था, यद्यपि वह भाषा की, काव्य के शरीर की, मनुष्य के वाह्य की प्रधानता के विरुद्ध एक शक्तिशाली विप्लव के ही रूप में आया था, फिर भी प्रतिक्रिया का प्रतिफलन होने के फलस्वरूप उसमें वह बात न थी जो द्विवदीयुग की कमी को पूरी करती। प्रतिक्रया का जोश तो उसमें था विप्लव का विध्वंसकारी रोमाञ्चवाद तो उसकी गतिविधि में दृष्टिगत हुआ, पर हृदय की मार्मिक अनुभूति एवं सरसता, जीवन की वास्तविक स्थितियों के प्रति सजीवता का उसमें अभाव ही बना रहा। उसमें न तो स्थैर्य न क्रियाशील निर्णयात्मक वेग ही। नपुन्सकता से उसकी उत्पत्ति हुई, विलासिता में वह पला और अस्पष्टता और शब्दाडम्बर का परिधान पहन कर संसार के सामने नित नये वेश में वह लाया जाने लगा। इससे समाज की प्यास न मिटी। एक ओर हमारे कवि मधु के प्याले में नाक डुबाये थे, आकाश के मेघखंडों में, वन वल्लरी में, सलिल-आपत्ति में स्त्री की मोहिनी मूर्त्ति की कल्पना में बदमस्त थे, दूसरी ओर क्षुधा-पीड़ित, शोषण-जर्जर देश हाहाकार कर रहा था। बच्चे दूध के लिए मचल कर रह जाते थे। दुःखिनी माँ के आँसुओं को देखने वाला भी कोई नहीं था। यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं टिक सकती थी। काव्य को यदि जीवित रहने की आकांक्षा है तो उसे जन-जीवन के समकक्ष खड़ा होना होगा। लोक भावना की उपेक्षा करके चलने वाला काव्य, जीविन की वास्तविकता से विच्छिन्न एक नयी स्वप्निल दुनियाँ बसाने की अभिलाषिणी कविता कभी चिर काल तक प्रतिष्ठा नहीं पा सकती। साहित्य और काव्य यदि युग के दर्पण हैं, यदि लोकजीवन की बाँसुरी हैं, तो उन्हें जनता की दशा का चित्र खींचना होगा, उनकी दुःखदर्द की कहानी कहनी होगी। छायावाद इसमें असमर्थ था। अतः उसकी भी प्रतिक्रिया अनिवार्य हुई। नारिकेल के समान छायावाद की कविता में जो गुप्त रस है उसके आस्वाद की अवस्था तक पहुँचने के पहले ही बुद्धि और हृदय दोनों कुण्ठित, विश्राँत हो जाते हैं। उसके कल्पना के वैभव से पग चाहे आश्चर्य में भले ही डूब जायं पर रस रिक्त हो कर गद्गद् नहीं हो पाता था।

छायावाद की इन कमजोरियों को छायावाद के नेताओं ने भी समझा और आज वे ही उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया के आन्दोलन में भी अगुआ नजर आते हैं। 'पन्त' ने 'पल्लव' में।

'अरे ये पल्लव बाल',

प्रभृति पंक्तियों द्वारा छायावाद के पनपने की आशा दिलाई थी। पर वही 'युगान्त' द्वारा यह कहते पाये गये—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !

युगान्त में छायावाद के युग के अन्त की सूचना है, प्रगतिवाद के युग के अरुणोदय का आह्वाद। 'युगवाणी' तो प्रगतिवाद का जय-निघोष ही है और 'ग्राम्या' में मानो कवि प्रगति की रुद्रता दूर करने के हेतु वाणी में संगीत भरने का प्रयास कर रहे हों।

'पल्लव' में जिसने नारी के सम्बन्ध में कहा था—

सूंद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब हृदय, इस आह्वान को !

अथवा—

बाल युवतियाँ तान कान तक
चल चितवन के बन्दनवार !
मदन, तुम्हारा स्वागत करतीं,
खोल सतत उत्सुक दृग-द्वार !!

वही 'युगवाणी' में पुकार उठता है—

मुक्त करो नारी को मानव, चिर वन्दिनि नारी को !
युग युग की निर्मम कारा से, जननि, सखी, प्यारी को !

'जननि, सखी, प्यारी' को—युग के प्रतिनिधि कवि ने 'युगवाणी' में ही नारी को अपनी समग्रता में देख पाया है। अब उसकी दृष्टि एकांगी नहीं, उसकी आत्मा केवल 'गुलाब की रूह सूंघने और शहद चाटने' की वृत्ति से सन्तुष्ट नहीं। अब उसकी कविता व्योमवासिनी कल्पना को आत्मसमर्पण नहीं कर पाती, वरन् मिट्टी के 'भू' का भी महत्व समझती है।

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु नीलिमा गहन ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो भू को,
जीव प्रसू को,
हरित भरित
मर्मरित गुंजरित···
कुसुमित भू को !···
जिस पर अंकित
सुर मुनि वंदित
मानव पद तल !

(युगवाणी : पन्त)

मानव जीवन ने, जीवन की वास्तविकता के, वास्तविक जगत के संघर्षों ने काव्य में प्रतिष्ठा पायी है। कवि अब वस्तु जगत से निराश स्वप्नदर्शी नहीं, वरन् आत्म-विश्वास से मुक्त। तरुणोचित तेज से क्रियाशील एक सहृदय व्यक्ति है जिस पर मानव के राग-विरागों का, दुःख-सुखों का गतिमय प्रभाव पड़ता है। बच्चों को भूख से तड़पते छोड़ वह प्याला से अपने श्रांत मानस को नहीं बदल सकेगा। वह कहेगा—

हटो व्योम के मेघ पन्थ से,
स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
'दूध' 'दूध' ओ वत्स ! तुम्हारा,
दूध खोजने हम जाते हैं !!

(हुँकार : दिनकर)

आज का कवि दुनिया की गतिविधि को समझता है। वह देखता है—

तलातल से उमड़ती आ रही है आग कोई। —दिनकर

और समय पड़ने पर वह सभी प्रकार के बलिदान के लिए तैयार है—

चाहती हो बुझना यदि आज
होम की शिखा बिना सामान,
अभय दो, कूद पड़ूं जय बोल,
पूर्ण कर लूं अपना बलिदान !!

—(हुँकार : दिनकर)

प्रगतिवाद स्वयं छायावाद की प्रतिक्रिया होने के कारण कुछ अनिवार्य विषमताओं से कुछ पंकिल-सा हो गया है। जिस प्रकार छायावाद के कवियों ने एक सीमित क्षेत्र के उपकरणों को ही—केवल मधु, स्वर्ण, उषा, स्वप्न, प्रसूति को ही कविता का प्रकृति विषय मान लिया था; जिस प्रकार उन्होंने एकमात्र प्रेम और विरह-व्यञ्जना ही को काव्य का उपादान समझ रखा था, ठीक उसी प्रकार प्रगतिवाद के क्षेत्र में भी एक विशेष प्रकार की वस्तुएँ कविता के लिए उपयुक्त विषय कही जाने लगी हैं। प्रगतिवाद का समाजवाद अथवा मार्क्सवाद के से गठबन्धन किया जाने लगा है। यदि हसिया-हथौड़ा, वर्ग-संघर्ष, कूड़ा-करकट, भैंसगाड़ी, ट्रैम-कार आदि को लेकर चलने वाली कविताओं को ही प्रगतिशीलता का सार्टीफिकेट (प्रमाणपत्र) दिया जाए तो यह महान् अनर्थ होगा। प्रगति किसी सिद्धान्तविशेष के अन्धानुवर्तन में नहीं, किसी राजनीतिक विचारधारा के अनुगमन में नहीं, वरन् सामाजिक जीवन के वास्तविक निरीक्षण, उसकी समस्याओं के सम्यक् विश्लेषण और गतिशील चित्रण में है। साहित्य को हम राजनीति का अनुचर नहीं बना सकते। और न हम उसी मनोवृत्ति के कायल हैं जो पाश्चात्य से आने वाले सभी वादों को आदर्श मान हिन्दी में भी उसी की दुहाई देते हैं। रूस अथवा यूरोप से हमारी परिस्थितियाँ भिन्न हैं। अतः हमारे समाजवाद की भी रूप-रेखा अपनी ही होगी। उसीके अनुसार अपने देश की वास्तविक समस्याओं के ही अनुसार हमारे सिद्धान्त बनेंगे। और साहित्य में हम जिसे प्रगतिवाद कहते हैं, वह मार्क्सवाद का हिन्दी संस्करणमात्र नहीं होगा, वरन् हमारे जीवन की प्यास मिटाने वाली काव्यधारा के रूप में होगा जिसमें राष्ट्र की उन्नतिशील शक्तियों का योग होगा।

प्रगतिवाद के अन्दर हम उन सारी काव्य प्रवृत्तियों को लेंगे जो राष्ट्रीयता के सूत्रों को एकत्र कर हमारे सामूहिक जीवन को उन्नतोन्मुख करने की आकांक्षा रखती हैं। इस दृष्टि से अपने समय में भारतेन्दु भी प्रगतिशील थे। गुप्तजी की 'भारत भारती' भी प्रगतिशीलता का तत्कालीन रूप थी और आज 'एक भारतीय आत्मा', नवीन, दिनकर, पन्त आदि प्रगतिवाद के स्तम्भ हैं। प्रगतिवाद आशा है, युग को वह वाणी देगा जिससे एक राष्ट्र की मानवता की आशा, आकांक्षाएँ मुखरित होंगी।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थीगण आलोचकों की आँखों से न देख कर अपनी आंखों से देखें

[श्री गुलाबराय एम० ए०]

गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने चार प्रकार के भक्त बतलाये हैं—ज्ञानी, जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त। हमारे हिन्दी के विद्यार्थी समुदाय में भी चारों मानसिक स्थिति के लोग मिलते हैं। कुछ लोग स्वाध्याय को अपना धर्म समझ कर ज्ञान लाभ करते हैं। उनका अध्ययन एक प्रकार की धार्मिक साधना के रूप में होता है। उनको हम ज्ञानी कह सकते हैं। दूसरे प्रकार के वे हैं जो किसी विशेष जिज्ञासा को लेकर चलते हैं, वे जो कुछ पढ़ते हैं किसी एक विशेष खोज या जिज्ञासा को सामने रख कर पढ़ते हैं, उनका पठन उनकी किसी विशेष ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिए होता है। ऐसे ही विद्यार्थी कुछ करके दिखाते हैं। इनको हम जिज्ञासु कहेंगे। तीसरे प्रकार के वे विद्यार्थी हैं जो हिन्दी को इस लिए पढ़ते हैं कि वे उसमें प्रथम श्रेणी ला सकेंगे या पी० सी० एस० में अच्छे नम्बर प्राप्त कर सकेंगे। इनको हम अर्थार्थी कहेंगे। परीक्षा पास करके ये लोग अपनी पाठ्य पुस्तकों की ओर वे उसी उपेक्षा के साथ देखते हैं जिसके साथ स्वस्थ होने पर रोगी दवाइयों की शीशियों को। चौथे प्रकार के वे विद्यार्थी है जो साल भर पुस्तकों की अलमारी का अलङ्कार बना कर परीक्षा निकट आने पर सत्यनारायण की कथा का-सा मुक्ति का सुलभ उपाय खोजते हैं और पाठ्य क्रम के वारिध को अगस्त्य ऋषि का वरदान पाकर 'हिन्ट्स' के चुल्लुओं में पान कर लेना चाहते हैं। इनको हम आर्त कहेंगे। इनका अध्ययन एक विभीषिका का सा होता है जो परीक्षा रूपी निशा के बीतने पर उसी प्रकार विलीन हो जाता है जिस प्रकार मुमुक्षु को ज्ञान प्राप्त कर लेने पर संसार का भान जाता रहता है।

श्रीकृष्ण भगवान ने चारों ही प्रकार के भक्तों को उदार कहा है किन्तु उनको ज्ञानी सब से प्रिय है। यद्यपि सभी प्रकार के विद्यार्थी हमारे उपकारक है तथापि हम अपने विद्यार्थी पाठकों को आर्त बनने की तो कभी सलाह न देंगे क्योंकि अभी समय बहुत है; वे कोरे अर्थार्थी भी न बनें। ज्ञानी और जिज्ञासु की मनोवृत्ति लेकर वे साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करें। उनके अध्ययन को सार्थक बनाने के लिए हम कुछ बातें मूलरुप से कहना चाहते हैं। इन सूत्रों की सहायता से वे स्वयं आलोचक बन सकते हैं। आलोचक लोग साधारण पाठकों पर बड़े-बड़े शब्दों द्वारा खूब रौब गांठा करते हैं। हमारे पाठकों को आलोचक चक्षु न होकर चरम चक्षु रखते हुए भी प्रज्ञा-चक्षु बनना चाहिए। अध्ययन और अभ्यास से इन चरमचक्षुओं को दिव्य शक्ति मिल सकती है।

मातृ भाषा के साहित्य का विधिवत अध्ययन उतना ही कठिन हैं जितना कि और किसी भाषा का। इसकी साधना दूसरे साहित्यों की साधना की अपेक्षा अधिक फलवती हो सकती है। लेकिन इसके लिए भी 'श्रोतव्यो मन्तव्यों निदिध्यासितव्यो' नियम लागू होता है। इसके भी अध्ययन मनन और अनुभव में चरितार्थ करने की आवश्यकता है।

अर्थबोध—यद्यपि किसी कवि की किसी भी कृति को अध्ययन के लिए उसके शब्दार्थ और भावार्थ जान लेने भर से कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती तथापि यह पहला सोपान भी उतना ही महत्व रखता है जियना कि तुलसीकृत रामयण में बालकाण्ड का आदि। इसके लिए कोष की शरण लेना अत्यन्त आवश्यक है। जहाँ जरा सा भी संदेह हो कोष में अर्थ देखना आवश्यक है। प्रतिभा-वान को अर्थ का स्फुरण एक साथ हो जाता है किन्तु यदि यह भी देख लिया जाय कि पाठ से अर्थ किस प्रकार निकलता है तो भाषा पर अधिकार होने में विलम्ब न होगा। जो अर्थ न लगे उसे अधिकारी लोगों से पूछने में लज्जा न करना चाहिए, उस विशेष शब्द या वाक्यांश को अङ्कित कर लेना चाहिए और यदि किसी दूसरे प्रसंग में वह शब्द आवे तो उस प्रसङ्ग के अनुकूल उस शब्द का अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा कर देखना चाहिए। दोनों प्रसङ्गों पर विचारने से शब्द के अर्थ लगाने में सहायता मिल सकती है। शब्द के अर्थ लगाने में उस भाषा या बोली विशेष के बोलने वालों से भी पूँछताँछ करना वांछनीय है। अर्थ न लगने का कारण पाठ भेद भी हुआ करता है। अर्थ लगाने के लिए भिन्न-भिन्न पाठों का मिलाना भी आवश्यक हो जाता है।

परिस्थिति बोध—किसी कवि से समझने के लिए उसके समय की धार्मिक राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों और उस समय की विचार धाराओं एवं प्रवृत्तियों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में इतना ही जान लेना आवश्यक नहीं कि उस काल विशेष में क्या प्रवृत्तियाँ थीं वरन् यह कि वह उनसे किस अंश में प्रभावित हुआ। परिस्थिति का पूरा ज्ञान तभी होता है जब कि हम व्यक्ति और वातावरण दोनों को पूरे तौर से समझ लें। कवि की कृति व्यक्ति और वातावरण के संघर्ष का फल होती है गुप्तजी के साकेत के राम गुप्तजी की निजी भक्ति-भावना तथा समय के बुद्धि-प्रधान प्रवृत्तियों के समन्वय के फल हैं। कवि का दृष्टिकोण मालूम कर लेने से भी उसकी कृति के अध्ययन में बहुत कुछ सहायता मिलती है और कभी-कभी उसकी वैयक्तिक कठिनाइयाँ आशाओं अभिलाषाओं और सफलता-असफलताओं की जानकारी उसकी कृति के समझने में आलोक का काम देती है।

लक्ष्य बोध—कवि या लेखक की परिस्थितियों के अध्ययन से उसके लक्ष्य का भी सहज में पता चल जाता है। हम कवि की वाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों से यह समझ लेते हैं कि कवि का वातावरण कहाँ तक उसके अनुकूल है और कहाँ तक वह प्रतिकूल है। प्रतिकूल होने पर कहां तक वह उस पर विजय पाने में समर्थ और कहां तक वह उनसे दबा हुआ मालूम पड़ता है। कवि का मस्तिष्क केवल प्रतिविम्ब ग्राहक पटल नहीं होता। वह विधायक और रचयिता भी होता है। वह अपने समय की गति-विधि का नियंत्रण भी करता है। इसलिए हमको समझ लेना आवश्देक है कि कवि का मूल उद्देश्य क्या है? वह क्या कहना चाहता है? कवि या लेखक का लक्ष्य जान कर हमको यह भी देखना चाहिए कि वह उस लक्ष्य को कहाँ तक पूरा कर सका है? उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कोई साधन बतलाये हैं या नहीं? वे साधन कहाँ तक उपयुक्त हैं? क्या कवि या लेखक ने कोई नया सामाजिक प्रयोग किया है? आपका उस लक्ष्य से मतैक्य है अथवा मत विरोध? दोनों के कारणों पर पूरी तौर से विचार कर लेना वांछनीय है।

सौन्दर्य बोध—सौन्दर्य बोध अधिकतर मनुष्य की रुचि और रसिकता पर निर्भर रहता है। इसीलिए कवि लोग अरसिकेषु कवित्त निवेदन शिरसिमा लिख मा लिख की बात कहते हैं। यद्यपि रसिकता और रुचि जन्मसिद्ध होती है तथापि अभ्यास और अध्ययन के नवीन संस्कार भी उसमें बहुत कुछ योग दे सकते हैं। रुचि को परिमार्जित करने के प्राचीन और नवीन कवियों का आस्वाद पूर्वक अध्ययन से बढ़कर कोई साधन नहीं है। सौन्दर्य-बोध के सम्बन्ध में हमको यह विचार करना चाहिए कि कवि की कौन-सी बात में विशेष सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य स्वाभाविक है या अलंकारों अथवा अन्य परम्पराभुक्त साधनों पर निर्भर है। वह बात हम पर किस कारण से प्रभाव डालती है। यद्यपि सौन्दर्य की कोई कसौटी नहीं है तथापि थोड़े से शब्दों में बहुत सा अर्थ-बोध कराना भी सौन्दर्य के लक्षणों में से है। शक्ति, संघठन, कोमलता, क्षणे-क्षणे नवीनता को प्राप्त होना, प्रसन्नता देना आदि जो शारीरिक सौन्दर्य के लिए अपेक्षित मानी जाती हैं वे काव्य सौन्दर्य पर भी घटित हो सकती हैं।

तुलनात्मक परीक्षा—कवि का समय और विषय जान कर उसी विषय के तत्कालीन तथा भिन्नकालीन कवियों का अध्ययन भी लाभदायक होता है। इससे उसके काव्य की उत्तमता अथवा अनुत्तमता और भी स्पष्ट हो जाती है। इससे हमको कवि की मौलिकता का भी पता चल जाता है। जहाँ कोई उक्तियाँ दुहराई गयी हों या भाव साम्य हो तो हम को देखना चाहिए कि उस मानवीय अभिव्यक्ति में कौन कहाँ तक सफल हुआ है। पं० पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी के सम्बन्ध में इस प्रकार का अच्छा अध्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन किया है यह तुलनात्मक अध्ययन भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से हो सकता है। तुलनात्मक अध्ययन से हमको यह भी पता लग सकता है कि कवि ने कहां तक निजी अनुभव से लिखा है और कहाँ तक उसने परम्पराभुक्त बातों को लिखा है। परम्पराभुक्त बातों में भी मौलिकता लाई जा सकती है। कवि या लेखक क्या इस प्रकार की मौलिकता ला सका है या नहीं?

शास्त्रीय परीक्षा—यद्यपि आज कल शास्त्रीय-परीक्षा का बहुत मान नहीं तथापि उससे बहुत कुछ लाभ होता है। उससे काव्य के वर्गीकरण आदि में ही सहायता नहीं मिलती वरन् उसके कारण काव्य के समझने में भी सुगमता होती है। कवि परम्परा की बातें शास्त्रीय परीक्षा में व्यक्त हो जाती है शास्त्रीय परीक्षा करते हुए हमें काव्य का रस-विधान में स्थान निर्धारित कर लेना चाहिए। उसके साथ उसकी शैली, रीति, अलङ्कार गुण-दोषों पर भी विचार कर लेना वांछनीय किन्तु केवल वैधानिक दोषों के कारण किसी काव्य की निन्दा ठहराना उचित नहीं है। आज कल भाव-सौन्दर्य को ही अधिक प्रधानता दी जाती है।

शक्ति और संतुलन—प्रायः देखा जाता है कि संतुलन वादियों में शक्ति की कमी रहती है। जहाँ शक्ति पर ब्रेक लगती रहती है तहाँ उसका ह्रास हो जाता है। अच्छे कलाकार संतुलन रखते हुए भी अपनी शक्ति को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं। कवि के लिए भाव और बुद्धि, कल्पना और वास्तविकता का संतुलन आवश्यक है। यद्यपि कवि का जगत कल्पना और भाव से अधिक सम्बन्धित है तथापि बुद्धि और वास्तविकता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। हमको इस अध्ययन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कवि भाव और कल्पना को मुख्यता देता हुआ भी बुद्धि और वास्तविकता से इतना तो नहीं हट गया है कि उसकी कृति इस लोक के सम्बन्धों से परे हो जाती है।

भाषा और शैली परीक्षा—कवि की भाषा के सम्बन्ध में विचारशील पाठक को निम्नोल्लिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। उसकी भाषा का प्रवाह स्वाभाविक है अथवा उसमें प्रयत्न और प्रयास के लक्षण दिखाई पड़ते हैं? उसका शब्द चयन उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त? उसमें कोई परिवर्तन तो नहीं हो सकता? उन शब्दों में लाक्षणिकता और व्यञ्जकता किस मात्रा में है? कवि का अर्थ स्वयं प्रकाशित हो जाता है अथवा उसको मशाल लेकर खोजना पड़ता है? पाठक को भाषा की अच्छी परीक्षा के लिए यह भी देखना पड़ता है कि उसने किन्हीं चलन से बाहर या अत्यन्त पारभाषिक होने के कारण अत्यन्त दुर्बोध शब्दों का तो व्यवहार नहीं किया है। कवि ने यदि कोई नये प्रयोग किये हैं तो यह भी देखने की आवश्यकता है कि वे कहाँ तक सार्थक हुए हैं। उनसे भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति बढ़ती है या नहीं? प्रायः कवि या लेखक अपने शब्दों द्वारा हमारी कल्पना के लिए चित्र उपस्थित करता है। इन चित्रों के सम्बन्ध में हम को यह देखना चाहिए ये कितने थोड़े शब्दों द्वारा उपस्थित किये गये हैं और कितने सजीव हैं। शब्दों का लाघव (Economy) हमेशा गुण माना गया है। भाषा में क्रम-दोष भी उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। अनेकता में एकता केवल दार्शनिक के लिए ही महत्व नहीं रखती वरन् उसको हम शैली की भी जान कह सकते हैं। इसी कारण छन्दों का भी महत्त्व है। छन्द के सम्बन्ध में यही देख लेना चाहिए कि वे कवि के भावों के उपयुक्त वाहक हैं या नहीं? उनके कारण भावों का प्रवाह ऐसे रुकता तो नहीं जैसे कूड़े-कर्कट वाले बरहे में पानी। संक्षेप में हमें यही देखना है कि कवि या लेखक की शैली हमको वह प्रसन्नता देती है या नहीं जो कि किसी सुडौल मनुष्य के कटे-छटे बदन को फिट बैठने वाले कपड़ों से आच्छादित देखने में होती है।

ये बातें संकेत मात्र हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की कृतियों में इनका भिन्न-भिन्न प्रकार से उपयोग होगा, जैसे मुक्तक काव्य में व्यक्ति और भावुकता को कुछ अधिक प्रधानता देनी ही पड़ेगी। इन बातों को विधिवाक्य न माना जाय परिस्थिति के अनुकूल इनसे काम लिया जाय।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू से सम्बन्धित तीन हिन्दी पुस्तकें

[डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी० लिट]

१—उर्दू जबान का संक्षिप्त इतिहास—लेखक-रामनरेश त्रिपाठी। प्रकाशक-हिन्दी मन्दिर, प्रयाग। मू०॥)

२-हिन्दुस्तानी-प्रका०-मक्तबा जामिआ, देहली। मू०।॥)

३—उर्दू का रहस्य—लेखक-चन्द्रबली पाँडे, प्रकाशक-काशी नागरी प्रचारिणी सभा, मूल्य ॥।)

उर्दू से सम्बन्ध रखने वाली ये तीनों पुस्तकें अपने ढंग की अलग-अलग हैं।

त्रिपाठीजी की पुस्तक में उर्दू भाषा तथा उर्दू कविता की रूपरेखा का संक्षिप्त वर्णन है। उर्दू कविता की विशेषताओं का परिचय सुयोग्य लेखक ने अत्यन्त सहृदयता के साथ दिया है। लेखक की कविता कौमुदी के उर्दू भाग की भूमिका के अतिरिक्त मुझे इस विषय पर इस प्रकार के सुन्दर विवेचन का स्मरण नहीं। उर्दू भाषा से सम्बन्ध रखने वाले अंश में लेखक ने हिन्दुस्तानी के विषय में अपने चिरपरिचित विचार यदि न दिये होते तो अच्छा होता। स्थायी साहित्य में व्यक्तिगत विवादास्पद मतभेदों को बचा जाना अच्छा होता है। हिन्दी-उर्दू के आपस के सम्बन्ध के विषय में पुस्तक की प्रस्तावना के लेखक पं० अमरनाथ झा के निम्नलिखित विचार ग्रन्थ-लेखक के मत की काट करते हैं—"ऐतिहासिक और शब्द-वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्य चाहे कुछ भी हो, आज तो हिन्दी और उर्दू दो भिन्न भाषाएँ हैं ...."। "सच तो यह है कि उर्दू हिन्दुस्तान की भाषा होने ही नहीं पायी, न भाव में, न विषय में, न शब्द में। यह ईरान और अरब के साहित्य की एक शाखा-मात्र है। हम इसे पढ़ते हैं, हम इस का रसास्वादन करते हैं---अङ्गरेजी को भी हम रुचि से पढ़ते हैं। हम में से कुछ फ्रेंच और जर्मन भी पढ़ा करते हैं; परन्तु ये हमारी भाषाएँ तो नहीं हैं ?"

जो हो, त्रिपाठीजी की पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है और हिन्दी प्रेमियों को इससे लाभ उठाना चाहिए। पुस्तक का नाम "उर्दू और उसकी कविता" कदाचित अधिक सार्थक होता।

मक्तबा जामिआ देहली से प्रकाशित "हिंदुस्तानी" शीर्षक पुस्तक में आलइण्डिया रेडियो देहली से 'हिंदुस्तानी क्या है' इस विषय पर करायी गयी 'छः तकरीरों' का संग्रह है। ये छः सज्जन हैं डा० ताराचन्द, डा० मौलवी अब्दुलहक़, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, डा० जाकिर हुसैनखाँ, पं० ब्रजमोहन दत्तात्रेय कैफी और आसफअली साहब। छः सज्जनों में तीन हिन्दू और तीन मुसलमान विद्वान कदाचित् इसलिए रक्खे गये हैं कि जिससे हिंदुओं को आश्वासन दिया जा सके कि स्वयं हिन्दू विद्वानों का अमुक मत है। लेकिन अब इससे धोके में हिन्दी जानने वाले हिन्दू आसानी से नहीं आ सकते। वास्तव में हिन्दी का विद्वान और इसलिए हिन्दी के दृष्टिकोण से हिन्दुस्तानी पर प्रकाश डालने वाला व्यक्ति इनमें से एक भी नहीं माना जा सकता।

डा० ताराचन्द ने अपनी तकरीर ताराचन्दी-हिन्दुस्तानी शैली में लिखी है और वे कदाचित उसे ही आदर्श हिन्दुस्तानी मानते हैं। आलइण्डिया रेडियो के हिन्दी आलिमों ने विचारे डाक्टर साहब के हिन्दी शब्दों की कहीं-कहीं अत्यन्त दुर्गति कर डाली है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्वयं डा० ताराचन्द साहब ऐसी भूलें नहीं कर सकते हैं। उदाहरण के लिए निम्न लिखित वाक्य को देखिए :—"अगर हमने विद्याओं की प्रिय भाषाएँ उर्दू और हिन्दी में इकसां करदीं तो आगे चल कर यह नतीजा होगा कि इनके साहित्यों की जबान भी इकसां हो जायगी" ये 'विद्याओं की प्रिय भाषाएँ' कदाचित पाठकगण नहीं समझ पाये होंगे। मैं स्वयं बहुत देर तक नहीं समझ पाया किन्तु एक अन्यस्थल पर जब निम्न लिखित वाक्य पढ़ा:—"हिन्दी-उर्दू के लिखने वाले इन खास लफ्ज़ों के लिए जिन्हें प्रिय भाषक शब्द या इसतलाहें कहते हैं एक ही लफ्ज मानलें।" तब समझ में आया कि यह 'पारिभाषिक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा 'परिभाषाएँ' शब्दों के नये अपभ्रंश रूप हैं! इस तरह के अनेक उदाहरण डा० ताराचन्द की तक़रीर में आल इण्डिया रेडियो की कृपा से बिखरे पड़े हैं। जैसे "लेकिन सच यह है कि संस्कृत में सैकड़ों अनारिया लफ्ज़ भरे हैं। ध्यान देने पर पता चल सकेगा कि इस अनार्य शब्द की किसी अनाड़ी द्वारा ही दुर्गति हुई है। "लफ्जों की महान्ता को बढ़ाना सोने को छोड़ ठाटे पर जी लगाना है।" इत्यादि। विद्वान लेखक के अनुसार साहित्य में भद्दापन जब (तब) ही आता है जब लिखने वाला अनमेल बेजोड़ लफ्जों को मिलता है। डाक्टर साहब की इस स्वयं निर्धारित कसौटी पर कसने से ताराचन्दी-हिन्दुस्तानी को भद्दी या भदेश शैली ही कहना पड़ेगा।

उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान डा० मौलवी अब्दुल हक के अनुसार "आसान उर्दू का नाम हिन्दुस्तानी हुआ।" आगे चल कर आप फर्माते हैं—"इसके बाद अगर कोई मुझ से कोई पूछेगा कि हिन्दुस्तानी जबान किसे कहते हैं तो मैं इसके जवाब में यह कहूँगा कि जिस जबान में मैंने आज तकरीर की है वह यही हिन्दुस्तानी है।" मौलवी साहब की तकरीर से प्रारम्भ के दो-तीन वाक्य उद्धृत कर देने से पाठकगण उनके अनुसार हिन्दुस्तानी क्या है इसका अर्थ स्पष्ट रूप में समझ लें गे:—"जबान के मानों में हिन्दुस्तानी का लफ्ज हमारे किसी मुस्तनद शाहर या अदीब या अहले जबान ने कभी इस्तैमाल नहीं किया है। यह योरुप वालों की उपज है। योरुप के सैयाहों ने जो सत्रहवीं सदी से इस मुल्क में आने शुरू हुए इस जबान को जो शुमाली हिन्द में आम तौर से बोली जाती थी, इन्दुस्तान, इन्दुस्तानी और बादअजां हिन्दुस्तानी के नाम से मौसूम किया है लेकिन इस लफ्ज को ईस्ट इंडिया कम्पनी के जमाने में उस वक्त फरोग हुआ जब १८०० ई० कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालिज कायम हुआ।" "......हिन्दुस्तानी से इनकी मुराद वह साफ और फसीह जबान जो बोलचाल में आती थी। यानी ऐसी जवान जो मुकफ्फ़ा, मुसज्जा और पुर तकल्लुफ न हो।"

आल इंडिया रेडियो देहली ने दो तर्जुमे भी इन साहबों को भेजे थे कि 'उनकी इबारत की बुराई-भलाई बतायें ताकि अन्दाजा हो सके कि रेडियो पर कैसी जबान बोली जाय ?" तर्जुमे ये हैं:—

१—'फेड्रल लेजिस्लेचर के लिए फेहरिस्त राय दाहिन्दगान तैयार करने के सिलसिले में जो इब्तदाई कार्रवाई की जायगी उसके बारे में सर एन० एन० सरकार ला मेम्बर ने आज असेम्बली में रोशनी डाली।'

२—'संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए न्यायमंत्री डाक्टर काटजू ने उन उद्योग धंधों की सूची दी जिनकी उन्नति के लिए सरकार ने सहायता देना स्वीकार किया है।'

डाक्टर मौलवी अब्दुलहक के अनुसार हिन्दुस्तानी शैली की दृष्टि से पहले अनुवाद की भाषा साधारणतया ठीक है किन्तु दूसरे अनुवाद के बारे में उनका कहना है। इस जुमले में संस्कृत लफ्जों की भरमार है और मतलब समझ में नहीं आता। यह हमारी जबान नहीं। यह सरासर बनावटी जबान है।

बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने अपने भाषण में हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में कांग्रेस का—दूसरे शब्दों में महात्मा गांधी तथा काका कालेलकर का—दृष्टिकोण स्पष्ट करने का यत्न किया है। उन्होंने पहले अनुवाद की भाषा को कांग्रेसी कसौटी के अनुसार सफल हिन्दुस्तानी नहीं माना है। दूसरे अनुवाद के सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के इन भूतपूर्व सभापति का निम्नलिखित विचार है—

"इसमें जहाँ तक मैं समझता हूँ व्याकरण तो हिन्दुस्तानी ही का इस्तैमाल हुआ है। मगर जो शब्द आये हैं वह संस्कृत के हैं और ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे फारसी, अर्बी के लफ्ज जान-बूझ कर निकाले गये हैं। 'प्रश्न' और 'उत्तर' 'सूची' और 'सहायता' संस्कृत के शब्द हैं। फारसी और अर्बी से लिये गये सवाल, जवाब, फेहरिस्त और मदद कुछ कम चालू नहीं हैं। 'उद्योग-धन्धों' के बदले में सिर्फ धन्धा काफी हो सकता है।" हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में कांग्रेस का दृष्टिकोण तथा नीति बाबू राजेन्द्रप्रसाद की उपर्युक्त आलोचना से बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। खेद यह है कि हिन्दी-प्रेमी स्वार्थ

(शेष पृष्ठ ५१७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राम्या : पन्तजी की अभिनव कृति

[प्रो० नगेन्द्र एम० ए०]

युगवाणी प्रगतिवादी पन्त का सिद्धान्त-वाक्य था— ग्राम्या उसका प्रयोग। युगवाणी में पन्तजी अपने नवीन सिद्धान्तों की रूपरेखा निश्चित कर रहे थे। सिद्धान्त अमूर्त होते हैं, इसलिए युगवाणी में रस से पुष्ट माँस नहीं है। ग्राम्या तक वे सिद्धान्त स्थिर कर चुके और अब उन्होंने उसके प्रयोग के लिए एक मूर्त आधार चुन लिया। स्वभावतः ग्राम्या की स्नायुओं में कवित्व का गाढ़ा रस प्रवहमान है, उसके अङ्ग भरे हुए और यौवन पीन हैं—

है माँस-पेशियों में उसके दृढ़ कोमलता
संयोग अवयवों में, अश्लथ उसके उरोज।
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव-कल्पित मनोज।

यह मानों ग्राम्या की भावमयी व्याख्या है। छायावादी पन्तजी में (छायावाद में ही) भाव-कल्पित मनोज की उपासना थी। आज प्रौढ़ता की ओर बढ़ते हुए उनके काव्य में किस प्रकार रङ्गीन कल्पना-चुम्बित भावुकता के स्थान पर एक स्वस्थ पौरुषमय भावुकता का समावेश हो रहा है—यही संकेत हम ऊपर की पंक्तियों से ग्रहण कर सकते हैं।

ग्राम्या में कवि-दृष्टिः—प्रगतिवाद का आलम्बन है (माफ कीजिए यह शब्द कुछ बुर्जुआ है) जन-जीवन, और भारत के जन जीवन का केन्द्र है ग्राम, अतएव पन्तजी का आज के राजनीतिज्ञों की भाँति ग्राम की ओर जाना स्वाभाविक ही है। पन्तजी का ग्राम-दर्शन जैसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है बौद्धिक सहानुभूति के आश्रित है, उसमें ग्राम जीवन का निरीक्षण और आलोचन है, निमग्नता नहीं है। 'ग्राम-जीवन में मिल कर उसके भीतर से ये कविताएं नहीं लिखी गयीं, इसका कारण पन्तजी के शब्दों में है। ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता, यह बात कुछ हद तक ठीक है, परन्तु उसका दूसरा पहलू भी है। हम पूछते हैं कि क्या वैसा करना (ग्राम्य-जीवन में मिल कर उसके भीतर से कविता लिखना) पन्तजी के लिए सहज सम्भव भी है? इसका उत्तर पंतजी अथवा उनसे घनिष्ट परिचय रखने वाला कोई अन्य आलोचक न जाने क्या दे परन्तु हमारी विनम्र धारणा है कि पंतजी के लिए यह सम्भव नहीं है, बौद्धिक सहानुभूति जो आलोचनात्मक निरीक्षण पर अवलम्बित है—से आगे पंतजी जा नहीं सकते। युगवाणी में 'नक्षत्र'लोक के दैवी एकान्त-वास (god like solitude) से उन्होंने जन-जीवन को देखा था, ग्राम्या में वे नीचे उतर कर कुछ पास खड़े हुए उसका दर्शक की भांति निरीक्षण और मनन कर रहे हैं। परन्तु अब पन्तजी दर्शक ही हैं, अन्तर इतना है कि पहले वे अपनी कोमलता से दबे हुए जीवन के सौन्दर्य को देखते थे, अब उनकी दृष्टि स्थिर होकर भीषणता और कुरूपता को भी आग्रह पूर्वक देखती है। पन्तजी की दृष्टि में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ।

दृष्टि-परीक्षा—यद्यपि मैं काव्य के मूल्यांकन में इस प्रकार की परीक्षा को कोई विशेष महत्व नहीं देता, फिर भी चलते-चलते यह देखना कि पन्तजी का ग्राम्य-दर्शन कैसा है, असंगत न होगा।—ग्राम्या में कवि ने ग्राम के समस्त रूप को, वहां के नर-नारी को, नित्य प्रति के जीवन को, उसकी संस्कृति को, व्यष्टिरूप में नहीं समष्टि रूप में देखा है। ग्राम, ग्राम कवि, ग्राम-दृष्टि, ग्राम-चित्र आदि कविताओं में ग्राम का अखण्ड चित्र अंकित किया गया है— इनमें ग्राम को सम्पूर्ण रूप में देखा गया है—कवि ग्रामों की दैन्य-जर्जर अवस्था को देख कर दुःखी होता है—वह देखता है कि—

ज्ञान नहीं है तर्क नहीं है कला न भाव विवेचन,
जन हैं, जग है, क्षुधा काम, इच्छाएं, जीवन साधन।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूढ़ि रीतियों के प्रचलित पथ, जाति पांति के बंधन,
नियत कर्म हैं, नियत कर्म-फल,—जीवन-चक्र सनातन।
परन्तु फिर भी उसका दृढ़ विश्वास है कि
मनुष्यत्व के मूलतत्व ग्रामों में ही अन्तर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ है अविकृत।

दूसरे चित्र व्यक्तियों के हैं, वैशिष्ट्य हीन, टाइप हैं, व्यक्ति के सुख-दुःख साधारण ग्रामजन के सुख-दुःख हैं। ग्राम्य युवती, ग्राम नारी, कठपुतले, गाँव के लड़के, वह बुड्ढा, ग्राम वधू, वे आँखें, मजदूरनी आदि कविताएं ऐसी ही हैं। कुछ कविताएँ साधारण ग्राम्य-जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। धोबियों का नृत्य, चमारों का नाच, कहारों का रुद्र नृत्य, नहान इत्यादि और कुछ में ग्राम संस्कृति का विवेचन है, उदाहरण के लिए ग्राम देवता, भारत-ग्राम्य को लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त ग्राम श्री की प्राकृतिक छटा भी दर्शनीय है। इन कविताओं में पन्तजी की दृष्टि का विश्लेषण करने पर हमें उसके अन्दर निरीक्षण अत्यन्त सूक्ष्म तथा आलोचन प्रौढ़ एवं विवेक पुष्ट मिलेगा और इन दोनों से भीगे पट की तरह लिपटी हुई मिलेगी एक करुण सहानुभूति। पहले निरीक्षण की बारीकी देखिए:—

किस महारात्रि तम में निद्रित,
ये प्रेत स्वप्नवत सञ्चालित,
किस मोह मंत्र से रे कीलित,
ये दैव दग्ध जग के पीड़ित।

इन पंक्तियों में ग्रामीणों की रूढ़ि परिचालित शिथिल जीवन-गति की ओर सूक्ष्म संकेत है। आलोचन में—जहाँ तक विश्लेषण का सम्बन्ध है वहाँ तक पंतजी अद्वितीय हैं, परन्तु समन्वय उनका उतना प्रौढ़ नहीं है। वे अन्तर्तत्वों को पृथक जिस बारीकी से कर सके हैं उनको अन्वित उतनी सफाई से नहीं कर पाये। सहानुभूति जैसा उन्होंने स्वयं कहा है उनकी बौद्धिक है। बौद्धिक सहानुभूति का अर्थ यह है कि उसमें कवि भावमग्न नहीं होता वहाँ दोनों पहलुओं का संतुलित विवेचन करता हुआ—दोषों के प्रति भी सतर्क रह कर अपने आलोच्य की कल्याण कामना करता है। यह सहानुभूति प्रेमी मित्र की सहज मधुर सहानुभूति नहीं है। आलोचक अथवा शिक्षक की मीठी-कड़वी सहानुभूति है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि हार्दिकता एकदम बहिष्कृत है। ग्राम्या की पंक्तियों में भाव की कोमलता और अनेक स्थलों पर, सहज उल्लास और विषाद का अभाव नहीं है:

१—आता गौन प्रभात अकेला सन्ध्या भरी उदासी,
यहाँ घूमती दो पहरी में स्वप्नों की छाया-सी।

२—वह मग में रुक,
मानों कुछ झुक,
आँचल सम्हालती, फेर नयन मुख,
पा प्रिय पद की आहट;
आ ग्राम युवक,
प्रेमी याचक
जब उसे ताकता है इकटक,
उल्लसित,
चकित,
वह लेती मूंद पलक पट।

२—तुमने निज तन की तुच्छ कञ्चुकी को उतार।
जग के हित खोल दिये नारी के हृदय द्वार॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये ग्राम-चित्र एक चतुर चितेरे के द्वारा अंकित किये गये हैं। पंतजी की सूक्ष्म दृष्टि ने सूक्ष्म तत्वों को काफी गहरे में जाकर पकड़ा है। और प्रौढ़ बुद्धि ने उनकी विवेचना करके स्वच्छ रूप में उपस्थित किया है। परन्तु दृष्टा और दृश्य के बीच एक विशेष अन्तर सदैव बना रहा है यह अन्तर शारीरिक ही नहीं मानसिक भी है—(ज्ञान का, संस्कृति शिष्टता का और क्षमा करें वर्ग का भी) उसमें एक दया—कुछ नीचे उतरने का, भाव विद्यमान है।

इन कीड़ों का भी मनुज बीज,
यह सोच हृदय आता पसीज।

इस प्रसंग में हमें भारत के प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री सम्पूर्णानन्द के शब्द याद आते हैं "····पर यही दोष उस साहित्य में भी है और होगा जिसकी सृष्टि मध्यवर्ग के कृत्रिम वातावरण में होगी। यह वर्ग जनता, सच्ची जनता से बहुत दूर है। ···दो-चार दिन किसी गांव में बैठ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण जीवन पर रचना करना, उसकी दयनीयता दिखलाना, उसकी हंसी उड़ाना है। दया भिक्षा के टुकड़ों से ही तो धनिक वर्ग और उसके पीछे पूंछ हिलाने वाला मध्यवर्ग दलितों, शोषितों, पीड़ितों को धोखा देना चाहता है। यदि आप उनके साथ तन्मयता प्राप्त करके उनके साथ सहानुभूति नहीं कर सकते तो उन पर दया दिखला कर उनका अपमान मत कीजिए। आपको प्रगतिशीलता का यश मिलता है पर आप पाप के भागी बनते हैं।''

अतएव ग्राम्या में हमें परिचय की तात्कालिक घनिष्ठता तो प्रायः मिल जाती है परन्तु वह पर्याप्त नहीं है। ग्राम्य-जीवन के व्याख्याता के लिए एक सुदीर्घ परिचय की आवश्यकता है और पन्तजी की ग्रन्थ-परम्परा से कोई विशेष घनिष्ठता नहीं है। उन्होंने तो जैसे नोटबुक और पैन्सिल की सहायता से उसका अध्ययन किया है। इस कारण उनकी कविता में ग्राम्य-जीवन विषयक त्रुटियों की कमी नहीं है। अनेक चित्रों में अतिरंजना और एकाङ्गिता आ गयी है। अतः हमें उनके ग्राम्य-दर्शन को उसकी सीमा और शक्ति दोनों के साथ देखना चाहिए। एक ओर हम सुनते हैं—'रही डिब्बे में बैठ कर पति से हँस कर बात करने की अवस्था, जहाँ तक सम्भव होता है ग्रामों में पति पत्नी को लेने बहुत कम जाता है।''''''यदि वह गया भी तो कोई न कोई साथ में रहता है और कोई नहीं तो नाई ही सही'''''' ।' दूसरी ओर ''यह कदाचित् अतिशयोक्ति नहीं होगी कि विश्व-साहित्य में आज तक किसी कवि ने ग्राम्य-जीवन का प्रगतिशील दृष्टिकोण से इतना विशद इतना मार्मिक चित्रण नहीं किया—स्वयं वर्ड्सवर्थ ने भी नहीं।''

इनमें पहला निरर्थक है, दूसरा अत्युक्तिपूर्ण। वैसे भी वर्ड्सवर्थ का उदाहरण ग्राम्य-जीवन के प्रसंग में अधिक उपयुक्त नहीं। वर्न्स से तुलना कीजिए, अन्तर स्पष्ट हो जायगा।

पन्तजी का प्रकृत रूप—हम ऊपर निवेदन कर आये हैं कि पन्तजी मूल रूप में सौन्दर्य-द्रष्टा हैं। उनके दृष्टिकोण में बौद्धिक विकास हुआ है, वाह्य उपकरण बदल गये हैं। परन्तु उनकी आत्मा ज्यों-की-त्यों है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे पन्तजी बुद्धि द्वारा गृहीत सत्यों को जीवन में प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हों और उनका स्वभाव जैसे प्रायः उनसे ऊब कर संस्कारों की ओर भाग उठता हो। इस प्रकार आज उनके स्वभाव और सिद्धान्त में विरोध चल रहा है, यह उनकी कृतियों को पढ़ कर आप फौरन ताड़ सकते हैं। पिछली बार मैंने पन्तजी से एक शङ्का की थी कि आपका Temparament (स्वभाव) आपकी प्रगति में साथ नहीं दे रहा—क्या यह सत्य नहीं है? उसका उत्तर उन्होंने मुझे यह दिया था—

Tamparament is that which can be tempered अर्थात् स्वभाव को गढ़ा जा सकता है। सचमुच आजकल पन्तजी जैसे अपने स्वभाव को गढ़ने में लगे हों और वह बार-बार संस्कार की ओर प्रतिवर्तन करता हो—

वहीं कहीं जी करता मैं जाकर छिप जाऊँ।
मानव जग के क्रन्दन से छुटकारा पाऊँ॥
प्रकृति नीड़ में व्योम-खगों के गाने गाऊँ।
अपने चिर-स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊँ॥

कारण यह है कि पन्तजी के स्वभाव और सिद्धान्तों के बीच एक बड़ी खाई है जिसको बुद्धि के द्वारा वे भरने का प्रयत्न कर रहे हैं—और शायद काफी भर भी चुके हों, परन्तु उनके मन की सहज गति उधर नहीं है। उनके स्वभाव की सौन्दर्य-प्रियता जो जीवन के एकान्त में मनन और चिन्तन के द्वारा पोषित होती रही, अब भी उनकी दृष्टि में घुली-मिली है, उनकी दृष्टि अब ग्रामीण आसानी से नहीं हो सकती। अतएव आज भी 'स्थूल' अथवा 'प्राकृत-कुत्सित' का निरीक्षण करती हुई वह प्रायः सूक्ष्म-कोमल पर ही टिकती है। ग्राम्य वातावरण में भी वह सूक्ष्म-कोमल को ही पकड़ती है—

१—अरहर सनई की सोने की,
किंकिड़ियाँ हैं शोभाशाली।
२—लो हरित धरा से झाँक रही,
नीलम की कलि तीसी नीली।
३—मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम,
जिस पर नीलम नभ आच्छादन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुपम हिमांत में स्निग्ध शांत,
निज शोभा से हरता जन मन !

'सन्ध्या के बाद' जैसी प्रगतिशील कविताओं में भी आपको चयन की वही सूक्ष्मता मिलेगी—

माली की मँड़ई से उठ नभ-के-नीचे-नभ-सी धूमाली।
मन्द पवन में तिरती जैसे रेशम की-सी हलकी जाली॥

गंगा, स्वीटपी, याद, गुलदावदी, नक्षत्र आदि कविताओं की बात ही दूसरी रही, उनके तो विषय ही सुन्दर हैं। इनमें चित्रण और भावुकता की सूक्ष्मता ने मिल कर जो कवित्व की जाली काढ़ी है वह सहज मनोरम है। चित्रण की दृष्टि से गंगा, सन्ध्या के बाद, आदि कविताएँ पल्लव, गुञ्जन और युगान्त की कविताओं को मात करती हैं। याद, नक्षत्र और रेखाचित्र की पंक्तियों में कवि की व्यक्तिगत भावना को मधुर करुण स्पर्श है—

नव असाढ़ की सन्ध्या में, मेघों के तम में कोमल,
पीड़ित एकाकी शय्या पर, शत भावों से विह्वल,
एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत-सी जल कर उज्ज्वल,
याद दिलाती मुझे हृदय में रहती जो तुम निश्चल !

अथवा

सब से ऊपर निर्जन नभ में, अपलक संध्या तारा,
नीरव औ' निस्संग, खोजता-सा कुछ, चिर पथ हारा !
सांझ—नदी का सूना तट, मिलता है नहीं किनारा,
खोज रहा एकाकी जीवन साथी, स्नेह सहारा !

गुलदावदी कवि की प्रकृति विषयक अनुभूति (Sensitiveness) का अत्यन्त व्यक्त एवं मूर्त अंकन है—

मृदुल दलों के अंग जाल से फूट-त्वचा-कोमल सुख
सहृदय मानवीय स्पर्शों से हर लेता मन का दुख।

पन्तजी किस प्रकार प्रकृति में जीवन का रस लेते हैं इसके साक्षी 'त्वचा-कोमल सुख' और 'मानवीय-स्पर्श'—ये दो वाक्यांश हैं।

यही बात भावों के क्षेत्र में भी है। भाव का वह अनगढ़ रूप (rawness) जो ग्राम्य जीवन के चित्रण में अपेक्षित है—ग्राम्या में प्रायः नहीं है—(चमारों का नाच एक अपवाद है) उसमें तो एक अतल स्पर्शिनी भावुकता मिलती है जो संस्कार की ही द्योतक है। 'वे आंखें' की कुछ पंक्तियां देखिए :—

१—अन्धकार की गुहा-सरीखी उन आंखों से डरता है मन,
२—ग्रस लेती दर्शक को वह दुर्ज्ञेय, दया की भूखी चितवन।

अथवा

१—बैठ, टेक धरती पर माथा, वह सलाम करता है झुक कर
उस धरती से पांव उठा लेने को जी करता है क्षण भर।
२—काली नारकीय छाया निज छोड़ गया वह मेरे भीतर।
(वह बुड्ढा)

ये उद्धरण एकदम रोमांटिक है—

पन्तजी के जीवन में जीवन का संघर्ष और उपभोग साधारण व्यक्ति के जीवन की अपेक्षा कहीं कम रहा है और है। उनके जीवन में पलायन की प्रवृत्ति अन्य कवियों से अधिक है। उनका मानसिक अथवा बौद्धिक जीवन जितना सक्रिय रहा है, मौलिक-जीवन उतना ही संघर्ष से दूर; आज भी उनके जीवन में कर्म की अपेक्षा विचार और चिंतन का ही प्राधान्य है, फलतः संघर्ष की ओर बौद्धिक आकर्षण रखते हुए भी वे उसमें रत होने की शक्ति प्राप्त नहीं कर सके। ग्राम्या की अनेक कविताओं में पलायन के स्पष्ट संकेत हैं। दिवास्वप्न तो इस मनोस्थिति का दर्पण है। आज भी कवि 'नौका-विहार' करता हुआ सोचता है :—

यदि न डुबाता जल, रह कर चिर मृदुल तरल तर,
तो मैं नाव छोड़ गंगा के गलित स्फटिक पर,
आज लोटता ज्योति-तड़ित लहरों सँग जी भर !
किरणों से खेलता मिचौनी में लुक छिप कर
लहरों के अञ्चल में फेन पिरोना सुन्दर !

ये पंक्तियाँ हमें गुञ्जन की सदृश पंक्तियों का स्मरण दिलाती हैं—(जब हमारे पंतजी, सुनते हैं, एस्केपिस्ट थे) :

सुनता हूँ इस निस्तल जल में,
रहती मछली मोती वाली,
पर मुझे डूबने का भय है,
भाती तट की चल जल माली।

इस प्रकार आप देखें कि पन्तजी के सौन्दर्यदग्ध हृदय और प्रगतिकामी बुद्धि में एक द्वन्द्व चल रहा है—जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भौतिक दृष्टि को वे अभी नहीं अपना सके। अभी वे भौतिकता और आध्यात्मिकता में भी समझौता नहीं कर पाये। महात्माजी की पराजय की बात वे कितने ही आग्रह से क्यों न कहें परन्तु सच तो यह है कि बापू और बापू के दर्शन के प्रति उनका मोह अभी छूटा नहीं है—

बापू! तुम पर हैं आज लगे जग के लोचन
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बन्धन?

युगवाणी में सिद्धान्त-कथन अधिक होने के कारण यह द्वन्द्व कुछ अव्यक्त रहा, परन्तु ग्राम्या में आकर जहां कविता के बुद्धि-बन्धन ढीले हुए हैं, वह बहुत स्पष्ट हो गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जहाँ हृदय और संस्कार विजयी हुए हैं वहां पन्तजी कवि रूप में सफल हुए हैं और जहां बौद्धिक विवेचन एवं सिद्धान्त का जोर रहा है वहाँ कविता गद्यमयी हो गयी है।

आलोचनात्मक कविता और बौद्धिक रसः— हृदय और बुद्धि का यह द्वन्द्व कवित्व और आलोचन के द्वन्द्व में व्यक्त होता है और इस प्रकार आलोचनात्मक कविता का जन्म होता है। विदेश में कविता का यह रूप चौसर के समय से ही उपलब्ध है, परन्तु हिन्दी में अभी नवीन ही है। इसमें एक प्रकार का बौद्धिक रस मिलता है जो अपने शास्त्रीय रस से भिन्न है। ये कविताएँ कवि के मन से निस्सृत होकर श्रोता के मन का स्पर्श नहीं करतीं। वे मस्तिष्क से उद्भूत होकर मस्तिष्क को ही प्रसन्न करती हैं—इनमें चित्त नहीं मस्तिष्क चमत्कृत होता है। परिचित वस्तु को उसके सच्चे रूप में संतुलित दृष्टिकोण से देख कर हम खुश होते हैं। इसमें कवि वस्तु में तन्मय नहीं होता वह अपना व्यक्तित्व पृथक रखता है और पाठक उसे पढ़ कर मन में कह उठता है, "हां, ठीक है—यही मैं भी सोचता था"। इसी को आचार्यों ने अभिज्ञान का आनन्द (pleasure of recognition) कहा है। एक उदाहरण लीजिए :—

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह, मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित।

इन पंक्तियों को पढ़ कर आप रस मग्न नहीं होते, उनमें मन को स्पर्श करने की शक्ति नहीं है, पर जैसे कोई बात जो कई बार आपके मन में उठती हो एक साथ आपको इतने स्पष्ट शब्दों में मिल गयी और आप अपना समर्थन पाकर प्रसन्न हो उठे, ऐसा ही कुछ इन कविताओं का बौद्धिक आनन्द है।

हास्य और व्यंग्योक्तिः— आलोचना का सब से समर्थ साधन है हास्य और व्यंग्य (Humour and irony) विशेषकर आलोचनात्मक कविता का जिसमें शक्ति बहुत कुछ उक्ति-संक्षेप पर निर्भर है। अंगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि चौसर, पोप, चैस्टरटन आदि जिन्होंने इस प्रकार की कविता लिखी है (मैं केवल शैली की बात कर रहा हूँ) हास्य और व्यंग्य के आचार्य थे। हमें खुशी है कि ग्राम्या में पंत की काव्य-शैली अपने जीवन काल में पहली बार इन दो गुणों से विभूषित हुई है। वैसे पंतजी के पास ये दोनों शस्त्र थे अवश्य (पल्लव की भूमिका इसकी साक्षी है) परन्तु सौन्दर्य के चिन्तन और मनन में हास्य अथवा व्यंग्य के लिए स्थान ही नहीं था। ग्राम्या में जीवन की सीधी आलोचना करते हुए मंत्र-सिद्ध शास्त्रों की भाँति वे उन्हें आप-से-आप प्राप्त हो गये। 'ग्रामवधू' परिष्कृत हास्य का उदाहरण है; पंतजी की सूक्ष्म दृष्टि हास्य को उद्बुद्ध करने में बहुत सहायक हुई है और हमें हिन्दी कविता में बड़ी मुश्किल से ऐसा सूक्ष्म संकेतात्मक हास्य मिल सका है—

लो अब गाड़ी चल दी भर-भर
बतलाती धनि पति से हँस कर,
सुस्थिर डिब्बे के नारी नर—
जाती ग्राम बधू पति के घर!

परन्तु ग्राम्या का वातावरण हास्य की अपेक्षा व्यंग्य (irony) के अधिक अनुकूल है—क्योंकि हास्य का सौन्दर्य है उसकी निर्मलता एवं निरुद्देश्यता जो प्रगति की कविता में सहज सम्भव नहीं। एक ओर कवि के मन में दुःख की मलिनता है, दूसरी ओर उसके कृति के पीछे एक उद्देश्य है—अतएव व्यंग्योक्ति ही जो क्रोध और करुणा की सान पर चढ़ कर और भी नुकीली हो जाती है उसके ज्यादा काम आयी है। पन्त का व्यंग्य-बाण शत्रु और मित्र दोनों पर ही पड़ता है—पहले में क्रोध के विष में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुझ कर, दूसरे में करुणा की टीस लेकर—

वह वर्ग-नारियों-सी न सुघ्र, संस्कृत, कृत्रिम
रञ्जित कपोल, भ्रू, अधर, अङ्ग सुरभित वासित।

अथवा 'सन्ध्या के बाद' में लाला सोच रहे थे—

दरिद्रता पापों की जननी,
मिटें जनों के पाप, ताप, भय,
सुन्दर हों अधिवास, वसन तन,
पशु पर फिर मानव की हो जय ?
व्यक्ति नहीं, जग की परिपाटी
दोषी जन के दुःख क्लेश की,
जन का श्रम जन में बँट जाए,
प्रजा सुखी हो देश देश की !

पर— टूट गया वह स्वप्न वणिक का
आई जब बुढ़िया बेचारी
आधपाव आटा लेने;—
लो, लाला ने फिर डन्डी मारी !

अब एक व्यंग्योक्ति मित्र पर देखिए—

घर में विधवा रही पतोहू,
लछमी थी, यद्यपि पतिघातिन,
पकड़ मँगाया कोतवाल ने,
डूब कुए में मरी एक दिन !
खैर पैर की जूती जोरू,
न सही एक दूसरी आती,
पर जवान बेटे की सुधि कर,
साँप लोटते, फटती छाती।

भाषा:—पंत की काव्य-भाषा के इतिहास में ग्राम्या का प्रकाशन एक घटना है। युगवाणी से पूर्व तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था, उनकी भाषा भावों के अनुकूल सूक्ष्म कोमल, जड़ी हुई और कढ़ी हुई थी। युगवाणी में कवि ने अपने काव्य के रूप को बदलने का तो प्रयत्न किया परन्तु वे यह चित्रित साड़ी उसके ऊपर से नहीं उतार सके, अतएव गांव के लोग उनकी बात न समझ कर उन्हें गुमराह कहने लगे। बात कुछ ठीक भी थी—जन-साहित्य की भाषा इतनी एरिस्टोक्रेटिक हो यह अनुचित था। बस पन्तजी ने ग्राम्या में आकर अपनी जन कविताओं को एक सादा-सी साफ धोती पहना दी—(यद्यपि गजी का लहंगा अभी नहीं पहना सके)। ग्राम्या की भाषा बहुत काफी नीचे उतर आयी है विशेष कर उन स्थलों पर जहाँ कवि स्वयं विवेचन न करता हुआ पात्र की ओर से बोलता है, अथवा ग्राम वातावरण की सृष्टि करता है।

१—मां कहती रखना संभाल घर,
मौसी, धनि लाना गोदी भर,
सखियाँ;—जाना हमें मत विसर,
जाती ग्राम बधू पति के घर !

२—घमासान हो रहा है समर,
उसे बुलाने आये अफसर,
गोला फट कर आँख उड़ादे;
छिपा हुआ वह उसे यही डर।

परन्तु यह कहना ही पड़ेगा कि ऐसे स्थलों पर कवि अल्प-परिचय अथवा चयन रुचि के कारण भाषा विषयक त्रुटि कर बैठा है—

बिना दवा-दर्पन के गृहिनी
स्वरग चली—आँखें आती भर

यहाँ गृहिनी और स्वरग प्रयोग चिन्त्य हैं—गाँव का आदमी गृहिनी को घरनी, 'गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी' और स्वरग को सुरग कहेगा। कदाचित पंतजी के कान धरनी और सुरग को बर्दाश्त नहीं कर सकते। ऐसी दशा में हम पूछ सकते हैं कि फिर जरूरत ही क्या थी ? कुछ प्रसंगों में तो यह अवश्य प्रतीत होता है कि कवि इस नवीन शब्दावली का प्रयोग बड़ी सावधानी से डरते-डरते कर रहा है। परन्तु ऐसे उदाहरण अनेक नहीं हैं और प्रायः पंतजी की भाषा इन शब्दों के साथ निर्द्वन्द्व होकर खुल-खुले उठी है। नीचे के उद्धरण 'अ' में उसका चाञ्चल्य और 'आ' में उसकी चौड़ी शक्ति दर्शनीय है।

(अ) खींचतीं उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर उभर कसमस
खिंचते संग युग रस भरे कलश,
जल छलकाती,
रस बरसाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल खाती वह घर को जाती
सिर पर घट
उर पर धर पट
(आ) उसका लम्बा डील डौल है,
हट्टी कट्टी काठी चौड़ी।
इस खंडहर में बिजली-सी,
उन्मत्त जवानी दौड़ी होगी।

इस प्रकार ग्राम्या में पन्त की कविता एक बार फिर जीवन से जगमग हो उठी है, उसको पढ़ कर ऐसी धारणा होती है जैसे युगवाणी की प्रगतिकामी कविता पल्लव के रंगों में स्नान कर आयी हो। पंतजी अब तक अपनी हलकी मधुरता के कारण मन को मुग्ध करते थे, ग्राम्या में थोड़ी कड़वाहट भी मिल गयी है—और उसका स्वाद कसैला हो गया है। अतएव उसमें जीवन की चहल-पहल तो है परन्तु महान की शक्ति नहीं है। युगांत से पूर्व उन्होंने जिस रम्य पथ का अनुसरण किया था वह पराग से आकीर्ण था इसलिए उनकी कविता को लघु-लघु चरणों से चलते देख हमें सुख होता था—आज उन्होंने जन जीवन का बीहड़ पकड़ा है जिसमें अनेक खाड़-खड्ड और झाड़-झंकड़ हैं अतः उस पर चलने के लिए चौड़े डगों की आवश्यकता है। इसमें सुन्दर की अपेक्षा महान उपासना श्रेयस्कर होगी ग्राम्या में ऐसी कविताएँ विरल हैं—

१—ग्राम देवता २—वह बुड्ढा ३—ग्राम
४—भारतमाता, ५—राष्ट्रगान—

इतने से हमारी मनस्तृप्ति नहीं होती! हम अभी कुछ और चाहते हैं।

* *
*

उर्दू से सम्बन्धित तीन पुस्तकें (पृष्ठ ५१० का शेषांश)

अथवा भ्रमवश कभी-कभी भुलावे में आ जाते हैं। सौभाग्य से अब तो लोगों की आँखें खुल गयी हैं।

डा० जाकिर हुसैन खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' या 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' की शैली से मिलती-जुलती शैली में अपनी तकरीर लिखी है और उसी को आदर्श हिंदुस्तानी माना हैं। पं० व्रजमोहन दत्तात्रेय की तकरीर में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। पता नहीं हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में इनके विचार किस कारण से मान्य समझे जा सकते हैं। आसफअली साहब का कहना है कि "मेरी सारी रामकहानी का निचोड़ यह है कि उर्दू-हिन्दी-हिन्दुस्तानी तीन अलग जबानें हैं। उर्दू तो बनी बनायी है और हिन्दी भी अब बन चुकी है। इन दोनों के संयोग से जो गंगा-जमुनी जबान बनने वाली है वह हिन्दुस्तानी है।"

वास्तव में हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में इन छः तकरीरों को पढ़ कर अन्धों द्वारा हाथी के वर्णन की कहानी का स्मरण हो आता है।

पं० चन्द्रवली पाँडे की 'उर्दू का रहस्य' शीर्षक पुस्तक में लेखक के इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले दस लेखों का संग्रह है, जिन में से अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं। इसी कारण कहीं-कहीं पिष्टपेषण भी हो गया है। पाँडेजी के विचारों से हिन्दी पाठक भली प्रकार परिचित हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की कृपा से पाँडेजी का इस विषय सम्बन्धी साहित्य पुस्तकाकार प्रकाशित हो गया है। हिन्दी के संकट के दिनों में पाँडेजी के पुष्ट कन्धों से कितनी अधिक सहायता मिली यह भविष्य के हिन्दी इतिहास लेखक भली प्रकार आँकेंगे।

* *
*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

हिन्दी की प्राचीन और नवीन काव्य-धारा—लेखक–श्री सूर्यबलीसिंह एम०ए०। प्रकाशक–श्री नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस। पृष्ठसंख्या १६२, मूल्य १)

हिन्दी में आजकल भी नवीन और प्राचीन की प्रतिद्वन्दिता चल रही है। दोनों ही पक्ष के लोग मल्लों की भाँति अपनी-अपनी गर्वोक्तियों से साहित्य-गगन को गुञ्जरित करने की चेष्टा करते हैं किन्तु वे लोग परीक्षा-बुद्धि से कम काम लेते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इस ओर एक प्रयत्न है। इसमें प्राचीन और नवीन की परीक्षा एक विशेष क्रम के साथ की गयी है।

लेखक ने काव्य के तीन पक्ष बतलाये हैं और इन्हीं पक्षों को लेकर भिन्न-भिन्न रसों के सम्बन्ध में प्राचीन और नवीन काव्य की परीक्षा की गयी है। रति-भाव के प्राचीन और नवीन आलम्बनों का विवेचन करते हुए लेखक ने बतलाया है कि प्राचीन कविता के आलम्बन होते हुए भी लौकिक बना लिये जाते हैं और वर्तमान कविता के लौकिक होते हुए भी वर्तमान आलम्बनों में कौन का प्रश्नवाचक चिन्ह लगा रहता है। इससे आध्यात्मिकता का आभास तो आ जाता है लेकिन रस-परिपाक पूर्णरूप से नहीं होता। यहाँ पर हमको शुक्लजी की आत्मा बोलती हुई दिखाई पड़ती है। वर्तमान कविता में रतिभाव के आलम्बन को अलौकिक रूप में दिखाने का प्रयत्न अवश्य किया गया है किन्तु उसमें एक व्यक्तित्व का आरोप कर देने से रस-परिपाक में विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। यदि इसको टट्टी की ओट में शिकार खेलना समझा जाय तो आधुनिक कवियों में अब्बल ऐसे कवियों की कमी नहीं जो अपनी रतिभाव के आलम्बनों को लौकिक रखना ही पसन्द करते हैं। इसी प्रकार हास्य, शोक आदि अन्य स्थाई भावों के आलम्बनों के सम्बन्ध में विवेचना की गई है।

भाव-पक्ष में रति नाम के स्थाई भाव के सम्बन्ध में वही कहा है जो उसके आलम्बन के सम्बन्ध मे पूर्व में कह चुके हैं। वीर रस के सम्बन्ध में कहा गया है कि नये ढंग की वीर रस की कविता का कोई निश्चित ध्येय नहीं है। इसमें उत्साह कहीं शोक के साथ और कहीं अमर्ष के साथ उलझता चलता है। इसका कारण यही है जो आगे कहा जा चुका है। आजकल के कवि प्रभावान्विति की परवाह नहीं करते। मेरा ख्याल यह है कि यह नवीन ढंग की कविता का दोष नहीं वरन् परिस्थिति का है। आजकल युद्धवीरता का वर्णन साङ्गोपाङ्ग नहीं हो सकता। पुरानी तीर-तलवारों की वीरता समयानुकूल नहीं रही। यांत्रिक युद्ध-वीरता में भारतीयों को कौशल प्राप्त नहीं है। आजकल वीरता है सहनशीलता की। इसीलिए यह करुणा से अधिक मेल खाती है। कभी-कभी अमर्ष भी आता है। सब लोग महात्मा गांधी नहीं जो हर्षपूर्वक कष्ट सहना पसन्द करें।

लेखक महोदय करुणा को आध्यात्मिक सम्बन्ध में लाना पसन्द नहीं करते। वे कुछ व्यङ्गय के साथ कहते हैं। हम आध्यात्म के राग अलापने वालों के मुख से सुनते हैं 'तुझको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुझ में ढूँढूँगी पीड़ा' मानो पीड़ा के अतिरिक्त आज हमारे लिए साधना के क्षेत्र में कुछ बचा ही नहीं। अध्यात्मवाद और पीड़ा में विरोध नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्मवाद की विरहजन्य पीड़ा में मिलन सुख की अपेक्षा अधिक सत्य है ।

यद्यपि बहुत से ब्युरे की बातों में मेरा लेखक महोदय से मतभेद है और कहीं-कहीं लेखक महोदय वर्तमान कविता के प्रति अनुदार भी हैं । तथापि यह कहना पड़ेगा कि पुस्तक अच्छे क्रम और पाण्डित्य के साथ लिखी गयी है ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य—ग्रन्थ सम्पादक श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन । ग्रन्थमाला सम्पादक श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—श्री गिरजाशङ्कर वर्मा अभिनव भारती ग्रन्थमाला कलकत्ता—पृष्ठ संख्या १८७, मूल्य १॥)

यह अभिनव भारती ग्रन्थमाला का द्वितीय पुष्प है और मेरठ साहित्य परिषद सम्वत १९९६ में पढ़े हुए निबन्धों का संग्रह है। वास्तव में इन निबन्धों की उपयोगिता उनके पढ़े जाने से उतनी नहीं जितनी कि उनके प्रकाशन में । क्योंकि परिषदों में श्रोताओं के लिए ही मुश्किल से अवकाश मिलता है मन्तव्यों निदिध्यासितव्यों के लिए तो और भी कम । हमको इस बात का हर्ष है कि साहित्य परिषद ने ऐसी सामग्री उपस्थित की है जो श्रवण मात्र का विषय नहीं है। हिन्दी के विकास में वह अवस्था आ गयी जब उसको अपने पाठकों के लिए प्रौढ़ सामग्री देना आवश्यक हो गया है ।

वैसे तो इसमें सभी लेख उत्तम हैं लेकिन श्री जैनेंद्र जी का साहित्य की कसौटी, श्री वात्स्यायनजी का परिस्थिति और साहित्यकार, श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी का उपन्यास की भावधारा, श्री नगेन्द्रजी का हिन्दी की नवीनतम प्रगतियाँ, और श्री शिवदानसिंह चौहान का छायावादी कविता में असन्तोष भावना ये निबन्ध विशेष रूप से विचार योग्य हैं ।

श्री जैनेन्द्रजी के निबन्ध की विशेषता उसकी रूपक शैली है । आपने सोने और आकार दोनों को उचित मान दिया है । बड़े-बूढ़े सोने को महत्ता देते हैं और जवान लोग आकार को । जैनेन्द्रजी अपने को दोनों के बीच में समझते हैं । ये वाक्य मुझे साहित्य-सन्देश में प्रकाशित आलोचना के मान की याद दिलाते हैं। उस समय उन्होंने केवल रुचि को ही मान दिया था अब उन्होंने रुचि को विशिष्ट कर दिया जिसमें मानव हृदय का विकास हो, वह अच्छा साहित्य है । यह परिवर्तन शायद साल-छः महीने वयोवृद्ध हो जाने के कारण हो। यह परिवर्तन दोष नहीं गुण है ।

श्री वात्स्यायन और चौहानजी के लेखों के यद्यपि शीर्षक भिन्न हैं तथापि वे दोनों एक ध्रुव की ओर इङ्गित करते हैं वह है प्रगतिवाद । वात्स्यायनजी के निबन्ध में अपने पक्ष की वकालत कम है। वात्स्यायनजी कहते हैं यद्यपि अतृप्ति का अनुभव प्रत्येक आधुनिक लेखक में होना चाहिए, तथापि उसकी कृति का भला बुरा होना उसकी अनुभूति की प्रतिक्रिया पर निर्भर है—यदि उसके उद्वेग ने उसमें प्रतिरोध और युयुत्सा की भावना जगाई है, उसे वातावरण या सामाजिक गति को तोड़ कर नया वातावरण और नया सामाजिक संगठन लाने की प्रेरणा दी है, तभी उसकी रचनाएँ महान साहित्य बन सकेंगी। यदि उसके उद्वेग ने केवल अतिश्रम, घबराहट और पलायन की भावनाएँ जगाई हैं तब उसकी रचनाएँ मधुर होकर भी घटिया रहेंगीं। करीब-करीब यही बात चौहानजी ने कही है ।

'बन्धनों से उन्मुक्ति पाने के लिए असन्तोष की अभिव्यक्ति करके भी छायावादी कवि सच्चा क्रान्तिकारी न हो सका, क्योंकि पूँजीपति वर्ग की तरह उसकी अभिलषित स्वतन्त्रता का आधार आवश्यकता की चेतना नहीं वरन् उसकी अज्ञानता है' चेतना और ज्ञान के बिना असन्तोष कठिन है । क्रान्तिकारी न बनना प्रकृति और संस्कार की बात है। लेखक महोदय छायावादी कवियों को पूंजीवादियों का सहायक मानते हैं । पूंजीवाद ने अपनी सत्ता कायम रखने के लिए जीवन की असारता क्षणभंगुरता एवं स्थविरता के भ्रम और सन्देह उत्पन्न करने के लिए आदर्शवाद धर्म और जातीयता की अफीम की गोलियाँ बाँट रखी थीं, छायावाद के कवि उन्हें खाने के लिए सुन्दर सुसंस्कृत शैली में जनता को प्रेरित करने लगे। छायावाद की जीवन सम्बन्धी फिलासफी को पूंजीवाद प्रेरित बतलाना छायावादियों के विचार-स्वातन्त्र्य पर आघात पहुँचाना है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूँजीवादी बड़े बुरे लोग होते हैं लेकिन वे सब क्रियाओं के एकमात्र संचालक नहीं। बात यह है कि पिछले जमाने का नामी साहु आजकल का नामी चोर बन गया है। जीवन की असारता मानने में खट्टे अंगूरों की भावना मानी जा सकती है। लेकिन छायावादी चाहे विद्रोह करने में अशक्त हो लेकिन उसको पूंजीवादी की हाथ की कठपुतली भी नहीं कह सकते लेखक के मूल सिद्धान्तों से मतभेद रखते हुए भी यह कहना पड़ेगा कि पुस्तक में बड़े अध्ययन और अध्ययवसाय सामग्रीहै। —गुलाबराय

प्रेमचन्द (आलोचनात्मक परिचय) लेखक-डा० रामविलास शर्मा पी० एच० डी०, प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस, पृष्ठ १८३, मूल्य २)।

प्रेमचन्द एक महान कलाकार थे। 'समाज-सुधारक प्रेमचन्द से कलाकार प्रेमचन्द का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है।' प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी थे। वस्तुतः 'उनके अन्तर में बसा हुआ यथार्थवादी समस्या की, जटिलता चित्रित करने में बहुत कम मेल-मुलाइजा करता है।' आदर्शवाद, संभवतः, आज और कल के समझौते की भाँति उन्होंने अपनाया। अतः 'जहाँ उनका अदर्शवाद दब गया है और उन्होंने बरबस परिणाम ढूँढने का प्रयत्न नहीं किया। या समस्या को ही सामने रखकर सन्तोष कर लिया है, वहां वे अद्वितीय हैं।' विद्वान लेखक ने प्रेमचन्द की इस अद्वितीयता को उनकी रचनाओं में से समाज सम्बन्धी आधार समस्याओं पर किये गये विचार क्रमपूर्वक लिख दिये हैं। सहज बोधगम्य ढंग में प्रेमचन्द की रचनाओं के ढांचे में मिलने वाले विविध तत्व हमें यहाँ मिलेंगे।

ग्यारह अध्याय हैं। पहला अध्याय आदर्श और यथार्थ है। इसमें इन दोनों पहलुओं पर प्रेमचन्द की दृष्टि से विचार किया गया है। दूसरा है 'महाजनी सभ्यता' प्रेमचन्द ने आधुनिक सभ्यता को 'महाजनी सभ्यता' नाम दिया है। जमींदार, राजकर्मचारी, महाजन उनके स्तम्भ हैं। आधुनिक शिक्षा उसकी जड़ें जमाने वाली है। तीसरा अध्याय-राजसत्ता के स्तम्भ: इसमें राजा महाराजाओं के चित्रण का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। 'राजा अपनी वासनाओं को छोड़ और किसी के गुलाम नहीं होते।' चौथे में 'जागीरदारी सभ्यता के ध्वंसावशेष' जमीदारों—उनके व्यवहार के मुख्य तत्व धर्म तथा राजनीतिक आन्दोलन के प्रति स्वार्थ साधन की सीमा तक सहानुभूति और ढोंग का परिचय मिलता है। पुराने और नये प्रकार के जमींदारों का भेद भी स्पष्ट होता है। पांचवें में किसान और उसके शोषक 'हाकिम और जमीदारों' के चित्र उपस्थित किये गये हैं। 'किसानों के चित्रण में प्रेमचन्द हमें भारतीय जन-आन्दोलन के बीचों बीच ला खड़ा करते हैं। यही वह स्थल है जहाँ दमन अपने क्रूरतम रूप में निःसहाय निर्बल किसानों को चूर करता हुआ चलता है। यही वह प्रेरणा केन्द्र भी है जो समाज जन-आन्दोलन को बल देता है।" सातवां अध्याय महाजन सम्बन्धी है। "महाजन सब कहीं; सभी वर्गों में हैं, किन्तु उनके शोषण का घातक सम्बन्ध जितना किसानों से है, उतना औरों से नहीं।" आठवें में 'राजनीतिक आन्दोलन' पर विचार है। कौंसिलों में जाकर रचनात्मक कार्यक्रम कर सकने में प्रेमचन्द को विश्वास नहीं। राष्ट्रीय आन्दोलन से उन्हें आशा थी। पर राष्ट्रीयता पूँजीवाद की समर्थक हो तो वे उसका विरोध करते हैं। 'राष्ट्रवाद के अभिशाप से बचने के लिए एक ही चारा था 'समाजवादी'। पर वे कट्टर समाजवादी न थे। प्रेमचन्द ने अहिंसा को नीति के रूप में ग्रहण किया है। उसका अर्थ निष्क्रियता नहीं। नवां अध्याय 'समाज के बहिष्कृत' के सम्बन्ध में है समाज के दलित चमार, मेहतर आदि के सम्बन्ध में। 'उनमें गंदगी है, घिनौनापन है, अमानुषिकता है, आलस्य है, चोरी शराब के दुर्गुण हैं, मरे जानवरों के वे माँस खाते हैं, परन्तु क्यों? इसलिए कि समाज का उच्च वर्ग इसी कोटि के पाप करने के लिए स्वच्छन्द है।' दसवाँ अध्याय है 'समाज की मर्यादा'। प्रेमचन्द के समाज-सुधार का केन्द्र था 'परिवार'। परिवार की समस्याओं और उसकी मर्यादा की रक्षा का क्या रूप प्रेमचन्द में है वह यहाँ हैं। ग्यारहवां अध्याय 'प्रेमचन्द की कला' पर है, और बारहवाँ 'परिशिष्ट' है जिसमें प्रेमचन्द के विचार संकलित हैं। पुस्तक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्द का रूप स्पष्ट होता है, यह दूसरी बात है कि पुस्तक का दृष्टिकोण प्रेमचन्द को समग्र प्रेमचंद की भाँति देखने का नहीं, वरन अधुनातन विचार-प्रणाली के अनुसार वर्ग-विभाजन कर, प्रत्येक वर्ग के सम्बन्ध में उन्होंने क्या चित्रण किया है इसे उपस्थित करने का है। प्रेमचंद में किसान, जमींदार, महाजन, हाकिम, अछूत··· सभी आये हैं, प्रश्न यह है कि क्या वे अपने वर्ग को ही उपस्थित करते हैं, या उसके अतिरिक्त भी कुछ और? सम्भवतः यह आलोचना 'प्रगतिवादी' आलोचना कही जायगी; जैसे वर्ग-वर्ग ही है मानव है ही नहीं। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है, शैली में प्रवाह है प्रसाद है।

—सत्येन्द्र

युग और साहित्य—लेखक-श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी। प्रकाशक-इण्डियन प्रेस, प्रयाग। मूल्य २)

लेखक का इरादा इस पुस्तक द्वारा "युग-द्वन्द्वों और तज्जनित भावी सम्भावनाओं को अपने साहित्य के माध्यम से" उपस्थित करने का है। वर्तमान काल में राजनीति और समाज के विकास से साहित्य में क्या-क्या प्रभाव और प्रतिक्रियाएँ हुई—इनका अध्ययन करने की चेष्टा की गयी है। पुस्तक तेरह अध्यायों में विभक्त है—पर वास्तव में, जैसा कि स्वयं लेखक ने कहा है, उसका "इतिहास के आलोक में" शीर्षक लेख ही मुख्य है और बाकी उसी के पूरक हैं। कुछ युग-व्यक्तियों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, यथा—प्रसाद, प्रेमचन्द, निराला, पन्त, महादेवी।

इस पुस्तक का महत्व और वैशिष्ट्य यह है कि इसमें सर्व प्रथम साहित्य को समाज की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया के रूप में जाँचा गया है। अब तक हिन्दी आलोचना की धारित्री साहित्य ही रहा है; देश और काल की परिस्थितियों को अमहत्वपूर्ण समझ कर हम अब तक एक स्वनिर्मित शून्य में ही रचनाओं के गुण-दोषों की पड़ताल करते आये हैं। यों बारीकियाँ निकालना आलोचक का कर्त्तव्य रह गया है, और समाज से साहित्य का कोई सीधा लगाव नहीं रह गया है। प्रस्तुत पुस्तक हमें इतिहास, समाज और राजनीति की भूमि पर लाती है। द्विवेदीजी की हिन्दी आलोचना को यह महत्वपूर्ण देन है।

पर दुःख यह है कि पुस्तक इतने भ्रमों और अस्पष्टताओं से भरी हुई है कि वह अपने प्रकार की प्रथम पुस्तक तो है पर और कुछ नहीं है। यत्र-तत्र विरोधी वक्तव्यों की भरमार है। यदि उन्हें इकट्ठा किया जाय तो मालूम होगा कि द्विवेदीजी का कोई स्थायी दृष्टिकोण नहीं है—वह क्षण-क्षण अपना 'स्टैण्ड' बदलते हैं। साथ ही, द्विवेदीजी का कवि इन आलोचनाओं में बड़ी गड़बड़ मचा उठा है। वह सौन्दर्य और चमत्कार के लालच में तिल का ताड़ बनाता है, जबरदस्ती विचारधाराओं को या लेखकों को आमने। सामने स्थापित करता है, और फिर आलोचक को अनेक अर्द्ध सत्यों को प्रकाशित करने पर बाध्य करता है। द्विवेदीजी ने भूमिका में लिखा है: "बहन के अभाव में पहली बार मैं काव्य की सरलता से समाज की जटिलता के परिचय में आया हूँ।" पर हमें लगता है कि अभी यह परिचय अपूर्ण ही है, और कि लेखक का हृदय अब भी कवि है वह तटस्थ होकर सत्य-शोधक ही नहीं है। इस प्रकार आलोचना में चमक और तीव्रता तो आ गयी है, पर सचाई पीछे रह गयी है। इस प्रकार के वाक्य यथा:—"प्रसादजी मध्ययुग के यदि राज-संस्करण थे तो प्रेमचंद प्रजा-संस्करण"; या "हमारे वर्तमान काव्य-साहित्य में निराला का वही स्थान है, जो रीतिकाल में आचार्य कवि केशवदास का"; या उस समय (नव-संसार में) एक साहित्यिक का महत्व किसी डिक्टेटर या राष्ट्रपति से कहीं अधिक होगा।"—मेरे कथन की पुष्टि करते हैं।

द्विवेदी के लिए समाजवाद दलदल सिद्ध हुआ है? जब-जब वे उसमें पड़े हैं—तो फँस गये हैं। समाजवाद के सम्बन्ध में उनके भ्रामक वक्तव्यों को पढ़ कर उतना ही आश्चर्य होता है जितना उनके अंग्रेजी शब्दों के प्रयोगों पर। वह भी यहाँ तक कि कभी अगर ठीक बात भी करते हैं तो लग आता है कि यह तुक है, विचारपूर्वक पाया गया निष्कर्ष नहीं। गांधीवाद से (यद्यपि हमें संदेह है कि लिबरलिज्म और फैसिज्म के अतिरिक्त यह और कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, और कि यह केवल एक राजनीतिक मोर्चा है जिसमें धर्म, नैतिकता और अन्धविश्वासों का दुरुपयोग (exploitation) किया जा रहा है।) आपको बहुत प्रेम है। उसका सहारा लेकर आप चले हैं और येन केन प्रकारेण सब तरह से उसकी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए तुल गये हैं। जो लोग समाजवाद को जानते हैं वे इस प्रकार के वाक्यों को पढ़ कर बिना आश्चर्य में आये नहीं रह सकेंगे यथा "समाजवाद का संयमहीन उपभोग मनुष्य को सम्पन्न पशुता की ओर ले जा सकता है"। "स्वाधीन भारत का स्वरूप तो समाजवादी होगा किंतु उसका निर्माण रूस की तरह कोरमकोर राजनीतिक आधारों पर न होकर नैतिक संवेदनशीलता द्वारा होगा।" "इनका (समाजवादियों का) लक्ष्य एकदम राजनैतिक है जब कि कांग्रेस एक नैतिक संस्था भी है।" और "समाजवादी कार्यक्रम द्वारा जनता, व्यापारिक प्रतिद्विन्द्वता में पड़ कर अपने तथ्य में अर्थ-प्रधान हो जायगी उसकी यही प्रतिद्वन्दता उसे समाजवादी से साम्राज्यवादी भी बना सकती है।"

जहाँ तक एतिहासिक अध्ययन का सम्बन्ध है, द्विवेदी जी ने काफी परिश्रम किया जान पड़ता है और देश के राष्ट्रीय आन्दोलन का अच्छा व्यौरा दिया है पर न जाने किस धुन में वे भावावेश में बह जाते हैं, आलोचक की दृष्टि को खो बैठते हैं और अजीब वक्तव्य देने लगते हैं। लिवरलों को साम्प्रदायिक बताना, समाजवादियों को देशद्रोही बताना और गांधीजी को सदा उचित बताना यह सिद्ध करता है कि उनका धरातल अभी बौद्धिक नहीं है। संस्कृति को चिर स्थायी कहना इस बात का द्योतक है कि वे मार्क्सवाद के implications को नहीं समझते।

व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की भी चेष्टा की गयी है, पर ग्रन्थों और पुस्तकों, दृष्टिकोणों या विचारों के आधार पर तुलना न कर द्विवेदीजी ने हवा में बातें की हैं। इस प्रकार के ऐच्छिक मत (arbitrary judgement) आलोचना में कोई स्थान नहीं रखते हैं, हाँ काव्य में रख सकते हैं।

—स्वदेशाभरण

प्रबन्ध प्रतिमा—लेखक श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—प्रकाशक—लीडर प्रेस, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या ३४५, मूल्य २)

कवि को चिन्तनशील होना आवश्यक है। निराला जी में कवि कर्म का यह आवश्यक अङ्ग पूर्णरूपेण वर्तमान है किन्तु आपके चिन्तन में कुछ निरालापन है। प्रस्तुत पुस्तक में निरालाजी के धर्म, राजनीति, समाज और साहित्य सम्बन्धी विचार संग्रहीत हैं। ऐसे संग्रह में एक-सूत्रता तो मिलना कठिन है किन्तु कुछ बातें इन लेखों में प्रमुख रूप से दिखाई पड़ती हैं—(१) विचार-स्वातन्त्र्य जो कहीं-कहीं उच्छृङ्खलता की सीमा को छू लेता है। (२) वैयक्तिकता जिसमें आत्मश्लाघा की गन्ध आने लगती है। (३) भाषा में गति और बल जिसके द्वारा लेखक के भावावेश और अनुभूति की तीव्रता का पता चलता है। (४) हिन्दुस्तानी के खिलाफ हिन्दी से प्रेम। (५) राजनीतिक सत्ताधारियों की साहित्यिक उदासीनता और अल्पज्ञता के प्रति विद्रोह। (६) हिन्दी तथा बङ्गाली के प्राचीन कवियों के प्रति श्रद्धाभाव किन्तु उसी के वर्तमान युग के बङ्गालियों के प्रान्तीय भाव से असन्तोष और रवीन्द्र बाबू के प्रति प्रतिस्पर्धा भाव। (७) शृङ्गारिक कविताओं के तथा अन्य कविताओं के आध्यात्मिक अर्थ लगाने की ओर प्रवृत्ति। निरालाजी शरीर में चक्र होने के कारण रामायण के सात सोपानों का होना सार्थक बतलाते हैं, उसी कारण मैंने भी उनके लेखों में सात विशेषताएँ बतलाई हैं।

चरखा में छठी बात के अन्तिम भाग का परिचय मिलेगा। गांधी और जवाहरलाल नेहरू में पाँचवीं और छठी बात का आभास मिलेगा। हिन्दी के उपन्यासों में निरालाजी केवल प्रेमचन्दजी के ही कार्य को स्वीकार करते हैं। शेष लोगों पर देश की दासता का प्रभाव है। इसलिए वे ऊँचे नहीं उठ सके हैं। निरालाजी वर्तमान युग में केवल शूद्रों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं और वर्ण समीकरण के पक्ष में दिखाई पड़ते हैं। मेरे गीत और कला की व्याख्या मेरी समझ से बाहर है। चण्डीदास और विद्यापति दोनों की महत्ता स्वीकार करते हुए वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यापति को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। पौराणिक नाटकों के लिए निरालाजी अपनी पंचवटी को भाषा का आदर्श मानते हैं। मैं भी बहुत दिन पूर्व इस निश्चय पर पहुँच चुका था। जोशी बन्धुओं ने रामायण में विरह का आधिक्य बतलाया है। उसकी कथा मानव जीवन के विरह की प्रतीक है। निरालाजी इस से सहमत नहीं। मैं समझता हूँ रामायण की कथा के कई अर्थ लगाये जा सकते हैं। उनमें से एक जोशी बन्धुओं का भी है और एक निरालाजी का भी।

पीटी हुई लकीर से हट कर चलने का आनन्द लेने के लिए यह पुस्तक अवश्य पठनीय है। इसमें विचार-स्वातन्त्र्यपूर्ण जोरदार शैली का परिचय मिलता है।

—गुलाबराय।

कविता

भैरवी—रचयिता–श्री सोहनलाल द्विवेदी, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या १३२, मूल्य २)

भैरवी में श्री सोहनलाल द्विवेदी की ३७ राष्ट्रीय कविताएँ संग्रहीत हैं। यद्यपि 'निपुण गायकों की रानी' हिंदी कवियों द्वारा एक-से-एक सरस मधुर राग सुनती है पर द्विवेदीजी की भैरवी का स्वर जागृति के इस उषाकाल में अत्यंत स्वाभाविक, प्राणोत्कर्षक एवं पूत है।

द्विवेदीजी की सभी कविताएं देश प्रेम एवं राष्ट्रोन्नति की आकांक्षा से भरी हुई हैं। हम किसी कलाकार के अकृत्रिम देशप्रेम का निर्णय जन्मभूमि के प्रति उसकी ममता, देश का मस्तक ऊंचा करने वाले महापुरुषों के प्रति उसकी श्रद्धा, देश निवासियों के हृदय में बल-संचार करने वाली उसकी वाणी के निर्भय घोष एवं अपना जो कुछ है उसके प्रति उसके स्नेह सने दृष्टिकोण से करते हैं। इस कसौटी पर द्विवेदीजी का हृदय खरा उतरता है। प्रारंभ में ही उन्होंने बंदिनी मा को स्मरण किया है और 'अनुनय' कविता में आज के कवि से जो 'अलकों में उलझ कर' रह गया है भर्त्सना भरे शब्दों में कहते हैं:—

विश्व के इतिहास में
उल्लेख क्या होगा तुम्हारा?
तुम रिझाते रूप थे
जब पिस रहा था देश सारा!

अतीत कालीन महापुरुषों में भगवान बुद्ध, गोस्वामी तुलसीदास और महाराणा प्रताप को स्मरण किया है, इस युग के महात्मा गांधी, महामना मालवीयजी एवं पंडित जवाहरलालजी को। महात्मा गांधी को युगदृष्टा एवं युग-स्रष्टा कहते हुए 'युगावतार' के रूप में देखा है और उनके प्रभाव को सफलता से चित्रित किया है:—

चल पड़े जिधर दो डग, मग में,
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गए कोटि दृग उसी ओर।

देश की वास्तविक दशा को समझने के लिए 'आज रुद्ध है मेरी वाणी' पढ़नी चाहिए, जिसमें सामान्य मनुष्य, किसान, भिक्षुक, जेल में पड़े वीरों को पाठकों के सामने जीते-जागते रूप में खड़ा किया है। इसी प्रकार जहाँ गावों का वर्णन है वहाँ टूटे-फूटे कच्चे घर, खेत, फटे वस्त्र, हड्डी–पसली के शरीर, हृदय में वेदना लिये, ऋण से पिसे शिक्षा से हीन पर भक्त किसान दिखाये गये हैं। कवि उनके उत्थान की तीव्र आकांक्षा प्रकट करता है और जोश में आकर उन्हें आंधी बनने के लिए निष्ठुर शासन में आग लगाने के लिए और महाक्रान्ति का राग गाने के लिए भी कहता है। उसकी दृष्टि में यह होना चाहिए:—

राजतन्त्र के इस खँडहर पर
प्रजातन्त्र के उठें नव शिखर
जनगण जय!
जनमत जय!
बढ़ो अभय।

त्रिपुरी कांग्रेस (यद्यपि इसमें तीन स्थलों पर छन्द भङ्ग हो गया है) तथा दांडी यात्रा के सुन्दर वर्णन, हरिजन आन्दोलन की क्षीणध्वनि और खादी प्रशंसा भी इन रचनाओं में है पर उद्‌बोधन के कई गीत मार्मिक और स्फूर्ति-वर्द्धक हैं। इन्हें पढ़ कर अपनी शक्ति से अपरिचित प्राणियों की शिराओं में रक्त का संचार तीव्रता से होगा।

इस राष्ट्रीय कवि की विशेषता है पराधीनता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न क्षोभ को खुले परन्तु कलात्मक ढंग से व्यक्त करना। ऐसे निर्भीक कवि का जितना स्वागत हो थोड़ा है। भाषा की सरलता और भावों की मार्मिकता के संयोग से उसकी वाणी बिजली-सी हृदय में उतरती है। द्विवेदीजी का नाम निस्सन्देह हिंदी साहित्य के इतिहास में अपने विषय की महत्ता के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय होगा।

वैकाली—रचयिता-श्री जगदम्बाप्रसाद मिश्र "हितैषी" प्रकाशक-शारदा सेवक सदन लखनऊ। पृष्ठ संख्या ६८, मूल्य १॥)

'वैकाली' में 'हितैषी' जी की फुटकल प्रसंगों पर ३५ कविताएं हैं।

अधिकतर रचनाओं में प्रकृति का सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। संध्या, प्रभात; बादल, कोयल; वर्षा बसन्त को कवि ने वर्णन के लिए चुना है। वातावरण का चित्रण सर्वत्र सधी तूलिका से अङ्कित हुआ है। कवि ने कहीं प्रकृति की किसी वस्तु को उद्देश्य सिद्धि के लिए भी चुना है जैसे कोयल को; और कहीं किसी ऋतु के सहारे साधक की विह्वलता को चित्रित किया है जैसे 'निराश्रय पथिक' में। 'ऋतुराज के दरबार' में तो यद्यपि यहाँ से वहाँ तक कल्पना का प्राधान्य है, पर 'त्रिवेणी से' कविता में उसे जो विरह विधुरा का रूप मिला है उससे गहरी भावुकता का परिचय मिलता है। वीभत्स दृश्यों का सफल चित्रण संदेह के सहारे कैसे करते हैं "यह प्रातःकालिक संदेह" में देखना चाहिए। सब कुछ होने पर प्रकृति को वे सेवा भाव से प्रेरित देखते हैं। 'त्रिवेणी' और 'ऋतुराज' की कुछ पंक्तियां देखिए:--

(अ) हो रही हो अश्रु-विगलित-वपुष रो-रो मौन
निठुर विश्व-अरण्य में इसको सुनेगा कौन?

(आ) कहीं लताएँ गल-भुज डाले
वर तरुओं में मिलती हैं।
पर - पति - पवन - स्पर्श किए
हट दूर प्रकम्पित हिलती हैं॥

'बच्चन'जी की मधुशाला के खुलने से एक काम यह हुआ कि उसने स्थान-स्थान पर साहित्यिक अखाड़े खुदवा दिये। मधुशाला के खुलते ही विजयाशाला, टी शाला, ताड़ीशाला खुल गयीं। कहीं-कहीं तो हलाहल की भी प्रशंसा होने लगी। 'वैकाली' की अन्तिम ताड़ीशाला आदि तीन कविताओं में खंडन-मंडन की प्रवृति के दर्शन होते हैं। पर ये रचनाएं इसलिए प्रशंसनीय हैं कि इनमें सांकेतिक अर्थ का निर्वाह एक छोर से दूसरे छोर तक हुआ है। वैसे तृष्णा की तृप्ति से असंतोष और अद्वैतजन्य आनन्द से संतोष उसकी अन्य कविताओं की भी विशेषता है, पर इनमें तो कवि ने जड़वादियों की वासना को खूब फटकारा है:--

अघ आलय तीर्थ नहीं होगा
वेश्यालय तीर्थ नहीं होगा
शत शत गंगा धोए तो भी
मदिरालय तीर्थ नहीं होगा।

'वैकाली' की भाषा प्रौढ़ और चिकनी मीठी है, जैसे पत्थर का टुकड़ा पहाड़ों से टूट कर जल मार्ग में बहुत दूर पर चिकना होता है, खड़ी बोली की उस दूरी का पता इन रचनाओं से भी मिलता है। 'बनबत' कविता में छन्द का ढाल ऐसा है कि जैसे कवि बिना प्रयत्न के लिखता चलता है वैसे हम विना प्रयत्न के खिसकते चलते हैं। 'वैकाली' की 'अघोर' कविता बहुत सुन्दर बन पड़ी है। अघोर के चारों ओर का वातावरण उसके कर्म के अनुरूप ही है। वह भी मनुष्य है। परिस्थिति मनुष्य को क्या से क्या बना देती है यह वाह्य दृष्टि रखने वाले बहुत कम जानते हैं। सरसता के अतिरिक्त भावों को इस सशक्त ढंग से व्यक्त किया गया है कि जिससे कवि के भी दृढ़ व्यक्तित्व का आभास मिलता है। हम "हितैषी" जी की और अधिक रचनाओं को देखने के लिए उत्सुक हैं।

उर्दू काव्य की एक नई धारा—सम्पादक—उपेन्द्रनाथ 'अश्क'। प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद। पृष्ठ १७५, मूल्य १)

इस संग्रह-ग्रन्थ में श्रीउपेन्द्रनाथजी 'अश्क' ने मुख्यतः उर्दू के मुसलमान कवियों की उन नज्मों और गीतों का संग्रह किया है जिन पर हिन्दी काव्य-धारा का प्रभाव पड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पुस्तक के ८० पृष्ठों पर एक सुन्दर भूमिका का अधिकार है।

इस संग्रह के बहुत से लेखक उर्दू के ख्यातनामा कवि हैं। अतः यह न समझना चाहिए कि हिन्दी के जिस रूप को उन्होंने अपनाया है वह मनोरञ्जन के लिए। नहीं हृदय की प्रेरणा और समय के प्रभाव से यह सब कुछ हुआ है। उर्दू कवियों को जैसे हम गजलों के दायरे और इश्क की शायरी से मुक्त होकर गीतों और सामान्य प्रकृति तथा देशप्रेम के उन्मुक्त आकाश में विचरण करते देख प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार देश की भाषा और व्यापक-भावों की ओर आकर्षित होते देख कर आह्लादित भी। मेरा अपना विचार है कि इन गीतों पर सिनेमा-संगीत का भी प्रभाव है।

इन उर्दू कवियों ने अधिकतर तो हिन्दी शब्दों का मिलाप किया है। यह बात शीर्षकों तक में देखी जाती है जैसे 'परमात्मा के हजूर' में। कहीं पंक्तियाँ तक हिन्दी की हैं जैसे—

ए देवी का रूप पुजारन
तेरा रूप अनूप पुजारन।

—सागिर निजामी

इन रचनाओं में भी प्राधान्य तो प्रेम सौन्दर्य और विरह के गीतों का ही है, पर साथ-ही-साथ प्रकृति-सम्बन्धी, ग्राम्य-जीवन से सम्बन्धित, प्रगतिशील रचनाएँ, राष्ट्रीय, भक्ति एवं वैराग्य के गीत भी हैं। भावों का चित्रण प्रसंगानुकूल और उपयुक्त है। मकतल के ऐसे वर्णनों—

कमर से बाँध कर खंजर वे आए हम भी देखेंगे।
बला से जान जायेगी तमाशा हम भी देखेंगे॥

का सर्वथा अभाव है। अपितु भारतीय भावों के पोषक दृश्य ही अधिक हैं। कृष्ण के प्रेम का जादू इन कवियों के सिर पर भी चढ़ कर बोला है। उस काले में कुछ ऐसी ही बात थी। उर्दू वालों में भाव में लिपटी चट से चामत्कारिक बात कहने का जो गुण है वह इन कविताओं में न हो, यह नहीं हो सकता। कुछ सुन्दर नमूने देखिए—

(अ)— है इक नजर कदम पर
ओ, इक कदम नजर पर
ओ फूल चुनने वाली।
तू फूल चुन रही है
ओ फूल झड़ रहे हैं

—"सागिर" निजामी।

(आ)— हवा जो गाँव को महका रही है
मेरे मैके से शायद आ रही है
घटा की ऊदी-ऊदी चुनरियों से
मेरी सखियों की बू-बास आ रही है।

—"अख्तर" शेरानी।

(इ)— वहीं ले चल मेरा चर्खा
जहाँ चलते हैं हल तेरे।

—"फाखिर" हरियानी।

(ई)— रहे रात को रात सिधार गए।
मुझे सपना समझ के बिसार गए।
मैं थी, हार गले से उतार गए।
मैं दिया थी जिसे वे बुझा ही गए।
मेरे जी को वे आके लुभा ही गए।

सभी रचनाओं में एक प्रकार की सरलता है जो मुग्धकारी है; पर बहुत सी रचनाओं के भाषा सम्बन्धी दोष बहुत मोटे और प्रत्यक्ष हैं। इन दोषों की इन सहृदय मुसलमानों से हम आशा करते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में ये दोष न होते तो आश्चर्य होता। ये कवि हमारे धन्यवाद के पात्र हैं क्योंकि इन्होंने यह सिद्ध किया है कि कवि लोग साम्प्रदायिक संकीर्णता से परे हो सकते हैं और उपेन्द्रनाथजी हमारी बधाई के पात्र हैं क्योंकि उन्होंने ऐसे लोगों को एकत्र किया है। हम आशा करते हैं कि उर्दू काव्य की यह नई धारा अपने उद्गम स्थल से बह कर हिन्दी के उस संगम-स्थल पर आएगी जहाँ उससे एक होकर वह उसे पुष्ट करेगी।

—विश्वम्भर "मानव"।

उपन्यास

सात इनकलाबी इतवार—मूल लेखक-रेमन सेंडर। अनुवादक—नारायणस्वरूप माथुर। प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस। पृष्ठ संख्या ५३७, मूल्य तीनों भागों का १॥)

"इन पृष्ठों में जिस यथार्थता, जिस एक मात्र सत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दिखाने का प्रयत्न मैंने किया है, वह है जीवित मानवता का सत्य जिसका दिग्दर्शन स्पेनी इनकलाब की एक संक्षोभ पूर्ण घटना में होता है।" इन शब्दों में रेमन सेंडर ने अपने बृहत् क्रान्तिकारी उपन्यास का परिचय दिया है। स्पेन की क्रान्ति आधुनिक इतिहास की एक स्मरणीय और महत्वपूर्ण घटना है। यद्यपि आज स्पेन की जनता विश्वासघात और विदेशी आक्रमण के सबब से दलित है। उसके संग्राम की वीर-गाथा भविष्य में संसार को प्रेरणा देती रहेगी। रेमन सेंडर की कहानी में इस इतिहास का एक पृष्ठ सजीव होकर हमारे नेत्रों के सामने आता है।

मजदूरों की एक सभा को पुलिस ने गोली चला कर भंग किया, इस घटना में तीन मजदूर नेता शहीद हुए। उनके मातम में एक आम हड़ताल जारी हुई जिसने स्पेन की बूर्जवा सत्ता को हिला दिया। यह हड़ताल सात दिन चली और इसके बीच अनेक मजदूर मारे गये, दंडितो हुए और स्पेन की राजनीति में एक हड़कम्प पैदा ह गया। यह सात दिन की छुट्टी मजदूरों के 'सात लोहित रविवार' थे। सातवें दिन मैड्रिड में काम मामूली ढङ्ग से जारी हो गया। यह मजदूरों की पराभव थी। इसके सम्बन्ध में कथा-नायक सामर कहता है:

"इस समय सरकार ने हमें परास्त कर दिया है, किन्तु दो-चार महीने के भीतर ही शहीदों का खून रंग लायगा।···हमारी संस्था की सब से बड़ी खूबी यही है कि वह कभी जीती नहीं जा सकती। जितना अधिक हमारा रक्त बहाया जाता है उतनी ही अधिक हमारी शक्ति बढ़ती जाती है।···सरकार के लिए एक बार परास्त होकर फिर सिर उठाना असम्भव है और हम जितनी बार पराभूत होते हैं, मजदूरों के उतने ही अधिक समूह हमारे पक्ष में आ मिलते हैं।"

"सात इनकलाबी इतवार" क्रान्तिकारी कला का उत्कृष्ट नमूना है। न सिर्फ बूर्जवा संस्कृति पर यह कठोर आघात है, किन्तु साथ ही साथ क्रान्ति की स्पष्ट रूपरेखा भी। इस उपन्यास में बल, वेग, कोमलता, कठोरता, विनोद, व्यंग, मृदु उद्गार, विज्ञान, दर्शन और क्रान्ति की सफल टेकनीक एक साथ मिलते हैं। किन्तु पुस्तक की कठोरता से बूर्जवा संस्कारों के पाठक बिदक भी सकते हैं। रेमन सेंडर ने लिखा है—"मेरी पुस्तक के पात्र सामाजिक रूढ़ियों को नहीं मानते, ललित वाक्य नहीं बोल सकते और वह कभी भी सम्मानित करदाता नहीं रहे हैं।"

यह कला "ऐसे समाज का मधुर स्वप्न" देखती है "जिसका मूलाधार जीवित यथार्थताएँ हों न कि ऊँची आत्मा तथा उच्च मस्तिष्क सम्बन्धी असत्यताएँ।" इसके विपरीत: "मध्य श्रेणी के व्यक्ति के लिए तो यह थियेटर मात्र ही हैं न! खेल-तमाशा, घुटने, जांघें। नाटक—'साधारण कानून' की सीमाओं के भीतर दुःखान्त गृह-घटनाएँ! सुखान्त घटनाएँ—मुलायम चादरों और मधुर शब्दों की सेटिंग में सरस व्यभिचार।" पूँजीवादी संस्कृति की आलोचना मजदूर वर्ग कठोर शब्दों में करता है: "न तो हमें महाराजों का इतिहास चाहिए और न उनके दरबारों की शृङ्गरात्मक कला। हमारे लिए इतिहास और कला दोनों निरर्थक हैं।" "उस संसार में यहाँ से बड़ा अन्तर है। वहाँ रेशमी वस्त्र हैं और रङ्ग-विरङ्ग प्रकाश है। वहाँ के लोग कहते हैं 'आपकी असीम कृपा से' कैसा 'हृदयग्राही' और कभी किसी बात का सीधे-सादे 'हाँ' 'ना' में उत्तर ही नहीं देते।"

उपन्यास में एक समस्या अराजकतावादी और समाजवादी संघर्ष की है। अराजकतावादी किसी भी प्रकार के शासन अथवा नियंत्रण में विश्वास नहीं करते। स्पेन में इनकी शक्ति बढ़ी-चढ़ी थी। सेंडर इसका कारण "व्यक्तियों तथा जन समुदायों में जीवन-शक्ति का अतिरेक" बताता है। सामर मार्क्सवादी है और उसके पास क्रान्ति-संचालन की एक संपूर्ण स्कीम है। किसी भी आन्दोलन के लिए शक्ति-संगठन की आवश्यकता होती है। अराजकतावादी प्रतिबन्ध नहीं मानते। यही कारण कारागार-आक्रमण की विफलता के पीछे है।

वूर्जुवा कला की कसौटियों पर कसने से भी—"सात इनकलाबी इतवार" एक उच्चकोटि का उपन्यास है; इसका विशाल 'कैन्वैस' कथानक का प्रवाह और उद्दाम वेग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्र-चित्रण की सफलता, अनेक मधुर गहन भावों का उतार-चढ़ाव, कथा शैली में एक परिपक्वता। यहाँ जीते-जागते मानवी पात्रों का एक पूरा जमघट है सामर, बिलाकम्पा, अम्पारो, स्टार, फाऊ, क्लेटा, इजबेला और भी अनेक मजदूर, एजेण्ट, अफसर। इसकी अनेक वर्णित घटनाएँ स्मृति पर पत्थर की लकीर-सी खिंच जाती हैं। इसके पात्र अमर बनेंगे: सामर, अविकल क्रान्तिकारी जो बूर्जुवा प्रेम को त्याग लक्ष्य की ओर तीर-सा जाता है किन्तु कोमल भावों का भरा मनुष्य है; अम्पारो, स्नेह की पुतली, संस्कारों से विवश; स्टार, क्रांन्ति की सच्ची सहचरी। इन पात्रों के चित्रण में सेंडर ने मनुष्य के जटिल निगूढ़तम भावों को स्पर्श किया है।

सेंडर यथार्थवादी है। उसने जीवन का नकशा खींचा है। उसके हृदय में काव्य उमड़ रहा है। किन्तु उस काव्य का आधार वैज्ञानिक सत्य है, मिथ्या आध्यात्मिकता नहीं।

एक उदाहरण लीजिए :"शहतीर की मोटाई एक फुट से अधिक है और आठ हजार मनुष्यों का बोझ इसको मालूम भी न होगा। शहतीर वाकई नायाब है। विस्के की भट्ठियों में ढला हुआ जिसको जल्दी-जल्दी चलने वाले हथौड़े ने सुदृढ़ तथा लचकीला बनाया। धातु के कारीगरों के कौशल का यह शहतीर एक उत्कृष्ट नमूना है। इसके तंतु इतने सुदृढ़ हैं कि वह हजारों आदमियों के भार से जरा भी टस से मस न होगा...। जब वह कारखाने में ही था तभी उसने मजदूरों को वही भाषा बोलते सुना है—वही जो उसकी भाषा है।..."

रेलों के 'रोमान्सों' से सेंडर विशेष प्रभावित है और पुस्तक में एक पूरा परिच्छेद रेलों के सौन्दर्य पर लिखा गया है। स्टार कहती है : "हम लोगों ने फौलाद के जल में स्नान किया है।"

संक्षेप में "सात इनकलाबी इतवार" की गणना हम गोर्की की 'माँ' और शैलोखॉफ की डॉन-गाथा सरीखी अमर रचनाओं में करते हैं, जो सिर्फ मनोरंजन का साधन ही नहीं, वरन् क्रान्ति का अस्त्र भी हैं।

—प्रकाशचन्द्र गुप्त

वे अभागे—लेखक—श्रीअनूप, साहित्यरत्न। प्रकाशक—युगान्तर साहित्य मन्दिर, भागलपुर। मूल्य २॥)।

प्रस्तुत उपन्यास का शीर्षक कुछ भुलावे में डालने वाला है क्योंकि उससे हम जो आशा करते हैं वह हम पाते नहीं। प्रधान पात्रों में से केवल नवीन जो नायक भी है ही अभागा कहा जा सकता है। लेखक ने मजदूरों और दलितों के लिए 'वे अभागे' सम्बोधन का प्रयोग किया है—पर इस उपन्यास में उनकी किसी भी समस्या पर प्रकाश नहीं डाला गया है। लेखक ने चेष्टा की है कि वह उस दल में स्थान पाये जो आज हमारे यहाँ प्रगतिशील कहा जाता है—पर शायद वह उसके बौद्धिक बैकग्राउण्ड को पाने में असमर्थ रहा है। नवीन एम० ए० का विद्यार्थी है—और बहुत ही दरिद्र है—वह सहता भी है पर उसमें समाज के प्रति आग हम नहीं पाते। उसका मन किसी विद्रोह के लिए समर्पित हुआ हो—ऐसा कहीं भी नहीं लगता। जहाँ उसकी अपनी आर्थिक दशा सुधरती है—वहीं वह भूल जाता है कि उसे क्रियाशील होना है। इसलिए उसका जो दुःख है और असन्तोष है वह पूर्णतः स्वार्थ से भरा है। एक बार भिखारी की लड़की राधा पर तरस खाकर वह उसे अपने साथ ले आता है और विद्यादान देता है—जेब कट जाने पर पाकिटमार के प्रति सहानुभूति कर उसे छुड़ा देता है—पर उसकी सभी बातें स्तर पर और क्षणिक लगती हैं—मन ही मन कोई सैद्धान्तिक विद्रोह-विकास नहीं होता। उसकी अपेक्षा तो पाकिटमार ललित, जो बेकार ग्रेजुएट है, अधिक विद्रोही है, उसका दल भी है जो कहीं अधिक सक्रिय है। पर उसका जिक्र केवल पृष्ठभूमि में किया गया है।

संक्षेप में कहानी यह है कि नवीन जो गरीब है और और जिसके एक केवल माता है—बड़ी कठिनाई से विद्याध्ययन कर रहा है। पास होकर वह बेकार रहता है—घर बेच देना पड़ता है, माँ की मृत्यु हो जाती है—और वह भिखारी की लड़की राधा दोनों उपवास करते हैं—खूब कष्ट सहते हैं। अन्त में वह लेखक बनता है और 'बीसवीं सदी' के सम्पादक की कृपा से उसका कष्ट दूर होता है। राधा को उसने पढ़ा लिया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उसकी विगत कहानी बड़ी करुण है और भिखारियों का दर्दनाक वर्णन करने में लेखक वास्तव में सफल हुआ है। राधा और नवीन की देख-रेख में सम्पादक के प्रयत्नों से एक आश्रम की स्थापना होती है । जिसमें पाकिटमार ललित भी अपने दल से कुछ आर्थिक सहायता देता है।

नवीन की मुलाकात मणि नामक एक धनी लड़की से है—जो उच्छृङ्खल और रूपवती है। किशोर नामक एक युवक के फन्दे में वह पुरी को जाती है—वहाँ किशोर की अनाधिकार चेष्टा से वह कुपित होकर भाग आती है। नवीन को आश्रम का कार्य करते देख वह और उसकी मां—जो उसकी अकेली आभिभाविका है, बड़ी प्रसन्न होती हैं। माँ सहसा बीमार होती है और मरते समय वह नवीन से मणि का विवाह कर देती है। मणि का बहुत-सा रुपया आश्रम को मिलता है।

नवीन को आश्रम में गरीबों की दशा को देखकर पहले करुणा और फिर क्षोभ और फिर क्रोध आता है। दलित वर्ग अपना सुधार भी नहीं चाहता यह बात उस जैसे भावुक को विरक्त करती है । उनकी कुछ गलीज हरकतों से मणि को घृणा होती है—वह असंतुष्ट होकर नवीन से लड़ कर अलग हो जाती है—और किशोर को बुला कर उसके साथ रहती है।

नवीन को सूनापन अखरता है कुछ दिन बाद वह आश्रम छोड़ कर चल देता है। एक अपरिचित ग्राम में पहुँच जाता है। वहाँ एक निर्मल बाबू से उसका परिचय होता है, और वे उसके एक नाटक 'भविष्य' के कलकत्ते में अभिनय की व्यवस्था करते हैं। नाटक सफल होता है, दर्शकों को नवीन का परिचय कराया जाता है कि मणि आकर उसके पैरों पर गिर जाती है।

यों हम देखते हैं कि यह नहीं मालूम पड़ता कि लेखक क्या कहना चाहता है। उसने उन कलाकारों का अनुकरण किया है जो अपनी कलम को स्वच्छन्दता दे देते हैं। पर किसी कारण उसकी कलम उसे कही भी नहीं ले जा पाई है। नवीन को सुधारक बनाया गया है। पर आर्थिक समस्या पर वह एक क्षण भी नहीं सोचता। आश्रम की स्थपाना बहुत पुरानी कल्पना है उससे समाज की जड़ों को दुरुस्त नहीं किया जा सकता—लेकिन भावुकता में पड़ कर यह उसे भी छोड़ कर चल देता है। राधा का उसने उद्धार किया है पर वह व्यक्तिगत बात बन कर रह जाती है। उपन्यास में राधा नवीन को भोजन बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करती।

चरित्र-चित्रण इस अर्थ में दोषपूर्ण है कि लेखक पात्रों को मनमाने कठपुतली की तरह नचाता है जिससे उनके कार्यों में एकता (Consistency) नहीं है। लेखक जब चाहता है तब रुला देता है। पर वह सत्य का भ्रम उत्पन्न करने में सफल नहीं होता, और उसका सारा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण जोड़ (Patch work) लगता है। सभी पात्र अतिभावुक हैं और आवेश में कार्य करते हैं—अपने से ऊपर कोई भी नहीं उठता।

दो तीन स्थानों पर लेखक ने वासन की अभिव्यक्ति का चित्र खींचा है जो कुछ इस तरह किया गया है कि उससे जो घृणा होनी चाहिए वह नहीं होती। मणि को अजीब पहेली बना दिया गया है—जो इस उपन्यास में बड़ी रोमारिटक लगती है।

उपन्यास के कथानक में उद्देश्य का अभाव है और जहां लेखक रोता है वहाँ पाठक नहीं रो पाता।

—स्वदेशाभरण

पतझड़—लेखक—श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' प्रयाग। प्रकाशक—श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', प्रकाशक भारतेन्दु कार्यालय प्रयाग। पृष्ठ २११, मू० १।)

पतझड़ जब आता है तो बसंत निकट समझना चाहिए किन्तु हमारा यह पतझड़ बसन्त की सूचना देते-देते पतझड़ पर ही बस अन्त कर देता है। प्रकृति में जन्म पाने वाला पतझड़ क्षणिक होता है, पर बसन्त के हृदय का पतझड़ चिरस्थायी है।

बालापन के संगी बसन्त और जोना की जीवन-तरङ्गिणी दो विभिन्न धाराओं में बहने लगती है और कालान्तर में कानपुर में होती हुई मिल जाना चाहती है। किन्तु बीच में कंकरीली पथरीली भूमि है और यह दुःख का कारण बनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास की भाषा ललित और आकर्षक है। उसमें काव्य-सुलभ सौन्दर्य की भी अच्छी मात्रा देखने को मिलती है, यथा "डूबते हुए सूर्य की किरनों का सुनहला प्रतिबिम्ब नदी के वक्षःस्थल पर—उद्दंड अपराधी की तरह नाच रहा था। लम्बे शाल तरुओं की काली छाया नदी के जल में—बेहोश शराबी की भांति गिर पड़ रही थी। आकाश के नीले अंचल में विभावरी की आँखों के मोती जहाँ-तहाँ बिखर गये थे। खिले हुए सुमनों के सौरभ से लदी हुई वसन्ती वायु डोल रही थी।" भाषा में दो-एक प्राँतीय प्रयोग भी रह गये है, किन्तु वे ऐसे खटकने वाले नहीं। वस्तुत: चरित्र-चित्रण की मनोरमता के कारण 'पतझड़' हिन्दी में श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी है।

मधुवन—लेखिका-श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर, प्रकाशिका-श्रीमती श्री रामकली देवी, साहित्य-निकेतन, दारागंज, प्रयाग। पृष्ठ २०३, मूल्य १)।

जीवन की साधारण घटनाओं का यह 'मधुवन' साहित्य के लिए अच्छा उपहार है। उपन्यास की नायिकाएँ मातृ-पितृ-हीना करुणा प्रतिकूल परिस्थितियों पर जिस वीरता और धीरता के साथ विजय पाकर स्वयं संतोष प्राप्त करती है और अपने पति को संतोष प्रदान करती है, वे एक सीधा-सच्चा आदर्श उपस्थित करती हैं। स्वाभाविकता उपन्यास का प्राण है, किन्तु मोतीचन्द के शांत हो जाने की ओर संकेत करना लेखिका भूल गयी है।

उपन्यास की भाषा सरल और स्पष्ट है; वह चलती हुई हिन्दुस्तानी से दूर नहीं, यथा—"उसके स्वभाव में कोमलता थी—हृदय में दया थी। उसके अंतरतर में प्यार था। आँखों में शील था उसकी मनोवृत्तियों में प्रेम था। उसके जीवन में सादगी ही थी। सादगी उसका जीवन था। उसके हृदय में सद्भावना थी, दुराभाव न था। उसके अंतःकरण में मोह था, घृणा न थी। वह प्रेम करना जानती थी। लड़ना न जानती थी।"

पन्द्रहवाँ परिच्छेद कुछ बड़ा है। दो-एक स्थानों पर प्रान्तीय प्रयोग की भी छटा है। उपन्यास जगत में ज्योतिर्मयीजी का यह प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है।

—हरिमोहनलाल वर्मा

नाटक

कुलीनता—लेखक-सेठ गोविन्ददास। प्रकाशक-हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कर्यालय, बम्बई। पृष्ठ संख्या ११५, मूल्य १)

नाटक त्रिपुरी राज्य की एक ऐतिहासिक घटना पर लिखा गया है। विजयसिंहदेव ने चण्डपीड़ महा सेनापति के कुचक्र में पड़, पहले तो वीर यदुराय को, जो गोंड था, अकुलीन था और जिसका राजकुमारी रेवा सुन्दरी से प्रेम हो गया था, राज्य से निर्वासित कर दिया। महत्वा-कांक्षी चण्डपीड़ ने महामान्य सुरभी पाठक के परामर्श के विरुद्ध भी महाराज विजयसिंह को कुतुबुद्दीन का मांडलिक बनने के लिए प्रेरित किया। सुरभि पाठक राज्य से भाग गये। यदुराय में कुलीनों के प्रति विद्वेष की आग भड़क उठी। सुरभी पाठक ने यदुराय को क्षत्रिय बनाया। त्रिपुरी को चण्डपीड़ के हाथों से मुक्त कराया। मुसलमानों के आक्रमण से देश की रक्षा करायी और उसकी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखा। अन्त में कर्म से ही कुलीनता है यह घोषित कर विजयसिंह देव ने रेवा सुन्दरी का विवाह यदुनाथ से कर दिया और उसे राज्याधिकार भी दे दिया। स्वयं उन्होंने मुसलमानों के हाथों स्वतंत्रता बेच देने के प्रायश्चित में जल-समाधि ली। उसी समय रेवा सुन्दरी की विदुषी सखी विंध्यवाला ने अपने पति के खड्ग से अपना संहार कर लिया—विंध्यवाला रेवा सुन्दरी की सहायिका थी। उसका पति चंडपीड़ का साथी बना था। उसने पति को समझाया भी कि वह देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़े, चंडपीड़ के षड्यंत्र में सेनापति न बने और यदुराय के विरुद्ध युद्ध न करें। पर उसने न माना। जब उसके पति और यदुराय में युद्ध हो रहा था, विंध्यवाला रेवा के साथ युद्ध-स्थल में पहुँच गयी। उसके पति ने उसे देखा तो उसमें जड़ता आ गयी और मारा गया। विंध्यवाला ने पति के दोष का प्रायश्चित किया कि देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ी, और अब पति के प्राणों को गँवाने में सहायिका होने का प्रायश्चित किया आत्म-संहार द्वारा। इस प्रकार यह नाटक समाप्त हुआ। अन्त में दुःख सुख का अच्छा तुमुल है। कुलीनता में भरे भेद-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव के विरुद्ध, और परतंत्रता के विरुद्ध, यह नाटक है, और स्त्रियों को भी कुछ पुरुषों के साथ करने का इसमें सुझाव है। ऐतिहासिक हो, तो भी सामयिक है। चरित्र अच्छे चित्रित हैं, यद्यपि उनका पूरा-पूरा विकास नहीं दीख पड़ता, ऐसा विदित होता है कि नाटककार चरित्रों को सामने नहीं रखे हुए जितना उस बात को जो वह कहना चाहता है। —सत्येन्द्र

दो एकांकी नाटक (बालिबध और वे दोनों)—लेखक-श्रीसद्गुरुशरण अवस्थी। प्रकाशक भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद। मूल्य ॥≠)

पुस्तक के आरम्भ में एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका है। इसमें भारतीय नाटकों की प्राचीनता दिखला कर यह बतलाया गया है कि भारतवर्ष में एकांकी नाटकों की परम्परा बहुत दिन से चली आती है। रूपकों में भाँड़, व्यायोग, बीथी, प्रहसन आदि एकांकी नाटक ही थे। योरुप में एकांकी नाटकों की परम्परा की विवेचना करते हुए आपने बतलाया है कि मिस्ट्री (mystry), मिरेकिल (miracle), मोरेलिटी प्लेज (morality plage) भी अधिकांश में एकांकी होते थे। एकांकी नाटकों के योरुप में और भी रूप थे। कभी-कभी वे विषादान्त अभिनयों के बोझीले प्रभावों को हलका करने के लिए प्रधान नाटकों के अन्त में 'आफ्टरप्लेज' (ofter plage) के रूप में आते थे और कभी-कभी प्रारम्भ में 'कर्टेनरेजर' (curtain raiser) के रूप में।

मुख्य नाटक का पर्दा तभी उठता था जब कि सम्भ्रान्त और प्रतिष्ठित लोग आ जाते थे। इसी बीच में समय पर आये हुए सज्जनों के मनोरञ्जनार्थ एकांकी नाटकों की योजना की जाती थी।

इनका 'कर्टेनरेजर' (certain raiser) नाम पड़ने का कारण यही था। लेखक महोदय नाटकों में भाव तत्व के साथ-साथ बुद्धि-तत्वों को मुख्यता देने के पक्ष में है।

दो नाटकों में पहला त्रेता युग से सम्बन्ध रखता है और दूसरा वर्तमान युग से। बालि-बध की कथा बहुत पुरानी है किन्तु इस नाटक में रामचन्द्रजी के चरित्र को कुछ क्षम्य और ऊँचा उठाने का उद्योग किया गया है। बालि को केवल सुग्रीव का ही शत्रु नहीं वरन् जनसाधारण का शत्रु दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त उसको अङ्गद द्वारा सूचना (ultematum) भी दिला दी गयी थी कि यदि तुम सुग्रीव से समझौता न कर लोगे तो मार डाले जाओगे। इस नाटक में भी राम का बालि को वृक्ष की ओट से मारना बतलाया गया है। राम ने सच्चे वीर की तरह से इसको अपनी दुर्बलता के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है कि मित्र की सहायता के लिए मैं विवेक को भूल गया।

बालि के अन्तिम समय पर राम का चरित्र अति उदार हो जाता है। इस नाटक की भाषा प्रसादजी की शैली में संस्कृत गर्भित है। दूसरे नाटक में समाज का अत्याचार दिखलाया गया है जिसके कारण कि पाप को छिपाने के लिए अबोध शिशुओं की हत्या होती थी।

कौमार्य में सम्बन्ध हो जाने की इसमें विवेचना की गयी है और एक वृद्धा स्त्री अन्त में यह कहती है कि वह उतनी ही लज्जित नहीं जितनी कि शकुन्तला। इस नाटक में चरित्र-चित्रण की अपेक्षा कौतूहल की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़ने के कारण दो सगे भाइयों में से एक दूसरे भाई की नौकरी करता है। किन्तु अन्त में दोनों एकसी स्थिति पर पहुँच जाते हैं। इस रहस्य का उद्घाटन उनके माता-पिता तथा पाठकों पर तो हो जाता है पर दोनों भाइयों पर नहीं होता यदि ऐसा कर दिया जाता तो शायद नाटक में और भी सजीवता आ जाती। —एकाकी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत नीलदेवी (गीत काव्य)—सम्पादक-हरिशङ्कर अग्रवाल बी० ए०। प्रकाशक-रामनारायणलाल पब्लिशर और बुकसेलर प्रयाग। मूल्य ।)

नील देवी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के ऐतिहासिक रूपकों में से है। इसकी भूमिका में प्राचीन नाट्यशास्त्रों में बतलाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए नाटकों के तत्व बहुत संक्षेप से दिये गये हैं। हिन्दी नाटकों का भी इतिहास दिया गया है किन्तु वह अत्यन्त ही संक्षिप्त है। प्रसादजी के बाद के नाटकों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया।

बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन वृत्त उनकी शैली तथा नाटक का सामान्य परिचय देकर मूल नाटक दे दिया गया है। अन्त में नाटक में आये हुए फारसी अरबी शब्दों की तालिका देदी गयी है जो हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी होगी। —गुलाबराय

विज्ञान

ब्रह्माण्ड और पृथ्वी—लेखक-श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी; संपादक-श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक-श्री गिरिजाशङ्कर वर्मा। अभिनव भारती ग्रन्थमाला १७१ ए—हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या ९६। सजिल्द का मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक में योग्य लेखक ने अपने आठ लेखों का समावेश किया है जिनमें ब्रह्माण्ड का विस्तार, स्थान-काल और पदार्थ, भू-रचना, जीवन क्या है, जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ, दिन-रात्रि, सृष्टि-विकास और जीवन-रचना का प्रारम्भ आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक में गम्भीर विषयों का ललित वर्णन है। भाषाऔर विचार-शैली दोनों दृष्टियों से पुस्तक उपादेय है। जिन व्यक्तियों ने "विज्ञान" में श्री चतुर्वेदीजी के लेखों को पढ़ा है, वे जानते हैं कि चतुर्वेदीजी की लेखमालाएँ कितनी लोक-प्रिय हैं। हमें यह जान कर हर्ष होता है कि अभिनव भारती ग्रन्थमाला ने इस प्रकार की पुस्तकें निकालने का प्रयास किया है। ये पुस्तकें हमारे भारती भण्डार का गौरव बढ़ायेंगी।

यांत्रिक आविष्कार—लेखक-श्री महेशचन्द्र राय; प्रकाशक-विद्याभास्कर बुकडिपो, चौक बनारस। पृष्ठ संख्या १७२ मूल्य १)

लेखक ने इस पुस्तक में वाष्पयंत्र, मुद्रणयंत्र, टेलीग्राफी, टेलीफोन, बेतार, ग्रामोफोन, फोटोग्राफी, चलती-बोलती तसवीर, मोटर, वायुयान, रेल जहाज, आदि लोक-प्रिय विषयों का समावेश है। पुस्तक में चित्रों का अभाव खटकता है। वाष्पीय यंत्र नामक पहले अध्याय में ही चार चित्रों के नम्बरों का उल्लेख है, पर पुस्तक में चित्रों का कहीं पता नहीं। लेखक ने विषय की सामग्री परिश्रम से संकलित की है। विषय को सरल बनाने का यथा-शक्य प्रयत्न किया गया है। भाषा में यत्र-तत्र कुछ संशोधन की आवश्यकता है, और व्यक्तिवाचक नामों का भी उच्चारण भेद हो गया है। छपाई की दृष्टि से पुस्तक में परिष्कार आवश्यक है। आशा है कि अगले संस्करण में ये दोष दूर कर दिए जायेंगे। पुस्तक विद्यार्थियों और सामान्य व्यक्तियों दोनों के काम की है।

विज्ञान के चमत्कार—लेखक-श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक-ज्ञान मंडल काशी। पृष्ठ संख्या १९६ मूल्य १)

यह पुस्तक "आज" में निकले हुए कुछ लेखों का संग्रह है, श्रीवास्तवजी हिन्दी के उदीयमान लेखकों में से हैं और उन्होंने लोक-प्रिय शैली में विशेषता प्राप्त करली है। पुस्तक में अनेक स्फुट विषयों का समावेश है—जैसे—चन्द्रमा, उल्का, नोबेल पुरस्कार, रेडियम, भूकम्प, सबमैरीन, पैराशूट, विटैमिन, मांसाहारी पौधे, मानव-शरीर आदि। पुस्तक में १७ चित्र भी हैं। यह पुस्तक मनोरञ्जक शैली में लिखी गयी है, और आबाल-वृद्ध सब के ज्ञानोपार्जन में सहायक हो सकती है। हम इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार चाहते हैं। —(डा०) सत्यप्रकाश

विविध

मन के भेद—लेखक प्रोफेसर राजाराम शास्त्री, काशी विद्यापीठ। सम्पादक पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक-श्री गिरिजाशङ्कर वर्मा, अभिनव भारती ग्रन्थमाला कलकत्ता, मूल्य १।)

प्रस्तुत-पुस्तक अभिनव भारती ग्रन्थ माला का द्वितीय पुष्प है। 'मन के भेद' शीर्षक से यह न समझा जाय कि इस पुस्तक के पढ़ लेने से किसी व्यक्ति विशेष के मन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त रहस्यों को जान लेने की क्षमता प्राप्त हो जायगी वरन् यह कि हमारा मन किस प्रकार काम करता है। अर्थात् उसके मूल श्रोत हमारे जीवन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। प्रस्तुक में मनोविश्लेषण शास्त्र की (Psycho analysis) एक शाखा की जिसको वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual Psychology) कहते हैं प्रतिपादन किया गया है। इस शाखा के आचार्य हैं डाक्टर एलफ्रेड एडलर। मनोविश्लेषण शास्त्र की जिसको शास्त्रीजी ने चित्त विश्लेषण कहा है तीन प्रधान शाखाएँ हैं। इसके मूल प्रवर्तक डाक्टर फ्राइड की सम्प्रदाय जिसने पहले-पहल उपचेतना का जिसको शास्त्री जी ने अव्यक्तमय (sub conscious) कहा है महत्व बतलाया है। हमारे दबे हुए विचार जो कि सामाजिक शिष्टाचार और नीति के कारण चेतना में ऊपर नहीं आने पाते हमारे चेतन जीवन को प्रभावित करते रहते और कभी-कभी दबे हुए विचारों का वेग अधिक होता है तो वे शरीर की विकृत अवस्था जो हिस्टीरिया आदि रोगों में प्रकट होती है उत्पन्न कर देते हैं। दबे हुए विचारों को उभार कर उनका वेग के रेचन द्वारा हिस्टीरिया के रोगियों के इलाज से ही इस शास्त्र की नींव पड़ी थी।

फ्राइड ने योनि-भावना को (sex) को हमारे कार्यों का मूल स्रोत या प्रेरक शक्ति माना है। फ्रॉइड के दो प्रमुख शिष्यों ने दो भिन्न सम्प्रदाय स्थापित किये। एडलर ने इस प्रेरक शक्ति को हीनता भाव या हीनता ग्रन्थि (Inferiority complex) को मूल प्रेरक शक्ति माना है। मनुष्य बालकपन से अपने में किसी बात के अभाव का अनुभव करता है। उसी अभाव की पूर्ति वह अनेक प्रकार से करता है। यही दृष्टिकोण उसकी सारी क्रियाओं को प्रेरित करता है। इसी अभाव की पूर्ति के लिए वह आत्मश्लाघा करने लग जाता है। युङ्ग ने योनि को प्रधानता न देकर जीवन इच्छा या जीवन शक्ति को माना है जोकि कभी योनि-भावना का रूप धारण करती है और कभी प्रभुत्व प्राप्त करने की इच्छा में प्रकट होती है। उन्होंने इस प्रकार दोनों सम्प्रदायों का समन्वय किया है। फ्रॉइड ने पिछले इतिहास पर अधिक जोर दिया है वे क्रियाओं के मूल कारणों में वर्तमान परिस्थिति को भी स्थान देते हैं। युङ्ग ने मनुष्यों के अन्तर्मुखी और बाहिर्मुखी (Introvert and extrovert) दो प्रकार बतला कर दोनों सम्प्रदायों के भेद को स्पष्ट कर दिया। कुछ लोगों में बहिर्मुखी होते हैं। दूसरों की ओर अधिक झुकते हैं और कुछ लोग स्वकेन्द्रित रहते हैं। बहिर्मुखी लोगों में फ्रॉइड प्रतिपादित सेक्स की भावना का कोई रूप रहता है और अन्तर्मुखी लोगों में हीनता भाव और तज्जन्य महत्वकांक्षी और आत्मश्लाघा का प्राधान्य रहता है।

लेखक महोदय ने एडलर का दृष्टिकोण लिया है। इनके मनोविज्ञान को वैयक्तिक मनोविज्ञान कहा है क्योंकि इसमें प्रत्येक व्यक्ति का हीनता भाव पृथक रूप धारण करता है। सब व्यक्तियों को एक लाठी से नहीं हाँका जाता यद्यपि यह मनोविज्ञान वैयक्तिक है तथापि यह व्यक्ति सामाजिक है। और इसमें समाज के साथ समायोजन (adjustment) करना आवश्यक बतलाया है।

पुस्तक में इसी दृष्टिकोण से बालकों की शिक्षा तथा विवाह और प्रेम की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। एडलर का सिद्धान्त लेकर लेखक महोदय भारतीयता की ओर झुके हैं। स्वतन्त्र प्रेम की अपेक्षा आपने विवाह का पक्ष लिया है और विवाह में हिन्दू प्राचीन पद्धति स्वरुचि की अपेक्षा पर रुचि अर्थात् पुरोहित और माता पिता की रुचि को महत्व देने की सार्थकता बतलायी है—लेखक महोदय ने एडलर के सिद्धान्तों की भारतीय सिद्धान्तों से तुलना की है। उसमें कहीं तो तुलना ठीक बैठ गई और कहीं उसमें खींचतान दिखाई पड़ती है। सिद्धान्त के साथ यदि उदाहरण भी भारतीय दिये जाते तो और अच्छा होता। विषय की क्लिष्टता के साथ भाषा भी कहीं कहीं प्रयत्नपूर्ण हो गई है लेकिन पुस्तक बड़ी ज्ञान वर्धक है।

—गुलाबराय

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-संसार में नई एवं अभूतपूर्व योजना !!!

मासिक किश्त (Monthly Instalment System) की व्यवस्था !

श्रेष्ठ कलाकारों के उच्चकोटि के मौलिक कहानी-संग्रह, सरस उपन्यास, मनोरम हास्यरस इत्यादि का यदि आप रसास्वादन करना चाहते हैं तो हमारी नई योजना से लाभ उठाइये।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

श्रीमती ऊषा देवी मित्रा की नवीन कृति
"पथचारी"
एक भावपूर्ण, मौलिक, सामाजिक उपन्यास
मूल्य १।)

श्री जी० पी० श्रीवास्तव की नवीन रचना
"भय्या अक़िल बहादुर"
हास्यरस की अनूठी पुस्तक
मूल्य १)

सुन्दर, कलापूर्ण कहानियों के लिए श्रेष्ठ कलाकारों के श्रेष्ठ कहानी-संग्रह पढ़िये

श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह की चुनी कहानियों का नया संग्रह
"पड़ोसी" मू० १।=)

श्री पहाड़ी की उच्चकोटि की १२ मनोवैज्ञानिक कहानियों का अपूर्व-संग्रह
"छाया" मूल्य १)

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कलापूर्ण कहानियों का कला-पूर्ण संग्रह
"खाली बोतल" मू० १।)

श्रीमती ऊषादेवी मित्रा की ललित कहानियों का मनोरम संग्रह
"महावर" मूल्य १)

श्री चतुरसेन शास्त्री की लोह लेखनी से लिखा हुआ ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह
"वीर गाथा" मूल्य १)

श्री व्यथितहृदय लिखित संसार के महान पुरुषों का जीवन चरित्र
"पुरुषार्थी जीवन"

छप रहा है :—'ललिता' पं० यज्ञदत्त शर्मा, एम.ए. का लिखा हुआ एक सामाजिक मौलिक उपन्यास।

मिलने का पता :—नेशनल लिटरेचर कम्पनी १०५ कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता।

हमारी प्रकाशित हिन्दी, अङ्गरेजी तथा बंगला की सभी पुस्तकें ए० एच० ह्वीलर के रेलवे स्टालों पर और बड़े २ शहरों के प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं के यहां मिलेगी।

आज ही नियमावली, एजेंसी और सूचीपत्र के वास्ते लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

29 JUL 1983

बीमा कम्पनी ही क्यों ?

अधिक ब्याज दे सकने का कारण !

बीमा कम्पनी और बैंकों की रुपया देने लेने की नीति में बड़ा अन्तर है। बैंकें अपना रुपया कभी लम्बी मियाद के लिए देना पसन्द नहीं करतीं क्योंकि उन्हें कभी भी रुपए की जरूरत पड़ सकती है, और इसीलिए वे ज्यादा ब्याज भी पैदा नहीं कर पातीं। इसके विपरीत बीमा कम्पनियां सदा यह चाहती हैं कि अगर उनका रुपया सुरक्षित है तो वह ज्यादा से ज्यादा समय के लिए लगा रहे और इसीलिए रुपया सुरक्षित रखते हुए भी वे ब्याज अच्छी पैदा कर लेती हैं और इस दृष्टि से वे बैंकों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं और इसीलिए वे अपने ग्राहकों के लिए अच्छी ब्याज पैदा कर सकती हैं।

स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड

ने सारा खर्च काट कर और जोखिम के लिए रुपया अलग निकाल कर भी ६) प्रतिशत से अधिक ब्याज पैदा किया है और उसी से प्रभावित और उत्साहित होकर स्वदेशी ने अपने यहां रुपया जमा करने की नई योजना निकाली है कि जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति १००) से लेकर १०,०००) तक कम्पनी में डिपाजिट के रूप से निम्न ब्याज पर जमा कर सकता है :—

एक वर्ष की मुद्दत पर	...	३) प्रतिशत
दो वर्ष की मुद्दत पर	...	३॥) प्रतिशत
तीन वर्ष की मुद्दत पर	...	४) प्रतिशत

ब्याज हर छटे महीने मिलता है। विधवाओं, बच्चों और संस्थाओं को यह सूद हर महीने भी मिल सकता है।

सफलता का प्रमाण

रुपया जमा करने की यह योजना जनवरी सन १९४० से शुरू हुई है। इस थोड़े से समय में ही उसमें काफी सफलता मिली है और अधिकाधिक मिलती जा रही है। प्रमाण लीजिए—

१ जनवरी से ३० जून १९४० तक	६ मास में जमा हुए—	३६,४३४) रु०
१ जुलाई से ३१ दिसम्बर १९४० तक	६ मास में जमा हुए—	१,००,८४८) रु०
१ जनवरी से ३१ जनवरी १९४१ तक	एक मास में जमा हुए—	२६,८५१) रु०
	१३ मास में कुल रुपया जमा हुआ	१,७०,२३३) रु०

कम्पनी की मजबूती का प्रमाण

उसने अपने बीमेदारों को आजीवन और मियादी बीमे पर १८) तथा १४) प्रतिवर्ष बोनस दिया है। और हिस्सेदारों को कई वर्ष से ६) प्रतिशत मुनाफा दे रहा है।

विशेष ब्यौरा जानने के लिए लिखिए या मिलिए —

श्रीचन्द दौनेरिया मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर

स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

महेन्द्रजी के लिए साहित्य प्रेस, ५३ ए० सिविल लाइन्स आगरा से मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलभ साहित्य माला की नई योजना

अन्य नामी लेखकों के ग्रन्थ भी प्रकाशित होने लगे

मूल्य, पृष्ठ संख्या, टाइप आदि वही

पाटन का प्रभुत्व

बम्बई की कांग्रेस-सरकार के गृह-सचिव और गुजराती के प्रतिभाशाली लेखक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का यह ऐतिहासिक उपन्यास दो भागों में प्रकाशित हो गया है और दूसरा उपन्यास 'गुजरात का नाथ' प्रेस में जा रहा है।

फ्रान्स के अमर लेखक ड्यूमा ने जिस तरह अपने देश के इतिहास के आधार पर एक दूसरे से सम्बद्ध कई उपन्यास लिखे हैं उसी तरह मुन्शी ने गुजरात के इतिहास को लेकर चार उपन्यास लिख कर गुजराती साहित्य में अमर कीर्ति प्राप्त की है, ये उपन्यास इतने सुन्दर, सरल और मनोरंजक हैं कि गुजरात में घर-घर पढ़े जाते हैं। इनका एक-एक पात्र हृदय में हमेशा के लिए घर कर लेता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की कमी को देखते हुए हमारा विश्वास है कि इनका खूब सत्कार होगा। दोनों भागों का मूल्य सवा रुपया।

सुनीता : परख-स्पर्धा

इसी माला में श्री जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों के ये दो भाग भी छपे हैं। इनका मूल्य भी दस-दस आना है। 'सुनीता' का मूल्य पहले तीन रुपया था।

राधा (भावनाट्य)

पं॰ उदयशंकर भट्ट हिन्दी के नामी कवि और नाटक-लेखक हैं। उनका यह पद्यबद्ध भावनाटक बिलकुल ही नये ढंग की रचना है। राधा का ऐसा सुन्दर चरित्र-चित्रण आपने कहीं न देखा होगा। मूल्य दस आना !

कुलीनता (नाटक) : सेठ गोविन्ददास १) **ग्रामीण समाज** (शरत्) ॥=) **दो चिड़ियाँ** (कहानियाँ) : जैनेन्द्रकुमार १) **पुष्पलता** (सुदर्शन) १।)

नोट—पास के बुकसेलरों से खरीदिए। नहीं तो फिर हमसे मँगाइए। सूचीपत्र के लिए पत्र लिखिए।

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय**, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पुस्तकें

आलोचना

१–संत-साहित्य—भुवनेश्वरनाथ मिश्र २)
२–कहानी–एक कला—गिरधारीलाल शर्मा गर्ग १।)
३–हिन्दुस्तानी आन्दोलन की समीक्षा–कमलनारायण झा ॥)
४–सूर-वंश-निर्णय—कृष्णदेव शर्मा एम० ए० ≡)
५–प्रसाद का नाट्य चिन्तन—शिखरचन्द जैन १)

कविता

१–द्वन्द्वगीत— दिनकर ॥)
२–मञ्जरी—गिरजाकुमार माथुर ॥।)
३–कूजन—पद्मकान्त मालवीय १)
४–विहारी-सुधा (सम्पादित) मिश्रबन्धु ।≈)

कहानी

१–भूली हुई कहानियाँ—श्री सरयू पंडा गौड़ १॥)

नाटक

१–अन्तःपुर का छिद्र—श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ।≈)

उपन्यास

१–सन्यासी—इलाचन्द जोशी ३)
२–नरमेध—सर्वदानन्द वर्मा १॥)
३–निःसहाय हिन्दू—राधाकृष्णदास ॥)

आध्यात्म

१–पातंजल योग-प्रदीप—[सात भाग] स्वामी श्री ओमानन्द

राजनैतिक

१–हिटलर की विचारधारा—रामनारायण यादवेन्दु ≡)
२–पाँचवाँ कालम क्या है— " " ≡)
३–पाकिस्तान— " " ≡)
४–भारत में साम्प्रदायिक समस्या " " ≡)
५–नागरिक शिक्षा–(तीसरा संस्करण) भगवानदास केला ।≈)

विविध

१–आर्यों का आदि देश—संपूर्णानन्द ४॥)
२–भोजन और स्वास्थ्य—डा० सत्यप्रकाश १)
३–मनुष्य का विकास—ज्योतिलाल भार्गव ।≈)
४–स्त्री-सौन्दर्य और स्वास्थ्य—बुद्धिसागर वर्मा २)
५–आदर्श कलाकार—देवव्रत १)

❀ विषय-सूची ❀

१—कविता के पथ पर—श्री मैथिलीशरण गुप्त ५३३
२—आधुनिक कविता—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ५३७
३—चलती कविता—श्री रामविलास शर्मा ५४०
४—मानव सौन्दर्य का कवि—विद्यापति—श्री जगदीशचन्द्र माथुर ५४३
५—मालविकाग्निमित्र का समय–श्री चंद्रवलीपांडे ५४७
६—लोक व्यवहार एक आलोचना—श्री "म" महोदय ५५०
७—गुप्तजी की भारत-भारती—श्री महेन्द्र ५५३
८—तीन प्रत्यालोचनाएँ—श्री जैनेन्द्र, श्री यशपाल, श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ... ५५५
९—साहित्य परिचय— ५५६
१०—सम्पादकीय— ५६२

ग्राहकों से निवेदन

साहित्य-सन्देश का अगला अङ्क पत्र का पाँचवे वर्ष का प्रवेशाङ्क है। इस वर्ष से हम ४ पृष्ठ और बढ़ा रहे हैं। इस कागज की तेजी के समय में भी चार पृष्ठों का बढ़ा देना यद्यपि हमारा दुःसाहस ही है, तथापि हम पाठकों को उनके प्राप्त अधिकारों से वंचित नहीं करना चाहते। हम यह अनुभव करते हैं कि विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या हमारे पत्र की स्थायी ग्राहक है और अनेकों हिन्दी परीक्षाओं में बैठने वाले विद्यार्थी केवल परीक्षा के उपयोग से ही संदेश की ग्राहकी शुरू करते हैं। उनके लिए ठोस, पाचनशील और उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करना हमारा कर्तव्य है। लेकिन प्रस्तुत ४० पृष्ठों में हम स्थान-संकोच अनुभव कर रहे थे, लेकिन अब वैसी आपत्ति नहीं रही। अगले मास से पत्रिका नये-नये विषयों और उपयोगिताओं को लेकर आपके सम्मुख उपस्थित हो रही है।

हाँ, आपसे तो सिर्फ यही निवेदन है कि कहीं यह चार पृष्ठ हमें आगे चल कर भारी न पड़ जायं, इसलिए आप यथाशक्ति एक-दो ग्राहक बना कर हमारी सहायता करदें और जिन लोगों के मूल्य नये वर्ष के साथ समाप्त होते हैं वह अपना मूल्य वापिसी डाक से अवश्य भेजदें। क्योंकि हमने यह निश्चय कर लिया है कि नया अङ्क उन्हीं पाठकों के पास भेजा जायगा जिनका मूल्य अग्रिम हमें प्राप्त हो जायगा। रुपया भेजते समय या पत्र लिखते समय ग्राहक नं० अवश्य लिखें।—संचालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य जगत को दो उपहार

ओस के बूँद

[लेखक—कलाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी]

जो पाठक वाजपेयीजी की कहानियों तथा उनके उपन्यासों से परिचित हैं, उन्हें इस कविता संग्रह को पढ़ कर यह मान लेना पड़ेगा कि वाजपेयीजी कवि की हैसियत से भी कितने सफल और उच्च हैं। नये दृष्टिकोण से लिखी हुई उनकी सर्वाङ्ग सुन्दर कविताएँ इसमें दी गयी हैं मूल्य ।।।)

किरण बेला

[लेखक—कविवर "अञ्चल"]

'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' का यशस्वी कवि अपने इस कविता-संग्रह में सर्वथा प्रगतिशील होकर सामने आया है। आज का युग, अपनी जटिल समस्याओं के साथ, ऐसे ही कवि की वाणी की प्रतिष्ठा करता है। एक-एक कविता सामाजिक वैषम्य और विप्लव का चित्र सामने उपस्थित कर देती है। मू० १)

जर्मन युद्ध में युवती

उद्भ्रान्त किन्तु संयमित प्रेम; जलता उबलता देश प्रेम; अद्भुत साहस; आश्चर्यजनक कौशल; विचित्र घटनाक्रम; विकट युद्ध; विस्मय से डराने वाली कूटनीतपूर्ण चालें; संसार में उथल-पुथल मचा देने वाले सनसनीदार कार्यों का जीता जागता हृदय-हारी वर्णन इसमें एक साथ ही मिलेगा।

आकर्षक रुचित्र गेटअप, उत्तम कागज छपाई; पृष्ठ २७५, मूल्य केवल १॥)

पापी धर्मात्मा

राजनीतिक विवशता के तड़पते-बोलते चित्र, विशाल वैभव के दुर्दमनीय दृश्य, एवं पैशाचिक काण्ड; राजकुमारियों की भीषण प्रणय लीलाएँ; धर्म के विकृत सत्यानाशी स्वरूप तथा निरंकुश शासन के विकराल सच्चे नग्न चित्र इसमें पाठकों को मिलेंगे।

मनमोहक साज-शृङ्गार, बढ़िया कागज-छपाई, पृष्ठ २१६, मूल्य १।)

महामना मालवीयजी, माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन, यूनिवर्सिटियों के वाइसचांसलर, प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक आदि जिनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे हैं और जिन्हें हर एक हिन्दू को अपने पास रखना चाहिए, वे ही हैं :—

बाल्मीकि रामायण

सम्पूर्ण ७ काण्ड, ६६१ सर्ग सचित्र ५६० पृष्ठ मूल्य १॥=)

श्रीमद्भागवत

सम्पूर्ण १२ स्कंध, ३३५ अध्याय, अनेक रङ्ग-बिरंगे चित्र, मूल्य १॥।=)

महाभारत

सम्पूर्ण सवा लाख श्लोकों की कथा (अध्याय प्रति अध्याय पृष्ठ १००० मूल्य ५)

(रूपान्तरकार पं० भगवानदास अवस्थी एम० ए०)

ज्ञानलोक दारागंज, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-संसार में नई एवं अभूतपूर्व योजना !!!

मासिक किश्त (Monthly Instalment System) की व्यवस्था !

श्रेष्ठ कलाकारों के उच्चकोटि के मौलिक कहानी-संग्रह, सरस उपन्यास, मनोरम हास्यरस इत्यादि का यदि आप रसास्वादन करना चाहते हैं तो हमारी नई योजना से लाभ उठाइये।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

श्रीमती ऊषा देवी मित्रा की नवीन कृति
"पथचारी"
एक भावपूर्ण, मौलिक, सामाजिक उपन्यास
मूल्य १।)

श्री जी० पी० श्रीवास्तव की नवीन रचना
"भय्या अक़िल बहादुर"
हास्यरस की अनूठी पुस्तक
मूल्य १)

सुन्दर, कलापूर्ण कहानियों के लिए श्रेष्ठ कलाकारों के श्रेष्ठ कहानी-संग्रह पढ़िये

श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह की चुनी कहानियों का नया संग्रह
"पड़ोसी" मू० १।=)

श्री पहाड़ी की उच्चकोटि की १२ मनोवैज्ञानिक कहानियों का अपूर्व-संग्रह
"छाया" मूल्य १)

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कलापूर्ण कहानियों का कला-पूर्ण संग्रह
"खाली बोतल" मू० १।)

श्रीमती ऊषादेवी मित्रा की ललित कहानियों का मनोरम संग्रह
"महावर" मूल्य १)

श्री चतुरसेन शास्त्री की लोह लेखनी से लिखा हुआ ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह
"वीर गाथा" मूल्य १)

श्री व्यथितहृदय लिखित संसार के महान पुरुषों का जीवन चरित्र
"पुरुषार्थी जीवन"

छप रहा है :—'ललिता' पं० यज्ञदत्त शर्मा, एम.ए. का लिखा हुआ एक सामाजिक मौलिक उपन्यास।

मिलने का पता :—नेशनल लिटरेचर कम्पनी १०५ कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता।

हमारी प्रकाशित हिन्दी, अङ्गरेज़ी तथा बंगला की सभी पुस्तकें ए० एच० ह्वीलर के रेलवे स्टालों पर और बड़े २ शहरों के प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं के यहां मिलेंगी।

आज ही नियमावली, एजेंसी और सूचीपत्र के वास्ते लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब कोई बेकार न रहेगा

जिसके पास 'दौलत की खान' पुस्तक है वह एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक है। बेचारे गरीब आदमियों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे अपना जीवकोपार्जन करके कोई रोजगार कर सकें। यदि थोड़ा पैसा भी है तो उन्हें आसानी से थोड़ी लागत का रोजगार शुरू करने का तरीका ज्ञात नहीं जिसके कारण वे सर्वथा बेकार हैं, हमारी इस पुस्तक को मंगा कर पढ़ें। आप मामूली लागत और मेहनत से अपने शहर और कस्बों व गांवों में इज्जत के साथ काम शुरू करके थोड़े ही दिनों में अमीर बन जायँगे। लोग ऐसी पुस्तक को पाकर छिपाने की कोशिश करते हैं क्योंकि मनुष्य थोड़े ही दिनों में इस पुस्तक से एक बड़ी भारी सम्पत्ति का मालिक बन सकता है।

यदि आप [१] विलायत के बेकारों की भांति केवल कलम दवात के सहारे घर बैठे डाक द्वारा या पचासों आश्चर्यजनक किन्तु बेहद सरल एवं बिला पैसे की युक्तियों द्वारा अच्छी आमदनी करना चाहते हैं। [२] संसार की सुविख्यात कम्पनियों के पेटेन्ट और कई गुणे नफे में बिकने वाली प्रसिद्ध वस्तुओं के मामूली लागत के सच्चे नुस्खे बनाकर मालामाल होना चाहते हैं। विलायत की नई वस्तुओं के नमूने सर्वोत्तम व्यापारिक सलाह तथा संसार की प्रत्येक वस्तु का पता मुफ्त देने वाली फर्मों के पते जानने [३] २, ४, ६ आने से लेकर १०, २०, ५० रुपये की लागत के बेशुमार लाभ के बीसियों सरल रोजगार [४] प्रत्येक व्यापार एवं धन्धे में अच्छी सफलता पाने के गुप्त भेद [५] प्रत्येक बाजार एवं परिवार में धड़ाधड़ बिकने वाली पचासों आसान साधारण लागत और अत्यधिक नफे की वस्तुओं के बनाने तथा बेचने की विधियाँ जान कर अपनी बेकारी, बेरोजगारी, खर्च की तंगी और गुलामी की मार मिटाना चाहते हैं, तो आज ही इस पुस्तक को मंगाइये। मूल्य फी पुस्तक १।।) एक रुपया आठ आना, डाक खर्च ।।)

रूपविलास कम्पनी, नं० ४, कानपुर।

आयुर्वेद की परीक्षा देने वालों के लिये खुशखबरी !

चिकित्साचन्द्रोदय

पहिला भाग

आयुर्वेद विद्यापीठ की उत्तमा परीक्षा में शामिल !

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग को ही पढ़ने से आचार्य-परीक्षा तक में आसानी। परीक्षार्थी इसे ही मँगा कर पढ़ें। मूल्य ३) डाकखर्च ।।।=)

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

नोट—याद रखो, चिकित्साचन्द्रोदय ७ भाग पढ़ कर अनेकों परीक्षार्थी आयुर्वेदाचार्य-परीक्षा में संस्कृत वालों से अच्छे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक, रोमांचक एवं शिक्षाप्रद चार नये उपन्यास व कहानी-संग्रह

१—नरमेध

रचयिता—श्री सर्वदानन्द वर्मा

जिनके संस्मरण नामक उपन्यास ने उपन्यास-जगत में तहलका मचा कर सन् १९४० के उपन्यासों में अपने को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया था। उन्हीं का इस साल का यह सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। यह उपन्यास क्या है, भविष्य के आर्थिक आधारों पर स्थित समाज की रूपरेखा है। मूल्य १।।)

२—कुचक्र

रचयिता—नरसिंहराम शुक्ल

प्रस्तुत उपन्यास लेखक की ७वीं कृति है। इस उपन्यास में भारत की विख्यात नगरी बम्बई के कुछ प्रसिद्ध व्यापारी पश्चिमी भारत की कुछ रियासतों में व्यापारिक एकाधिपत्य कायम करने के लिए षड़यन्त्र रचते हैं। जालसाजों का एक भयंकर युद्ध तैयार हो जाता है जिसमें दो सुन्दरियों के आ पड़ने से एक अनूठी सरसता और रोमांश आ जाता है। यह उपन्यास वर्णन-शैली, घटनाओं की विचित्रता, तथा सरसता के कारण बेजोड़ है। मूल्य १।।) मात्र।

३—सच्ची रोमांचक कहानियाँ

लेखक—चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य

यों तो आपने सनसनी घटनाओं से पूर्ण तथा रोमांचक कई कहानियाँ पढ़ी होंगी, पर इस पुस्तक की सभी कहानियाँ सच्ची घटनाओं पर लिखी गई हैं जो काल्पनिक कहानियों से भी रोचक तथा रोमांचकारी हैं। आप इन्हें पढ़ कर आश्चर्य रोमांच और करुणा से ओत-प्रोत हो जायेंगे। मूल्य १) सिर्फ।

४—मातृ-मन्दिर

रचयिता—श्री जगदीश झा "विमल"

इस उपन्यास में अपने जन्मस्थान के प्रति मनुष्य के हृदय में कितनी ममता होती है, निराश्रय हो अन्यत्र पाले-पोसे के बाद तिरष्कृत होने पर अनाथ बालक कैसी ग्लानि का अनुभव करता है तथा सर पर सैकड़ों मुसीबतें उठा कर वह किस प्रकार अपने को समर्थ बना कर अपने जन्म-स्थान पर विशाल भवन बनाता है, इन सब बातों का सजीव और ओजस्वी वर्णन मिलेगा। इस उपन्यास को पढ़ कर आप अपने हृदय में पवित्रता, त्याग तथा आशा का संचार पायेंगे।

व्यवस्थापक—छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबकी बोली

सम्पादक—काका कालेलकर

[यह मासिक पत्रिका हर महीने को १५वीं तारीख को निकलती है।]

अिसमें आहिस्ता आहिस्ता हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की साहित्यिक और भाषा-विषयक बातें प्रकाशित हुआ करेंगी।

अिसका मुख्य उद्देश्य है:—हिंदुस्तान की तमाम भाषाओंका आपसमें हार्दिक संगठन करना।

भारतमाता को पहचाननेके लिये और अुसकी सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये जिन बातोंकी जरूरत होगी, अुन सभी विषयोंकी चर्चा 'सबकी बोली' में हुआ करेगी।

अिसके 'साहित्य-सत्कार' विभागमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सहयोग से राष्ट्रकी अुन्नति करनेवाले सेवकोंकी विचारधाराका परिचय तथा अुनके साहित्य की समालोचना रहा करेगी।

अिसमें अेक खास विशेषता यह होगी—पारिभाषिक शब्द-चर्चा, कहानी, प्रवास, विशिष्ट व्यक्तियोंके शब्द चित्र राष्ट्रभाषा-आंदोलन-संबंधी व विद्यार्थियों के लाभ के नियमित लेख।

वर्धा-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति भी अपनी सभी जरूरी सूचनाअें अिसमें प्रकाशित करती है।

खास सूचनाः—राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओंमें बैठनेवाले विद्यार्थी अपनी चालू **क्रम-संख्या** बतलाकर, १ रुपया वार्षिक चंदा देकर, अेक वर्षके लिये **'बोली'** पा सकते हैं। सर्वसाधारण से वार्षिक चंदा रु. १-४-० मनीऑर्डरसे ही लिया जायगा। हम वी० पी० नहीं भेजते। पत्र व्यवहार करते समय अपना नाम और पता साफ साफ नागरी हर्फोंमें लिखनेकी कृपा करें। फुटकर संख्याका तथा पुराने अङ्कका मूल्य दो आना। डाकखर्च, पुरानी संख्याके लिये प्रति अङ्क)॥ और नये अङ्कके लिये)। अङ्क की कीमत के साथ अवश्य आ जाना चाहिये।

पता—व्यवस्थापक, **सबकी बोली**, वर्धा

प्र का शि त हो ग ई

शीघ्र मँगाइये

हिन्दी काव्य-जगत के तरुण कवि श्री बैजनाथप्रसाद सिनहा 'विस्मृत' की कविताओं का अपूर्व, अनूठा एवं बेजोड़ संग्रह

'आहट'

तथा, बाल-साहित्य के प्रतिभावान कवि तथा कहानीकार श्री सूर्यदेव उपाध्याय 'अनुरागी' की शिक्षाप्रद कहानियों का मनोहर एवं चित्ताकर्षक संग्रह

'सत्याग्रह'

मिलने का पता—मैनेजर, शकुन्तला-प्रकाशन-मन्दिर, गंगा-भवन, आरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-निकेतन दारागंज, प्रयाग की

उच्चकोटि की तीन साहित्यिक पुस्तकें

१—अर्थशास्त्र की रूपरेखा— लेखक—पं० दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल०-एल० बी० अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय। मूल्य ६)

पण्डित अमरनाथ झा, एम० ए०, एम० आर० एस० प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर की संक्षिप्त भूमिका में लिखते हैं—

"इसकी लेखन-शैली चित्तग्राहिणी है, विषय में रुचि उत्पन्न करने की शक्ति इसमें है। सिद्धान्तों को हृदयङ्गम कराने की इसमें योग्यता है। सम्वाद का रूप देकर लेखक ने इसकी मनोरञ्जकता बढ़ा दी है। हिन्दी-साहित्य में इस पुस्तक का सम्मान होगा और विद्यार्थियों का इससे उपकार होगा। ऐसा मेरा विश्वास है।"

२—आरती के दीप— लेखक—श्रीमोहनलाल मेहता मूल्य १)

इसमें बिहार-रत्न राजेन्द्रप्रसाद, साहित्याचार्य पंडित रामवतार शर्मा, सन्त निहालसिंह, डा० के० पी० जायसवाल, डा० गंगानाथ झा, शरत बाबू, राहुल सांकृत्यायन तथा पोप टुरस दि ७ (रोम) के संस्मरण बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखे गये हैं। कुछ लोगों का मत है कि लेखक इस विषय में अपना सानी नहीं रखता।

३—विचार धारा— लेखक—श्री मोहनलाल मेहता मूल्य १)

इसमें राजनीति और समाज-नीति पर लेखक ने अपने गम्भीर विचार प्रकट किये हैं। इसमें जन साधारण की भावनाओं और समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—व्यवस्थापिका साहित्य-निकेतन, दारागंज-प्रयाग।

घर बैठे डाक्टरी का पूरा ज्ञान करना हो तो!

नीचे लिखी पुस्तकें मँगाइये

डाक्टरी चिकित्सा—डाक्टरी रीति से रोगी का निदान, लक्षण, चिकित्सा—मू० ६)

एलोपैथिक मेटेरिका मेडिका—डाक्टरी औषधियों का पूरा वर्णन, बनाने की विधि, मात्रा, विरोधी दवाओं के नाम मू० ६)

कम्पाउन्डरी शिक्षा—मूल्य ॥)

इन्जैक्शन चिकित्सा, चरित्र [सुई द्वारा इलाज] मू० १॥)

डाक्टरी नुसखे—बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा परीक्षित १)

चिकित्सा के कर्तव्य—१॥) प्रसिद्ध देशीय औषधियों के अँग्रेजी डाक्टरों द्वारा परीक्षित प्रयोग। कीमत १)

भारतीय बनस्पतियों पर विलायती डाक्टरों के अनुभव—कीमत २)

याद रखो—अगर आपको तन्दुरुस्त रहना है तो इसकी बातें याद रखो। कीमत।)

कायाकल्प—घर बैठे कायाकल्प करने की विधि व औषधियें। कीमत।)

जच्चा-बच्चा—सन्तान पैदा होने से लेकर बच्चे के पालन पोषण की विधि। कीमत।)

सन्तति निग्रह—जो लोग सन्तान पैदा होना पसन्द नहीं करते, उसकी निर्दोष विधियाँ तथा बिना दवा के उपाय बताते हैं। कीमत।)

पुस्तकों का पैकिंग माफ, डाकखर्च मनीआर्डर जुदा पड़ेगा।

मँगाने का पता—सुख संचारक कम्पनी लि०, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक खुश खबर

नये वर्ष से 'जीवन-साहित्य' के मूल्य में कमी

२००० ग्राहकों को पत्र मुफ़्त

इस अंक के साथ 'जीवन-साहित्य' का पहला वर्ष समाप्त होता है। कठिनाइयों और यूरोपीय युद्ध के कारण छपाई तथा कागज की घोर महँगी के बीच 'जी० सा०' अगले अङ्क से नये वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इन कठिनाइयों के बावजूद 'जी० सा०' अपने पाठकों और हिन्दी-प्रेमियों की सेवा नये साधनों और नये रूपों में करने को अग्रसर हो रहा है।

पाठकों को सुन कर खुशी होगी कि नये वर्ष से ग्राहक बनने वालों के लिए 'जी० सा०' का वार्षिक मूल्य २) के बजाय १।।) हो जायगा। जो पुराने ग्राहक हैं और नये वर्ष में ग्राहक बने रहना चाहते हैं उनसे १) ही लिया जायगा। जो 'मण्डल' के ग्राहक हैं उनसे भी १) लिया जायगा। जो १।।) देकर 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बनेंगे उनको एक वर्ष के लिए 'मण्डल' का भी ग्राहक मान लिया जायगा और उनको 'मण्डल' की शाखाओं और प्रधान कार्यालय से पुस्तकें एक वर्ष तक पौने मूल्य में मिलेंगी। खादी भण्डारों तथा एजेण्टों से ≡) रुपया कमीशन पर मिलेंगी। पर

ललचाने वाली खास बात

तो यह है कि जो सज्जन १०) की क़ीमत की मण्डल की पुस्तकें एक मुश्त खरीदेंगे उनको

'जीवन-साहित्य' एक वर्ष तक मुफ्त

दिया जायगा। ग्राहक १०) की पुस्तकें लेकर, 'मण्डल' की सब शाखाओं तथा प्रधान कार्यालय से 'जीवन-साहित्य' मुफ्त में ले सकेंगे। इस प्रकार १०) की पुस्तकें लेने पर तथा 'जी० सा०' मुफ्त में प्राप्त कर लेने पर ग्राहकों से मण्डल की पुस्तकें एक वर्ष तक पौने मूल्य में मिलती रहेंगी। इन १०) की पुस्तकों पर ग्राहकों को 'मण्डल' के नियम नं० ७ के अनुसार =) रुपया कमीशन मिलेगा।

इसके अनुसार अगले दो महीनों तक ही ग्राहक पुस्तकें मँगा सकेंगे।

व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ४] आगरा—श्रावण १९९८ वि०; अगस्त १९४१ [अङ्क १२

कविता के पथ पर

[श्री मैथिलीशरण गुप्त]

किसी जन को जब उसकी योग्यता से अधिक आदर मिलता है तब वह कितनी ही सदाशयता से क्यों न दिया गया हो, उसे स्वीकार करने में स्वभावतः सङ्कोच होता है। अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए यदि मैं उपयुक्त शब्द ही पा सकता तो भी एक कवि के रूप में अपने सम्मान का कुछ अर्थ समझने का प्रयत्न करता। जैसा मैं पहले भी एक बार कह चुका हूँ, विद्या-बुद्धि ने नहीं, आपबीती बातों ने ही मुझे मार-पीट कर कविराज बनाने के लिए विवश किया है। इसे मैंने अपने एक गान अथवा रुदन में प्रकट भी किया है—

"मिले मुझे क्या-क्या संयोग।

मेरे प्रभु! चाहे मेरे ही
कर्मों के वे भोग।
वे प्रसंग, जो सभी जनादें,
ज्ञान रत्न की खान खनादें।
कवि किंवा तत्वज्ञ बनादें,
और मिटा दें भव के रोग।

मिले मुझे क्या-क्या संयोग।

पर मैं था यह अज्ञ अभागा,
कभी न चेता, कभी न जागा।
तोड़ न सका मोह का धागा,
जोड़ न सका एक भी जोग।

मिले मुझे क्या-क्या संयोग।"

बस अब यही सुमन्त्र जगाऊँ,
निज दु:खों से नेह लगाऊँ,
उनसे उनकी दृढ़ता पाऊँ,
सुख है, जहाँ समझते लोग।

मिले मुझे क्या-क्या संयोग।

जब अपने मास्टर, मौलवी और पंडितों को निराश कर के मैं जैसा-का-तैसा लौट आया तब मुझे पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक कथा-कहानियों, चारणों के गीत-कवित्तों और संस्कृत के सुभाषितों ने अपनी ओर आकर्षित किया। रामायण पढ़ कर यदि मैं गद्गद हो उठता था तो उसमें मेरे कुलगत भक्ति के संस्कार भी थे, आत्मीयों के आक्षेप सह कर आल्हा पढ़ने में भी मुझे आनन्द आता था। 'आल्ह मनौवा' पर अब भी कुछ लिखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इच्छा होती है। इधर-उधर की कविताओं में मतिराम और पद्माकर के नायिका-भेद और वर्तमान व्रजभाषा के कवियों की समस्यापूर्तियों से कभी-कभी मनोविनोद कर लेता था। चन्द्रकान्ता उपन्यास का कहना ही क्या? वह तो बहुत दिनों तक चर्चा का विषय रहा। हिन्दी बंगवासी ने पहले-पहल देश-विदेश के समाचारों के लिए रुचि उत्पन्न की। बंग-भंग ने स्वदेशी और स्वदेश की भावना को अग्रसर किया।

तब भी कविता अधिकतर शृङ्गार और समस्यापूर्तियों तक ही सीमित थी। कालाकाँकर के स्वर्गीय राजा रामपालसिंहजी प्रसिद्ध देश-भक्त थे और हिन्दी में उस समय भी एक दैनिक पत्र चलाते थे। वे कवि भी थे, उन्होंने एक बार एक समस्या दी थी—

"सूकर न खावा वृथा जन्म को गवाँवा है।"

राजा साहब ने इसकी पूर्ति की थी उसके दो ही चरण मुझे स्मरण रह गये हैं—

"राम फलाहारन में सोंधी जेंवनारन में,
दूध में दही में कब ऐसो स्वाद पावा है।
मृग न सतावा भोज पच्छी न बनावा जिन
सूकर न खावा वृथा जन्म को गँवाबा है॥"

'श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार' के तत्कालीन सम्पादक पंडित लज्जाराम से इस पर उनका एक वाद-विवाद भी चला था। कह नहीं सकता, इसी घटना से अथवा और किसी कारण से समस्या-पूर्ति की ओर मुझे कभी उत्साह न हुआ। हाँ, मतिराम और पद्माकर के छन्दों से छन्दोरचना के अभ्यास में अवश्य सहायता मिली।

खड़ी बोली तब तक वैसी लोकप्रियता नहीं पा सकी थी। पूज्य पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी उसके प्रबल पक्षपाती थे। उन्होंने मुझे अपनाकर उत्साहित किया और सरस्वती में मेरे पद्य छपने लगे।

मैंने ऊपर जो कथा-कहानी और गीत-कवित्त की ओर अपने आकर्षित होने की बात कही है उसका श्रेय अधिकांश में मेरे बाल्य सहचर स्वर्गीय मुंशी अजमेरीजी को है। मैंने जीवन में जितना रस उनसे पाया है उसका प्रतिदान नहीं। वे मुसलमान वैष्णव थे और भारतेन्दु की यह उक्ति उन पर पूर्णतया चरितार्थ होती थी—

"इन मुसलमान हरिजनन पर
कोटिन हिन्दू वारिये।"

उनकी लिपि बड़ी सुन्दर होती थी और मेरे पद्यों की प्रेस कापी वे ही प्रस्तुत करते थे। कभी-कभी संशोधन कार्य में भी मुझे उनसे सहायता मिलती थी। कुछ दिन तक 'सरस्वती' में एक-आध चित्र पर परिचय के रूप में मेरे पद्य छपा करते थे। एक बार 'अशोक-वन-वासिनी सीता' नाम के एक चित्र पर मैंने कुछ दोहे लिखे थे। पहला दोहा इस प्रकार था—

"जिनके माया-सूत्र में ग्रथित सकल संसार,
वन्दी सो ये जनकजा दशमुख के आगार।"

अजमेरी ने इसमें 'दशमुख के आगार' के स्थान पर 'दशमुख कारागार' संशोधन बताया। मुझे यह बहुत रुचा और मैंने पूज्य द्विवेदीजी को भी लिख भेजा। उन्होंने उत्तर में लिखा—कवियों के सहचर कभी-कभी कवियों से भी बढ़ जाते हैं। धीरे-धीरे खड़ी बोली लोगों को रुचने लगी और दिन-दिन उसका प्रचार होने लगा, तथापि मँज-घिस कर स्निग्धता उसमें अब आयी है, जब अन्यान्य योग्य कवियों ने पीछे से उसमें अपनी भावपूर्ण कविताएँ लिखीं। वस्तुतः किसी नयी वस्तु को देख कर आरम्भ में हम उस पर आकर्षित नहीं होते। कान जैसा सुनते आते हैं वैसा ही उन्हें रुचता है। प्रसिद्ध वँगीय कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने जब अतुकान्त छन्द में अपना 'मेघनाद-वध' महाकाव्य लिखा तब लोगों ने उनसे उसके छन्द के विषय में पूछताछ की। उन्होंने कहा इसमें बताने की कोई बात ही नहीं। इसकी बार-बार आवृत्ति करो, जब तुम्हारे कान संस्कृत हो जायंगे तब तुम जानोगे अमित्राक्षर क्या वस्तु है? जो हो, मुझे सन्तोष है, खड़ी बोली के जिस रिक्त-प्रायः क्षेत्र में मैंने प्रवेश किया था आज वह हमारे प्रसन्न गम्भीर-पदा सरस्वती वाले कविजनों के प्रभाव से इतना हरा-भरा दिखाई देता है। फिर भी भारती का भाण्डार अक्षय है और हम सदैव उससे पाते-खाते रहेंगे।

पूज्य द्विवेदीजी चाहते थे कि सरस्वती के लेखक अधिकतर सरस्वती में ही लिखा करें। परन्तु उन दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के लेखक थोड़े ही थे, मेरे ऐसे साधारण लेखक को भी अन्यान्य सम्पादक कभी-कभी अपने पत्रों में कुछ लिखने के लिए पत्र भेजते थे।

उन्हीं दिनों 'अभ्युदय' प्रेस से स्वर्गीय पण्डित कृष्णकान्त मालवीय ने 'मर्यादा' नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली थी। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे कई बार उसमें कुछ लिखने का आदेश दिया। डरते-डरते एक बार मैंने पूज्य द्विवेदीजी से आज्ञा मांगी। आज्ञा मिल गयी और पूर्व-दर्शन नाम से वे पद्य मर्यादा में प्रकाशित हो गये। उन्हीं पद्यों की नींव पर 'भारत-भारती' का निर्माण हुआ।

कविता की दृष्टि से 'जयद्रथ-वध' लिख कर 'भारत-भारती' लिखना भले ही आगे बढ़ कर पीछे लौटना कहा जाय, मुझे इसके लिए कभी पछताना नहीं पड़ा। यह तो मैं नहीं कह सकता कि वह कितनी उपयोगिनी सिद्ध हुई, परन्तु यह यथार्थ है कि जनता ने आशा से अधिक उसे अपनाकर मुझे अनुगृहीत किया। मान लीजिए, वह कल की वस्तु थी, और आज बासी हो गयी। मैं यह भी मानता हूँ, साधारण रोटी, पक्वान्न की भांति स्थिर नहीं रह सकती। परन्तु एक बार की भूख शान्त करके ही क्या वह कृतकृत्य नहीं हो जाती और पकवान भी कल नहीं तो परसों भी क्या बासी नहीं पड़ जाते?

कवित्वपूर्ण रचनाओं के सम्बन्ध में भी मैंने देखा है, लोगों की रुचि ही प्रधान है। इसीलिए तो हम कविता की एक नहीं, अनेक परिभाषाएँ पाते हैं। रुचि-भिन्नता के कारण कोई एक कृति सर्वत्र एक ही दृष्टि से नहीं देखी जा सकती। इसलिए 'स्वान्तः सुखाय' वाली बात ही कला के लिए उपयुक्त जान पड़ती है।

कथा-साहित्य के वातावरण में पलने के कारण अधकितर उसी ओर मेरी रुचि और प्रवृत्ति रही है। हमारे वर्तमान काल के अनेक प्रसिद्ध कवि, जिनका हमें गर्व है, अपने ही बल पर खड़े हैं, जब मैं बहुधा छोटी-छोटी रचनाओं में भी एक सत्य किंवा कल्पित कथा का अवलम्ब लेकर चलता हूँ (यही मेरी त्रुटि और विशेषता कही जा सकती है।) वे स्वच्छन्दता से कल्पना के आकाश में उड़ने को समर्थ हैं। जब मुझे इस धरती पर ही किसी वन या उपवन में घूमने की गति से ही सन्तोष करना पड़ता है वे आपको नये-नये दृश्य दिखाने में समर्थ होते हैं। मैं तो यही प्रयत्न करके रह जाता हूँ कि प्राचीन को ही कुछ नवीन रूप में आपके सम्मुख उपस्थित कर सकूँ। बिना ईर्ष्या किये मैं अपनी त्रुटि को स्वीकार करता हूँ।

विशेषता इस बात में है कि यदि मैं कथा का आश्रय लेता हूँ तो वह मुझे उदारतापूर्वक मनचाहा दे देती है। फिर भी साकेत में यदि कुछ विशेषता है तो उसका श्रेय रामचरित को ही दिया जा सकता है।

"राम, तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है॥"

इसी प्रकार यशोधरा ने यदि मुझे कुछ यश दिया है तो यह उसी देवी ने जिसने मेरे हृदय में आविर्भूत होकर मुझ से यह लिखा दिया है कि—

"अबला-जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आंखों में पानी॥"

आपकी धैर्य-च्युति न हो तो इस सम्बन्ध में दो-एक उदाहरण और उपस्थित करने की आज्ञा चाहता हूँ।

उन दिनों श्रीमती एनीबेसेण्ट के होमरूल आन्दोलन की धूम थी। मैं बनारस गया था। एक दिन काशी क्लब में वहाँ के कुछ प्रमुख नागरिक उपस्थित थे, उसी समय एक सज्जन ने आकर कहा—किसी उर्दू कवि ने मालवीयजी पर आक्षेप करते हुए एक शेर कहा है जिसका अभी तक कोई उत्तर नहीं दिया गया। शेर यह था—

"कहते हैं मालवीजी हम होमरूल लेंगे।
दीवाने हो गये हैं गूलर का फूल लेंगे॥"

लोगों ने कहा कि दो ही पंक्तियों में इसका उत्तर दिया जाय तब है। श्री रायकृष्णदासजी ने मुसकरा कर मेरी ओर देखा। उसी समय सहसा मुझे अमरीका के बरबैंक नामक वैज्ञानिक का स्मरण आ गया जिन्होंने वनस्पति जगत में चमत्कारपूर्ण बातें कर दिखाई हैं। जैसे काँटों वाले पौधों को निष्कंटक कर दिया और फलहीन वृक्षों में नये फल उत्पन्न किये हैं। मैंने उनका आश्रय लेकर दो पंक्तियाँ बना कर सुना दीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब होमरूल होगा, बरबैंक जन्म लेंगे।
हाँ हाँ, जनाब तब तो गूलर भी फूल देंगे॥"

सुन कर लोग प्रसन्न हुए। परन्तु वास्तव में वाह-वाह के अधिकारी तो बरबैंक साहब ही थे।

इसी प्रकार जब गांधीजी ने जवाहरलालजी के माथे पर काँटों का किरीट रक्खा तब मुझे जिज्ञासा हुई, यह कौनसा किरीट है? पूछताछ करने से विदित हुआ, यह वह मुकुट है जो शूली के समय प्रभु ईसा को पहनाया गया था। इसी मुकुट ने आगे चल कर मुझ से निम्न गीत की रचना करा ली—

"चुन ले चला हमारे फूल।
माली छोड़ दिये क्यों तूने ये कण्टक, ये शूल?
माना तू मृदुलस्पर्शी है,
फिर भी हाय! विषमदर्शी है,
जो फूलों का, नहीं वही क्या काँटों का भी मूल!
तू जिसका वेतन भोगी है,
वह भी रागी है, रोगी है,
उड़े न उसके हाथों में पड़ अभागियों की धूल!
जा, फिर भी तू सफल मनोरथ,
हमें देखने दे उसका पथ,
पहनेगा कण्टक-किरीट जो अमृत-पुत्र अनुकूल!"

मेरे कहने का आशय यह है कि मेरी रचनाओं में यदि कुछ विशेषता है तो वह दूसरों के ही आश्रय से आयी है। केवल एक छोटी-सी बात ही ऐसी है जिसे आप लोगों ने अपनी उदारता से बड़ा मान कर मुझे अपना अनुग्रह भाजन बना लिया है। काका कालेलकरजी के कुछ प्रश्नों का उत्तर देते हुए मैंने कहा था—"मैं किसी भी ऐश्वर्य-पूर्ण युग में क्यों न प्रवेश करूँ, अपना समय सदैव मेरे सामने रहा है। चाहे वह युग 'साकेत' का हो, चाहे 'द्वापर' का अथवा बुद्ध भगवान की 'यशोधरा' देवी का। मेरी बुद्धि सदैव मुझ से कहती रही है—

"मैं सुनती हूँ, वह दूर देश है सपना।
तुम उसे देखकर भूल न जाना अपना॥"

इस प्रसङ्ग पर एक बात और दुहराता हूँ, भले ही वह मेरे राष्ट्रकवित्व के प्रतिकूल हो। यदि आज मैं 'भारत-भारती' जैसी कोई पुस्तक लिखने बैठूँ तो उसका दूसरा ही रूप होगा। मैंने 'भारत-भारती' में लिखा है—
"था हिन्दुओं का शिष्य ईसा यह पता भी है चला।
ईसाइयों का धर्म बहुधा बौद्ध साँचे में ढला॥"

इसके आगे 'हिन्दू' नामक निबन्ध में यही बात मैंने इस प्रकार कही है—

"ईसा महापुरुष हैं मान्य,
क्षमा-मूर्ति व्रत-वीर, वदान्य।
धर्म विषय में वही सुपात्र,
हैं इस भारत के ही छात्र।"

परन्तु आज से कुछ दिन पहले यही बात मैंने फिर इस प्रकार कही है—

"धन्य धन्य हम जिनके कारण,
लिया आप प्रभु ने अवतार।
किन्तु त्रिवार धन्य वे जिनको,
दिया एक प्रिय पुत्र उदार।"

यदि यह मेरा क्रम-विकास नहीं तो इसके लिए भी मुझे कोई पछतावा न होगा।

जो हो, निश्छल-भाव से आप लोगों के समक्ष मैं यह स्वीकार करता हूँ कि लोगों ने जितना मुझसे पाया है उससे अधिक मुझे दिया है। यही मेरे संकोच का कारण है। मैं तो अपने को आप जैसे महानुभावों के बीच खड़ा होने योग्य भी नहीं मानता।

अन्त में फिर एक बार अपनी मौन कृतज्ञता जना कर उसी पद्य को दुहराना चाहता हूँ जिसे मैंने अपनी ५०वीं वर्षगांठ पर पढ़ा था—

"अनुगृहीत हूँ, यद्यपि अब भी,
कठिन पंथ करना है पार।
दिन ढल गया न दौड़ गिरूँ मैं,
रहे आप सबका आभार।
यह सुयोग दुर्लभ पर सुनिये,
निज भविष्य है अधिक उदार।
जो पीछे आ रहे उन्हीं का,
मैं आगे का जय-जयकार।"

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज की हिन्दी कविता

[श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त]

आज हिन्दी कविता दो धाराओं में बँट गयी है; एक क्षीण, सूखती हुई; दूसरी बलवती, तीव्रगामी। पहली धारा के प्रतिनिधि कवि बच्चन और महादेवी वर्मा हैं; दूसरी के पन्त, भगवतीचरण वर्मा, 'दिनकर', नरेन्द्र आदि। हमारे समाज और साहित्य में भी यह श्रेणी-विभाजन स्पष्ट है; एक दल पुराने संस्कारों से अपने को बाँध कर चलने के प्रयत्न में असमर्थ; दूसरा यह बंधन तोड़ एक नवीन संस्कृति की रचना में लीन।

समाज में दीर्घकाल से श्रेणी-विभाजन चला आ रहा है और संस्कृति एक लम्बे अर्से से शासक श्रेणी की संपत्ति रही है। किन्तु इतिहास के आरम्भ में जब पूँजी न थी, समाज में श्रेणियाँ भी न थीं। आज समाज का श्रेणी-संघर्ष भयानक रूप धारण कर रहा है क्योंकि वर्ग-संस्कृति का अन्त समीप है। निकट भविष्य में ही समाज से वर्ग निकल जायँगे और एक नयी संस्कृति की स्थापना होगी। संसार के एक छटे हिस्से में इस संस्कृति का निर्माण हो भी रहा है।

समाज की इन दो शक्तियों का संघर्ष साहित्य में भी स्पष्ट हो रहा है। एक दल पुराने मूल्यों को प्राणपन के साथ कलेजे से चिपकाए है; उसने ऊँची दीवारों से अपने को घेर रक्खा है। वह कला की दुहाई देता है और जीवन की उपेक्षा करता है। शाश्वत सत्य की मृगतृष्णा में वह भटक कर रह जाता है। किन्तु जिस समाज को वह शाश्वत समझता है, उसकी बुनियादें हिल चुकी हैं।

एक पल के लिए इन संस्कारी कवियों का दृष्टिकोण समझना चाहिए। वे कहते हैं कि कवि अपने स्वप्नों को मसिबद्ध करता है; उसे आज और कल से क्या मतलब? उसकी रचना युग-युग पर्यन्त पढ़ी जायगी। मकड़ी की तरह अपने ही अन्तर से वह सतत जाला तनता रहता है; ईंट, गारे की उसे क्या आवश्यकता?

किन्तु ठीक से सोचने पर हम देखेंगे कि कला का जीवन-संघर्ष से अटूट सम्बन्ध है और समाज के विकास अथवा ह्रास के साथ कला का भी उत्थान और पतन है। कला के पीछे जो भाव-चेतना होती है उसका आधार जीवन की शक्तियाँ हैं। कवि एक चेतना के संसार में अपने नेत्र खोलता है; उसके व्यक्तित्व का उस भौतिक संसार से संघर्ष होता है; उसे लिखने को प्रेरणा मिलती है।

आज क्यों हिन्दी के संस्कारी कवियों का भाव-स्रोत सूख रहा है और इनकी सूखती गीत-धारा में क्यों इतनी पीड़ा और कटुता है? कल्पना के प्रासादों में कब तक रह कर उन्हें सान्त्वना मिल सकती थी? उनके जीवन के सब सपने उन्हें तज कर बिला रहे हैं और करुण स्वर में वे रुदन करते हैं:—

"तुम्हें बाँध पाती सपने में!"

जीवन में उनकी सब अभिलाषाएँ कुचली जा चुकी हैं; केवल उनका मर्माहत अभिमान उनका साथी बना है;

"क्षतशीश मगर नतशीश नहीं।"

किन्तु खँडहरों का मोह उनके पैर बाँधे हुए है:—

"अब खँडहर भी टूट रहा है,
गायन से गुंजित दीवारें।
दिखलाती हैं दीर्घ दरारें,
जिनसे करुण, कर्णकटु, कर्कश, भयकारी स्वर फूट रहा है।"

महादेवी वर्मा ने "सान्ध्य-गीत" के बाद मौन ग्रहण किया है। बच्चन जिस गति और वेग से "निशा-निमन्त्रण" और "एकांत संगीत" में बढ़े थे, उसमें शिथिलता आ चुकी है। एक हद तक ये कवि अपने में ही लीन हैं; बाहर के जग की प्रतिध्वनियाँ इनके कल्पना-भवन में दबी ही आती हैं, अतः उनके भाव-जगत की तरलता सूख रही है। महादेवीजी ने अपने गीतों में नक्क़ाशी हद दरजे तक पहुँचा दी, किन्तु कला में शरीर के साथ प्राण भी तो हों!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन अन्दर ही अन्दर घुट कर विषपान कर रहे हैं :—

"विष का स्वाद बताना होगा !
ढाली थी मदिरा की प्याली,
चूसी थी अधरों की लाली,
कालकूट आने वाला अब, देख नहीं घबराना होगा !"

अथवा "कोई विरला विष खाता है !"

इन कवियों को व्यक्तिगत् जीवन की विषमताओं ने लिखने की प्रेरणा दी; उस पर जितना भव्य कला-भवन बन सकता था, वे बना चुके। उनके आगे बढ़ने का अब मार्ग बन्द है। उनके व्यक्तिगत् जीवन में कोई नवीन परिस्थिति अथवा भौतिक बाह्य संसार से नवीन संपर्क ही अब उस रुँधे मार्ग को खोल सकते हैं; वर्ना वह अपनी पुरानी तानें दुहराते रह जायँगे और उनके काव्य में भयानक एकरसता आने की आशंका है।

दूसरी धारा के प्रतिनिधि कवि बहुत तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। पन्त की प्रेरणा आज विशेष सजग और तरल है। "ग्राम्या" की कविताएँ दिसम्बर १९३९ से फर्वरी १९४० तक केवल तीन महीनों में लिखी गयी हैं। साथ ही कला के प्रति जो उदासीनता "युगवाणी" की कुछ बौद्धिक रचनाओं में थी, वह "ग्राम्या" में नहीं। "ग्राम्या" की अनेक कविताएँ इस युग की प्रौढ़तम रचनाएँ हैं। इसी प्रकार भगवती बाबू, 'नवीन', 'दिनकर' और नरेन्द्र आदि के काव्य में हम अदम्य वेग और शक्ति देखते हैं।

इसका कारण स्पष्ट है। हमारे समाज में जो शक्तियाँ प्रगतिशील हैं, उनके प्रतिनिधि यह कवि हैं। सांस्कृतिक संघर्ष में जो शक्तियाँ बल पकड़ रही हैं, उनकी रचना में ओज और बल होगा ही।

इन कवियों में एक टोली राष्ट्रीय विचारों को लेकर चली है, दूसरी समाजवाद को। आज भारत की समर-भूमि में राष्ट्रीय और समाजवादी दोनों कवि ही प्रगतिशील हैं, किन्तु एक दिन राष्ट्रीय कवियों को भी निश्चय करना होगा कि वर्ग-संस्कृति की शृंखलाओं को वे तोड़ेंगे अथवा नहीं; उन्हें फाशिज्म और समाजवाद में अपना लक्ष्य तय करना होगा। बिना किसी फिलॉसफी के पथभ्रष्ट होने की संभावना रहेगी, जैसा हम जापानी कवि योन नागुची अथवा इटालियन कवि डैनन्जियो के बारे में देखते हैं। इसी प्रकार 'नवीन' "कुंकुम" की भूमिका में, 'दिनकर' प्रगतिशीलता पर अपने वक्तव्य में और भगवती बाबू अपनी कविता '१९४०' में ठोकर खा चुके हैं। उनकी भावनाएँ प्रगतिशील हैं किन्तु उनके दिमाग अभी तक वर्ग-संस्कृति की शृंखलाओं से सर्वथा मुक्त नहीं हुए।

पन्तजी अपने ठोस अध्ययन के कारण हिन्दी कवियों में सब से सही वस्तु-विवेचन करते हैं। "युगवाणी" का रूखापन आप पीछे छोड़ चुके हैं। आपकी भाषा में नयी तरलता आ रही है। यदि कल्पना और चिन्तन के साथ पन्त के काव्य में भावना मिल जाय, तो अवश्य हिन्दी का विप्लवकारी गोर्की हमारी आँखों के सामने हो। "ग्राम्या" से हिन्दी साहित्य को भारी आशा होती है। "ग्राम्या" में कवि ने नयी आँखों से भारतीय गाँव को देखा है। कवि ग्राम-युवती को देखता है :—

"उन्मद यौवन से उभर
घटा-सी नव असाढ़ की सुन्दर,
अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम-युवति
वह गजपति
सर्प डगर पर !"

किन्तु सामाजिक शोषण दो दिन में उसका रूप नष्ट कर देता है :—

"रे दो दिन का
उसका यौवन !
सपना छिन का
रहता न स्मरण !
दुःखों से पिस,
दुर्दिन में घिस,
जर्जर हो जाता उसका तन !
ढह जाता असमय यौवन-धन !
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस-खेला कुछ क्षण !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस असह्य जीवन से मुक्ति के द्वार खुल रहे हैं :—

"जाति वर्ण की, श्रेणि वर्ग की
तोड़ भित्तियाँ दुर्धर
युग-युग के बंदीगृह से
मानवता निकली बाहर"

गाँव के अनुरूप ही कवि की भाषा ने आज बाना पहना है। पन्तजी की बदलती विकासवान प्रतिभा का यह एक इशारा है :—

"उजरी उसके सिवा किसे कब
पास दुहाने आने देती
अह, आँखों में नाचा करती
उजड़ गई जो सुख की खेती!
बिना दवा-दर्पन के गृहिनी
स्वरग चली,—आँखें आतीं भर,
देख-रेख के बिना दुधमुँही
बिटिया दो दिन बाद गई मर!"

आगे,

"खैर, पैर की जूती, जोरू
न सही एक, दूसरी आती,
पर जवान लड़के की सुध कर
साँप लोटते, फटती छाती।"

"ग्राम्या" की एक कविता "ग्राम देवता" विशेष महत्व रखती है। इस कविता में भारतीय संस्कृति का हमें सिंहावलोकन मिलता है, युग-युग की शोषण-पीड़ा और अब त्राण की आशा :—

"राम राम,
हे ग्राम देव, लो हृदय थाम,
अब जन-स्वातंत्र्य युद्ध की जग में धूमधाम।
उद्यत जनगण युग क्रान्ति के लिए बाँध लाम,
तुम रूढ़ि-रीति की खा अफीम लो चिर विराम!"

हिन्दी कविता के मंच पर एक और प्रभावशाली व्यक्तित्व है जिसके वर्णन बिना हिन्दी कविता पर कोई भी निबन्ध अपूर्ण रहेगा। वह व्यक्तित्व है, यथा नाम तथा गुणः 'निराला'। 'निराला' के बारूद से बने व्यक्तित्व की गणना प्रतिक्रियाशील शक्तियों में करना अनुचित होगा। पन्त के शब्दों में 'अनामिका' के कवि ने पर्वत-कारा तोड़ कर कविता-धारा को मुक्त किया है, किन्तु साथ ही अपने घोर व्यक्तिवाद के कारण 'निराला' सदा 'फ्री लान्स' रहेंगे और 'निरालावाद' के अतिरिक्त और किसी 'वाद' की सार्थकता न मानेंगे। अभी निराला बाड़ पर बैठे हैं, न इधर हैं न उधर। संक्रान्ति काल में मध्य श्रेणी का यह 'रोल' आश्चर्यजनक नहीं। 'निराला' हिन्दी कविता में एक विप्लव-कारिणी शक्ति रहे हैं; रूढ़िवाद के आप घोर शत्रु हैं। इस नाते हिन्दी के इतिहास में आपका नाम आदर के साथ लिया जायगा। हम आशा करते हैं कि आपकी नवीन प्रगतिशील कविताएं "रानी कानी" और "तेल की पकौड़ी" शीघ्र ही दिन की रोशनी में आवेंगी।

इस प्रकार हिन्दी कविता की शक्तियों का बँटवारा हम सहज ही समझ सकते हैं। संस्कृति में संघर्ष के चिन्ह प्रकट होने लगे हैं। यद्यपि सतह पर अभी तक शान्ति है, तल में संघर्ष जारी है। इन्हीं शक्तियों के इर्द-गिर्द हम आज हिन्दी के लेखकों को पायेंगे।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती कविता

[डाक्टर रामविलास शर्मा]

हर एक युग में कुछ कविता ऐसी होती है जो उस युग के लिए बड़ी उपकारी होती है परन्तु वह साहित्य में बहुधा स्थान नहीं पाती। चलती कविता अनेक रसों की होती है परन्तु जिस कविता में व्यंग्य और हास्य होता है वह चलती ही नहीं उड़ने लगती है। उच्च कोटि के साहित्य से दूर निर्धन जनता में ऐसी कविता का विशेष प्रचार होता है। बहुधा कवि भी ऐसी ही जनता से निकल आते हैं। ऐसा भी होता है कि अनेक महाकवि चलती कविता करते हैं परन्तु इतिहास लेखक और आलोचक उस चलती कविता को भूल उनकी बैठी कविता को आसमान पर चढ़ा देते हैं। इसमें दोष उतना कवियों का नहीं है जितना साहित्य का मूल्य आँकने वालों का। साहित्य की कसौटी पर सोने के गहनों की परख अच्छी होती है, तलवार-बल्लम को परखने के लिए बहुधा कसौटी ही नहीं होती। यदि कहें कि पुरुष के तलवार और बल्लम भी आभूषण हो सकते हैं तो गहनों के पारखी अपनी कसौटी उठा कर मारने को तैयार हो जायंगे। फिर भी तलवार-बल्लम की महत्ता इससे कम न होगी और जो समाज सोने के गहनों को ही परखता रहेगा, वह एक दिन उनसे हाथ धो बैठेगा।

हिन्दू मुसलमानों से एक बहुत सीधी बात पूछी गयी है:—

बाम्हन है तू बाम्हनि जाया।
और राह से क्यों नहीं आया॥
तुरुक है तू तुरुकिनी जाया।
पेट में क्यों नहिं सुनति कराया॥

प्रश्न टेढ़ा है और शायद कुछ हृदयों में भाले की तरह ही लगे। कुछ लोग कहेंगे क्या घासलेटी बात कही है परन्तु बात चाहे घासलेटी ही हो, है पते की। धर्म के साथ जो सीधा ईश्वर का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, हर एक धर्म वाले जो अपने मुँह ईश्वर के विशेष पुत्र बनते हैं उस पर तीव्र आघात है। आप कह सकते हैं कि इसी बात को थोड़े और सभ्य ढंग से कहना चाहिए था परन्तु शठ बिना लट्ठ के ठीक नहीं होता। जो इतना असभ्य है कि अपने आपको तो ईश्वर का सगा बेटा और दूसरे को सौतेला भाई भी नहीं समझता वह सभ्य व्यवहार की क्यों आशा रखता है? एक बात और है, ऊपर का प्रश्न पढ़े-लिखे नागरिकों से उतना नहीं है जितना अपढ़ अंधविश्वासियों से, जो आपस में इससे अधिक अश्लील भाषा का प्रयोग करते हैं। वैसे तो एक लेख में ऐसे शब्दों का उल्लेख करना भी अपने ऊपर विपत्ति बुलाना है; परन्तु ये शब्द एक महाकवि के हैं जिन्हें 'हिन्दी नवरत्न' में स्थान मिला है। यदि श्रद्धेय मिश्र बन्धुओं की पुस्तक में ये शब्द छपे न देखे होते, तो उन्हें यहाँ लिखते दो-चार बार आगा-पीछा जरूर होता।

हिन्दी साहित्य में कबीर का नाम एक रहस्यवादी के नाते है; धार्मिक कट्टरता पर उन्होंने जो प्रहार किये हैं उन्हें हम भूल-सा जाते हैं। पिछले साहित्य से अपनी भावना के अनुसार हम सामग्री ग्रहण करते हैं। बहुत-सी बातें छोड़ जाते हैं, बहुत-सी नयी ढूँढ निकालते हैं। कुछ लोगों की भावना ऐसी होती है कि कविता में मायके और ससुराल की बातें पढ़ कर विशेष आनन्द आता है। अध्यात्मवाद की ऊँची-ऊँची बातें उन्हें इन छोटी-छोटी बातों में मिल जाती हैं। कबीर का मूल्य आँकते समय इन बातों को भुलाया नहीं जा सकता, न उन्हें भुलाया जाना चाहिए। फिर भी मनुष्य में अच्छाई-बुराई दोनों होती हैं; एक बात के कारण यदि हम किसी की बड़ाई करते हैं तो यह अर्थ नहीं कि हमें उसकी सभी बातें अच्छी लगती हैं। कबीर ने सब से मार्के का काम यह किया कि अपनी कविता से लोगों को अंधविश्वास से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत कुछ दूर ले गये। उनकी कविता में व्यंग्य और हास्य कूट-कूट कर भरा है और इस प्रकार की रचना के वे आचार्य-से हैं।

"कंकड़ पत्थर जोड़ के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय॥"

इसी तरह की उनकी न जाने कितनी मर्मवेधी उक्तियाँ हैं। हम अपने मर्म पर आघात नहीं होने देना चाहते, इसलिए कविता के इस रूप को शुद्ध साहित्य से दूर रखते हैं।

कवित्त-सवैया की परम्परा में हास्य रस की ऐसी रचनाएँ बहुत हुई हैं। यह अवश्य है कि जब कबीर की कोटि के कवि ऐसी कविता से दूर रहेंगे तो वह नीची कोटि की प्रतिभा के हाथों चली जायगी। इस परम्परा में नये अंगरेजी पढ़े बाबू लोगों की ही खिल्ली विशेष उड़ाई गयी है। कविसम्मेलनों में इस प्रकार की रचना पढ़ने वाले दो-चार कवि अवश्य मिल जाते हैं। साधारण जनता से पूछा जाय या ताली बजाने और वाह-वाह से उसके मन की बात जानी जाय तो पता चलेगा कि हास्य की कविताओं से ही वह कविसम्मेलन सफल हुआ। हास्य की कविता शैरों में भी होती है परन्तु कवित्त-सवैय में टिकाव ज्यादा होता है। फैलाव अधिक होने से सुनने वालों की उत्कंठा चौथी लाइन तक बढ़ती जाती है। स्वराज्य पार्टी पर एक उक्ति देखिएः—

"इनके जो विरुद्ध कहो कुछ भी
बस दौड़ के भूँक के काटते हैं।
बनते न मिनिस्टर हैं तब भी
भरता भरके घर पाटते हैं।
यदि आज हैं तर्के तअल्लुक तो
कल ही सहयोग निपाटते हैं।
सच पूछिये तो ये स्वराजी सभी
कभी थूकते हैं, कभी चाटते हैं।"

आप शायद फिर कहें—गंदी बात है। हम फिर उत्तर देंगे बात पते की है। ऐसी कविता से जनता में जितना प्रचार होता है उतना सौ व्याख्यानों से नहीं। यदि कविता को अलंकार शास्त्र से ही जँचना है तो इसमें वे भरे हुए हैं। यदि कविता सुन्दर के साथ शिव भी है तो इस रचना में शिव और सुन्दर दोनों के गुण हैं। उपर्युक्त सवैया हितैषीजी का है परन्तु उनके रंगे-चुने जो दो कविता संग्रह निकले हैं उनमें यह नहीं मिलेगा। यह वही कसौटी पर गहने परखने वाली बात है। 'वैंकाली' की पहली कविता देखिए—

"वैंकाली!
वैंकाली!
सृष्टि शरभ पर,
विस्तृत नभ पर
रवि निष्प्रभ पर
सब पर तुमने काली काली
चादर अपनी डाली
वैंकाली!
वैंकाली!"

सुनने वाला कहेगा—बस करो; इतने से ही समझ गये कैसी कविता है; उच्चकोटि की है, भाव अति सुन्दर, भाषा प्रांजल है। प्रशंसा करते हुए भी वास्तव में वह कविता आगे सुनना नहीं चाहता। परन्तु यदि गंदी चीजा से आप को विशेष प्रेम नहीं है तो नीचे की पंक्तिया पढ़ कर आप प्रशंसा भी करेंगे और आगे सुनना भी चाहेंगे। कानपुर के चुनाव में किसी सफेद दाढ़ी के प्रतिद्वन्द्वी पर यह गीत रचा गया था—

"हर एक बात में है कुछ अटकल छिपे हुए।
हर एक गांठ में हैं बुरे बल छिपे हुए॥
निर्मल सफेदपोशी में हैं मल छिपे हुए।
दाढ़ी के बाल बाल में हैं छल छिपे हुए।
इन्हें न वोट दीज्यों, अरे ओ मोरे भैया!"

किसी कारण से पहले से ही न सुनने का निश्चय कर लिया हो तो दूसरी बात है नहीं तो आप आगे जरूर सुनना चाहेंगे। इस उद्धरण को हम भी और विस्तार से देना चाहते थे परन्तु क्या करें आगे की पंक्तियाँ मिली ही नहीं।

हास्य में क्रोध और करुणा की भावना बहुधा मिली रहती है। भूषण की कविता में हास्य के साथ क्रोध भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है, जैसे—'कढ़ि गई रैयत के उर की कसक सब मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की'। कभी-कभी करुणा और हास्य ऐसे मिल जाते हैं जैसे बच्चों की एक आँख में आँसू और दूसरी में हँसी। भारतेन्दु बाबू ने अपने नाटकों में जो हास्य की कविताएँ दी हैं उनसे हंसी के साथ मन में और भाव भी जगते हैं। लोकगीतों के सहारे हास्य का पुट देकर बड़ी सुन्दर कविता की जा सकती है भारतेन्दु के समय में ऐसी कविता बहुत हुई है। देश के लिए यह एक स्वास्थ्य का चिन्ह है कि भारतेन्दु जैसे कवि भी ऐसी चलती कविता करने में अपनी हेठी न समझते थे। अपने नाटकों में जो उन्होंने व्यंग्य के पद्य रचे हैं, साधारण जनता पर उनका प्रभाव अचूक है। गाँव की बोलियों में इस तरह की बहुत-सी कविता चला करती है जो किताब के पन्नों में नहीं छपती। श्री गौरीशंकरजी के "बुन्देलवैभव" संग्रह में ऐसी कुछ रचनाएँ मिलेंगी। गाँव के लोगों में अपनी परिस्थितियों पर हँसने की अद्भुत शक्ति होती है। ऐसी कविता खेत के नाज की तरह पुष्ट और स्वाभाविक होती है। सीतापुरी अवधी के कवि श्री बलभद्र दीक्षित "पढ़ीस" की कुछ रचनाएँ बहुत ही लोकप्रिय हुई हैं। उनका प्रचार गाँव में ही नहीं शहरों में भी है। उनकी सब से अधिक लोकप्रिय कविताएँ वे हैं जिनमें व्यंग्य और हास्य है। नीचे की पंक्तियाँ देखिए। जैसे होमियोपैथी में ऊंची पोटेंसी की दवाई देखने में साधारण परन्तु शक्ति में अद्भुत होती है, वैसे ही शब्द सरल ह परन्तु व्यंग्य तीखा है। एक साधारण अङ्गरेजी शिक्षा में रँगे ग्रेजुएट का वर्णन है :—

"अर्जी लिक्खिनि अङ्गरेजी माँ,
घातयि पूँछयि चपरासिन ते।
थिरकालु पढ़ीस पढ़ीसी का,
लरिकउनू एम० ए० पास किहिनि॥"

यह बात ठीक है कि ऐसी कविताएँ एम० ए० में नहीं पढ़ाई जा सकतीं और कुछ लोग कविता करते समय इस बात को ध्यान रखते हैं कि एम० ए० के विद्यार्थियों का भी हित हो। यह भी ठीक है कि दूसरे साहित्य की तुलना में आप अपने साहित्य से ऐसे उदाहरण देना पसंद न करेंगे। फिर भी ऐसी रचनाएँ जनता और साहित्य को पास रखतीं हैं; जनता का थोड़ा मनोरञ्जन हो जाता है, और साहित्य भी जनता से जो पा सकता है पा जाता है। इसलिए ऐसी कविताओं का रचा जाना और उनका प्रचार होना बुरा नहीं है। 'कामायनी' और 'युगवाणी' अथवा 'ग्राम्या' का स्थान इन्हें देने की आवश्यकता नहीं। गाँव वालों पर दया कर के उन्हें कुछ मनोरञ्जन के लिए देना ही चाहिए। 'ग्राम्या' से गाँव वालों का मनोरञ्जन हो तो और भी अच्छा—ऐसा मनोरंजन जो कवि को भी अभीष्ट हो—नहीं तो उन्हें कुछ ऐसी चीज देनी चाहिए जो गाँव के अधिक निकट हो।

इस संबंध में निरालाजी की कुछ नयी रचनाओं की भी याद आती है। 'कुकुरमुत्ता' इनमें प्रधान है। रहस्यवाद के साथ जैसे हास्य का कोई घनिष्ठ संबंध है; कबीर भी रहस्यवादी थे और निरालाजी भी हैं। दोनों में भेद यह है कि कबीर सामाजिक परिस्थितियों के प्रति अधिक सचेत थे, निरालाजी मूलतः व्यक्तिवादी हैं। उनका रहस्यवाद उन लोगों का है जो अपने ही भीतर सत्य के दर्शन करते हैं। इसीलिए जब वे संसार की दूसरी वस्तुओं का वर्णन करते हैं तो उन वस्तुओं पर भी उनके उसी अतिरिक्त सत्य की छाप दिखाई देती है। निरालाजी का 'कुकुरमुत्ता' अपवाद नहीं है। वह रहस्यवाद की प्रतिक्रिया है परन्तु प्रगतिशील न होकर रहस्यवाद से अधिक प्रतिक्रियावादी है। भाषा और भाव दोनों ही अवांछनीय हैं। इस असफलता का यही कारण है कि निरालाजी का व्यक्तित्व सामाजिक आदर्शों से मेल नहीं खाता। उनमें भारतेन्दु या कबीर जैसी समाज की हित-कामना नहीं है। अद्वैतवाद के अनुसार 'कुकुरमुत्ता' की यह आलोचना ठीक न जँचेगी परन्तु इसकी कसौटी निरालाजी का व्यक्तिवाद है और उस पर परखने से सचाई खुल जायगी। व्यंग्य और हास्य की कविता लिखते हुए ऐसे गढ़ों में गिरने से बचना चाहिए कि 'कुकुरमुत्ता' ही हाथ लगे। वैसे तो समतल भूमि पर भी आप ठोकर खा सकते हैं और निरालाजी का 'कुकुरमुत्ता' पहाड़ी पर से सिर उठा कर बोलता है।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-सौन्दर्य का कवि—विद्यापति

[श्री जगदीशचन्द्र माथुर]

स्थूल प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक जिज्ञासा की अभिव्यंजना तो प्राचीन हिन्दी कवियों ने बहुत की। उधर रीतिकाल में वासना को आध्यात्मिक रूपकों द्वारा भी प्रकट किया गया। परन्तु संस्कृत काव्य के अपेक्षाकृत हिन्दी में मानव-प्रेम के स्थूल, शारीरिक पहलू का एवं इन्द्रियजन्य सौंदर्य का निस्संकोच और अकृत्रिम विवरण बहुत कम मिलता है। यवन-आक्रमण के फलस्वरूप समस्त भारतीय संस्कृति में एक प्रकार के संकोच और छिपाव का प्रवेश हुआ, जिसने हमारे नैतिक जीवन और सिद्धान्तों को अत्यधिक अमानवीय और अस्वाभाविक बना दिया। स्त्रियों की वेशभूषा इतनी बदल गयी कि १५वीं शताब्दी में जिन अंगों का चित्रण काव्य में पूर्णतः संगत समझा जाता था, १७वीं और १८वीं शताब्दी के बाद उनका उल्लेख भी अश्लील गिना जाने लगा। चित्रकला भी मनुष्य के सौंदर्य-निरूपण अथवा भाव-प्रदर्शन के स्थान परा डिजाइन और कारीगरी की चीज बन गयी। संगीत क लक्ष्य भावोत्तेजना के स्थान पर कथोत्कृष्टता हो गया। इसके साथ ही एक दूसरी ऐसी वृत्ति का भी परिस्थितियों के कारण उदय हुआ। जो हिन्दू समाज को मानवता से आध्यात्मिकता की ओर बहा ले चली। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, वासना—यानी शारीरिक सुख और सौंदर्य की स्वाभाविक लालसा—अवरुद्ध की जाने पर भी किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्ति ढूँढ़ती है। या तो वह कृत्रिम सामाजिक नैतिकता से आक्रान्त होकर ऐसा विकृत रूप धारण कर लेती है जैसा रीतिकाल की श्रृंगारी कविताओं में प्रायः मिलता है, या वह लालसा युगधर्म अथवा महात्माओं से प्रभावित होकर पारलौकिक साधना में परिणत हो जाती है, जैसा कि भक्तिकाल में हुआ।

यों यवन-आक्रमण के उपरान्त आधुनिक काल तक हिन्दी साहित्य दो नैतिक वृत्तियों से प्रभावित होता रहा, जिन्होंने मानवीय इच्छाओं और इंद्रिय-प्रेरणाओं को अपरिष्कृत अथवा अविकृत रूप में प्रकट न होने दिया। [एक विचारणीय बात यह भी है कि इन वृत्तियों के कारण ही हिन्दी कविता संस्कृत कवियों के-से प्रकृति के संश्लिष्ट और मर्मस्पर्शी वर्णनों से वंचित रही।]

जिस साहित्य की परिपाटी ऐसी रही है उसमें विद्यापति जैसे मानवप्रेमी, सौंदर्यप्रेमी, इंद्रियप्रेमी कवि की खपत होना कठिन ही है। सच तो यह है कि विद्यापति उस संक्रांति युग (transitional age) के प्रतिनिधि हैं जिसके साहित्य का शरीर—भाषा—ही बाद के जमाने से मिलती है, किन्तु जिसकी आत्मा सर्वथा संस्कृत साहित्य से प्रेरित है। इस सत्य को विस्मृत कर के पिछले दिनों अनेक समालोचकों ने विद्यापति की पदावली पर बाद की नैतिकता को आरोपित करने की चेष्टा की। वस्तुतः हिन्दी कविता की मुख्य धाराओं ने हमारा समालोचनात्मक दृष्टिकोण इतना एकांगी कर दिया है कि हम एक अननभूत नैतिकता की कल्पना भी सरलता से नहीं कर सकते। लेकिन विद्यापति को समझने के लिए हमें बाद की नैतिकता के रंगीन चश्मों का एकबारगी त्याग करना पड़ेगा।

विद्यापति की नैतिकता में कोई दुराव नहीं है, चेतन (conscious) और अर्धचेतन (Sub-concious) में कोई वैमनस्य नहीं है जिसके कारण अर्ध-चेतन, रूपकों द्वारा धोखा देकर अपनी अभिव्यक्ति करना चाहे। विद्यापति का जीवन-सिद्धान्त ही इतना स्पष्ट और संकोचहीन है कि उसमें ढोंग चल ही नहीं सकता।

"एहि संसार सार बथु एक। तिला एक संगम जाव जिव नेह।"

इस जगत में केवल एक सार वस्तु है, एक क्षण के लिए प्रियतम का आलिंगन और जीवन भर उसके प्रति स्नेह। डंके की चोट पर जो कवि मानवीय प्रेम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रिय-सुख को इस प्रकार जीवन का साध्य कह सके उसकी कविता को राधाकृष्ण का आध्यात्मिक रूपक मानना उसके साथ अन्याय करना है। विद्यापति अधरोत्पल का प्रेमी, रससिक्त और इन्द्रियासक्त मधुकर है, शुष्क उद्धव नहीं। वह माँसलता का कवि (poet of the flesh) है, मानव-सौंदर्य ही उसका सिद्धान्त है। सौंदर्य से साक्षात्कार होने पर वह निरोध करने की आवश्यकता ही नहीं समझता। सुन्दर रमणी पर दृष्टि पड़ते ही उसकी वाणी अनायास ही मुखरित हो उठती है—

"कामिनि करए सनाने। हेरितहि हृदय हनए पँचबाने।"

अँग्रेजी कवि बर्न्स के गीतों में नारी-सौंदर्य के प्रति जिस भावावेश (rapture) को व्यंजित किया गया है, उसी का स्पंदन हमें निम्न पंक्तियों में मिलता है—

"जहाँ जहाँ पगजुग धरई। तहिं तहिं सरोरुह भरई।
जहाँ जहाँ झलकत अंग। तहिं तहिं बिजुरि तरंग।
कि हेरल अपरुब गोरि। पइठल हिय मधि मोरि।"

यहाँ कल्पना-सौन्दर्य स्पर्श-सुख से सम्पृक्त है। इन्द्रिय सुख का अतिरेक जिस विह्वलता को उत्पन्न करता है उसको शब्दबद्ध करने में विद्यापति को अपूर्व सफलता मिली है। विह्वल नायिका माधव की मधुर वाणी को सुन कर बेसुध हो जाती है—

"तनु पसेव पसाहनि भासलि, पुलक तइसन जागु।
चूनि चुनि भए काँचुअ फाटलि, बाहु बलुआ भाँगु॥"

जिधर भी निगाह डालिए, अङ्ग-प्रत्यङ्ग की विह्वलता, उनके सौन्दर्य, उनकी पीड़ा का वर्णन है। विद्यापति की कविता में नखशिख-वर्णन एक सोपानमात्र नहीं है, वह तो एक वातावरण के तुल्य है। नारी का वक्षःस्थल रीति-युग के प्रस्तुतों की भाँति कल्पना की उड़ान का साधन ही नहीं है बल्कि मानव-सौन्दर्य का प्रतीक है। उस सौन्दर्य की साधना, उसका मूर्त अनुभव, उसका निश्शंक प्रदर्शन—यही विद्यापति का मिशन है। वह कहता है—"देखो, ये मधुमत्त भृङ्गों-से लोचन कितने मनोहर हैं, ये अधरबिम्ब कितने आकर्षक हैं, अमृतासिक्त आँचल से पुछा हुआ यह मुखड़ा कितना उज्ज्वल है, यह उन्नत वक्ष कितना मनोरम है, ये जङ्घा, ये सुडौल भुजाएँ कितनी भली जान पड़ती हैं। कितना सुन्दर है मानव-शरीर। क्या तुम इस सौन्दर्य से विमोहित नहीं होते?" शायद आधुनिक उपन्यासकार डी०एच० लारेन्स द्वारा भी मानव देह की प्रतिष्ठा (exaltation of the human body) इतनी ईमानदारी और इतने कवि-सुलभ लालित्य के साथ नहीं हुई है। लारेन्स आधुनिक कृत्रिमता के विरुद्ध उच्छृङ्खलता से विद्रोह करता है। इसीलिए उसकी दैहिक उपासना में वह (normality) सहज-भाव नहीं है जो विद्यापति में है।

जिसे पच्छिम वाले platonic love (आत्माओं का सम्मेलन) कहते हैं, विद्यापति में उसका आभास भी नहीं मिलता। कवि ने जब देह के सौन्दर्य और देह की लालसा को प्रतिष्ठित करने का विचार कर लिया तो वह ऐंद्रिक प्रतिक्रियाओं को ही प्रधानता देगा। वह मानता है कि रति-भाव सर्वथा पार्थिव है। विद्यापति यौवन का कवि है और युवावस्था में इन्द्रियजन्य संवेदनाओं (sensations) पर ही भाव-प्रक्रियाएँ अवलम्बित रहती हैं। इसीलिए विद्यापति के नायक के हृदय में प्रेम का सञ्चार नायिका की तन-श्री को देख कर ही होता है—

"ससन परस खसु अम्बर रे, देखल धनि देह।
नव जलधर-तर संचर रे, जनि बिजुरी रेह॥
आज देखल जनि जाइत रे, मोहि उपजल रंग।
कनकलता जनि संचर रे, महि निरअवलम्ब॥"

जो इसे अश्लील कहता है वह या तो ढोंगी है या मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से पूर्णतया अनभिज्ञ। आधुनिक मनोविश्लेषण ने यह सिद्ध कर दिया है कि मन की गति शारीरिक इच्छाओं पर यथेष्ट मात्रा में निर्भर रहती है। यदि इन वासनाओं को भूखा रखा जाएगा तो वे किसी और रूप में अपनी तुष्टि करेंगी। विद्यापति का सारा प्रेमाख्यान स्पर्शसुख की इच्छा और उसकी तुष्टि के सहारे आगे बढ़ता है। कृष्ण राधा की रूपश्री का पान करने के लिए लालायित रहते हैं, दूतियाँ भी रूप का ही वर्णन करके नायक-नायिकाओं को लुभाती हैं। मिलन-वर्णन में जिस भावोल्लास का विकास हुआ है वह भी मुख्यतः रतिक्रिया के सम्बन्ध में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रसंग में सूरदास द्वारा किये गये रति-भाव के उत्थान पर विचार कर लेना उपयोगी होगा। सूरदास ने यौनवृत्ति को sublimate किया है। दैहिक वासना अमूर्त लालसा बन गयी है। इन्द्रियजन्य अनुभूतियाँ एक विराट् अनुभूति में निमज्जित हो गयी हैं। यहाँ भी वही भावनाओं का उद्वेलन है, वैसी ही विह्वलता है। लालसा की उत्पत्ति यहाँ भी उसी प्रकार रूपध्यान से होती है—

"नटवर वेश काछे स्याम।
पदकमल नखइन्दु शोभा ध्यान पूरन काम॥"

लेकिन आगे चल कर अन्तर विचारणीय है। एक छोटी-सी बात लीजिए। जहाँ सूर के रूप-माधुरी वाले पदों में से अधिकांश श्रीकृष्ण की शोभा का मार्मिक वर्णन करते हैं वहाँ विद्यापति की प्रतिभा राधा की अनिन्द्य रूप-ज्योति से दीप्त हो उठती है—

"माधव की कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आनि समारल देखल नयन सरूपे॥"

कृष्ण वाले पदों में वह तन्मयता नहीं आ पायी है। कारण स्पष्ट है। सूर की कल्पना स्त्री-रूपिणी आत्मा की कल्पना है, विद्यापति की कल्पना पुरुष रूप पार्थिव काया की कल्पना है। भक्त की आत्मा पुकारती है कि प्रियतम शोभापुञ्ज हैं; मैं उनमें अपने को निलय कर दूँ। नवरक्त और नवस्फूर्ति पूर्ण युवा पुरुष नारी की कमनीय माँसल देह को बाहु-पाश में बाँधना चाहता है। एक आत्मा और परमात्मा की गाथा है, दूसरी मानव और मानवी की कहानी। दोनों सत्य हैं, दोनों के नायक अपने तईं ईमानदार हैं; छिपाते नहीं, कुछ दुराव नहीं करते।

विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन में यह अंतर और भी स्पष्ट हो जाता है। सूर की ब्रजवनिताएँ विरह व्यथित हो कहती हैं—"अँखियाँ हरिदरसन की भूखी।" विद्यापति की नायिका साफ-साफ कहती है—"जोबन बिनु तन, तन बिनु जोबन, को जोबन पिय दूरे।" इसी कारण सूर के वियोग-वर्णन में गहराई बहुत है और विद्यापति में विविधता, (विद्यापति की इस विविधता का प्रत्यक्ष प्रभाव जायसी पर पड़ा है।) सूर के पदों में पीड़ा बहुत है, विद्यापति के गीतों में अधीरता और आकुलता। अधीरता में तृप्ति की अभिलाषा, आशा और सम्भावना सभी होती हैं। यदि आशा और सम्भावना न हो तो अधीरता कैसी? अंग फड़कते हैं मिलन के लिए। यदि मिलन की आशा करना व्यर्थ है तो वियोगीजन के हृदय में अधीरता नहीं कसक होगी, न मिटने वाली पीड़ा होगी। लेकिन विद्यापति की नायिका की तड़पन में भी आह्लाद है, क्योंकि उसे पूरी आशा है कि शीघ्र ही प्रियतम फिरेंगे और फिर यह जी और अंगों की जलन भी मिट जाएगी। तभी तो देखिए—रोमांचित करने वाले उस मिलन की कल्पना में कितने गीत गढ़े गये हैं :—

"अँगने आओब जब रसिया, पलट चलब हम इषत् हँसिया"
या—
"पिया जब आओब इ मझु गेहे, मंगल जतहु करब निज देहे।"

'भ्रमरगीत' से लेकर 'यशोधरा' तक किसी हिन्दी विरह-काव्य में इस मिलन-आह्लाद का आभास नहीं मिलेगा। लेकिन इसीलिए यह मानना पड़ेगा कि विद्यापति के प्रेम-काव्य में मानवीयता का, जनसाधारण की अनुभूति का पुट अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक है। वह हमारे दैहिक और दैनिक जीवन के अधिक निकट है। विरह के बाद मिलन, वियोग के बाद संयोग—उत्कृष्ट काव्य में इसका समावेश और निर्वाह विद्यापति ही कर पाये हैं। सूर और मीरा के लिए विरह में ही प्रेम है, प्रियतम से दूरी में ही गति है। जिसके आराध्य पारलौकिक हों उसके लिए मिलन सुख कल्पनातीत है। सूर्य ने अपने प्रियतम की मानसिक चिंतना ही की है, उसने तो केवल बिछुड़ना ही जाना है। आध्यात्मिक प्रेम में रतिक्रीड़ा कहाँ? इसीलिए सूर और मीरा वियोग-वर्णन में ही श्रेष्ठतम गीतिकाव्य की प्रेरणा पाते हैं, और उसके बाद इति श्री। लेकिन विद्यापति तो दाम्पत्य प्रेम के विशारद हैं। उसका उन्हें पूरा ब्यौरेवार अनुभव है। और इस दाम्पत्य प्रेम में उन्होंने विछोह का ही नहीं वरन् मिलन का भी, सम्भोग का भी पूरा-पूरा अनुभव किया है। उसके लिए दाम्पत्य प्रेम एक रेगिस्तानी नदी की तरह नहीं है जो विरह के मरु में विलीन हो जाती है। इस नदी को तो सागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। कवि का भावोच्छ्वास उसी विरहोपरान्त मिलन में पूर्णतः प्रस्फुटित है :

"चिर दिन से बिहि भेल अनुकूल रे,
दुहु मुख हेरइत दुहु से आकुल रे।
बाहु पसारिए दुहुदुहु धरु रे,
दुहु अधरामृत दुहु मुख भरु रे।"

गीति-काव्य यहाँ चरमावस्था को पहुँच गया है।

यही विद्यापति का अनोखापन है। उन्होंने कविता में मानवीय शरीर और मानवीय आनन्द को प्रधानता दी है, और ऐसा बाद के किसी श्रेष्ठ कवि ने नहीं किया। इस विषय में विद्यापति हिन्दी साहित्य में अद्वितीय हैं। उन्होंने इस जीवन, इस पार्थिव देह, इस मूर्त आनन्द की महत्ता को घटाने की चेष्टा नहीं की। भक्त-युग के कवियों की भांति अथवा रीतिकाल के नीतिकारों की भांति उन्होंने मानव जीवन को गौण और क्षण भंगुर नहीं माना है। हिम्मत और चुनौती के साथ वह यह घोषणा करते हैं कि मानव जीवन एक अपूर्व देन है :—

"भनइ विद्यापति रूप, हे सखि मानुष जनम अनूप"

और मानव की वे प्रतिष्ठा करते हैं इसलिए नहीं कि वह अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक मेधावी है अथवा अधिक आध्यात्मिक, समझ-बूझ कर कर्मशील हो सकता है अथवा शीघ्र मुक्त हो सकता है, बल्कि इसलिए कि वह इस पृथ्वी पर सुन्दरतम प्राणी है। मानव शरीर अनन्त सुन्दरता की खान है। मानव-जीवन स्नेह और श्रद्धा का सरोवर है और विद्यापति दोनों पर ही अपने आपको निछावर करते हैं, दोनों ही के गीत गाकर हमें मुग्ध करते हैं।

यह मानव प्रतिष्ठा की फिलासफी एक अनुपम आशावाद का वातावरण उत्पन्न करती है जिसके कारण अभौतिकता का अभाव नहीं खटकता। यों तो दैहिक लालसा और मानवीय भावजगत आधुनिक हिन्दी कविता के भी आधार स्वरूप हैं, लेकिन आधुनिक कवि एक कृत्रिम समाज और कृत्रिम नैतिकता से घिरा होने के कारण दैहिक उपासना के पुष्ट मार्ग का भी अवलम्बन नहीं कर सकता और धार्मिक रूढ़ियों से विद्रोह करने के फलस्वरूप आध्यात्म की ओर भी नहीं झुक सकता। इसीलिए उसके राग में विषाद और निराशावाद की प्रमुखता है। विद्यापति का व्यक्तित्व पुष्ट और स्वस्थ था और उसका समाज अकृत्रिम। इसलिए वह इस सृष्टि में सौन्दर्य का दुःखद अन्त तो कल्पित ही नहीं कर सकता। क्या वह मनोरम यमुनातट, वह ललित नारीदेह, वह नवरस संचारक बसंत ऋतु, वे उमड़ती हुई कामनाएँ, प्यार के उलहने, वियोग और संयोग की कहानियाँ—क्या यह सारा सौन्दर्य का अखण्ड भांडार अन्धकार और विनाश की ही प्रतीक्षा कर रहा है? विद्यापति का उत्तर है—"नहीं।" और इसीलिए राधा और कृष्ण मिलते हैं, मधुकर और कली, रजनी और प्रभात। और कवि गाता है—

"मधुरितु मधुकर पांति, मधुर कुसुम मधुमांति।
मधुर मधुर रसगान, मधुर विद्यापति गान॥"

* *
*

साहित्य-सन्देश के अगले अङ्क में—

श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त — के प्रश्नोत्तर

श्री रामकुमार वर्मा, श्री गुलाबराय एम० ए० — के प्रश्नोत्तर

प्रकाशित होंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविकाग्निमित्र का समय

[श्री चन्द्रबली पांडे]

कालिदास के समीक्षकों के सामने मालविकाग्निमित्र के अग्निमित्र का प्रश्न बराबर बना रहता है और कुछ लोगों ने तो इसी आधार पर कालिदास को अग्निमित्र का समकालीन ही मान लिया है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने कालिदास को अग्निमित्र का समकालीन तो नहीं माना है पर इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि कालिदास विक्रमाब्द के आरम्भ के समय थे। उनका कहना है—

"मालविकाग्निमित्र नाटक रचने में कालिदास का अवश्य यही उद्देश्य रहा होगा कि प्रेक्षकगण अग्निमित्र की कथा को जानें और उसको प्रत्यक्ष करें। उस काल में अग्निमित्र की कथा लोक में प्रसिद्ध होगी और उसका अभिनय करने से लोगों का अवश्य मनोरंजन होता होगा। इसी धारणा से ही कालिदास ने यह नाटक रचा होगा। अन्यथा ई० ४र्थ या ५म शतक में होने वाला कालिदास अपने प्रथम नाटक का नायक अन्य प्रसिद्ध राजाओं को छोड़ कर ई० पू० २य शतक के अप्रसिद्ध अग्निमित्र को क्यों चुनने गया। इसकी संगति नहीं लगती है। प्रायः नाटक प्रसिद्ध कथाओं के आधार पर ही रचे जाते हैं। इसलिए यह मान लेने में कि कालिदास ई० पू० १म शतक में हुआ, क्योंकि उस समय अग्निमित्र की कथाएँ अवश्य प्रसिद्ध रही होंगी, उपरोक्त संगति लग जाती है। इस नाटक की, अग्निमित्र के पिता पुत्र पुष्यमित्र और बसुमित्र, विदिशा का वर्णन, अश्वमेध याग इत्यादि जो बातें अब अनेक प्रमाणों के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से यथार्थ मानीं गयी हैं उनका वर्णन, ४ या ५ सौ वर्ष के बाद होने वाला कालिदास इस प्रकार ठीक-ठीक कैसे कर सकता था। इसलिए कालिदास को विक्रम संवत् के आरम्भ में ही मान लेना आवश्यक होता है" (संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, जोशी और भारद्वाज, लक्ष्मी बुकडिपो कलकत्ता, १६३३ ई० पृ० ११२)

कहने की आवश्यकता नहीं कि एक निश्चित परिणाम पर पहुँचने के लिए ही उक्त विद्वानों ने अपनी मनमानी भावनाओं को तर्क का रूप दे दिया है। कालिदास के प्रसंग में इस प्रकार के तर्क-वितर्क बराबर चलते ही रहते हैं, अतएव उनकी चिन्ता न कर हमें कहना यही है कि मालविकाग्निमित्र की रचना अग्निमित्र की कथाओं के लिए नहीं हुई है। यदि कालिदास अग्निमित्र की कथाओं को दिखाना चाहते तो निश्चय ही मालविकाग्निमित्र का कोई और ही रूप होता। मालविकाग्निमित्र में जो इतिहास दिखाई देता है वह तो सूचना मात्र है। उस इतिहास से अग्निमित्र का क्या और कैसा सम्बन्ध है कुछ इसका भी तो विचार होना चाहिए। देखिए न इधर बूढ़ा 'सेनापति' पुष्यमित्र अश्वमेध की चिन्ता में है और उधर 'राजा' अग्नि मालविका की रूप-छटा के फेर में है और उधर बेटा बसुमित्र यवनों से लोहा ले रहा है तो इधर अधेड़ अग्निमित्र एक किशोरी से रतिक्रीड़ा करने में मग्न। है न यही बात? तो फिर इस अग्निमित्र की कथा क्या? अग्निमित्र तो स्वयं कहता है :—

"दाक्षिण्यं नाम विम्बोष्ठि वैम्बिकानां कुलव्रतम्।
तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धना॥" ४·१४॥

यह इसी स्त्रैण कुलव्रत का परिणाम है कि अन्त में उसकी मंगलकामना (भरतवाक्य) होती है।

त्वं मे प्रसादसुमुखी भव चण्डि नित्यं
मेतावदेव मृगये प्रतिपक्ष हेतोः।
आशास्यमिति विगम प्रभृति प्रजानां
संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ॥"५-२०॥

औरों की तो नहीं कह सकते पर हमें तो अग्निमित्र विदिशा का कन्हैया (अथवा ठीक होगा वाजिदअली शाह) दिखाई देता है। कालिदास ने उसे अपने नाटक का नायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों चुना है यह एक विचार करने की बात है, कोरी बुद्धि दौड़ाने की उमंग नहीं। अग्निमित्र ने जो अपना वैदर्भ के प्रति क्रोध दिखाया है और स्वयं संग्राम में न जाकर जो सेनापति को भेज दिया है उसका उपयोग तो नाटक में हो गया है, पर सेनापति पुष्यमित्र के पत्र से नाटक का क्या सम्बन्ध है। उसमें जो कुछ लिखा गया है उससे नाटक का कोई सीधा लगाव नहीं। वह अग्निमित्र को हमारी दृष्टि में और भी गिरा देता है। देखिए—

"स्वस्ति। यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्यानुदर्शयति। विदितमस्तु। योऽसौ राजसूययज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं गोप्तारं बसुमित्रमादिश्य संवतसरोपावर्तनीयो निर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिणे रोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थितः। तत उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः।......... सोऽहमिदानीमंशुमतेव सगरः पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये। तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसेवनायागन्तव्यमिति।" (पञ्चमोऽङ्कः)

इसके उत्तर में राजा अग्निमित्र अपनी डींग हाँकते और फिर दुलहा बन जाते हैं और अभिनय भी ऐसा करते हैं कि दक्ष विदूषक को कहना पड़ता है कि "सर्वोऽपि नववरो लज्जातुरो भवतीति"। क्या इससे यह स्वतः सिद्ध नहीं हो जाता कि कालिदास ने जानबूझ कर इस प्रसंग को इसीलिए नाटक में रख दिया है कि हम इससे अग्निमित्र के चरित्र को भलीभाँति समझ लें? यदि ऐसा न होता तो इस प्रसंग की कोई आवश्यकता ही न थी। इसी से तो यह जाना जाता है कि सेनापति पुष्यमित्र वस्तुतः सेनापति नहीं प्रत्युत सम्राट थे और अग्निमित्र उन्हीं के एक उपजीवी राजकुमार जो विदिशा में राज करते थे। अग्निमित्र की सेनापति पिता से नहीं पटती थी और उससे कुपित हो दूर ही पड़े रहते थे और रमणियों की रतिक्रीडा को ही अपने कुल का धर्म समझते थे। पिता का हृदय पिघल जाता है पर पुत्र उसके पत्र पर "अनुगृहीत" होकर रह जाता है। पुत्र के पराक्रम का आनन्द मनाता और अपनी पत्नी की सहायता से उसके लिए एक नवेली माता खड़ी कर देता है जो वस्तुतः उसकी बहू बनने के योग्य थी।

इस प्रसंग को सामने रख कर अब कवि-कुल-गुरु कलिदास के अति प्रसिद्ध पद्य को लीजिए—

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ़ परप्रत्ययनेय बुद्धिः॥" १-२

'काव्यं' के विषय में तो कहना बेकार है कि कालिदास क्या चाहते थे। सूत्रधार कहता है।

"अभिहितोऽस्मि विद्वत्परिषदा कालिदास ग्रथित वस्तु मालविकाग्निमित्रं नाम नाटकमस्मिन् बसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमिति। तदारभ्यतां संगीतकम्।"

किन्तु पारिपार्श्विक को यह नहीं रुचता—

"मा तावत्। प्रथितयशसां भासकवि पुत्र सौमिल्लकादीनां प्रवन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियामिमां द्रष्टुं कथं परिषदो बहुमानः।"

'वर्तमान' और 'पुराण' का यह झगड़ा ऐसा छिड़ा कि वर्तमान ने पुराण को भुला दिया। आज 'भासकवि पुत्रसौमिल्लकादि' को कितने लोग जानते हैं पर कालिदास को कौन नहीं जानता इसी प्रकार आज अग्निमित्र को कितने लोग जानते हैं पर विक्रमादित्य को कौन नहीं जानता? तो मालविकाग्निमित्र की रचना का उद्देश्य क्या है? अग्निमित्र की कथा कदापि नहीं। उसको तो निमित्त भर बनाया गया है। बताया तो यह गया है कि वर्तमान शासक पुराने शासकों से कहीं बढ़ कर हैं। यदि यह इष्ट न होता तो अग्निमित्र के प्रेम-प्रसंग में अश्वमेध न आ पड़ता और उसका सेनापति पुत्र भी सामने न आता। उसका यह प्रणय सन्तान की कामना की ओट में पावन बना दिया जाता और अग्निमित्र भी 'विक्रम' और 'दुष्यन्त' की कोटि में आ जाता। पर नहीं, कालिदास को यह इष्ट नहीं है। कालिदास राजा से स्वयं प्रतिष्ठा चाहते हैं और फलतः उसे भी जनता में प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं। इसका संकेत उन्हें विशाखदत्त की ओर से मिलता है।

बात यह है कि गुप्तों के पहले मगध में दो वंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठित हो चुके थे। मौर्यवंश का पता तो सभी लोगों को है। चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम तो घर-घर फैल चुका है पर उसी के मार्ग पर चलने वाले पुष्यमित्र का पता कम लोगों को है। चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य किस शक्ति से संघटित हुआ था इसका मूल चाहे जो हो पर विशाखदत्त ने प्रत्यक्ष दिखा दिया कि वह चाणक्य की खोपड़ी थी जिसने उसको सम्पन्न किया। विश्वास न हो तो उसके मुद्राराक्षस नाम के नाटक को देख जाइए। अब रहा पुष्य अथवा पुष्यमित्र का शुंग वंश। कलिदास ने अपने लिए इसी को चुना। परन्तु उनका मार्ग विशाखदत्त से कहीं कठिन था। सेनापति पुष्यमित्र अपने आप ही चन्द्रगुप्त भी था और चाणक्य भी, क्षत्रिय भी था, और ब्राह्मण भी। इसलिए उसको सामने खड़ा करना ठीक नहीं, निदान उसके विषयी पुत्र अग्निमित्र को चुना गया और उसकी ओट में उस वंश को नीचा दिखाया गया। भला जिसका पुत्र ही उसके हाथ में नहीं रहा वह आदर्श शासक क्या बन सकेगा। इस प्रकार अग्निमित्र की स्त्रैणता ने उसके पिता के महत्व को गिरा दिया और पुष्यमित्र का कुलीन ब्राह्मणवंश गुप्तों के सामने दब गया।

कलिदास की 'नागमुद्रा' की खोज लीजिए और फिर देखिए कि मुद्राराक्षस की मुद्रा उनके सामने है अथवा नहीं; कहना चाहें तो यहाँ तक कह सकते हैं कि मालविकाग्निमित्र का सूत्रपात यहीं से हुआ है। आरम्भ में ही बन कर नागमुद्रा रंग-मंच पर आ जाती है और फिर बहुत चल कर अपना गुण दिखाती है। उस समय इसकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती कि वह कहीं से बन कर आवे। उसका व्यवहार तो ऐसे भी हो सकता था। सच पूछिये तो कलिदास की ग्रथित कथावस्तु ठिकाने से नहीं चली है। मुद्राराक्षस की भांति 'अद्भुत' नहीं हो पायी। अन्त में जो सभी बातों का भेद खुलता है वह स्वयं नहीं खुलता, वह तो किसी पेटिका से बरबस निकाला जाता है। इसका एकमात्र कारण कलिदास का बाल प्रकृत हो नहीं कुछ चमत्कार और कुछ अनुकरण भी है। हमारी धारणा है कि कालिदास मालविकाग्निमित्र में विशाखदत्त से प्रभावित हैं। हम विशाखदत्त को विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं और मुद्राराक्षस के भरतवाक्य को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का स्तवन समझते हैं। कहने का तात्पर्य अथवा सारांश यह है कि मालविकाग्निमित्र की रचना भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन में हुई है। उसके आधार पर कालिदास का समय कहीं दूर तक नहीं घसीटा जा सकता। हम कालिदास के समय पर स्वतंत्र चिन्ता करना चाहते हैं अतएव यहाँ इतना पर्याप्त है। आशा है इस दृष्टि से विचार करने पर कुछ मालविकाग्निमित्र को समझने में सुविधा होगी और कालिदास का समय भी कुछ सरलता से सामने आ जायगा। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं' की बात तो पहले आ ही चुकी है अब सन्त परीक्षा ही शेष रही है। मूढ़ों की परप्रत्ययनेयबुद्धि की तो चर्चा ही क्या!

* * *

पाठकों के मत की आवश्यकता

अगले अङ्क से सन्देश पाँचवे वर्ष में पदार्पण कर रहा है। नये वर्ष के प्रारम्भ से हम पत्रिका के कलेवर में ४ पृष्ठों की वृद्धि करना चाहते हैं। पाठक बताएँ उन पृष्ठों का उपयोग किस आवश्यक कार्य में किया जाय। उनकी आज्ञा के बहुमत से ही हम इन पृष्ठों का उपयोग करेंगे।

—सञ्चालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-व्यवहार*: एक आलोचना

[श्री "म" महोदय]

हिन्दी साहित्य में लोक-व्यवहार पर बहुत कम पुस्तकें हैं। बहुत कम क्या, नहीं हैं—यही कहना उचित होगा। उधर अँग्रेजी में ऐसी पुस्तकों की भरमार है। एक-से-एक बढ़िया पुस्तकें मिलती हैं जिन्हें पढ़ कर लोक-व्यवहार के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जा सकता है। इसी प्रकार की एक पुस्तक कुछ दिन हुए अमरीका से अँग्रेजी में प्रकाशित हुई है। इसका नाम है 'How to win Friends and Influence people' अर्थात् मित्र कैसे बनाये जायँ और कैसे लोगों को प्रभावित किया जाय ? यह पुस्तक इतनी अधिक पसन्द की गयी है कि अमरीका में इसकी दस-पन्द्रह लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं। बिक्री का यह हाल रहा है कि पचास-पचास हजार प्रतियों का एक-एक संस्करण एक महीने में समाप्त हो कर उसी महीने में दूसरा संस्करण छपा और बिका है! पुस्तक की इतनी लोकप्रियता अकारण नहीं है। एक तो अमरीका और यूरोप निवासी पुस्तकें पढ़ने और उन्हें खरीद कर पढ़ने के अभ्यासी हैं। वहाँ साधारण गृहस्थ भी कोई ऐसा न होगा जिसके घर में एक-दो आलमारी भरी पुस्तकें न हों—हमारे देश जैसी हालत वहाँ नहीं, जहाँ लखपती आदमी भी--जो सिनेमा और शौक में दो-ढाई सौ रुपये महीने खर्च कर देता है—महीने भर में दो रुपये की पुस्तक नहीं खरीदता। पुस्तक पढ़ने की इच्छा ही अव्वल तो नहीं होती, हुई भी तो बड़े-बड़े आदमियों को भी माँग कर पढ़ने में लज्जा नहीं मालूम होती।

प्रस्तुत पुस्तक की लाखों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक जाने का दूसरा कारण है उसकी उपयोगिता। 'इसके लेखक डेल कार्नेगी लोक-व्यवहार की शिक्षा वर्षों से दे रहे हैं और उनके सैकड़ों शिष्यों ने उनकी शिक्षाओं से अपार लाभ उठाया है। इस पुस्तक में लोक-व्यवहार के सिद्धान्तों को लिखने के साथ-साथ अपने और अपने शिष्यों के अनुभवों का भी वर्णन यथास्थान कर दिया है, और यही चीज है जिसने पुस्तक को इतना मनोरञ्जक और उपयोगी बना दिया है। प्रारम्भ में यह बता कर कि यह पुस्तक कैसे लिखी गयी, उसे छः भागों में विभक्त किया गया है। पहले भाग में आपने वे मूल सिद्धान्त बताये हैं जिनको ध्यान में रख कर किसी के साथ व्यवहार किया जाय। दूसरे भाग में वे छः मार्ग बताये हैं जिनके द्वारा लोग अपनी ओर आकर्षित हो सकते हैं। वे छः मार्ग हैं:—१–दूसरे के प्रति सच्ची मित्रता रक्खो २–दूसरों को देख कर प्रसन्न हो ३–उनके नाम को न भूलो, ४–अपनी-अपनी मत तानो, दूसरे की सुनो और उसे अपने विषय में अधिक कहने का अवसर दो। ५–बातों में दूसरों की रुचि और सुविधा का ध्यान रक्खो ६–ईमानदारी से यह जाहिर करो कि जिससे तुम बात करते हो वह भी कुछ महत्व रखता है।

तीसरे भाग में लोगों को अपने विचारानुकूल बनाने की निम्नलिखित बारह रीतियों का वर्णन है—

१—बहस मत करो।

२—दूसरों की बात का आदर करो। उसे कभी झूठा मत बताओ।

३—अपनी भूल को फौरन स्वीकार कर लो।

४—बातचीत मित्रता के ढंग से शुरू करो।

५—इस तरह बातें कहो जिससे दूसरा व्यक्ति तुम्हारी बातों को मंजूर करता चले।

६—दूसरों को ज्यादा बातें करने का मौका दो।

७—दूसरों को यह अनुभव कराओ कि सूझ उन्हीं की है।

८—दूसरों के दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा करो।

९—दूसरों के विचारों और इच्छाओं का ध्यान रक्खो।

१०—दूसरों के उच्च विचारों को जाग्रत करो।

११—अपने विचारों का जादू चलाओ।

---

* लोक व्यवहार(How to win Friends and influence people) अनु०—श्री सन्तराम बी० ए०, मूल्य २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—शर्त्त मारो।

पाँचवे भाग में निम्न ९ रीतियों का वर्णन है जिनके प्रयोग से बिना नाराज किये लोगों के विचार बदले जा सकते हैं :—

१—प्रशंसा और सच्ची प्रशंसा करते हुए बात-चीत शुरू कीजिए।

२—लोगों को उनकी भूलों का ध्यान परोक्ष रूप से दिलाइए।

३—दूसरों की आलोचना करने से पहले अपनी भूलों का वर्णन कीजिए।

४—आज्ञा देने के बजाय विनयपूर्वक काम लीजिए।

५—लोगों को लज्जित न होने दीजिए।

६—थोड़ी-सी भी उन्नति और प्रत्येक उन्नति की प्रशंसा कीजिए और प्रशंसा जी खोल कर कीजिए।

७—दूसरों को सम्मानपूर्वक जीने दीजिए।

८—प्रोत्साहन दीजिए कि लोग अपनी भूलों को सुधारने की ओर आकर्षित हों।

९—आप जो काम कराना चाहते हैं उसे करने में दूसरों को प्रसन्नता हो ऐसा प्रयत्न कीजिए।

पाँचवें भाग में ऐसे कुछ पत्रों का संग्रह है जिन्होंने जादू का असर किया है।

छठे भाग में ऐसे सात नियम बताए हैं जिनसे गृह-जीवन अधिकतर आनन्दमय बन सकता है।

यह तो रहीं मूल पुस्तक की बातें। अब जरा उसके अनुवाद की चर्चा सुन लीजिए।

इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद 'लोक-व्यवहार' नाम से इण्डियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। अनुवादक हैं श्री सन्तराम बी० ए०। पूरी पुस्तक कई बार पढ़ जाने और मूल पुस्तक के साथ उसे भली भाँति मिलाने के बाद हम इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि श्री सन्तरामजी ने इस पुस्तक का अनुवाद स्वयं न करके किसी ऐसे नये विद्यार्थी से कराया है जो अनुभवहीन, अल्प शिक्षित और अनुवाद के काम में सर्वथा नौसिख है। अंग्रेजी पुस्तक की भाषा अत्यन्त प्रभावपूर्ण और आकर्षक है और सन्तरामजी हिन्दी के बड़े विद्वान् और अनुभवी लेखक हैं। उनसे यह आशा हम नहीं कर सकते कि वे लोक-व्यवहार जैसी पुस्तक का अनुवाद ऐसी भाषा में करेंगे जिसमें व्यावहारिकता को सर्वथा भुला दिया गया है। अधिकांश अनुवाद शाब्दिक (Literal) है—भावों का विचार बहुत कम रक्खा गया है। मिसाल के लिए पृष्ठ २२० पर जहाँ लड़ाई में सिपाहियों का जिक्र है boys का अनुवाद 'लड़कों' किया है। यदि अनुवादक जरा भी अनुभवी होता तो वह यहाँ boys का अनुवाद 'लड़कों' न कर 'सैनिकों' करता। boys शब्द का प्रयोग निजीपन और प्यार का सूचक है। ऐसे स्थान पर यदि टिप्पणी में व्याख्या कर दी जाती तो अनुचित न होता। पृष्ठ ८ पर Gray headed banker को आपने 'सफेद सिर वाला साहूकार' लिख डाला है जब कि आशय वृद्ध या अनुभवी साहूकार से है। Shortly after और Immediately after का शाब्दिक अनुवाद किया है 'शीघ्र ही उपरान्त' और 'तत्काल ही उपरान्त' पर कहीं भी ऐसा बोला या लिखा नहीं जाता। बोला जाता है 'थोड़ी देर बाद ही' और "तुरन्त ही" पृष्ठ १४ पर He had no flair for athletics का अनुवाद आपने किया है—'खेलों में प्रसिद्धि प्राप्त करने की मेरी कोई संभावना नहीं' जब कि होना चाहिए 'उसे खेलों में कोई रुचि या आकर्षण नहीं।' पृष्ठ ३-४ पर एक खूँखार व्यक्ति का जिक्र है जिसका नाम 'टू गन' पड़ गया है। अनुवाद में आपने लिख दिया है कि उसके पास दो बन्दूकें थीं। 'split the republican party' का अनुवाद 'पार्टी में मतभेद उत्पन्न कर डाला' या 'पार्टी में फूट डाल दी' न करके आपने लिखा है 'पार्टी को फाड़ डाला' मानो पार्टी भी कोई कागज या कपड़े की चीज है जिसे फाड़ा जा सकता है। पृष्ठ २०३ पर so you are not likely even to know any more than you do now, which is very little का अनुवाद आपने किया है "इसलिए इस बात की कोई सम्भावना नहीं कि तुम्हारे वर्तमान ज्ञान में कोई वृद्ध (वृद्धि) हो सके। और मेरा वर्तमान ज्ञान बहुत ही थोड़ा है।" इसे छापे की भूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहिए या समझ की भूल कहिए, है भूल ही। इसी प्रकार पृष्ठ २१३ पर Rex was out in front, heading straight to the officer का अनुवाद किया है—"रैक्स मेरे आगे सीधा अफसर के पीछे दौड़ा जा रहा था" होना चाहिए "रैक्स सीधा अफसर की तरफ दौड़ा जा रहा था।" पृष्ठ २१४ पर I beat him to it का अनुवाद "मैंने आप ही पहल शुरू कर दी" का क्या तात्पर्य है—अनुवादक ही जाने। Graciously को 'अनुकूलतापूर्वक' कहने के बजाय 'अनुग्रहपूर्वक' और Gallant को 'चारु' के बजाय 'वीरतापूर्ण' कहना अधिक उपयुक्त मालूम होता है।

अनुवाद में उर्दू या फारसी के शब्द प्रयोग में न लिये गये हों सो बात नहीं है—फिर भी जहाँ-तहाँ संस्कृत के शब्दों का प्रयोग बहुत ज्यादा किया गया है जो कहीं-कहीं बहुत भद्दा मालूम होता है। मिसाल के लिए you need it के लिए 'आपको इसका प्रयोजन है' और first few times को 'पहले कतिपय वार' कहना अच्छा नहीं मालूम होता। throw himself across the bed के लिए 'खाट के बार पार लेट गया' लिखना बहुत ही बेमुहाविरे मालूम होता है। इसी प्रकार scald your hand को 'चर्मदाह होना' लिखना ठीक नहीं है। इसके लिए सीधा शब्द था 'हाथ जलना' या 'झुलसना'।

पृष्ठ १६ पर An idea that is boiling and stewing within him का अनुवाद आपने किया है—''ऐसी कल्पना जो उसके भीतर खौल और पक रही है।" कल्पना का खौलना हिन्दी मुहावरा नहीं। idea के लिए कल्पना ठीक शब्द भी नहीं है। हमारी राय में इसके लिए लिखना था 'ऐसा विचार जो भीतर ही भीतर परिपक्व हो रहा था।' He had an armful of yeses का अनुवाद आपने किया है "हाँ ओं से उसकी आस्तीन भर जाती।" armful को आपने अलग-अलग करके उसका अनुवाद कर डाला आस्तीन भर जाती। हाँ का बहुवचन बनाना भी कुछ बेतुका-सा है। मेरी समझ में तो 'हाँ हाँ का ढेर लगा दिया' कहने में भाव और भाषा दोनों की रक्षा होती।

शाब्दिक अनुवाद के दो-चार उदाहरण और सुन लीजिए। पृष्ठ १८३ पर always avoid the acute angle का अनुवाद आपने किया है—'सदा नुकीले कोने से बच कर चलो' जब कि मूल लेखक का आशय कटुता बचाने से है, अर्थात् विषम स्थिति न उत्पन्न होने दे।

पृष्ठ २०० पर Bubble over with enthusiasm को लिखा है 'उत्साह के साथ खदवदाई'। लिखना था—'उत्साह से भर गयी' यदि शाब्दिक अनुवाद ही करना था तो कह सकते थे उत्साह से परिप्लावित हो रही थी। पृष्ठ २०२ पर Lashed him with a few stinging truths को लिखा है—'चुभती हुई सचाइयों के कोड़े लगाए।' इसके स्थान पर होना चाहिए था 'खरी खरी सुनाई'। पृष्ठ २१३ पर everything was lovely for a while को लिखा है 'कुछ देर तक प्रत्येक चीज मनोहर थी'। इसकी बजाय—'कुछ दिन तक सब ठीक-ठीक रहा' कहना अच्छा मालूम होता है। 'पर्वत की चोटी' तो सब कोई लिखता है पर आपने brow of a hill को लिखा है 'पर्वत का माथा।' युद्ध के धावे को अँग्रेजी में picturesque लिखा गया है तो उसको हिन्दी में 'दर्शनीय' ही कह दिया जाता पर आपने उसे 'सुरम्य' लिख दिया है जैसे युद्ध भी कोई बगीचा हो। rules of logic को 'न्याय के सूत्र' न लिख कर 'तर्क के तीर' लिखा जाता तो अच्छा था।

अंगरेजी की पुस्तक में जहां छापे की अशुद्धि मिलना कठिन है वहाँ हिन्दी में अशुद्धियों की कमी नहीं। कहीं-कहीं तो दो-दो पंक्तियाँ दुबारा छप गयी हैं। इन अशुद्धियों और इस अनुवाद को देख कर यह विश्वास नहीं होता कि यह पुस्तक इण्डियन प्रेस से प्रकाशित हुई है। अच्छा हो यदि पटेल बाबू इसका दूसरा संस्करण जल्दी और शुद्ध रूप में निकाल कर अपने प्रेस और मूल पुस्तक के गौरव की रक्षा करें।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक-संस्मरण

गुप्तजी की भारत-भारती

कविवर मैथिलीशरणजी आज सर्व-सम्मत हिन्दी के राष्ट्रकवि हैं। पर उनको यह स्वयं-प्राप्त उपाधि किस प्रकार मिली—इसका एक इतिहास है। कविजी ने आज से तीस वर्ष पूर्व 'भारत-भारती' नामक एक पुस्तक लिखी थी। 'भारत-भारती' ने हिन्दी युवकों पर जो जागरूक प्रभाव डाला, उनमें जो चैतन्य आया और उससे उनमें जो राष्ट्रीयता का बीज-वपन हुआ वह शायद किसी और दूसरी पुस्तक से नहीं हुआ। लगभग दो दशाब्दी तक भारत-भारती भारतीय युवकों के लिए राष्ट्रीय-पथ में एक मार्गदर्शिका का काम करती रही। लाखों हिन्दी पाठकों ने उसको पढ़ा। हजारों उसी के कारण राष्ट्रीय क्षेत्र में आये। सैंकड़ों उसके बल पर उपदेशक वा वक्ता बन गये और बीसियों ने उसकी देखा-देखी वैसी ही और पुस्तकें लिखीं। भारत-भारती के अब तक (१९४१) शायद बीस संस्करण हो चुके हैं जिनमें कई संस्करण दस-दस और पाँच-पाँच हजार के थे। रामायण को छोड़ कर शायद ही हिन्दी की किसी और पुस्तक को इतनी प्रसिद्धि प्राप्त हुई हो।

गुप्तजी ने भारत-भारती को किन परिस्थितियों में लिखा और कैसे उसकी अवतारणा हुई, इसका इतिहास भी बड़ा मनोरंजक और महत्वपूर्ण है और वह इतिहास उन लोगों के लिए भी उपयोगी है जो आज सन् १९४१ में भारत-भारती के कारण गुप्तजी को दकियानूसी विचारों का समझने लगते हैं। यह इतिहास मुझे स्वयं गुप्तजी से ज्ञात हुआ था और उसी के आधार पर मैं यह लिख रहा हूँ।

उन दिनों 'मर्यादा' नाम से एक उच्चकोटि की राष्ट्रीय पत्रिका निकलती थी जिसके संपादक थे स्वर्गीय पं० कृष्णकान्तजी मालवीय। इस पत्रिका के लिए गुप्तजी ने एक कविता 'पूर्व दर्शन' नाम से भेजी। यह कविता बहुत पसन्द की गयी और उसकी बड़ी चर्चा हुई। कितने ही लोगों ने इस कविता पर गुप्तजी को साधुवाद भेजे। राजा सर रामपालसिंह (कुर्री सुदौली) उन दिनों बहुत प्रसिद्ध हो रहे थे। राजा और प्रजा दोनों में उनका मान था। सरकार के सहयोगी होते हुए भी राजा साहब के विचार बड़े ऊंचे और राष्ट्रीयता लिए हुए थे। 'पूर्व दर्शन' कविता को पढ़ कर आपने गुप्तजी को एक पत्र लिखा कि वे हाली के 'मुसद्दस' की भाँति एक पुस्तक हिन्दी में लिखें। यह पत्र पाते ही गुप्तजी ने अपने गुरु स्वर्गीय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी से इस विषय में परामर्श माँगा और राजा साहब का पत्र भी उनके पास अवलोकनार्थ भेज दिया। द्विवेदीजी के पास एक पत्र इसी आशय का राजा साहब ने सीधा ही भेज दिया था। द्विवेदीजी ने राजा साहब को लिखा कि आप यह पुस्तक लिखवाना चाहते हैं पर लेखक पर यदि राज्य की ओर से कोई आपत्ति आवेगी तो उसका संरक्षण क्या है? राजा साहब ने द्विवेदीजी और गुप्तजी दोनों को यह विश्वास दिलाया कि ऐसी कोई बात होगी तो वे यथाशक्ति लेखक की मदद करेंगे।

गुप्तजी ने पुस्तक का लिखना शुरू किया। पुस्तक तैयार हो गयी। गुप्तजी उर्दू नहीं पढ़े थे इसलिए हाली के 'मुसद्दस' को तो वे न देख सके पर जो चीज उन्होंने तैयार की वह अपने ढंग पर उससे किसी भाँति कम न थी। बीसियों पुस्तकों को पढ़ कर उनमें निशान लगा कर उनका विवरण देते हुए बड़े परिश्रम से आपने 'भारत-भारती' तैयार की।

पुस्तक तैयार करने में कितने ही उग्र विचारों को तो आपको इसलिए छोड़ना पड़ा कि आपका घराना बहुत राज भक्त और राज्य-सम्मान प्राप्त था। आपके भाई आपके घर में ही सेंसर का काम करते थे। जब पुस्तक तैयार हो गयी तो दुबारा सेंसर करने के लिए वह द्विवेदीजी के पास भेजी गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदीजी भी यह नहीं चाहते थे कि पुस्तक इतने उग्र रूप में छपे कि लेखक पर कोई आपत्ति आ जाय। वे स्वयं राष्ट्रीय विचारों के होते हुए भी राज भक्त थे। फलतः गुप्तजी को 'भारत-भारती' के कई स्थलों के बदलने में जो क्षोभ और आत्मग्लानि हुई उसे वे अब भी बड़े दुःख के साथ स्मरण करते हैं। और-तो-और लोकमान्य तिलक का नाम पुस्तक में एक स्थल पर आया था—उस तक को गुप्तजी को जबर्दस्ती हटाना पड़ा। आपका मूल और परिवर्तित छन्द नीचे देखिए—

"यदि जन्म लेते थे महात्मा भीष्म तुल्य कभी यहाँ,
तो जन्मते हैं तिलक जैसे लोकमान्य अभी यहाँ।"

परिवर्तित दूसरी पंक्ति—

"तो जन्मते हैं कुछ दृढ़व्रत लोकमान्य व्रती यहाँ।"

इस तरह के छोटे-छोटे परिवर्तन ही नहीं कहीं-कहीं तो बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन आपको करने पड़े और कई स्थल सर्वथा छोड़ देने पड़े।

कुछ अंश आपको अनिच्छापूर्वक बढ़ाने पड़े। इसी तरह के अंशों में 'ब्रिटिश राज्य' शीर्षक अंश है जिसमें प्रथम पद्य तो आपके स्नेही स्वर्गीय लाला छोटेलालजी ने स्वयं ही बढ़ा दिया था। इस अंश में भी कवि ने अपनी प्रकृत भावना को न छोड़ा, जिसकी परिचायक नीचे लिखी पंक्तियाँ हैं—

"बस पास पैसा चाहिए फिर कुछ
असुविधा है नहीं;

इस प्रकार विकृत रूप में प्रकाशित 'भारत-भारती' पर भी सरकार की सी० आई० डी० की वक्र दृष्टि पड़ने से न बची। खोज-बीन होने लगी और मुकद्दमा चलने की नौबत आगयी। जब गुप्तजी को इसका पता चला तो आपने द्विवेदीजी को स्मरण किया और उन्होंने राजा साहब को पत्र लिखा। राजा साहब ने द्विवेदीजी और गुप्तजी को सान्त्वनापूर्ण पत्र लिखे और तुरन्त ही तत्कालीन चीफ सैक्रेटरी से मिलने का प्रबन्ध किया। जब आप उनके पास पहुँचे और उन्हें यह मामला बताया तो चीफ सैक्रेटरी ने अपनी मेज पर रक्खी हुई फायल उठा कर उसमें से अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध लिखे गये अवतरण 'भारत-भारती' में से अनुवादित रूप में पढ़ कर सुनाए, जिनमें से एक यह था:—

"निःशङ्क देख शृगाल घायल सिंह पर चढ़ने लगे"

चीफ सेक्रेटरी ने कहा कि इसमें अँग्रेजों को शृगाल बताया गया है और हिन्दुस्तानियों को सिंह।

यह सुन कर राजा साहब ने भारत-भारती के वे अंश सुनाए जिसमें अंग्रेजों की प्रशंसा थी। और जो उन्होंने स्वयं कवि से अनुरोध पूर्वक लिखवाये थे। उन्हें सुन कर और राजा साहब के प्रभाव से प्रभावित होकर चीफ सैक्रेटरी साहब ने उसी समय उस फायल को दाखिल दफ्तर किया और यों 'भारत-भारती' पर मुकदमा चलते-चलते रह गया। निश्चय ही यदि यह मुकद्दमा चलता तो गुप्तजी उस समय जेल के मेहमान हो गये होते। इस संबंध में सब से मजेदार बात वह रही कि सी० आई० डी० ने 'भारत-भारती' का अर्थ किया था 'जनाना हिंदुस्तान'। भारत, माने हिंदुस्तान और भारती, उसका स्त्रीलिंग अर्थात जनाना। सी०आई०डी० का कहना था कि लेखक ने हिन्दुस्तान को 'जनाना हिन्दुस्तान' कह कर उभाड़ना चाहा है।

इसके बाद फिर एक बार 'भारत-भारती' पर सरकार की ओर से आक्रमण हुआ। लगभग १५-२० वर्ष के प्रचार के बाद सरकार को 'भारत-भारती' में राजद्रोह की बू आयी और उसने 'भारत भारती' के अन्त में दी गयी 'विनय' शीर्षक कविता को जब्त कर लिया। सब से पहले यह कुकृपा सी० पी० सरकार ने की और उसके बाद विहार की सरकार ने। विहार के कुछ जिलों में यही 'विनय' स्कूलों के प्रारम्भ होने के समय गाई जाती थी। जब यह जब्ती का हुक्म हुआ तो वहाँ बड़ा बखेड़ा खड़ा हो गया। लहेरियासराय के जिला बोर्ड ने तो सरकार की इस आज्ञा को न मान कर इस आज्ञा के विरुद्ध पटना हाईकोर्ट में दावा कर दिया। हाईकोर्ट में यह मुकद्दमा चला और जजों ने सरकार की आज्ञा को अनुचित बताया। आखिर सरकार को जब्ती की आज्ञा को वापिस लेना पड़ा।

भारत-भारती की रचना का संक्षेप में यही मनोरञ्जक इतिहास है।

—महेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन प्रत्यालोचनाएँ

[श्री जैनेन्द्र, श्री यशपाल और श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी]

१

टीकमगढ़
३-७-४१

भाई सम्पादकजी,

कल जुलाई का 'साहित्य-सन्देश' यहाँ आ गया। उसमें श्री माचवे और श्री नन्ददुलारे वाजपेयी की तलब-सफ़ाई के बीच मेरा नाम घिसट आया है। वाजपेयीजी मानते दीखते हैं कि साहित्य में मैं जैनत्व का प्रतिनिधि हूँ। भगवान् मेरा और जैनत्व का सहायी हो, क्योंकि मैं सच कहता हूँ, मैं निर्दोष हूँ और अबोध हूँ।

बाबा, जैनेन्द्र नाम में मेरा दोष नहीं। नाम मेरा था आनन्दीलाल। छुटपन में एक गुरुकुल में दाखिल हुआ, जहाँ सब के नाम बदले जाते और अधिकतर इन्द्र बना दिये जाते थे। जान पड़ता है मुझे मिलने को कोई और बढ़िया किस्म की इन्द्रता नहीं रह गयी थी, सो जैनेन्द्र बनना पड़ा। मेरा राम जानता है कि जैनों की ओर से कोई इन्द्रत्व मुझे भोगने को नहीं मिला है और मैं गरीब आदमी हूँ। वाजपेयीजी तो मुझे जानते हैं और जैन-धर्म भी जानते मालूम होते हैं! उस जैन-दर्शन की बारहखड़ी तक भी क्या मेरी पहुँच है? सो साहित्य में जैन-नीति की रक्षा का दायित्व मेरे माथे पटक कर वाजपेयीजी अनजाने उस प्राचीन धर्म की अवज्ञा के भागी हो सकते हैं। उस धर्म के बड़े-बड़े आचार्य आज भी हैं। उनसे बिना पूछे वाजपेयीजी को ऐसा अनधिकृत काम नहीं करना चाहिए था।

मेरे नाम की लाठी से कृपया वाजपेयीजी मुझे न पीटें। सन् '३० में जेल में एक कैदी मुझे 'जलन्धर बाबू' कहता था। उसके मन में जरूर होगा कि मैं जालन्धर जिले या शहर में रहता हूँ या उससे मेरा गहरा वास्ता है। जान पड़ता है कि मैं समझाता तो भी वह कुछ और न समझता। पर जैन-धर्म के नुमाइन्दे होने की बात जालन्धर की बात से बड़ी है और आशा है कि सहृदय बाजपेयीजी मेरे नाम की रस्सी से मुझे फाँसी देने की इच्छा न करेंगे।

साहित्य में सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व वाजपेयीजी खोजा चाहें तो मेरी विनय है कि जैन-धर्म के प्रतिनिधित्व के लिए किसी योग्य व्यक्ति को चुनें। वाजपेयीजी को जानकारी हो कि न हो, इससे कहता हूँ कि जैनों से मैं दूर किया गया हूँ। अतएव बड़ी कृपा होगी यदि जैन के नाते साहित्य के हृदय-राज्य में मुझे धकियाया या दागा न जाय। मेरे लेख में 'ईश्वर' शब्द आता है, इससे यदि जैन मुझे अर्धचन्द्र दें तो मेरे नाम में जैन शब्द आने की वजह से क्या ईश्वर के राज्य में से भी गर्दनी देकर मुझे निकाला जायगा?

अन्त में मैं फिर वाजपेयीजी के निहोरे करता हूँ कि मैं निर्दोष हूँ। मेरी पुस्तक की नायिकाएँ सब बेचारी हैं, जो हैं वही हैं और उनमें से किसी के हाथ में जैन आदर्श की ध्वजा नहीं है। यदि सचमुच में कभी किसी को जैन-नीति का प्रतीक बनाना चाहूँगा तो मुझसे कसम ले ली जाय कि मैं उसका नाम जैनमती के सिवाय और कुछ नहीं रक्खूँगा।

मेरी अरदास है कि जब-जब वाजपेयीजी मुझे याद करें तो मुझ पर कृपा के नाते जैन शब्द पर भी कृपा करें। इस शब्द के अलावा वाजपेयीजी की आलोचना दूसरी आलोचनाओं से मुझे अपने अधिक निकट मालूम होती है।

विनीत—
जैनेन्द्रकुमार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

मार्क्सवाद की भूलें !

प्रिय सम्पादकजी,

'साहित्य-सन्देश' में समालोचना के स्तम्भ पर पत्रिका में प्रकाशित समालोचना की प्रत्यालोचना न हो सकने की कोई सूचना नहीं है। इस उदारता का लाभ मैं उठाना चाहता हूँ, साहित्य-सन्देश में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'मार्क्सवाद' की समालोचना के सम्बन्ध में। आशा है आप नीचे लिखी पंक्तियों को अपने पत्र में स्थान देने की कृपा करेंगे।

शिकायत 'मार्क्सवाद' की समालोचना के कटु या विपरीत होने के सम्बन्ध में नहीं है। मेरे परिश्रम की सराहना कर उत्साह बढ़ाने के लिए मैं समालोचक महोदय का आभारी हूँ। पुस्तक में किस विषय की विवेचना की गयी है, यह विवेचना सन्तोषजनम है या नहीं, इसी विषय पर विद्वान् समालोचक ने अपने विचार प्रकट नहीं किये। वे इससे कई कदम आगे बढ़ गये हैं। पुस्तक में दिये गये विचारों को गलत और सही होने के सम्बन्ध में भी उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं। 'मार्क्सवाद पुस्तक' की समालोचना के साथ-ही-साथ स्वयं मार्क्सवाद की भी आलोचना उन्होंने कर दी है। अभिप्राय यह नहीं कि ऐसा करना अनुचित हुआ। उनके इस अधिकार के प्रति मुझे आपत्ति नहीं है। प्रश्न यह है, कि मार्क्सवाद की जिस भूल या न्यूनता की ओर समालोचक ने संकेत किया है, उसका समाधान पुस्तक में है या नहीं?

पुस्तक के पृष्ठ ६१ से समालोचक ने उद्धरण दिया है "......मनुष्य का मस्तिष्क प्राकृतिक पदार्थों से बना है, इसलिए मस्तिष्क के द्वारा होने वाले कार्य भी प्राकृतिक होते हैं। मार्क्सवादी मानते हैं कि चेतना मस्तिष्क के कार्यों का फल है।" इस उद्धरण पर समालोचक शङ्का करते हैं, मार्क्सवाद पुस्तक के लेखक से नहीं, स्वयम् कार्ल मार्क्स से—"यदि मस्तिष्क चेतना का कारण है तो मृत्यु के बाद* मस्तिष्क मृत शरीर* में चेतना पैदा क्यों नहीं करता!......क्या आज तक किसी विद्वान् ने ऐसा सफल परीक्षण किया है कि मस्तिष्क में चेतना पैदा कर मृत व्यक्ति को जीवित कर दिया हो?"

अत्यन्त विनय से मैं यह चाहता हूँ कि यह युक्ति जितनी पुरानी है उतनी वजनी नहीं। समालोचक महोदय अध्यात्मवादी दृष्टिकोण से मृत्यु का अर्थ समझते हैं भौतिक जड़ शरीर और चेतन आत्मा का पृथक् हो जाना। उनके विचार से सजीव भौतिक जड़ शरीर और मृत भौतिक जड़ शरीर में अन्तर है केवल आत्मा की उपस्थिति और अनुपस्थिति का। परन्तु मार्क्सवाद की धारणा ठीक ऐसी नहीं। आत्मा में तो वह विश्वास ही नहीं करता। उसके लिए मृत्यु का अर्थ है, चेतन शरीर का जर्जर होकर या कार्य के अयोग्य होकर अपनी क्रिया जारी न रख सकना। मस्तिष्क भी शरीर का अङ्ग होने से, शेष शरीर के जर्जर हो जाने से निष्क्रिय हो जाता है। ऐसी अवस्था में यह दलील कि कोई वैज्ञानिक उस मस्तिष्क में जो क्रिया या चेतना के अयोग्य हो गया है, चेतना क्यों नहीं पैदा कर सकता, कुछ सार्थक नहीं जान पड़ती!

विद्वान समालोचक की इन दलीलों का चर्चा करने की आवश्यकता इसलिए अनुभव नहीं हुई कि पुस्तक में इस बात का उल्लेख भूल से रह गया हो या दरअसल कार्ल मार्क्स से ही ऐसी भूल हो गयी हो और लेखक अब सफाई पेश कर रहा है। आवश्यकता अनुभव हुई है पुस्तक में मौजूद समालोचक की दलीलों की ओर ध्यान दिलाने की। मार्क्सवाद पुस्तक पृष्ठ ६० पर मार्क्सवाद के दृष्टिकोण से जीव-विज्ञान और शरीर-विज्ञान के आधारों पर जीवों के शरीर में चेतना की उत्पत्ति के प्रश्न पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के पृष्ठ ६१–६२ पर शरीर-विज्ञान के प्रामाणिक इतिहास के आधार पर जीवों के शरीर में उत्पन्न होने, चेतना के विकास को भी दिखाया गया है। उदाहरण देकर यह भी स्पष्ट किया गया है कि भिन्न-भिन्न जीवों और मनुष्यों की नस्लों में चेतना कम या अधिक परिमाण में रहती है। इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है कि चेतना कम या अधिक परिमाण में मिलने पर क्या हमें परिपूर्ण, अनादि, अनन्त आत्मा के

*इन शब्दों को इनकी ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाने के लिए रेखाङ्कित कर दिया है। ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी दर्जे स्वीकार करने होंगे ? इसके साथ ही चेतना की उत्पत्ति और विकास का वर्णन कर मार्क्सवाद के दृष्टि से यह भी दिखाने की चेष्टा की गयी है कि चेतना शरीर का अङ्ग और प्राकृतिक क्रिया है। ऐसी अवस्था में समालोचक के उपरोक्त प्रश्नों के लिए गुञ्जाइश कहाँ रह जाती है ?

मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के प्रति समालोचक ने निजी मन्तव्य भी प्रकट किया है—"हमारा यह मत है कि समाजवाद, उत्पादन के समस्त साधनों तथा वितरण और विनिमय पर समाज के स्वामित्व का—ईश्वर की सत्ता और आत्मा के अस्तित्व से कोई विरोध नहीं। एक ईश्वर-वादी भी इस आर्थिक व्यवस्था का समर्थक हो सकता है" समालोचक का यह मन्तव्य इतिहास द्वारा प्रतिपादित नहीं होता। मार्क्सवाद पुस्तक के पृष्ठ २४ पर 'सन्तों का समाजवाद' प्रकरण में इसी बात को स्पष्ट किया गया है। मार्क्सवाद ईश्वर की सत्ता का विरोध क्यों करता है ? मार्क्सवाद पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया गया है परन्तु उस ओर समालोचक का ध्यान नहीं गया। मार्क्सवाद सामाजिक विषमताओं को वैज्ञानिक आधार पर दूर करने की कोशिश करता है। इसलिए मनुष्य समाज के विश्वास में जितनी बातें अवैज्ञानिक हैं उनका विरोध करना आवश्यक हो जाता है। जैसा कि मार्क्सवाद पुस्तक के 'मार्क्सवाद का वैज्ञानिक आधार' और 'इतिहास का आर्थिक आधार' प्रकरणों में दिखाया गया है कि मार्क्सवाद यह विश्वास नहीं करता कि मनुष्य अपने विश्वासों और संस्कारों को लेकर जैसा आज दिखायी देता है, वह सदा से ऐसा नहीं रहा। उसके शरीर और मस्तिष्क के साथ उसके विश्वासों और संस्कारों का भी विकास हुआ है। इन्हीं विश्वासों और संस्कारों में ईश्वर और आत्मा का भी विश्वास है। मार्क्सवाद इस विश्वास और संस्कार की विवेचना कैसे अछूती छोड़ सकता है ?

पुस्तक में इस बात की ओर भी ध्यान दिलाया गया है कि मार्क्सवाद एक क्रियात्मक दर्शन है। ईश्वर की सर्वोपरि विधायक शक्ति मनुष्य के सामर्थ्य पर जो सीमा लगाती है उसे मार्क्सवाद स्वीकार नहीं करता। सामाजिक व्यवस्था में उचित और अनुचित की कसौटी मनुष्योत्तर शक्ति और कर्मफल को मानने से सामाजिक व्यवस्था को परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहने के प्रयत्न में विरोध आना अनिवार्य है। इस विषय की विवेचना मार्क्सवाद पुस्तक के गाँधीवाद प्रकरण में पर्याप्त विस्तार से की गयी है।

समाजवाद या कम्युनिज्म का ईश्वर-विश्वास से विरोध प्रकट न करना, सत्य को छिपाने का यत्न होता। इस अवस्था में समाजवादी लोग इसे अवैज्ञानिक विश्लेषण समझते। उस अवस्था में आध्यात्मवादियों, यानी सन्तों के समाजवाद और वैज्ञानिक समाजवाद में अंतर नहीं रह जाता। सद्-अभिप्राय से समाज की अवस्था में सुधार का प्रयत्न करने और समाजवाद द्वारा आमूल नयी सामाजिक व्यवस्था कायम करने में यही तो अन्तर है। इसी बात को पुस्तक के कई प्रकरणों में प्रकार-भेद से स्पष्ट करने की कोशिश की की गयी है। पुस्तक लिखते समय जनता को समाजवाद का मोहक रूप दिखा कर प्रलोभन देने की अपेक्षा उसका सत्य और वास्तविक रूप ही जनता के सामने रखना उचित समझा गया। समालोचक महोदय को शायद अपनी सहृदयता के कारण यह रुखाई पसन्द नहीं आयी। वे चाहते हैं "माब्रूयात् सत्यमप्रियम्"

इतना होते हुए भी पुस्तक की सराहना के लिए धन्यवाद देना कर्तव्य समझता हूँ।

१६–२–४१ —यशपाल

३

प्रिय सम्पादकजी,

सादर प्रणाम।

जुलाई के 'साहित्य-सन्देश' में श्री शान्तिप्रियजी द्विवेदी की नयी पुस्तक 'युग और साहित्य' की आलोचना निकली है। उस के एक वाक्य के अर्धांश के सम्बन्ध में जिज्ञासा भाव से कुछ कहना चाहता हूँ। आशा है आप तथा आलोचक महोदय क्षमा करेंगे। वह वाक्य इस प्रकार है :—

"समाजवाद के सम्बन्ध में उनके (श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के) भ्रामक वक्तव्यों को पढ़ कर उतना ही आश्चर्य होता है जितना उनके अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग पर।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वक्तव्य में समाजवाद व अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग दो बातों पर चोट की गयी है। यानी इस सम्बन्ध में द्विवेदीजी की अनिभिज्ञता की ओर संकेत किया गया है। फिर उनके समाजवाद सम्बन्धी वक्तव्य दिये गये हैं, उनका भ्रम दिखाया गया है और पाठक को इस सिलसिले में सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे सहमत होना न होना अपनी-अपनी बात है।

पर अंगरेजी शब्दों के प्रयोग पर आश्चर्य क्यों होता है? इसे वहीं छोड़ दिया गया है। या तो यह बहुत मामूली-सी बात है कि इसके उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं थी अथवा यह इतनी सर्वविदित व सर्वसम्मत है कि किसी प्रमाण के देने की जरूरत नहीं।

पर क्या यह सच है? यदि यह इतनी मामूली थी तो इसके लिखने की जरूरत नहीं थी। पर जैसा इसका समाजवाद सम्बन्धी वाक्य से ताल्लुक है, उससे तो यही झलकता है कि यह माना हुआ है कि द्विवेदीजी अङ्गरेजी शब्दों का प्रयोग इस तरह करते हैं कि उस पर आश्चर्य हो सकता है।

आलोचक को यहाँ पर इस प्रकार चलताऊ बात नहीं लिखनी थी। वह एक संगीन आरोप कर रहे हैं उसका प्रमाण देना आवश्यक था। उनके मन में प्रमाण हो यह काफी नहीं है। जिस प्रकार समाजवाद सम्बन्धी वक्तव्य दिये गये हैं वैसे ही दो-चार गलत शब्दों का भी परिचय दिया जाता तो यह मालूम हो जाता कि आलोचक सन्देश के पाठकों को अन्धविश्वासी नहीं समझता।

मैं स्वयं द्विवेदीजी के अङ्गरेजी शब्दों के प्रयोग का विरोधी हूँ। मैंने लिखा भी--पर इसलिए नहीं कि वह गलत लिखते हैं बरन इसलिए कि हिन्दी शब्दों के होते वह अङ्गरेजी शब्द क्यों लिखते हैं। वैसे मुझे उनके अंग्रेजी शब्दों का व्यवहार ऐसा न लगा जिस पर आश्चर्य हो सके, शायद अपनी अनभिज्ञता के कारण।

शान्तिप्रियजी की एक असुविधा जान कर कि उन्होंने कोई डिग्री नहीं पायी या उनके एकाध शब्दार्थ को अपने मनोनीत अर्थ से भिन्न मान कर बिना प्रमाण ऐसा आरोप कर देना उचित नहीं है। आलोचक के हाथ में बड़ी शक्ति होती है। उसका उपयोग माली की कैंची की तरह काँटों के काटने को ही होना चाहिए फूल के लिए नहीं। यानी आलोचक को सहानुभूति नहीं छोड़नी चाहिए और न एक-एक शब्द या वाक्य के कर्णप्रिय न होने पर हठात विपरीत धारणा ही बना लेनी चाहिए। मैं समझता हूँ यहाँ शान्तिप्रियजी के साथ ज्यादती हुई है।

शब्दों और अर्थों के सम्बन्ध में हमें यह याद रखना चाहिए कि उसका कोई एक रूढ़िबद्ध अप्रगतिशील रूप नहीं है। व्यवहार के अनुसार एक-एक शब्द से भिन्न-भिन्न तात्पर्य लिये जाते रहे हैं। कोषों में भी एक-एक शब्द के अनेक अर्थ रहे हैं। शब्द एक है पर उसके अलग-अलग अभिप्राय हो सकते हैं। हो सकता है कि शान्तिप्रियजी एक शब्द को व्यवहार करते समय जो भाव रखते हों उसको आलोचक ग्रहण न कर अपने पूर्व निश्चित किसी दूसरे अर्थ को समझ कर आश्चर्य करें पर मेरे विचार से ऐसा करने में शान्तिप्रियजी का दोष नहीं हैं। वे जो बतलाना चाहते हैं उसे पाठक उसी शब्द से कुछ समझ भी लेता है, वैसे बड़े-बड़े डाक्टरों से भी गलतियाँ हो सकती हैं और उनसे भी जिनकी अंग्रेजी मातृ-भाषा ही है।

जहाँ इतनी गुञ्जायश हो वहाँ ऐसी बंधी-बंधाई राय देना मेरी राय से उचित नहीं है वरन् उसका प्रभाव हानिकर भी हो सकता है। आशा है आप तथा विद्वान् आलोचक इसके लिए क्षमा करेंगे। आपका

जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

जयशंकरप्रसाद-लेखक-श्री नन्ददुलारे वाजपेयी। प्रकाशक-भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग। मूल्य १)

हमारे साहित्य के वर्तमान समीक्षकों में एक गौरव पद श्री वाजपेयीजी को भी प्राप्त है। 'दैनिक भारत' के सम्पादन काल में उन्होंने प्रसाद और निरालाजी की साहित्य-चर्चाएं अधिक की हैं, तभी से वे इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में कुछ उन्हीं दिनों के, और एकाध इधर के लिखे उनके 'प्रसाद' विषयक निबन्धों का संग्रह है। इस पुस्तक में एक (प्रसादजी) की साहित्यिक, सामाजिक और दार्शनिक प्रवृत्तियाँ दिखलायी गयी हैं। निःसन्देह इस पुस्तक में प्रसादजी की विविध प्रवृत्तियों का विषद निदर्शन है, जिससे वाजपेयीजी के गम्भीर अध्ययन का परिचय मिलता है। हां, प्रसादजी की कला पर इससे विशेष प्रकाश नहीं पड़ता, शायद इस संक्षिप्त पुस्तक का यह लक्ष्य नहीं। मुख्य लक्ष्य यह जान पड़ता है कि साहित्य के इतिहास में प्रसादजी की जो अपनी मानसिक भूमिका थी उसका स्पष्टीकरण हो। वाजपेयीजी इस निदर्शन में पूर्ण सफल हुए हैं और इससे अन्य साहित्यिक जिज्ञासुओं को भी लाभ पहुँच सकता है। 'प्रसाद-साहित्य' के पाठकों के लिए यह पुस्तक एक ठोस सामग्री है।

हां, वाजपेयीजी की कुछ बातें खटकती हैं। पहली बात यह कि वे साधारण बात के लिए भी असाधारण भूमिका बांधते हैं। यह छोटे सिर पर बहुत भारी टोपी हो जाती है। दूसरी बात यह कि नवीन दृष्टि के समीक्षक होकर भी उनकी प्रवृत्ति खण्डन-मण्डनात्मक है। वाजपेयीजी का यह कहना सुन्दर नहीं मालूम पड़ता—"प्रसादजी की साहित्यक प्रगति के सम्बन्ध में मेरे बहुत से दावे हैं।.........समय की गति के साथ, ये दावे साहित्य के इजलास में स्वीकार भी किये जा रहे हैं।" पता नहीं, वाजपेयीजी के क्या दावे हैं, और उनके कौन-कौन से दावे स्वीकार किये जा रहे हैं, किन्तु इस प्रकार दावेदार होकर चलने से अन्य साहित्यिकों के साथ अन्याय हो जाने की भी सम्भावना रहती है, क्योंकि समीक्षक का ध्यान अपने 'दावों' की ओर रहता है।

वाजपेयीजी किसी विद्वान एडवोकेट की-सी क्षमता रखते हैं, इसमें भी सन्देह नहीं। उनकी तहरीरों और तकरीरों से पाठकों को उनकी विद्वता का लाभ पहुँच सकता है, इसमें भी सन्देह नहीं। किन्तु वाजपेयीजी से हमारा लोभ यह है कि साहित्यिक विचारों में वे एकनिष्ठ न होकर सर्वनिष्ठ हों तो सम्पूर्ण साहित्य और साहित्यकारों का उनके द्वारा कल्याण होगा।

महाकवि 'हरिऔध' का 'प्रिय-प्रवास'—लेखक प्रोफेसर श्री धमेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। प्रकाशक-रामनारायण लाल बुकसेलर, इलाहबाद। मूल्य १)

यह पुस्तक काव्यालोचन की शास्त्रीय पद्धति पर लिखी गयी है। इस पद्धति का अप-टू-डेट रूप हमारे साहित्य में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल उपस्थित कर गये हैं। शुक्लजी के आलोचना साहित्य से प्रेरित होकर हिन्दी में जो युवक साहित्य-समीक्षक आये हैं उन्हीं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्गत हम इस पुस्तक के लेखक को भी ले सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में 'प्रिय-प्रवास' की अच्छी काव्य-परख की गयी है। उसके भावों और अभावों की ओर रसात्मक हृदय से दृष्टिपात किया गया है। लेखक का दृष्टिकोण संकुचित नहीं है; किसी काल-विशेष के काव्य में केन्द्रित न होकर विस्तृत है।

यद्यपि पुस्तक का मुख्य विषय 'प्रिय-प्रवास' है, तथापि 'हरिऔध' जी की अब तक की प्रकाशित अन्य कविता-पुस्तकों का भी इसमें अनुशीलन किया गया है। लेखक सहृदय और मार्मिक जान पड़ता है। 'हरिऔध'-साहित्य के पाठकों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

—शान्तिप्रिय द्विवेदी

सूर-साहित्य की भूमिका—लेखक-रामरतन भटनागर एम० ए० तथा वाचस्पति त्रिपाठी एम० ए०। प्रकाशक—रामनारायणलाल पब्लिशर और बुकसेलर इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या २६४, मूल्य १॥)

सूर और तुलसी हिन्दी-साहित्य-गगन के सूर और शशि हैं। तुलसी की नैतिकता और धार्मिकता के कारण उनके ग्रन्थों का अधिक प्रचार हुआ है और उसी के साथ अध्ययन भी अधिक हुआ है। सूर का अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है और उस साहित्य पर आलोचनात्मक ग्रन्थों की भी कमी है। अभी तक हिन्दी में जो सूर पर ग्रन्थ निकले हैं उनमें शिखिरचन्द जैन का 'सूर : एक अध्ययन', नलिनीमोहन सान्याल का 'भक्तवर सूरदास', हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'सूर-साहित्य' मुख्य हैं। इनमें से 'सूर : एक अध्ययन' तो कुछ व्यापक दृष्टिकोण से लिखा गया है किन्तु शेष दो एक विशेष दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। सान्यालजी का दृष्टिकोण धार्मिक है और द्विवेदीजी का दृष्टिकोण है वैष्णव वातावरण में सूर का तुलनात्मक अध्ययन। आचार्य शुक्लजी की भ्रमरगीतसार की भूमिका मानसिक दशाओं के विश्लेषण के कारण विशेष महत्व रखती है।

प्रस्तुत पुस्तक की यही विशेषता है कि इसमें सूर का अध्ययन कई दृष्टिकोणों से किया गया है। इसमें सूर की संक्षिप्त जीवनी के साथ उनके मुख्य ग्रन्थ सूरसागर पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। उसकी भागवत के प्रत्येक स्कन्ध के साथ तुलना की गयी है। सूर की दार्शनिक और धार्मिक पृष्ठभूमि को लेकर पुष्टिमार्ग का प्रभाव सूरसागर पर दिखाया गया है और यह भी बतलाया गया है कि सूर का शृङ्गार और वात्सल्य-वर्णन उस सम्प्रदाय की परामपरा में किस प्रकार स्थान पाता है।

सूर के कलात्मक पक्ष में उनके द्वारा वर्णित रसों तथा प्रयुक्त अलङ्कारों का विवेचन किया गया है। शृङ्गार के सम्बन्ध में बहुत से सञ्चारी भावों के भी उदाहरण दिये गये है। पुस्तक की विशेषता यह है कि वह अधिक सावधानी के साथ लिखी गयी है। व्यापक अर्ध-सत्यों का प्रयोग नहीं के बराबर है। जो बात कही गयी है विश्लेषण और विवेचन के साथ। सूर की भक्ति के सम्बन्ध में ऐसा कोई व्यापक वाक्य नहीं कहा गया है। सूर में वात्सल्य, दास्य, सख्य सभी प्रकार की भक्ति दिखायी है। सूर और तुलसी की तुलना में भी विश्लेषण बुद्धि से काम लिया गया है। लेखकों के मत से जहाँ तक शुद्ध काव्य का सम्बन्ध है वहाँ तक सूर अवश्य सूर है, तुलसी की महत्ता इसमें है कि उन्होंने कवित्व के साथ आचार्यत्व और धर्म तथा नीति के प्रचार का समावेश किया है। पुस्तक में यद्यपि विवादास्पद विषय कम उठाये गये हैं तथापि उसमें संतुलन-पूर्ण संयत शैली का स्थान-स्थान पर परिचय मिलता है।

— गुलाबराय

विचार-विमर्ष—लेखक-सद्गुरुशरण अवस्थी। प्रकाशक—रामनारायणलाल, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या १४६, मूल्य १॥)

इस पुस्तक में श्री सद्गुरुशरणजी के पाँच लेख हैं जिसमें से दो मुख्य रूप से विवेचनात्मक हैं:—

१—रहस्यवाद और हिन्दी में उसका स्वरूप।

२—संतों ने हमारे लिए क्या किया ?

प्रथम निबन्ध पुस्तक का महत्वपूर्ण अंश है, क्यों कि वही निबन्ध सब से बड़ा यानी ६८ पृष्ठों का है। हिन्दी के प्राचीन, कबीर-जायसी जैसे कवियों और आधुनिक प्रसाद-पन्त-निराला, 'एक भारतीय आत्मा', 'नवीन' आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रचनाओं में से विपुल उदाहरणों के साथ विद्वान लेखक ने विश्लेषणात्मक पद्धति से रहस्यवाद और छायावाद में अंतर बतलाया है। विद्यार्थियों के लिए ही नहीं वरन् आलोचकों के लिए भी यह दिशा-दर्शक विवेचन सिद्ध होगा। संक्षेप में अङ्गरेजी में जिन्हें classical और romantic शक्तियाँ कविता में मानते हैं—वही भेद कम-अधिक परिमाण में हिन्दी में इन दो वादों में है (?)। सद्गुरुजी की इस मान्यता के साथ कोई भी सहमत होगा कि आधुनिक पद्य-रचनाकारों में कतिपय पंक्तियों या गीतों को छोड़ कर शायद ही कोई विशुद्ध रहस्यवादी है। साथ-ही-साथ अनेक 'वादों'—मसलन कल्पनावाद, चिंतनावाद, पराजयवाद, हँसिया-हथौड़ावाद, आदि की भी खबर ली गयी है। आलोचक कविवर पंतजी की 'युगवाणी' की प्रगतिशील रचना—'ठङ्-ठङ्-ठङ्' पर अनावश्यक रूप से कठोर, या प्रतिक्रियावादी हो गया है और जहां प्रसादजी के कई नाट्य-गीतों का उल्लेख छायावाद के नमूनों के तौर पर किया गया है, उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'कामायनी' का दार्शनिक मूल्यांकन उसने छोड़ दिया है। शायद प्रगीत मुक्तकों की ही सीमा में चर्चा करना उन्हें ईप्सित हो। मगर 'साकेत' के उद्धरण भी जो हैं। श्री निराला के 'तुम और मैं' का जिक्र भी द्वैताद्वैत निरूपण का बतला कर अधिकांश में उन्हें भी अभिव्यंजनावादी कहा गया है। मगर निरालाजी की रचनाओं में रहस्यवादी पुट प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। महादेवीजी की कल्पनावादी रचनाओं पर रहस्यवादी आरोप किया गया है और कतिपय स्थलों पर पुस्तक उपादेय बनाने के बन्धन के कारण अधिक सूक्ष्म विवेचना, जो कि सद्गुरुशरणजी जैसे चिन्तनशील आलोचक से कभी भी अपेक्षित थी, टाल दी गयी जान पड़ती है। सहायक ग्रन्थों में एविलीन अण्डरहिल की सुविख्यात पुस्तक भी होती तो सोने में सुगन्ध आ जाती।

'सन्तों ने हमारे लिए क्या किया' यह एक उत्कृष्ट निबन्ध है। अवस्थीजी की शैली सुगठित तथा स्वस्थ है और रसिकता उनकी विवेचना में कहीं भी नहीं छूटी है, यह उनकी विशेषता है।

'एकांकी नाटक' यह तीसरा निबन्ध एकदम Informative है। साइक्लोपीडिया में ड्रामा के अन्तर्गत नवीन ड्रामा पर जिस प्रकार जानकारी मिलती है, उसी प्रकार इसमें संक्षेप में बहुत जानकारी एकत्रित है। लेखक की बहुश्रुतता का वह प्रमाण है। और वह निबन्ध-साहित्य के विद्यार्थियों को बहुत उपयोगी है।

'एक घूँट' और 'लगन' एक छोटे नाटक और एक छोटे उपन्यास की विस्तारपूर्वक परिचयात्मक आलोचनाएँ हैं। प्रथम आलोचना में चरित्र-चित्रण आदि का मनोवैज्ञानिक विवेचन बहुत सुन्दर हुआ है। 'लगन' का तो कथानक ही पूरा कह दिया गया है। उत्तरोत्तर हिन्दी के इन प्रथितयश कलाकार आलोचक से उत्तमोत्तम निबन्धों की कामना है।

कविता

प्रलयवीणा—लेखक-सुधीन्द्र। प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली। पृष्ठ संख्या १३४; मूल्य १)

'प्रलयवीणा' के कवर-पेज का डिजाइन काजी नजरुल इस्लाम के 'अग्निवीणा' के कवर-पेज के डिजाइन की नकल है। आग की लपटें तक वैसी ही हैं। शायद यह गलती से हुआ हो।

इधर कविता में अग्नि-तत्व बढ़ने लगा है। कविजन हेराक्लाइटस बन रहे हैं। 'नवीन' जी के 'अनल-गान' के बाद यह प्रथा चल गयी। इधर 'प्रेमी' जी की एक पुस्तक का नाम भी 'अग्नि-गान' है।

कवि स्वयम् 'संगीत-समारम्भ के पूर्व' अपने हस्ताक्षरों में कविता की तरह लिखे हुए गद्य में कहता है—'इन गीतों में विद्रोह की ज्वाला, ओजस् की चिनगारियाँ, प्रलय की प्रेरणा, क्रान्ति की आराधना, विस्फोट का गर्जन, राष्ट्रीयता का वैभव, मानवता का दर्शन और प्रेम का अमृत आप-ही-आप संचित हो गये हैं।'

कविताओं में यह सब तत्व तो जरूर हैं। मगर मुझे आक्षेप यदि कोई हो सकता है तो वह 'आप-ही-आप संचित हो गये हैं' इस बात से है। सुधीन्द्रजी पर अनायास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रलय-देवता की इस कृपा को मैं क्या समझूँ ? मैं मानना चाहता हूँ कि प्रलय के लिए 'आप-से-आप' कुछ नहीं होता, आभास आवश्यक हैं, जमीन बनानी पड़ती है।

कवि सुधीन्द्र हमारे मित्रों में हैं; अतः उन पर आलोचना कठोर भी हो जाय तो वे जानते हैं कि हार्दिकता उस कठोरता के पीछे है। हिन्दी में राष्ट्रीय कविता कब तक महज प्रलयावाहन, अग्निवर्षा, 'हे प्रलयंकर, तू ऐसा कर दे, वैसा कर दे' इसी चमत्कार रूप में सीमित रहेगी ? या फिर अतीत-गुण-गान, 'भारत-भारती' के प्रथम अंश जैसे, या 'झांसी वाली रानी थी', या 'दिनकर' का 'हिमालय के प्रति'। भविष्यत् निर्माण के लिए स्फूर्ति अतीत से लेना ठीक है; मगर स्फूर्ति से अधिक आज हमें मूर्ति की चाह लगी है।

सुधीन्द्र की कविताओं में उस चाह की परिपूर्ति की ओर शाश्वत संकेत हैं। पंक्तियाँ उनकी साफ हैं। प्रावटाकाश, अस्थित्वक्शेष, अतिशेय, अचि, धर्षक आदि प्रकार के शब्द कम होते चलें तो जनता के लिए सुधीन्द्र की कविता अधिक उपादेय हो सकेगी।

विषय यद्यपि पुरातन हैं, भाव नवीन हैं। कई कविताएँ मन पर अपना असर छोड़ जाती हैं। पाँचजन्य, राजाओं से, क्रान्ति का आमन्त्रण, बापू, जीवन, गाँवों की ओर।

कवि प्रेयसी के प्रति निर्मम है, निष्ठुर है। 'नारी' कवि के मानसिक उत्तोलन का सुन्दर उदाहरण है। ऐसा लगता है कि कहीं उसकी राष्ट्रीयता प्रेम-भङ्ग की प्रतिक्रिया तो नहीं ? क्योंकि प्रेयसी को न कोस कर भी तो राष्ट्र-भक्ति हो सकती है। वरन् केवल स्तोत्र-गान या सम्बोधन-पद्धति (Hymnal attitude) हमें नारी के प्रति रखना प्रलय तो दूर, सुधार भी नहीं ला सकेगा।

कवि की सब से बड़ी अच्छाई उसका दुर्दम्य आशा-वाद है—

"झंझा में होकर भी चंचल
लौ न बुझे जलती हो अविकल
प्राण मृत्तिका के दीपक में आज अमर-वर्त्तिका धरो प्रिय !"

कई पंक्तियों में प्रगतिशीलता भी खूब है—

"उधर खड़े हैं रम्य महल वे आसमान को छूने वाले।
और बगल में बनी झोंपड़ी जिसके छप्पर चूने वाले।
यहाँ कड़ाके का जाड़ा है गरम-गरम उनके कमरे हैं।
इनके घर है एक न चिथड़ा, गद्दे-तकिये वहाँ धरे हैं।
गरमी में उशीर के चिक हैं, ठंडे-ठंडे फव्वारे हैं।
'शिमला' उनके कमरों में है, 'आबू' उनके तिद्वारे हैं।
जुटे काम में खुले बदन ही खेतों या खलिहानों में।
जाते हैं वे ढोर चराने अपने घोर बियाबानों में।
टप-टप-टप गिर रहा पसीना, पर वे काट रहे हैं लकड़ी।
उनकी ये पेशियाँ पेट की कड़ी साँकलों से हैं जकड़ी।"

सोहनलाल द्विवेदीजी ने भूमिका में कवि की प्रशंसा ही की है। फिर भी भूमिका पठनीय है और कवि सुधीन्द्र की परिचायक है।

यद्यपि यह प्रश्न है कि नयी दिल्ली में छपी हुई, और एक रुपया कीमत की यह किताब, ७ प्रतिशत साक्षर भारत की दरिद्र किसान-मजदूर जनता में कहाँ तक प्रचार पा सकेगी; तथापि उच्च और मध्य-वर्ग में इस राष्ट्रीय वीणा का बहुत सम्मान होगा। पुस्तक का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ और चाहता हूँ कि प्रत्येक पढ़ा-लिखा नवयुवक इसे पढ़े। और इससे स्फूर्ति ग्रहण करे।

मैं अपना विश्वास पुनः दुहरादूँ कि कविता से 'प्रलय' उतना ही दुश्वार और मुश्किल है जितना कि मेघों की तस्वीर से बारिश का गिरना या 'कृषी सुखानी' का पुनः लहलहाना।

—प्रभाकर माचवे

उपन्यास

गाड़ीवालों का कटरा—लेखक-अलेक्जैंडर कुप्रिन, अनुवादक-श्री चन्द्रभाल जौहरी। प्रकाशक-सरस्वती प्रेस, बनारस। तीन भागों का मूल्य १॥)

इस उपन्यास का सम्बन्ध वेश्या-जीवन से है। लोगों को वैसे भी वेश्याओं के बारे में कुतूहल होता है। जो कुछ भी उन पर लिखा जाय, उसे लोग चाव से पढ़ेंगे। फिर वेश्याएँ विदेश की हों तो कुतूहल और भी बढ़ जायगा। आज कल रूस में वेश्याएँ हैं कि नहीं और हैं तो उनकी क्या दशा है, हमें नहीं मालूम। इस उपन्यास में उनकी जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशा दिखायी गयी है, वह बड़ी वीभत्स और हृदय-विदारक है। समाज की ऐसी कोई भी श्रेणी नहीं जिसके लोग वेश्यालयों में न जाते हों। कुप्रिन ने यह दिखाया है कि समाज-सुधारक और मजदूर-नेताओं से लेकर पुराने खुर्रांट ऐयाशों तक सभी वेश्याओं को अपने पैसे से जैसे खरीद लेना चाहते हैं। वेश्याएँ जीती हैं परन्तु नित्य के जीवन व्यापार में जैसे निर्जीव हो जाती हैं। कुप्रिन ने इस बात पर खूब जोर दिया है कि वेश्याएँ जितना पाप करती हैं वह सब एक निर्जीव अर्द्ध चेतन अवस्था में ही। कुप्रिन पाठक की करुणा और सहानुभूति वेश्याओं के प्रति जगाना चाहता है। समाज में रह कर जो अपने आप को बड़ा सदाचारी समझते हैं परन्तु सचमुच वेश्या-जीवन को बढ़ावा देते हैं। उन पर कुप्रिन ने कड़े प्रहार किये हैं। पुस्तक की सच्चाई में किसी को संदेह न होगा; कुप्रिन ने जो कुछ लिखा है वह मानो आखों से देख कर। यह बात दूसरी है कि उसने वेश्या-जीवन के सभी पहलुओं को न देखा हो।

पुस्तक के आरम्भ में मूल लेखक तथा अनुवादक की प्रस्तावनाएँ हैं। अंत में एक छोटे से लेख द्वारा अनुवादक ने भारत में वेश्या-जीवन की समस्या पर प्रकाश डाला है। जो लोग सामाजिक समस्याओं को सुलझाना चाहते हैं और समाज के विकास पर कुछ विचार करते हैं उनके लिए पुस्तक बड़े काम की है। जो लोग उसे केवल कथा के लिए पढ़ेंगे, संभव है उन्हें कुछ निराश होना पड़े कथावस्तु कुछ बिखरी हुई है; उसका गठन अच्छा नहीं हुआ है। यदि कोई कुतूहल के लिए ही पढ़ेगा तो भी, संभव है, उसे उतनी "भयङ्कर" बातें न मिलें, जितनी उसने सोची थीं। बार-बार एक प्रकार के जीवन के चित्र देने से उनकी भयंकरता आप ही कम हो जाती है। वेश्या जीवन पर जो वाद-विवाद पुस्तक के पात्रों में होता है, वह शायद पाठक को अच्छा न लगे परन्तु कुप्रिन के विचार जानने के लिए इस वाद-विवाद को पढ़ना आवश्यक है। अनुवादक की भाषा सरल और सुन्दर है। पुस्तक छपी अच्छी और सस्ती भी है। आशा है हिन्दी में उसका आदर होगा।

—रामस्वरूप शर्मा

पुरुष और नारी—लेखक-राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह। प्रकाशक-श्री राजराजेश्वरी साहित्य मन्दिर, सूर्यपुरा। पृष्ठ संख्या ३२०, मूल्य २॥)

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह उपन्यासकार के रूप में हमसे परिचित नहीं हैं। कारण यह उनका दूसरा ही उपन्यास है। इस ओर उनकी प्रथम कृति 'राम-रहीम' थी। एक बार हमें याद है इसका भीमकाय आकार देख कर हम घबरा गये थे। इसलिए पढ़ न सके। राजा साहब की कुछ कहानियाँ हमने रुचिपूर्वक पढ़ी हैं और हम कह सकते हैं कि वे हमें भाती हैं। इस उपन्यास की आलोचना करते समय हमारे पास उपयुक्त पृष्ठ-भूमि का अभाव है।

'पुरुष और नारी' में लेखक एक उद्देश्य को लेकर चला है। उसकी सृष्टि के पीछे एक महान ध्येय है। देश की जंगे-आजादी की अचिरन्तन पट-भूमि पर जीवन की चिरन्तन जंग का चित्र-चित्रण करने का प्रयास किया गया है। राजा साहब ने अपनी भूमिका में कहा है 'राम-रहीम' कोई उपन्यास नहीं। वह तो थैकरे के Vanity Fair के नमूने पर समाज का एक व्यंग्य चित्र है। और "पुरुष और नारी" में जीवन के मौलिक संघर्ष या बुनियादी जंग का चित्रण है। राजा साहब इसी सुन्दर उद्देश्य को लेकर चले हैं। इस उपन्यास में कुछ-कुछ रवीन्द्र के 'घर-बाहर' की-सी उलझन है या यों कहें कि समष्टि और व्यष्टि का द्वन्द्व है। यह द्वन्द्व सार्वकालिक है—सदा रहा और सदा रहेगा।

उपन्यास की पट-भूमि में अहिंसात्मक संग्राम है। सन १९२१ में जब देश-व्यापी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो अजीत नाम का विद्यार्थी कालेज छोड़ कर संग्राम में कूदा। जोश में आकर अपनी भावी पत्नी सुधा का ध्यान छोड़ा। एक आश्रम की स्थापना की। देश के स्वातंत्र्य-संग्राम के साथ अजीत के हृदय में प्रतिक्षण एक गहन आन्दोलन चलता रहा। क्या विराट विश्वात्मा में वह अपने को उद्‌भूत करे? क्या देश के लिए वह अपने व्यक्तित्व को बलिदान कर दे? क्या अपने घर के केन्द्र को छोड़ कर वह देश की परिधि सँभाल सकेगा? ये प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे सदा परेशान और दुःखी करते रहे। उसमें निश्चयात्मक बुद्धि का अभाव था। सुधा की शादी अन्यत्र हुई, परन्तु इससे क्या? अजीत के जीवनादर्श पर अपने को ढालना ही तो उसका ध्येय था। परिणामतः वह अजीत के आश्रम में आकर त्यागमूर्ति, देश-सेविका बनी। देश की दरिद्रता, बेकारी और गुलामी सदा उनकी आखों में झूलती, ग्राम-ग्राम कांग्रेस का सन्देश जनता को सुनाते। सुधा ने अजीत को पूज्य-भाव से ग्रहण कर अपने को पूर्ण रूप से देश-सेवा में लगा दिया। अजीत सुधा की मूर्ति को अपने नयनों में झुलाता और देश-सेवा करता। गरीब निःसहाय बिन्दी को देखता तो देश की सोचता, सुधा को देखता तो हृदय और प्रेम की दुनियाँ पर निछावर होता। अन्तर्द्वन्द्व उसके जीवन भर चलता रहा। कुछ निश्चय न कर सकने के कारण अनमना-सा रहता। अपने को भूलने के लिए शराब पीने लगा। सुधा को बड़ा धक्का लगा। शोकार्त हो कर वह मर गयी। अजीत में शक्ति आयी, जीवन में परेशानी के बादल हट गये और निश्चय का सूर्य उदय हुआ। सत्याग्रह आश्रम 'सुधा-सदन' अथवा 'नारी-कल्याण-मन्दिर' बना और अब अजीत समझा कि पुरुष अन्ततः नर है और स्त्री अन्ततः नारी है। मुक्ति संग्राम में नहीं मानो सेवा में है। देश की आजादी से भी ऊँची और भारी एक वस्तु है—मन की मुक्ति। और नारी की प्रकृति के तले बैठी है विश्व की चिरन्तन नारी—त्याग और सेवा की सहज वृत्ति।

इसी ध्येय अथवा विचार का सजीव चित्रण इस उपन्यास में है। एक उद्देश्य को लेकर उपन्यास की रचना हुई। इससे उद्देश्य की तो रक्षा हो गयी, उपन्यास में खम भी आ गया। स्वातन्त्र्य-संग्राम की पृष्ठ-भूमि तो है, चित्रण नहीं। संकेत मात्र ही उसका जिक्र हुआ है। कथानक स्वयं चरित्र-चित्रण में उलझ गया है। सारे उपन्यास में दो ही पात्र हैं—अजीत और सुधा। अन्य पात्र—दलीप, सुधीर, प्रो० शिवदयाल, कन्नूलाल, बिन्दी इत्यादि—सभी बराएनाम हैं। सुधा, राजासाहब की एक बड़ी अनुपम कृति है। उसके चित्रण में उनकी कला और प्रतिभा मानो रम गयी है। यह नारी त्याग और सेवा की प्रतिमा—सजीव प्रतिमा है। उच्चादर्श के शिखर पर बैठी हुई वह सोलहों आना मानवी है। उसमें प्राण हैं, दृढ़ता है और संकट के बादलों में भी वह जाज्वल्यमान है। सारे उपन्यास में उसकी छाया है—पंक्ति-पंक्ति के पीछे उसकी प्रेरणा, आदर्श और उसका सरल मुख देखने को मिलता है। इस उपन्यास का मेरु-दण्ड सुधा का चरित्र ही है।

पर, अजीत के साथ सख्ती हुई है। विरोध दिखाते-दिखाते उसे बहुत नीचा गिरा दिया गया है। उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ने में बहुधा यही होता है। उसमें तनिक भी प्राण-शक्ति नहीं है। क्षणिक आवेश में आकर निश्चय करना और फिर पछताना—यही उसका भाग्य है। वह सीधा खड़ा नहीं हो सकता। पात्र नहीं मानो एक निर्जीव छड़ी (walking-stick) है, जिधर चाहो उधर घुमादो। पुरुषत्व का ऐसा निष्क्रिय रूप हमें नहीं भाता अजीत के चित्रण में राजा साहब को असफलता हुई—या वह अस्वाभाविक और कृत्रिम है—ऐसा अनेक लोगों का मत होगा।

इस उपन्यास की भाषा और शैली के संबंध में कुछ कहना भी आवश्यक है। राजा साहब की भाषा में बड़ी सजीवता है और उसमें शक्ति का ओजस्वी प्रवाह है। उपन्यास के प्रवाह में पाठक बहता चलता है। भाषा की इस शक्ति का परिचय बहुत कम उपन्यासकारों ने दिया है। साथ ही, इस भाषा में उर्दू का प्रभाव भी व्यंजित है जिसके कारण उसमें एक प्रकार की लोच या आर्द्रता आ गयी है। जीवन के गहन (intense) क्षणों की परख इस कलाकार को है और उन्हें वह सजीव रसवन्ती भाषा में अंकित कर सकता है। इस प्रकार के अनेक सौन्दर्य्य-स्थल (Purple Patches) इन पृष्ठों में यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं। जीवन के संघर्ष से ऊब कर हम इन निकुञ्जों में विचरण कर अपनी व्यथा को हल्का कर सकते हैं।

शब्दों के चुनाव में यह लेखक विशेष पटु हैं। चुन-चुन कर बड़े परिश्रम से वे महल बनाते हैं। हाथी-दाँत पर जिस सावधानी से काम किया जाता है, वही सावधानी राजा साहब भाषा के साथ बरतते हैं। रूपकात्मक शैली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के तो आप धनी हैं। साथ ही अपने विचारों को सूक्ति-रूप में व्यक्त करने में भी आप सिद्धहस्त हैं। यथा—

"वह आश्रम खोल कर क्या बैठा है—देशभक्ति की दूकान खोल बैठा है।"

"आपने भोग का त्याग किया; राग का त्याग तो शायद न कर पाये !"

"आखिर हमने गांधी से उनकी गांधी-टोपी तो ले ली—उनकी लँगोटी नहीं ली।"

"महात्माजी का लक्ष्य मनुष्य की प्रगति ही नहीं है—उसकी परिणति भी है।"

जो लोग भाषा को अनसँवारी रखने या सरल-सौन्दर्य-मयी रखने के पक्ष में हैं, उन्हें इस उपन्यास की भाषा कृत्रिम जँचेगी। कुछ आलोचक उर्दू के शब्दों से भी अरुचि रख सकते हैं और हमारे विचार से कुछ ऐसे भी होंगे जो राजासाहब की विरोध (Contrast) का चित्रण करने वाली शैली को निरर्थक शाब्दिक मोह अथवा वाग्जाल कहेंगे। यथा—

"युवती रङ्गीन ही नहीं, हसीन भी है। चेहरे पर नमक है, आँखों में चमक है। वह सरापा फैशन के फ़ानूस में रौशन हो रही है। उसकी रतनारी आँखें जवानी का जाम पीकर बावली-सी हो उठी हैं।"

"जानती हो सुधा, आज इन नसों में झुँझलाया हुआ लहू है, इधर विवेक के हाथों झँझोरा हुआ दिल; और अब रौंदी हुई कामना फुफकार कर फन पटकती है, तो चातुरी बुद्धि यश की तुमड़ी ताबड़तोड़ बजा कर भी मोह नहीं पाती है।"

"मैं तो समझता हूँ, पुरुष के जीवन में जब कामिनी आती है उसे गिराने ही आती है—कुछ उठाने नहीं। वह नन्दन की हवा तो लाती है, पर तपोवन की शिखा बुझा जाती है। यौवन की छाती में वह रस की फुहार तो देती है, पर जीवट का सुर नहीं फूँक पाती।"

राजा साहब की सारी शैली उसी प्रकार की है। सारे सम्वाद इसी शैली में लिखे गये हैं। इस प्रकार की वाक्-विदग्धता, घंटों तक इसी शैली में बोलते जाना कहाँ तक स्वाभाविक है ?—यह प्रश्न आसानी से उठाया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मिनर्वा कृत 'पुकार' फिल्म देख रहे हों।

बाकी जिन्हें भाषा से प्रेम है और शब्दों की ध्वनि से मोह है उनको राजासाहब की शैली बहुत प्रिय होगी। उनकी भाषा में लय-सुर है और है सङ्गीत की मनमोहकता।

'पुरुष और नारी' व्यथासिक्त मन के भार को हलका करने में समर्थ है, और यही क्या इस उपन्यास की सफलता नहीं है ? —विद्याभूषण अग्रवाल एम० ए०

स्फुट

लेखनी उठाने से पूर्व या लेखक बन्धु— लेखक—सत्यजीवन वर्मा (श्री भारतीय) प्रकाशक—शारदा प्रेस, प्रयाग। मूल्य १॥)

लेखक बनने के लिए प्रतिभा, संसार का निजी अनुभव और शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त एक और चीज आवश्यक है, वह है व्यवहारिक ज्ञान। पुस्तक का मूल उद्देश्य उसी व्यवहारिक ज्ञान के देने का है किन्तु उसके साथ ही उपन्यास, कहानी, आख्यान, हास्य-व्यङ्ग्य के सम्बन्ध में थोड़ा सैद्धान्तिक विवेचन है। उसका भी उद्देश्य व्यवहारिक है, केवल सिद्धान्त की दृष्टि से वह अपूर्ण है। व्यवहारिक बातों के ज्ञान कराने के लिए जो सामग्री दी गयी है उसमें कापी राइट कानून, बच्चे क्या पढ़ना चाहते हैं (इस सम्बन्ध में आठ से तेरह-चौदह वर्ष तक की वयःक्रमानुसार विषयों की तालिका दी, है वह बहुत उपादेय है), रचनाओं का नामकरण (इसमें ९ प्रकार के शीर्षकों पर विवेचन है), प्रूफ़ संशोधन, सफल पत्रकार शीर्षक लेख विशेष महत्व के हैं। जिन लेखकों में प्रतिभा और ज्ञान है, उनको पुस्तक की उपेक्षा नहीं करना चाहिए।

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—लेखक श्री इलाचन्द्र जोशी, प्रकाशक इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य ॥)

इण्डियन प्रेस ने सरस्वती सीरीज की एक उपयोगी पुस्तकमाला निकाली है। इसमें विचारधारा, विश्व-उपन्यास,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि दस प्रकार के साहित्यिक प्रसून गुम्फित रहेंगे ।

प्रस्तुत पुस्तक का विषय है मनोविज्ञान का वह अंश जो दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखता है और इसमें जीवन-व्यापार और मानव-स्वभाव को मनोविज्ञान के आलोक में समझाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें एडलर का नाम न देकर मूलतः उसके क्षतिपूर्ति के नियम का दृष्टि-कोण प्रमुख रक्खा गया है । आगे चल कर मनुष्य की मूलगत प्रवृत्तियों के आलोक में भी व्याख्या की गयी है। प्रायः सभी मनुष्य किसी-न-किसी बात में अपनी कमी का अनुभव करते हैं। ज्ञात रूप से अथवा अज्ञात रूप से वे उस कमी की पूर्ति करते हैं । कभी वह क्षतिपूर्ति अच्छा रूप धारण कर लेती है और व्यक्ति के विकास में सहायक होती है और कभी वह बुरा रूप धारण कर लेती है । जिससे बहुत से रोगों का जन्म होता है, बहुत से अंधे लोगों में इस क्षतिपूर्ति के कारण स्पर्श और श्रोत्र इन्द्रियों की शक्ति की असाधारण रूप से वृद्धि हो जाती है। वे कभी-कभी सूर या मिलटन की भाँति बौद्धिक वा कल्पना सम्बन्धी लोकोत्तर चमत्कार दिखाने में समर्थ होते हैं। शायद जायसी ने भी अपनी कुरुपता के ही कारण अपनी काव्य-कला द्वारा उसकी पूर्ति की हो।

क्षतिपूर्ति के विकृत रूप बड़े भयङ्कर होते हैं। हिस्ट्रीरिया आदि मानसिक रोग तो ऐसे कारणों से उत्पन्न हो ही जाते हैं किन्तु क्षयरोग आदि घातक रोग भी प्रायः इसी कारण हो जाते हैं। जो व्यक्ति यह अनुभव करते हैं कि उनको संसार में समुचित प्रेम और आदर नहीं मिला, लोग उनकी परवाह नहीं करते तो संसार में नहीं तो कुटुम्ब में महत्ता पाने और दूसरों की चिन्ता के विषय बनने के लिए अज्ञात रूप से वे धीरे-धीरे रोग ग्रस्त होने लगते हैं। जो रोग केवल मानसिक रहते हैं उनका रोगी तो कारण की तुच्छता बताने से या कारण को दूर करने से अच्छा हो जाता है और जो शरीर में जड़ जमा लेते हैं वे मानसिक चिकित्सक की कला से भी बाहर हो जाते हैं। अहंकार, दीर्घ-सूत्रता, भावुकता आदि इसी क्षतिपूर्ति के विकृत रूप हैं। हीनता-भाव के सम्बन्ध में जोशीजी लिखते हैं:—

"पग-पग में झिझक, बात बात में आशंका, अकारण भय और अनावश्यक चिन्ताओं से उसका मन भ्रमित होता चला जाता है। वह विपुल विश्व में अपने को एकाकी, असह्य और अरक्षित पाता है और अपनी रक्षा के लिए उत्सुक होकर अपनी मूलगत कमियों की पूर्ति के उद्देश्य से बड़े-बड़े विचित्र उपायों को काम में लाता है।" जोशीजी ने अनेक प्रकार के भयों का वर्णन किया है। कुटुम्ब का द्वितीय पुत्र प्रायः बुद्धिमान हुआ करता है। यह भी क्षतिपूर्ति का उदाहरण है, क्योंकि वह बड़े भाई की अपेक्षा उपेक्षित रहता है और उस उपेक्षा की कमी उद्योग और अध्यवसाय से करता है । पुस्तक बड़े मनोरञ्जक ढंग से लिखी गयी है; इसमें जरा भी शास्त्रीय शुष्कता नहीं आने पायी है। कमी इस बात की है कि इसमें कोई खास विधान नहीं दिखाई देता। कुछ बातें अनुचित रूप से व्यापक बना दी गयी हैं, जैसे—भावुक मनुष्य अत्यन्त अहंभावपूर्ण और स्वार्थी होते हैं। यह बात ठीक है कि जब तक मनुष्य अपने को महत्ता नहीं देगा तब तक वह भावुक न होगा, जो आदमी जरा-सी बात का बुरा मानता है या रो उठता है वह इसी कारण कि जितना वह अपने को समझता है दूसरे उसको उतना आदर नहीं देते लेकिन उसका यह अहंभाव सब के साथ नहीं होता और न वह सब से स्वार्थपूर्ति चाहता है। अपने विशेष सम्बन्ध वाले लोगों से ही वह कुछ आशा करता है और उनसे आदर न मिलने पर दुःखी होता है। यह सब व्यौरे की बात है। पुस्तक अत्यन्त ज्ञानप्रद और उपादेय है। —गुलाबराय

१—जीवन-सन्देश—(खलील जिब्रान के 'दी प्राफेट' का अनुवाद) अनुवादक—किशोरीरमण टंडन। प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल, देहली। पृष्ठ११२, मूल्य ॥)

मूल पुस्तक बहुत वर्षों से इन पंक्तियों के लेखक के पारायण की पुस्तक रही है। वैसे पारायण बहुत कम पुस्तकों का, आज की भगदड़ की दुनियाँ में हम करते हैं, यदि वह पुस्तक अतिशय प्रिय न हो। खलील जिब्रान की लेखन-पद्धति इतनी पारदर्शक, भावस्पर्शी और मूलग्राही जान पड़ी है कि मैं उनकी अन्य पुस्तकों के पढ़ने का मोह भी संवरण न कर सका। और काका साहब कालेलकर स्वयं, बुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों तक, क्रमशः नागपुर के मासिक मराठी 'विहङ्गम' में खलील की एक और पुस्तक का अनुवाद प्रकाशित कराते थे—'अतिथि' नाम से। भारतीय भाषाओं के अलावा यूरोप की पन्द्रह-बीस भाषाओं में जिब्रान की रचनाएँ अनूदित हो चुकी हैं।

आर्मेनियन सूफी की यह मूल पुस्तक अरबी में है; जिससे स्वयं लेखक ने अँग्रेजी में अनुवाद किया। प्रस्तुत पुस्तक उसी अंग्रेजी अनुवाद के साथ-ही-साथ, उसके गुजराती 'विदाय वेलाये' अनुवाद को साक्षी रख कर किया गया है। जहाँ तक अनुवाद का सम्बन्ध है, कह नहीं सकते कि अनुवादक लेखक की आत्मा में कहाँ तक पैठ सका है; परन्तु प्रयत्न इसलिए प्रशंसनीय है कि इतनी सुन्दर पुस्तक जिसका कि अनुवाद हिन्दी में कभी से हो जाना चाहिए था, को वे हिन्दी में लाये। स्थल-स्थल पर पाद-टिप्पणियाँ दी हैं, जो निरर्थक-सी और कहीं-कहीं मर्मी की महाभव्य कल्पना को अध्यात्म या अन्य ससीम वाणीगत बन्धनों में बाँधने वाली जान पड़ती हैं।

हिन्दी-संस्करण में पुस्तक के नामकरण में बासीपन जान पड़ता है; मगर इसके सिवा भी एक महान दोष और खटकता है वह है मूल पुस्तक के कई चित्र जो स्वयम् खलील ने बनाये थे उनका न देना। शायद सस्ता-साहित्य-मण्डल ने रचना सस्ते में देने की ओर ध्यान रखा हो। अन्यथा, केवल तीन-चार चित्र देना और वे चित्र न देना जिनमें वस्त्रहीन मानवों के रेखाङ्कन हैं, यह बात सूचित करता है कि हिन्दी पाठकों की अभिरुचि अभी कला की संकेतात्मक महत्ता समझने में शिक्षित नहीं हुई है; इसी कारण प्रकाशकों ने इस भय से कि कहीं चित्रों की नग्नता ही पाठकों को न अटकादे या भटकादे, वे चित्र नहीं दिये।

पुस्तक की मूलवस्तु है अलमुस्तफा नामक एक 'नबी' का आरफिलीज नगर से महाभिनिष्क्रमण। उस समय उसके आसपास नगर के नाना-व्यवसाय के और नाना प्रकार के लोग एकत्रित हो जाते हैं और उसे पूछते हैं कि कहो, हमें प्रेम के विषय में कुछ कहो; 'शिक्षा का क्या'; 'और मृत्यु ?'। इसी प्रकार जीवन सम्बन्धी २६ विषयों पर सुन्दर, काव्यमय विचारों का संग्रह इस पुस्तक में हमें मिलता है। विचार हैं, वे दार्शनिकों के-से शुष्क, तर्ककर्कश भाषा में प्रस्तुत नहीं किये गये हैं। वे सहृदयता की आर्द्रता और कल्पना की भव्यता से मँजे हुए जीवनानुभव हैं। उनमें ऊँचाई और गहराई है।

खलील जिब्रान (१८८३-१९३१) कवि, मनीषी, चित्रकार और रहस्यवादी हैं। खलील का रहस्यवाद आधुनिक है। वह प्रगतिशील रहस्यवाद है। पुस्तक के कुछ अवतरण इस बात को स्पष्ट करेंगे—(पृ० ६१ पर धर्म के विषय में)

'तुम्हारा दैनिक जीवन ही तुम्हारा मन मन्दिर और तुम्हारा धर्म है।'

'जब-जब तुम उसमें जाओ अपना सब कुछ उसमें ले जाओ।'

'हल, कुदाली, हथौड़ा और अपनी बाँसुरी को ले जाओ।'

और अन्य स्थल पर 'श्रम' के सम्बन्ध में वह लिखता है:—

'श्रम तो प्रेम को रूप देना है।'

'यदि तुम प्रेम को चाह के साथ न कर सको, बल्कि बेगार टालो, तो तुम्हारे लिए यही बहतर है कि तुम अपना काम छोड़ दो और मन्दिर की सीढ़ियों के पास जा बैठो और उनके आगे हाथ पसारो जो श्रम करने में आनन्द पाते हैं।'

'कानून' के विषय में भी गौर कीजिए—

'ज्ञान की आँखों में कानून का अर्थ मानव का नीचे उतर कर अपनी छायाओं को नापने के सिवाय और क्या है ?

'लेकिन जो सूर्य की ओर मुंह करके चलने वाले हैं क्या उन्हें पृथ्वी पर बिछी हुई छायाएं पकड़ने का साहस करेंगी।

'और मानव द्वारा गढ़ी जंजीरों से उससे बिना तुम नाचो तो तुम्हें किस कानून का डर है ?'

पुस्तक, वाचनद्वारा जिन्हें विचार चाहिए हों, उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए, संग्राह्य है। सस्ती भावुकता, या सस्ता मनोरंजन इसमें रत्तीमात्र नहीं है।

काका साहब कालेलकर ने छः पृष्ठों का सुचिंचित आमुख लिखा है। और कवि-जीवनी भी है। हम आशा करते हैं कि सस्ता-साहित्य-मंडल खलील जिब्रान की अन्य पुस्तकें शीघ्र अनुवादित करके प्रकाशित करायें।

—प्रभाकर माचवे

बेसिक की तीन पुस्तकें

१—नागरिक जीवन (भाग १ और २)—प्रकाशक-रामनारायणलाल पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद। मूल्य प्रत्येक का ≡)

२—संसार के रहने वाले (भाग १ और २)—प्रकाशक-नेशनल प्रेस, इलाहाबाद। मूल्य प्रत्येक ।)

३—सामान्य विज्ञान और बागबानी (भाग १ और २)-प्र०-नेशनल प्रेस, इलाहाबाद। मू०क्रमशः ।),।-)

ये पुस्तकें बेसिक शिक्षा-सम्बन्धी हैं। बेसिक शिक्षा व्यावहारिक शिक्षा है। 'काम करते हुए शिक्षा प्राप्त करना' बालकों की शिक्षा का सर्वमान्य सिद्धान्त है। बेसिक शिक्षा में इस सिद्धान्त का पूर्ण रूप से पालन किया जाता है। बालक निश्चित दस्तकारी द्वारा गणित, भाषा, भूगोल, इतिहास, नागरिक-शास्त्र और ललितकला का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके लिए समन्वय का सिद्धान्त काम में लाया जाता है जिसके अनुसार दस्तकारी से उक्त विषय सम्बन्धित किये जाते हैं। इस उक्ति से विभिन्न विषयों के समझने में बालकों को कोई कठिनाई नहीं पड़ती और उनके सीखने में वे दत्तचित्त हो जाते हैं।

बेसिक शिक्षा के लिए लिखी गयी पुस्तकों में समन्वय का सिद्धान्त कभी नहीं भूलना चाहिए क्योंकि वह बेसिक शिक्षा का प्राण है। पर इन पुस्तकों में लेखक महोदयों ने इस बात का ध्यान नहीं रक्खा है। उन्होंने पुराने ढंग से ही प्रस्तुत पुस्तकों की रचना की है। ऐसी दशा में ये पुस्तकें अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकतीं। हाँ, अध्यापकों को इनसे अध्ययन के लिए मसाला अवश्य मिल जायगा, परन्तु वह वस्तु नहीं मिलेगी जो बेसिक शिक्षा का मूल तत्व है। लेखक महोदयों को चाहिए था कि वे अपनी पुस्तकों के विभिन्न पाठों को किसी बेसिक दस्तकारी द्वारा उपस्थित करने का प्रयत्न करते।

यह तो सामूहिक रूप से कहा गया है। अब पृथक्-पृथक् पुस्तकों को लीजिए। 'संसार के रहने वाले' नामक पुस्तक बेसिक शिक्षा द्वारा निर्धारित भूगोल पाठ्य-क्रमानुसार कक्षा १ और २ के लिए लिखी गयी है। पुस्तकों में विषय को सरल और सुबोध भाषा में उपस्थित किया गया है। यथास्थान चित्र भी दिये गये हैं। पुस्तक मोटे टाइप में छपी है। इन सब कारणों से यह पुस्तक बालकोपयोगी है इसमें सन्देह नहीं, पर इसमें दो प्रधान कमी हैं। एक तो पाठों को कहानी-रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि वर्णन रूप में लिखा गया है। दूसरे पाठों के अन्त में आवश्यक प्रश्न नहीं दिये गये हैं, जिनसे यह पता लगाया जा सकता है कि पढ़ाया हुआ पाठ कहाँ तक बच्चों की समझ में आया है।

'नागरिक जीवन' नामक पुस्तक बेसिक शिक्षा द्वारा निर्धारित नागरिक-शास्त्र विषय के पाठ्यक्रमानुसार कक्षा १ और २ के लिए लिखी गयी है। विषय की दृष्टि से यह पुस्तक बच्चों के शिक्षकों के लिए पथ-प्रदर्शक का काम देगी। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इसमें यह कमी है कि लेखक महोदय ने प्रश्नोत्तर रूप में विषय की अवतारणा नहीं की है, बल्कि पुराने ढंग से विषय को प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में चित्रों का भी अभाव है। टाइप भी छोटा है। पाठों के अन्त में प्रश्न भी नहीं दिये गये हैं। अतः यह पुस्तक बालकोपयोगी नहीं है।

'सामान्य विज्ञान और बागवानी' नामक पुस्तक बेसिक शिक्षा द्वारा निर्धारित सामान्य विज्ञान और बागवानी विषयों के पाठ्यक्रमानुसार कक्षा १ और २ के लिए लिखी गयी है। इस पुस्तक में विज्ञान के सिद्धान्तों को साधारण प्रयोगों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया है। स्थान-स्थान पर चित्र भी दिये गये हैं जिनसे पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गयी है। प्रत्येक पाठ के अन्त में प्रश्न देकर पुस्तक को बालकोपयोगी बनाया गया है। यदि टाइप बड़ा होता तो और भी अच्छा होता।

—शिवप्रसाद अग्रवाल एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियोंपयोगी

गृह प्रबन्ध--प्रकाशक-रामनरायनलाल पब्लिशर और बुकसेलर इलाहाबाद, मूल्य ॥)

हाईस्कूल परीक्षा के एक विषय गृह-विज्ञान (Domestic Science) का एक अंग गृह-प्रबन्ध (House hold management) भी है। इसी के सिलेबस (syllabus) को ध्यान में रख कर यह पुस्तक लिखी गयी है। पुस्तक में दस अध्याय हैं। जिनमें घर की स्थिति व बनावट कैसी हो उसकी सजावट, मरम्मत, दूषित वस्तुओं व कीड़ों से बचाव, रसोई घर, आय-व्यय, गृहस्थी के कर्त्तव्य आदि बातों का पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है।

यद्यपि गृह सम्बन्धी ऐसी शिक्षाएँ कन्याओं को बचपन से ही घरों में मिलती आती हैं, पर वह शिक्षा अधिकतर उखड़ी-पुखड़ी और अधूरी-सी रहती है। एक ढङ्ग पर और उचित रूप से बहुत कम घरों में शिक्षा दी जाती है। स्कूलों में यह विषय कन्याओं को गृह-कार्यों में दक्ष सुगृहणी बनाने के लिए ही रक्खा गया है और इस विषय की यह एक उत्तम पुस्तक है।

अध्याय के बाद जो प्रश्न दिये हुए हैं वे पाठ को सरल बनाते तथा विषय को मन में बैठा देते हैं। स्कूलों के लिए पुस्तक अच्छी है। छपाई आदि भी सुन्दर है।

शिशु-पालन—लेखक-श्रीव्यथितहृदय। प्रकाशक-रामनायणलाल पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद। मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक में जैसा उसके नाम से ही विदित है, शिशु सम्बन्धी सारी आवश्यक बातों का वर्णन है। भारतीय स्त्रियों के लिए पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। हमारे देश में स्त्रियों की असावधानता व अज्ञानता के कारण, अनेक बालकों की असामयिक मृत्यु तो होती ही है, नवविवाहित दम्पति और विशेष कर स्त्रियों का अमूल्य स्वास्थ्य भी सदा के लिए नष्ट हो जाता है। नवजात शिशु की रक्षा व पालन-पोषण का भार उठाने में हमारे यहाँ की अधिकांश स्त्रियाँ असमर्थ होती हैं क्योंकि प्रारम्भ से या बाद में उन्हें कभी वह शिक्षा नहीं मिली जो उन्हें पूर्ण गृहणी व मातृ-पद के योग्य बना सके।

मोटे कागज पर छपाई सुन्दर है और पुस्तक के विषय व लाभों को देखते हुए मूल्य भी कम है।

महाभारतीय सुनीत कथा—(गद्य-पद्य संस्करण) लेखक-पं० रामदहिन मिश्र। प्रकाशक-ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर। मूल्य ॥।)

उपरोक्त पुस्तक में लेखक ने महाभारत के समय के महापुरुषों की समय-समय की जीवन-घटनाओं एवं उनके सुन्दर चरित्रों को लेकर बालक बालिकाओं को नैतिक शिक्षा देने के लिए बड़ी उपदेशात्मक व मनोरञ्जक कहानियों की रचना की है। नैतिक शिक्षा देने के लिए महाभारत के चरित्रों से बढ़ कर कोई दृष्टान्त नहीं मिल सकते।

पुस्तक में कुल चालीस नीति-कथाएँ हैं। जिनमें विद्या पढ़ने और परिश्रम करने के लाभ से लेकर गुरुभक्ति, सत्य, क्षमा, अतिथि-सत्कार, त्याग व उदारता एवं झूठ से हानि आदि अनेक सुन्दर उपदेश, दृष्टान्तों व उदाहरणों द्वारा समझाए गये हैं। अन्त में पद्य पाठों में कृतज्ञता क्षमा आदि का महत्व कुन्ती, द्रोपदी जैसी देवियों के सुचरित्र से दर्शाया गया है। बच्चों एवं नवयुवकों के लिए भी पुस्तक बहुत उपयोगी है। स्कूल की पाठ्य पुस्तकों (text book) के साथ बाह्य पुस्तकों (supplementary books) में स्थान पाने योग्य है।

भाषा परिमार्जित, सरल एवं सुबोध है। छपाई सफाई अच्छी है। बच्चे यह पुस्तक पढ़ना अवश्य पसन्द करेंगे।

—राजकुमारी बैजल

राष्ट्रभाषा सम्बन्धी

मराठी हिन्दूस्तानी घरेलू शब्दकोष—लेखक श्री रा० प० पटवर्धन राष्ट्रभाषा कोविद (वर्धा), प्रकाशक-श्री प्र० मो० धर्माधिकारी प्रभाकर एण्ड को—मंगलवार बाजार रोड, अहमद नगर। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।-)

यह कोष यद्यपि छोटा है तथापि व्यवहार में उपयोगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध होगा । मराठी के भी बहुत से शब्द हिन्दुस्तानी से मिलते-जुलते हैं ।

हिन्दुस्तानी प्रवेशिका तथा राष्ट्रभाषा प्रारम्भिनी—लेखक-श्री परमेष्ठीदास जैन तथा श्री वल्लभदास ककड़ । प्रकाशक-करसनदास नारायणदास एण्ड सन्स, नाराबट, सूरत । पृष्ठ संख्या १८२ और ८६, मूल्य क्रमशः ॥=) और ।-)

ये दोनों पुस्तकें गुजराती द्वारा हिन्दुस्तानी सिखाने के लिए लिखी गयी हैं । इन पुस्तकों में हिन्दुस्तानी के (हिन्दी के) व्याकरण का परिचय कराया गया है । हिन्दुस्तानी प्रवेशिका में हिन्दुस्तानी के मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी दी हैं । आशा है ये पुस्तकें राष्ट्रभाषा प्रचार में अधिकाधिक योग देंगी ।

अध्यात्म

ब्रह्म विद्या रहस्य—लेखक-तत्वदर्शी श्री शिवानन्दजी, प्रकाशक-छात्र हितकारी पुस्तकमाला दारागंज प्रयाग । पृष्ठ संख्या १७१, मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक में ब्रह्म विद्या सम्बन्धी मूल सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है । महावाक्यों तथा बुद्धियोग, कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोगादि आदि के साधनों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है । पुस्तक में अधिकतर अवधूत गीता का आधार लिया गया है । श्लोकों को व्याख्या करते हुए लेखक महोदय ने पदच्छेद और पदार्थ देकर साधारण पाठक के लिए अर्थ सुलभ कर दिया है । फिर भी प्रतिपाद्य विषय की कठिनाई के कारण पुस्तक नितान्त सुबोध नहीं है । ऊँचे दर्जे के पाठकों के ही लिए है ।

—गुलाबराय

अभ्यासी की डायरी—लेखक पं० कन्हैयालालजी उपाध्याय । प्रकाशक-प्रताप प्रेस, स्वामीघाट, मथुरा । मू०॥)

यह पुस्तक लेखक के उन विचारों का प्रकाशन है जो उन्होंने अनुभवी जीवन के आधार पर ईश्वर-भक्ति में लीन होकर लिखे हैं । पुस्तक का प्रारम्भ गायत्री मंत्र से होता है । इस पुस्तक में ज्ञान के सूक्ष्म तत्वों का इस रूप में बिवेचन किया गया है कि जिससे यह सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त महत्व की वस्तु बन गयी है, वेदान्त योग या गीता के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों को सरल रूप में व्यक्त करने का सफल प्रयास किया गया है । ज्ञान, अज्ञान, कर्म, अकर्म तथा भक्ति के साथ-साथ ब्रह्म व मुक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए उनके प्राप्त करने की मीमांसा की गयी है । पुरुष सूक्त के पश्चात विभिन्न विषयों की विवेचना करते हुए अन्त में अध्यात्म विद्या को लेकर यह पुस्तक समाप्त होती है । जिज्ञासु तथा अध्यात्म चिन्तन प्रेमियों के लिए यह पुस्तक लाभकारी है ।

—हरिदत्त शर्मा

जीवनी

आदर्श नरेश—लेखक-श्री पण्डित झाबरमल्ल शर्मा, प्रकाशक-शेखावाटी हिस्टोरिकल रिसर्च ऑफिस जसरापुर खेतड़ी (राजपूताना) । पृष्ठसंख्या ३८३, मूल्य २॥)

पुस्तक में स्वर्गीय राजा अजीतसिंहजी बहादुर खेतड़ी नरेश का जीवन वृत्तान्त दिया गया है । पुस्तक के आदि में डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द की प्रस्तावना दी गयी है । खेतड़ी जयपुर राज्य के अधीन है । इस पुस्तक के पढ़ने से देशी राज्यों की रीति-नीति तथा राजनीतिक कार्यवाही का बहुत कुछ पता चलता है । जीवनी लेखक ने बड़े संतुलन से काम लिया है । खेतड़ी नरेश का अन्त बड़ा करुणाजनक है । पुस्तक खेतड़ी से सम्बन्ध न रखने वाले लोगों को भी रुचिकर होगी ।

—गुलाबराय

अमेरिका—लेखक-श्री योगेन्द्रनाथ गुप्त, अनु० हंसकुमार तिवारी, प्रकाशक-बाल शिक्षा समिति, बांकीपुर । पृष्ठ १६८; मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक के १२ शीर्षकों में अमेरिका की खोज से लेकर वहाँ के प्रसिद्ध पुरुषों, मुख्य-मुख्य युद्धों और देश के विशेष भागों जैसे मैक्सिको, ग्रीनलैंड, वैस्ट इण्डीज, दक्षिण अमेरिका आदि पर रोचक प्रकाश डाला गया है । पुस्तक की शैली सुबोध है और भाषा को अनुवादक ने काफी सरल बनाया है । फलतः नये-छोटे विद्यार्थियों के हाथ में यह पुस्तक दी जा सकती है और उनके लिए लाभप्रद भी हो सकती है ।

—गो० प्र० व्यास

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

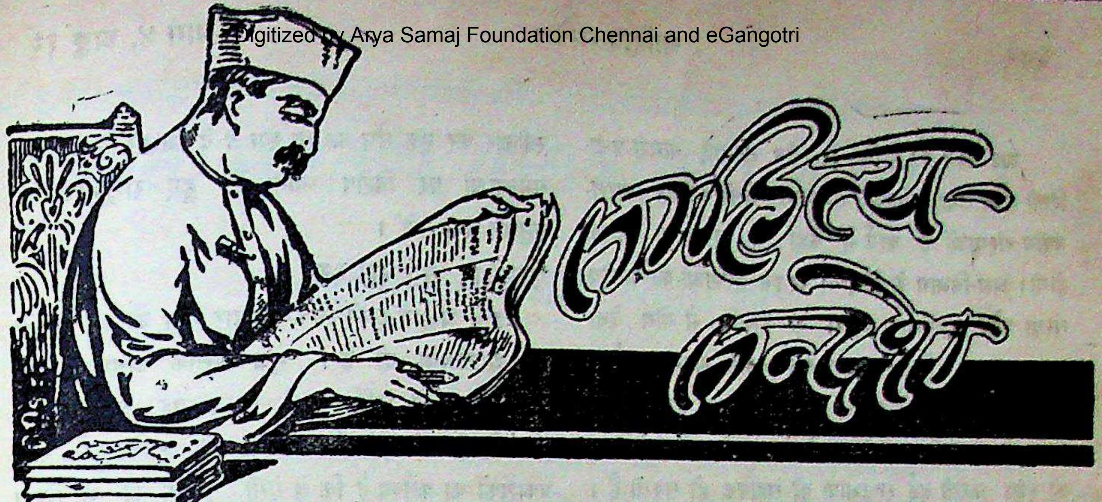

कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति श्रद्धाञ्जलि

विश्वकवि रवि ठाकुर के स्वर्गवास के दुःखद संवाद ने समस्त भारतवर्ष को शोकमग्न कर दिया है। जिसके लिए सारा देश एक स्वर होकर 'जेते नाई देबो' अर्थात् जाने नहीं दूँगा कह रहा था आज वही मानव अशक्तता की भावना को घनीभूत करता हुआ कीर्तिशेष रह गया। यद्यपि उनका यशः शरीर जरा-मरण से परे है और वे उन लोगों में से हैं जो आप्तकाम कहे जा सकते हैं और जो गुरु वशिष्ठजी की बताए हुए शोचनीय व्यक्तियों की सूची से बाहर हैं, तथापि उनकी भौतिक स्थिति भारत के गौरव का विषय थी। वे जीवन में माधुर्य और साम्य के प्रतीक थे। उनकी वीणा में कर्कश स्वर न थे। किन्तु फिर भी जब कभी देश की हितकामना से उस ऋषि-कल्प जर्जरित शरीर विश्वकवि का सात्विक क्रोध जग उठता था तो उसमें "मा निषाद प्रतिष्ठाम त्वंगमः शाश्वतीः समाः" की-सी दृढ़ता और गम्भीरता की झलक मिल जाती थी। उनका कोमल कवि-हृदय कभी भी संसार की समस्याओं से विमुख न रहा और उनकी वीणा सदा विश्व-कल्याण की घोषणा करती रही। संकुचित राष्ट्रीयता के वे विरोधी थे। वे मानवता के प्रचारक और शान्ति के देवदूत थे। जिस शान्ति के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहे वही शान्ति ईश्वर उनकी आत्मा को प्रदान करे। उनका स्वर्गवास किसी व्यक्ति विशेष की क्षति नहीं वह जातीय क्षति है और ऐसी क्षति है जिसकी सहज में पूर्ति नहीं हो सकती।

प्रान्तीय और अखिल भारतवर्षीय सम्मेलन

प्रायः दो तीन मास हुए सरस्वती के एक अङ्क में 'हिन्दी खतरे में' ऐसी ध्वनि झंकरित करने वाला नोट प्रकाशित हुआ था। उसके लेखक महोदय भिन्न-भिन्न साहित्यिक मण्डलों के अस्तित्व में आने से शंकित से प्रतीत होते थे। इसमें तो शक नहीं कि मण्डलों की आयोजना कुछ जड़ पकड़ रही हैं, फूल पत्ते चाहें अभी न दिखाई दिये हों। माधुर्यमयी व्रजभाषा की रक्षा के लिए व्रज-साहित्य मण्डल मथुरा में स्थापित हो ही गया। उसी के कुछ दिनों पूर्व राजस्थान की साहित्यिक शक्तियों को केन्द्रीभूत कर एक प्रान्तीय सम्मेलन बड़ी धूम धाम से कर ही डाला गया। बुन्देलखण्ड में भी जाग्रति-चिह्न दिखाई देते हैं, वहाँ किसी मण्डल की विधिवत स्थापना हुई हो या न हो उसके मुखपत्र मधुकर की गुञ्जार सुनाई पड़ने लगी है। मेरठ की साहित्य-परिषद् ने दो-तीन वर्ष से अपना काम चालू कर रक्खा है और गम्भीर लेखों के रूप में कुछ साहित्य निर्माण भी किया है। इधर मालवा के लोग भी मालवीय संस्कृति की रक्षा की फिकर में हैं। हाँ संयुक्त प्रान्त के प्रान्तीय सम्मेलन की नैया कई विचारधाराओं के संघात के कारण भँवर में पड़ी हुई है। ईश्वर उसका बेड़ा भी पार करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रश्न यह है कि ये नवीन संस्थाएँ नागरी-प्रचारिणी सभा तथा साहित्य सम्मेलन जैसी अखिल भारतवर्षीय संस्थाओं के कार्य में कहाँ तक बाधक या साधक होंगी। श्रम-विभाग के सिद्धान्त पर इन संस्थाओं का केन्द्रीय संस्था और राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति में योग देना असम्भव नहीं। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य करता हुआ समाज के सर्वाङ्ग सञ्चालन में योग देता है उसी प्रकार ये संस्थाएँ अपनी-अपनी संस्कृतियों और बोलियों की रक्षा करती हुई राष्ट्रभाषा की सहायक हो सकती हैं। भावना पर बहुत कुछ निर्भर है। समाज-सेवा की भावना से अपने को स्वस्थ्य रखना भी एक कर्तव्य हो जाता है और अपनी सारी शक्ति को स्वास्थ्य-सुधार में लगाये रखना और कुछ न करना समाज के साथ अन्याय है। ब्रज-साहित्य मण्डल या राजस्थानी साहित्य मण्डल, अखिल भारतवर्षीय साहित्य सम्मेलन की अपेक्षा स्थानीय साहित्य, लोक गीतों, कहावतों, मुहावरों और कथाओं-किंवदन्तियों का अध्ययन कर हिन्दी के व्यापक रूप को अधिक पुष्ट और मांसल बनाने में समर्थ होंगे और अपनी बची हुई शक्ति द्वारा राष्ट्रभाषा को समुन्नत बनाने में योग दे सकते हैं। किन्तु ये मण्डल अपनी उस शक्ति का जो स्थानीय साहित्य की उन्नति में खर्च करते हैं कुछ भी हिस्सा राष्ट्रभाषा की उन्नति के लिए न दें तो वे अपने कर्तव्य से च्युत रहेंगे। हम यह तो नहीं चाहते कि मण्डलेश्वर लोग अपनी संस्कृति और साहित्य के पहरेदार ही बने रहे और उनके लिए नवीन सृष्टि का द्वार बन्द कर दिया जाय किन्तु यह अवश्य चाहेंगे कि राजनीति, विज्ञान, समीक्षा-शास्त्र आदि ऐसे सार्वजनिक हित और रुचि के सम्बन्ध में जो लिखा जाय वह राष्ट्रभाषा के व्यापक स्वरूप में ही लिखा जाय। हम साहित्यिक साम्राज्यवाद के पक्ष में तो नहीं है किन्तु यह अवश्य चाहते हैं कि भिन्न-भिन्न मंडल स्वतन्त्ररूप से काम करते हुए भी कोई काम ऐसा न करें जो अखिल भारतवर्षीय संस्थाओं के विरोध में पड़े। हम भिन्न-भिन्न प्रान्तों के नयी-नयी परीक्षाओं के पक्ष में नहीं, इस से स्टेन्डर्ड को ऊँचा रखना कठिन पड़ेगा। साहित्य सम्मेलन को भी यह चाहिए कि इन स्वतन्त्र शक्तियों की स्वतन्त्रता स्वीकार कर एक संघ का सा रूप दे दे जिससे कि स्थानीय समस्याओं पर विशेष ध्यान देते हुए राष्ट्रभाषा को समुन्नत बना सकें।

अनुवाद की समस्या—

इसी अङ्क में हमने लोक-व्यवहार नाम की एक पुस्तक की आलोचना दी है। मूल पुस्तक अनुवाद होने योग्य थी यह तो निर्विवाद है किन्तु वह अनुवाद कहाँ तक हिन्दी की श्री-वृद्धि करेगा यह सन्देहास्पद है। प्रकाशकों का कर्तव्य है कि वे ऐसी पुस्तक को जो हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति में अथवा हिन्दी लेखकों की योग्यता में अकारण सन्देह उत्पन्न करे प्रकाश में न आने दें। ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन, प्रकाशन-संस्थाओं तथा हिन्दी के गौरव के विरुद्ध होता है। अनुवादक को जब तक मूल भाषा तथा हिन्दी में समान अधिकार न हो, दोनों के मुहावरों का अच्छा ज्ञान न हो तब तक इस कार्य को हाथ में लेना अनधिकार चेष्टा होगी। ऐसे अनुवादों से तो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जाना अधिक श्रेयस्कर है। स्वतन्त्र ग्रन्थों में प्रमाणिक ग्रन्थों की सहायता ली जाय और मुक्तकण्ठ से आभार स्वीकार किया जाय, चोरी करना पाप है। रचनात्मक ग्रन्थों के अनुवाद में टिप्पणियों द्वारा उस ग्रन्थ की मूल भाषा भाषियों के संस्कारों और रीति-रिवाजों की व्याख्या कर देना वांछनीय है या हो सके तो उनको भारतीय चोला पहना दिया जाय। सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अनुवाद होना आवश्यक है और जहाँ तक हो मुहावरे की रक्षा करते हुए वह शाब्दिक होना चाहिए और जहां मुहावरे में गड़बड़ी पड़ती मालूम पड़े वहाँ मूल भाषा का भी उद्धरण दे देना आवश्यक है। इसके साथ हम यह भी निवेदन करेंगे कि जहाँ पश्चिम का भण्डार हिन्दी में अवतरित किया जाता है वहाँ संस्कृत और प्राकृत के भण्डार की उपेक्षा न की जावे। अंग्रेजी, फ्रेंच जैसी उन्नत भाषाएँ जब संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों का अनुवाद कर रही हैं तो उनकी हिन्दी द्वारा उपेक्षा अखरती है। उनके अनुवाद में संस्कृति का भी तारतम्य बना रहेगा, साहित्य सम्मेलन का ध्यान इस ओर गया तो है लेकिन उसका कोई फल अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त भारतीय पुस्तकालयों के लिये !

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा का

संग्रहालय

साहित्य-रत्न-भण्डार आगरा में हिन्दी-पुस्तकों का संग्रह इतना विशद, इतना उत्तम और इतना उपयोगी है कि भारत के सभी बड़े-बड़े पुस्तकालय यहीं से अपनी माँग पूरी करते हैं। नई-से-नई पुस्तकें जल्द-से-जल्द यहां आ जाती हैं और काफी स्टाक में रहती हैं। जिन लोगों ने एक बार भी यह संग्रहालय देखा है, वे इसकी व्यवस्था और पुस्तकों का संचय देख कर दंग रह गये हैं। हमारी अपील है कि आप जब कभी आगरा पधारें तो इस भण्डार का निरीक्षण अवश्य करें और जब भी हिन्दी पुस्तकों की आवश्यकता हो, इसको अपना आर्डर भेजें। सभी बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएँ और सभी श्रेष्ठ प्रकाशकों की पुस्तकें यहाँ हर समय तैयार मिलती हैं।

सुन्दर छपाई के लिए

साहित्य प्रेस का नाम याद रखिए

आपको कुछ भी छपाना हो

हिन्दी-अँग्रेजी के पत्र व पुस्तकें, नोटिस, समाचार-पत्र,
रिपोर्ट, सूचीपत्र, लेटरपेपर, बिल, कैशमीमो, रसीद आदि

—तो—

सदैव 'साहित्य प्रेस' को लिखिए

क्यों ?

इसलिए कि आपका काम शुद्ध और सुन्दर छपेगा और समय पर किफायत के साथ छाप कर दिया जायगा।

'साहित्य-सन्देश' इसी प्रेस से छप कर निकलता है।

नोट—साहित्यिक पुस्तकों के शुद्ध और कलात्मक-मुद्रण का यहाँ विशेष रूप से प्रबन्ध है।

पत्र-व्यवहार का पता—साहित्य प्रेस, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

JUL 1983 B
VBGIIIU

बीमा कम्पनी ही क्यों ?

अधिक ब्याज दे सकने का कारण !

बीमा कम्पनी और बैंकों की रुपया देने लेने की नीति में बड़ा अन्तर है। बैंक अपना रुपया कभी लम्बी मियाद के लिए देना पसन्द नहीं करतीं क्योंकि उन्हें कभी भी रुपए की जरूरत पड़ सकती है, और इसीलिए वे ज्यादा ब्याज भी पैदा नहीं कर पातीं। इसके विपरीत बीमा कम्पनियां सदा यह चाहती हैं कि अगर उनका रुपया सुरक्षित है तो वह ज्यादा से ज्यादा समय के लिए लगा रहे और इसीलिए रुपया सुरक्षित रखते हुए भी वे ब्याज अच्छी पैदा कर लेती हैं और इस दृष्टि से वे बैंकों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं और इसीलिए वे अपने ग्राहकों के लिए अच्छी ब्याज पैदा कर सकती हैं।

स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड

ने सारा खर्च काट कर और जोखिम के लिए रुपया अलग निकाल कर भी ६) प्रतिशत से अधिक ब्याज पैदा किया है और उसी से प्रभावित और उत्साहित होकर स्वदेशी ने अपने यहां रुपया जमा करने की नई योजना निकाली है कि जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति १००) से लेकर १०,०००) तक कम्पनी में डिपाजिट के रूप से निम्न ब्याज पर जमा कर सकता है :—

एक वर्ष की मुद्दत पर	...	३) प्रतिशत
दो वर्ष की मुद्दत पर	...	३॥) प्रतिशत
तीन वर्ष की मुद्दत पर	...	४) प्रतिशत

ब्याज हर छटे महीने मिलता है। विधवाओं, बच्चों और संस्थाओं को यह सूद हर महीने भी मिल सकता है।

सफलता का प्रमाण

रुपया जमा करने की यह योजना जनवरी सन १९४० से शुरू हुई है। इस थोड़े से समय में ही उसमें काफी सफलता मिली है और अधिकाधिक मिलती जा रही है। प्रमाण लीजिए—

१ जनवरी से ३० जून १९४० तक	६ मास में जमा हुए— ३९,४३४) रु०
१ जुलाई से ३१ दिसम्बर १९४० तक	६ मास में जमा हुए—१,००,८४८) रु०
१ जनवरी से ३१ जनवरी १९४१ तक	एक मास में जमा हुए— २९,०५१) रु०
१३ मास में कुल रुपया जमा हुआ	१,७०,२३३) रु०

कम्पनी की मजबूती का प्रमाण

उसने अपने बीमेदारों को आजीवन और मियादी बीमे पर १८) तथा १४) प्रतिवर्ष बोनस दिया है। और हिस्सेदारों को कई वर्ष से ६) प्रतिशत मुनाफा दे रहा है।

विशेष ब्यौरा जानने के लिए लिखिए या मिलिए —

श्रीचन्द दौनेरिया मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर

स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

महेन्द्रजी के लिए साहित्य प्रेस, ५३ ए० सिविल लाइन्स आगरा से मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

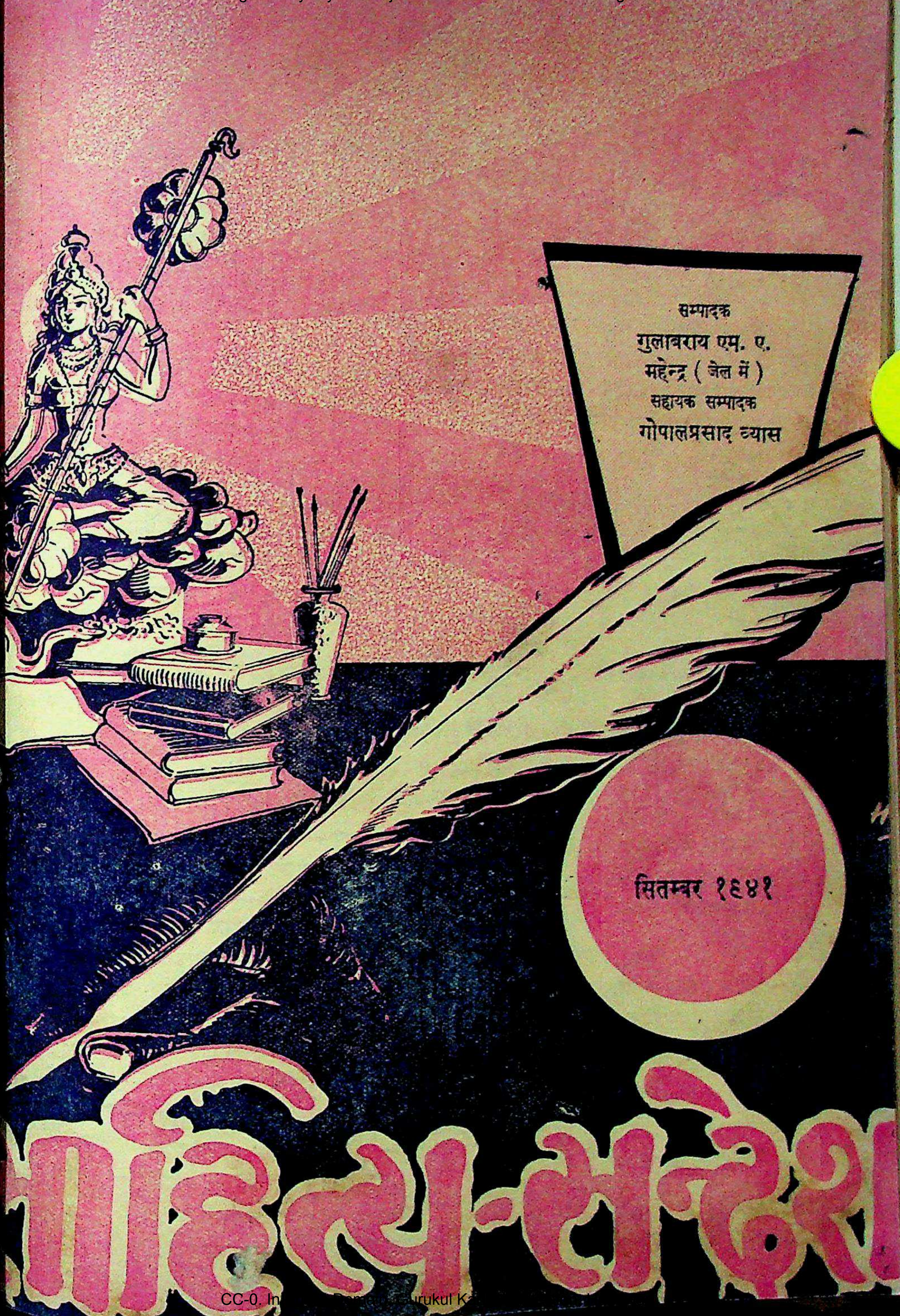

CC-0. In... Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहकों के लिए नियम

१—यह पत्र प्रतिमास १ तारीख को प्रकाशित होता है।

२—पत्र का वार्षिक मूल्य ३) और एक प्रति का ।≈) है। विद्यार्थियों शिक्षा-संस्थाओं और पुस्तकालयों से पत्र का मूल्य २) वार्षिक लिया जाता है। भारत से बाहर सर्वत्र ४) वार्षिक।

३—वी० पी० मँगाने से ।) रजिस्ट्री के और देने होते हैं। इसीलिए मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजना चाहिए। रियायती मूल्य वालों को वी० पी० नहीं भेजी जाती उन्हें अपना मूल्य अग्रिम मनीआर्डर से भेज देना चाहिए।

४—सन्देश का वर्ष सितम्बर से प्रारम्भ होता है। नियम और सुविधा की दृष्टि से यही ठीक होता है कि वर्ष के प्रारम्भ से ही ग्राहक बनाये जायँ, फिर भी पाठक जिस अङ्क से ग्राहक होना पसन्द करेंगे, हो सकेंगे।

५—यदि नियत समय से एक सप्ताह बाद तक पाठक को अपना अङ्क न मिले तो उसे डाकघर से इसकी तलाशी करनी चाहिए, और फिर हमें अपने ग्राहक नम्बर और पूरे पते के साथ सूचना देनी चाहिए। इस प्रकार १५ दिन के अन्दर मिलने वाले पत्रों पर अङ्क पुनः भेज दिये जायंगे, बाद में नहीं।

६—मनीआर्डर भेजते समय अपना पता, स्थान, पोस्ट और जिला स्पष्ट अक्षरों में लिखना चाहिए और सब प्रकार की लिखा-पढ़ी यथासंभव हिन्दी में ही करनी चाहिए।

७—यदि थोड़े समय के लिये पता बदलवाना हो तो स्थानीय डाकघर से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और अधिक दिनों के लिए हमें सूचित करना चाहिए।

८—प्रत्येक प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक नम्बर लिखना आवश्यक है। कई हजार ग्राहकों में बिना नम्बर के पता तलाश करना आसान नहीं। ग्राहक नम्बर ग्राहकों के पतों पर लिखा रहता है।

लेखकों के लिए

१—साहित्य-सन्देश हिन्दी का पूर्णतः साहित्यिक (आलो-चनात्मक) पत्र है। इसमें रचनात्मक साहित्य—कविता, कहानी आदि नहीं छपते।

२—नवीन पुस्तकों पर वे ही लेख जा सकेंगे, जिनकी पुस्तकें हमारे यहां समालोचनार्थ आ गयी होंगी।

३—लेख या आलोचना की एक नकल रख कर ही उसे छपने भेजा जाय, या लौटाने के लिए टिकट रखे जायं।

४—व्यक्तिगत आक्षेप और पक्षपातपूर्ण आलोचनायें इस पत्र में स्थान नहीं पातीं।

५—पुरस्कार दिया जाता है, लेकिन सब लेखों पर नहीं अर्थाभाव के कारण कुछ अच्छे लेख ही पुरस्कृत किये जाते हैं।

६—लेख कागज के एक ओर हांसिया छोड़कर स्पष्ट और स्याही से लिखा जाना जरूरी है। लेख के अन्तिम पृष्ठ पर लेखक का पूरा नाम और पता भी रहना चाहिए।

विज्ञापन के नियम

१—साहित्य-सन्देश में निम्न-श्रेणी के विज्ञापन नहीं छापे जातेः—

क—विदेशी वस्तुएं।

ख—औषधियाँ।

ग—पजलें।

ङ—चमत्कार, धोके-धड़ी व अश्लील प्रकार के विज्ञापन।

२—विज्ञापन की दर इस प्रकार हैंः—

(अ) साधारण पूरा पृष्ठ	... ...	२०)
(इ) " आधा "	... ...	१२)
(उ) " चौथाई "	... ...	८)
(ए) टाइटिल का चौथा पृष्ठ	... ...	३०)
(ओ) " का दूसरा पृष्ठ	... ...	२५)
(अं) " का तीसरा "	... ...	२५)

३—पूरे छः मास और एक साल तक के विज्ञापनों को कुछ विशेष सुविधायें दी गयी हैं, वह पत्र-व्यवहार से मालूम कीजिए।

पत्र-व्यवहार का पता :— **साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पुस्तकें

समालोचना

१-तुलसी दर्शन—कमलधारी सिंह कमलेश

कविता

१-किरणवेला—श्री रामेश्वर शुक्ल अंचल १)
२-विहाग—श्री सुमित्राकुमारी सिन्हा १।)
३-यामनी—श्री जयनाथ नलिन १)
४-राजर्षि—श्री सरयूप्रसाद पांडेय ।।।)
५-अश्रुगीत—श्री कालीप्रसाद विरही ।।)
६-कजली कौमुदी—संग्रहकर्ता-कमलनाथ अग्रवाल १)

नाटक

१-श्री वत्स—कैलाशनाथ भटनागर १)
२-रेशमी टाई (एकांकी)—रामकुमार वर्मा २)
३-विवाह मंडप—शारदादेवी मिश्र १)

कहानी

१-खाली बोतल—भगवती प्रसाद वाजपेयी १।)
२-छाया में—पहाड़ी १)
३-वीरगाथा—चतुरसेन शास्त्री १)
४-महावर—उषादेवी मित्रा १)
५-चौबोली—सं० कन्हैयालाल सहल ।।)
६-इक्कीस कहानियाँ—राय कृष्णदास १)
७-दो बाँके—भगवतीचरणवर्मा १)

उपन्यास

१-पथचारी—उषादेवी मित्रा १।)
२-ललिता—यज्ञदत्त शर्मा १)
३-चांदनी—ईश्वरदीन द्विवेदी ।।)

❀ विषय सूची ❀

१—रस और मनोविज्ञान—गुलाबराय एम० ए० १
२—क्या साहित्य प्रोपेगेन्डा है—शिवदानसिंह चौहान ६
३——आलोचक के सामने (एक बहस) १७
४—अर्थशास्त्र का सिद्धान्त-साहित्य
भगवानदास केला २२
५—आधुनिक कवि : महादेवी वर्मा
सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन २४
६—सप्तरश्मिः सेठ गोविन्ददासजी के एकांकी
व्योहार राजेन्द्रसिंह २७
७—हिन्दी गद्य की प्रगति का काल-विभाग
प्रेमनारायण टण्डन ३१
८—साहित्य समीक्षा ३३
९—सम्पादकीय ४१
१०—विगत मास की सूची ४५

दर्शन-विज्ञान

१-आत्म-तंत्र दर्शन—नारायण विष्णु जोशी ३।।)
२-वैज्ञानिक जल-चिकित्सा—कुलरंजन मुखोपाध्याय १।)

निबन्ध

१-यह छूतछात—आनन्द कौसल्यायन ।)

विविध

१-तुलाराम शास्त्री—अमृतलाल नागर १)
१-बाल भागवत—रूपनारायण पांडेय १।।)
२-पुरुषार्थी जीवन—व्यथित हृदय १)
३-ग्रामसुधार—शंकरसहाय वर्मा ।)

विशेषांकों के सम्बन्ध में

हमारे अब तक ५ विशेषाङ्क निकल चुके हैं।

१—प्रसाद-अंक मूल्य ।।।) २—द्विवेदी अंक ।।) ३—उपन्यास अंक १)
४—परीक्षांक ।≈) ५—शुक्ल अंक १)

प्रसाद अङ्क और शुक्लांक स्टाक में नहीं हैं। शुक्लांक के लिए तो सूचना आगे के पृष्ठों में पढ़ें और प्रसाद अंक के लिए ।।।≈) हमारे साहित्य-रत्न भण्डार आगरे के पते से भेजने चाहिए। कारण कि उक्त अंक पुस्तक रूप में पुनः प्रकाशित हुआ है। शेष अंकों के लिए नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करें—

❀ साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।)

२—वीरकाव्य संग्रह—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्य-रत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)

३—डिङ्गल में वीर रस—डिङ्गल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा उनकी साहित्यिक कृतियों को आलोचना। सं०—श्रीमोतीलाल मेनारिया एम०ए०। मूल्य १।।)

४—संक्षिप्त हिन्दी साहित्य—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृतियों पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पं० ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' मूल्य ।।।)

५—चित्ररेखा—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम०ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवियत्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखी हुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवियित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला १—वीरशतमन्यु (कविता) मूल्य ।)
२—छत्रपति शिवाजी (जीवनी) मूल्य ।)
३—बालभरती (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ
४—बालकथा (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५—बालकवितावली (कविता) मूल्य ।)

— सम्मेलन पत्रिका —

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की यह मुख पत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य १)

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: नूतन भाव-धारा की वैद्युतिक लहर ! :—

चिर-किशोर आकाश में नवल-पुरातन-ऊषा !

प्राचीन और अर्वाचीन काव्य-गुणों के समन्वय की मञ्जुल मूर्ति-कला !

व्यञ्जना-विलास से लहराती, शिव-जटा विहारिणी, उत्कण्ठित...अमर निर्झरिणी !

क रु णा त रं गि णी

—: एक हृदयहारी पुस्तक, आज ही मँगा कर देखिये :—

[लेखक—कविवर पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री]

इस 'पुस्तक' के विषय में क्रान्तिकारी साहित्य सेवी क्या कहते हैं ? देखिये :—

कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्त—'करुण तरङ्गिणी' को मैं पढ़ गया हूँ। उसमें सर्वत्र आपकी 'करुणा रस से परिपूर्ण' स्वान्तः सुखाय वाणी की पुकार सुनने को मिलती है।......'

'वर्तमान् भूषण' पं० अनूप शर्मा एम्. ए. एल्. टी.—'वास्तव में ऐसी सर्वाङ्ग सुन्दर रचना हिन्दी-संसार के समक्ष कभी-कभी ही आती है। शास्त्रीजी की हृदयस्पर्शिनी शैली किस सहृदय हृदय को आन्दोलित न करेगी ?......'

श्री भगवतीचरण वर्मा—'यह पुस्तक शास्त्रीजी की विद्वत्ता और कवित्व-ज्ञान से ओत-प्रोत है। शास्त्रीजी में मौलिकता है और उस मौलिकता से भरी उनकी प्रतिमा है।......'

हि. सा. सम्मेलन के साहित्य मन्त्री श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'—'काव्य की दृष्टि से यह अद्भुत और अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। आपकी मर्म स्पर्शी कारुणिक उक्तियां हृदय पर अपनी छाप छोड़ जाती हैं।'

श्री गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाब'—'इसकी लहरें अत्यन्त निर्मल हैं। पाण्डित्य की तेजस्वी किरण चमक रही हैं। लालित्य का शीतल झरना झर रहा है।......'

ठाकुर श्रीनाथसिंह—पुस्तक मुझे बहुत पसन्द आई। जैसा नयनाभिराम गेट अप है, वैसी ही 'रसमयी रचनाएँ' संग्रहीत हैं। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये।......'

ऐसी लोक-प्रिय पुस्तक ! छः मनोहर रङ्गीन चित्र !! सुनहरी जिल्द !!!

—: फिर भी मूल्य सिर्फ एक रुपया :—

तुरन्त इस पते पर आदेश भेजिये :—

श्री मकरन्द साहित्य-मन्दिर, गांगेय भवन, २८० चित्तरञ्जन एवेन्यू, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकों में नया जीवन, नया भाव और नया उत्साह भरने वाला

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र

वार्षिक मूल्य ३)] **बालक** [नमूने का अङ्क ।-)

सम्पादक

श्रीरामलोचनशरण बिहारी

सञ्चालक—

दर्जनों सर्वाङ्ग सुन्दर साहित्यिक पुस्तकों का भारत-प्रसिद्ध प्रकाशक

पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय (बिहार प्रान्त)

☞ यह पत्र गत बारह बरसों से हिन्दी प्रेमी बालक-बालिकाओं की सेवा कर रहा है। बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश और बम्बई प्रान्त की सरकारों तथा अलवर-राज्य के शिक्षा-विभाग द्वारा स्कूलों के लिए स्वीकृत है। इस साल से इसका आकार पहले से बढ़ा कर ठीक इसी 'साहित्य-सन्देश' के बराबर कर दिया गया है, जिससे इसके पाठकों को प्रचुर सामग्री अनेक नये और आकर्षक चित्रों के साथ मिलती है।

बीमा कराते समय यदि आप :—

१—कम किश्त, २—उदार नियम और ३—उत्तम व्यवहार

चाहते हैं तो आपको

लक्ष्मी इन्श्योरेंस कं० लि०

की ही पालिसी लेनी चाहिए

यह शुद्ध भारतीय कम्पनी अपनी अपूर्व उन्नति द्वारा अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी है।

विशेष जानकारी के लिये पत्र व्यवहार कीजिये :—

श्रीयुत चन्द्रधर जौहरी, सेक्रेटरी, यू० पी० ब्राञ्च

३५ कैन्टरोड, लखनऊ।

आर्गेनाइजर्स—आगरा, कानपुर, बनारस, रायबरेली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-संसार में नई एवं अभूतपूर्व योजना !!!

मासिक किश्त (Monthly Instalment System) की व्यवस्था !

श्रेष्ठ कलाकारों के उच्चकोटि के मौलिक कहानी-संग्रह, सरस उपन्यास, मनोरम हास्यरस इत्यादि का यदि आप रसास्वादन करना चाहते हैं तो हमारी नई योजना से लाभ उठाइये।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

श्रीमती ऊषा देवी मित्रा की नवीन कृति **"पथचारी"** एक भावपूर्ण, मौलिक, सामाजिक उपन्यास मूल्य १।)	श्री जी० पी० श्रीवास्तव की नवीन रचना **"भय्या अक़िल बहादुर"** हास्यरस की अनूठी पुस्तक मूल्य १)
पं० यज्ञदत शर्मा, एम. ए. का लिखा हुआ एक सामाजिक मौलिक उपन्यास **'ललिता'** मूल्य १)	श्री पं० सरजूप्रसाद पांडेय का सुललित खण्ड काव्य **राजर्षि** मूल्य ।।।)

सुन्दर, कलापूर्ण कहानियों के लिए श्रेष्ठ कलाकारों के श्रेष्ठ कहानी-संग्रह पढ़िये

श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह की चुनी कहानियों का नया संग्रह **"पड़ोसी"** मू० १।=)	श्री पहाड़ी की उच्चकोटि की १२ मनोवैज्ञानिक कहानियों का अपूर्व-संग्रह **"छाया"** मूल्य १)
श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कलापूर्ण कहानियों का कला-पूर्ण संग्रह **"खाली बोतल"** मू० १।)	श्रीमती ऊषादेवी मित्रा की ललित कहानियों का मनोरम संग्रह **"महावर"** मूल्य १)
श्री चतुरसेन शास्त्री की लोह लेखनी से लिखा हुआ ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह **"वीरगाथा"** मूल्य १)	श्री व्यथितहृदय लिखित संसार के महान् पुरुषों का जीवन चरित्र **"पुरुषार्थी जीवन"**

आज ही नियमावली, एजेंसी और सूचीपत्र के वास्ते लिखें।

हमारी प्रकाशित हिन्दी, अङ्गरेजी तथा बंगला की सभी पुस्तकें यहां मिलेंगी।

मिलने का पता :—नेशनल लिटरेचर कम्पनी १०५ कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस

के विशेषांक हिन्दी साहित्य के सृजन में अग्रणी क्यों हैं ?

क्योंकि—

- उनका दृष्टिकोण सदैव ही प्रगतिशील रहा है।
- उनके लेखक अपने विषय के दिग्गज विद्वान हैं।
- उनके विषयों का चुनाव अभिनव रहा है।

हँसः कविता-अंक

—: के लेखक हैं :—

सुमित्रानन्दन पन्त	अञ्चल	केदारनाथ अग्रवाल
सियारामशरण गुप्त	भगवतीचरण वर्मा	'नगेन्द्र'
'निराला'	उमाशङ्कर जोशी	नेमिचन्द्र जैन
'नवीन'	स्टीफेन स्पेंडर	नरोत्तमप्रसाद नागर
मैथिलीशरण गुप्त	हरीन्द्र चट्टोपाध्याय	रामविलास शर्मा
बच्चन	हीरालाल गोदीवाला	'सत्येन्द्र
दिनकर	आरदेशर फ० खबरदार	नन्ददुलारे वाजपेयी
अज्ञेय	सुनीतिकुमार चटर्जी	हजारीप्रसाद द्विवेदी
महादेवी वर्मा	शिवदानसिंह चौहान	गुलाबराय
रामकुमार वर्मा	प्रभागचन्द्र वर्मा	प्रकाशचन्द्र गुप्त
माखनलाल चतुर्वेदी	देवेन्द्र सत्यार्थी	आदि आदि···
नरेन्द्र शर्मा	एहतिशाम हुसैन	

अपनी प्रतियों के लिए अभी से न लिखने पर आपको निराश न होना पड़े, इसलिए अपना चन्दा आज ही भेज दीजिये।

कविता-अङ्क की प्रति सरस्वती प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला आर्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, प्रयाग से मिलेंगी। आप अपना चन्दा इन शाखाओं में जमा कर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं।

वार्षिक ६)
एक अङ्क का आठ आने
कविता-अङ्क का १)

व्यवस्थापक—
'हंस'
बनारस कैन्ट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त भारतीय पुस्तकालयों के लिए !

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा का

संग्रहालय

साहित्य-रत्न-भण्डार आगरा में हिन्दी-पुस्तकों का संग्रह इतना विशद, इतना उत्तम और इतना उपयोगी है कि भारत के सभी बड़े-बड़े पुस्तकालय यहीं से अपनी माँग पूरी करते हैं। नई-से-नई पुस्तकें जल्द-से-जल्द यहाँ आ जाती हैं और काफी स्टाक में रहती हैं। जिन लोगों ने एक बार भी यह संग्रहालय देखा है, वे इसकी व्यवस्था और पुस्तकों का संचय देख कर दंग रह गये हैं। हमारी अपील है कि आप जब कभी आगरा पधारें तो इस भण्डार का निरीक्षण अवश्य करें और जब भी हिन्दी पुस्तकों की आवश्यकता हो, इसको अपना आर्डर भेजें। सभी बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएँ और सभी श्रेष्ठ प्रकाशकों की पुस्तकें यहाँ हर समय तैयार मिलती हैं।

सुन्दर छपाई के लिए

साहित्य प्रेस का नाम याद रखिए

आपको कुछ भी छपाना हो

हिन्दी-अँग्रेजी के पत्र व पुस्तकें, नोटिस, समाचार-पत्र,
रिपोर्टें, सूचीपत्र, लेटरपेपर, बिल, कैशमीमो, रसीद आदि

—तो—

सदैव 'साहित्य प्रेस' को लिखिए

क्यों ?

इसलिए कि आपका काम शुद्ध और सुन्दर छपेगा और समय पर किफायत के साथ छाप कर दिया जायगा।

'साहित्य-सन्देश' इसी प्रेस से छप कर निकलता है।

नोट—साहित्यिक पुस्तकों के शुद्ध और कलात्मक-मुद्रण का यहाँ विशेष रूप से प्रबन्ध है।

पत्र-व्यवहार का पता—साहित्य प्रेस, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक खुश खबर

नये वर्ष से 'जीवन-साहित्य' के मूल्य में कमी

२००० ग्राहकों को पत्र मुफ़्त

इस अंक के साथ 'जीवन-साहित्य' का पहला वर्ष समाप्त होता है। कठिनाइयों और यूरोपीय युद्ध के कारण छपाई तथा कागज की घोर महँगी के बीच 'जी० सा०' अगले अङ्क से नये वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इन कठिनाइयों के बावजूद 'जी० सा०' अपने पाठकों और हिन्दी-प्रेमियों की सेवा नये साधनों और नये रूपों में करने को अग्रसर हो रहा है।

पाठकों को सुन कर खुशी होगी कि नये वर्ष से ग्राहक बनने वालों के लिए 'जी० सा०' का वार्षिक मूल्य २) के बजाय १।।) हो जायगा। जो पुराने ग्राहक हैं और नये वर्ष में ग्राहक बने रहना चाहते हैं उनसे १) ही लिया जायगा। जो 'मण्डल' के ग्राहक हैं उनसे भी १) लिया जायगा। **जो १।।) देकर 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बनेंगे** उनको एक वर्ष के लिए 'मण्डल' का भी ग्राहक मान लिया जायगा और उनको 'मण्डल' की शाखाओं और प्रधान कार्यालय से पुस्तकें एक वर्ष तक पौने मूल्य में मिलेंगी। खादी भण्डारों तथा एजेण्टों से ≡) रुपया कमीशन पर मिलेंगी। पर

ललचाने वाली खास बात

तो यह है कि जो सज्जन १०) की क़ीमत की मण्डल की पुस्तकें एक मुश्त खरीदेंगे उनको

'जीवन-साहित्य' एक वर्ष तक मुफ्त

दिया जायगा। ग्राहक १०) की पुस्तकें लेकर, 'मण्डल' की सब शाखाओं तथा प्रधान कार्यालय से 'जीवन-साहित्य' मुफ्त में ले सकेंगे। इस प्रकार १०) की पुस्तकें लेने पर तथा 'जी० सा०' मुफ्त में प्राप्त कर लेने पर ग्राहकों से मण्डल की पुस्तकें एक वर्ष तक पौने मूल्य में मिलती रहेंगी। इन १०) की पुस्तकों पर ग्राहकों को 'मण्डल' के नियम नं० ७ के अनुसार ≈) रुपया कमीशन मिलेगा।

इसके अनुसार अगले दो महीनों तक ही ग्राहक पुस्तकें मँगा सकेंगे।

व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

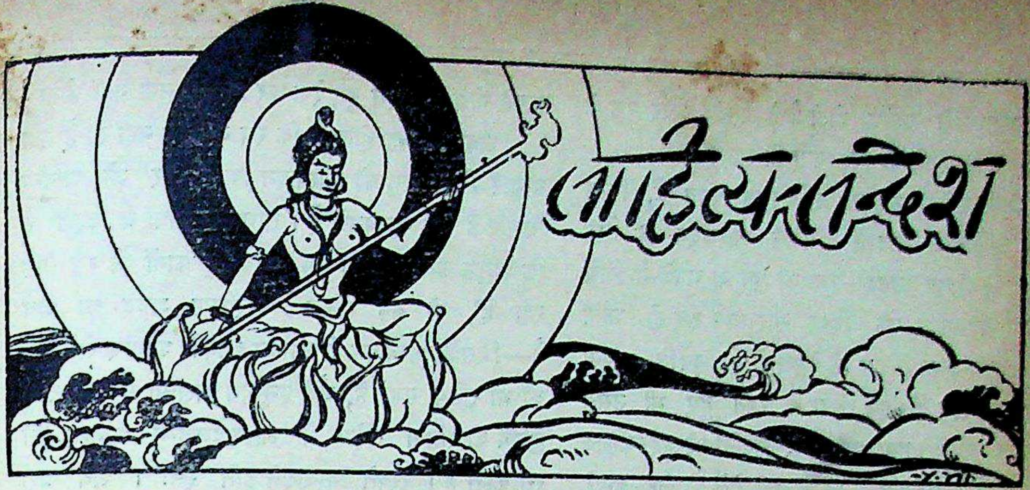

भाग ५] आगरा—भाद्रपद १९९८ वि०; सितम्बर १९४१ [अङ्क १

रस और मनोविज्ञान

[श्री गुलाबराय एम० ए०]

हमारे जीवन में भावों और मनोवेगों (Feelings and Emotions) का विशेष स्थान है। सुख और दुःख को हम भाव कहते हैं; भय, क्रोध, घृणा, विस्मय आदि मनोवेग हैं। मनोवेग सुखात्मक भी होते हैं और दुःखात्मक भी। बहुत ऊँचे त्रिगुणातीत क्षेत्र में पहुँच कर ये द्वन्द्व और राग-द्वेष की संज्ञा में गिने जाकर चाहे हेय समझे जायँ किन्तु साधारण लोक-जीवन के व्यवहारिक धरातल में ये हमारी ज्ञानात्मक और क्रियात्मक वृत्तियों को हलका या गहरा रङ्ग देकर उनमें एक निजत्व उत्पन्न करते हैं। हमको दुःख या सुख पहुँचाने के कारण ही संसार की वस्तुएँ हेय या उपादेय बनती हैं। हमारे मनोवेग चरित्र के विधायक और परिचायक होते हैं। वे हमारी क्रियाओं के प्रेरक चाहे न हों किन्तु उनको शक्ति और गति अवश्य देते हैं। इनमें हमारे व्यक्तित्व की छाप दिखायी पड़ती है।

इन भावों और मनोवेगों का अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है। प्राचीन भारतवर्ष में आजकल का-सा ज्ञान का विशेषीकरण न था। शायद इसलिए कि वे लोग ज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं के परस्पर सम्बन्ध को स्थापित रखने में अधिक विश्वास रखते थे। उनके लिए ज्ञान एक अखण्ड वस्तु थी। वे उसे संश्लिष्ट रूप में ही देखना चाहते थे। यद्यपि प्राचीन वाङ्मय में मनोविज्ञान नाम का कोई विशेष शास्त्र न था तथापि योग, न्याय आदि दर्शनों में तथा साहित्य-शास्त्र में मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रचुर सामग्री मिलती है। साहित्य में भावात्मक या रागात्मक तत्व की प्रधानता होने के कारण उस तत्व पर प्रकाश डालने वाले काव्य की आत्मा-स्वरूप रस के निरूपण में मनोवेगों से सम्बन्ध रखने वाली बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध हो सकती है। मैं रस के अपार एवं अथाह सागर में गहरी पैठ तो नहीं लगा सका किन्तु कबीर की बौरी की भाँति किनारे बैठे हुए भी जो रत्न मेरे हाथ लगे हैं उनको "साहित्य-सन्देश" के पारखी पाठकों के सम्मुख रखता हूँ। जो कुछ मैं लिख रहा हूँ उसमें कोई नवीनता नहीं। इस लेख में केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि मनोवेगों के सम्बन्ध में हमारी कहाँ तक पहुँच है।

रस मनोवेग नहीं वरन् वह मनोवेगों का आस्वादन है। जिस प्रकार आस्वादनकर्त्ता को आस्वाद्य वस्तु के सम्बन्ध में कुछ जानकारी भी प्राप्त हो जाती है (वह वस्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ और कैसे उत्पन्न होती है) उसी प्रकार रस के विवेचन में मनोवेगों का विश्लेषण मिलता है।

हमारे मनोवेग लौकिक अनुभव का विषय हैं, किन्तु जब वे साहित्यिक देवताओं के सामने आस्वादन के लिए रक्खे जाते हैं तब उनका–पूजा की धूप या भपके में खिंचे हुए अर्क की भाँति–एक दिव्य सौरभमय रूप हो जाता है। साहित्य-जगत में हम भी देवताओं की भाँति भावना के ही भूखे रहते हैं। हम संसार में रहते हुए भी उससे ऊपर उठ जाते हैं। हम 'अयं निजः परोवेति' की क्षुद्र व्यक्तित्व वाली संकुचित मनोवृत्ति से परे दिखायी देते हैं और हमारे आस्वादित मनोवेगों की कटुता, तीव्रता, तीक्ष्णता, रूक्षता, शुष्कता और स्थूलता जाती रहती है। निजत्व की भावना ही तो सुख-दुःख की धार को पैनी कर देती है। कुशल पाक-शास्त्री आक और नीम के पत्तों को भी सुस्वाद बना देता है। कवि की आल्हादैकमयी दिव्यवाणी का पारस-स्पर्श प्राप्त कर हमारे लोहसदृश दुःखद मनोवेग भी आनन्दमय स्वर्ण का रूप धारण कर लेते हैं। यह है विभावन या साधारणीकरण की रसायन जिसके द्वारा मनोवेगों से ममेति, परस्येति, अपने-पराये का क्षुद्रत्व दूर कर दिया जाता है। वे मनोवेग किसी व्यक्ति-विशेष के नहीं रहते और श्रोता या पाठक का आश्रय (अर्थात् मनोवेगों के अनुभवकर्ता) के साथ तादात्म्य हो जाता है। यह तादात्म्य मनोवेग के शुद्ध परिष्कृत और भावना द्वारा संस्कृत रूप से होता है। इसीलिए करुणा, वीभत्स आदि दुःखद अनुभव भी सुखद बन जाते हैं।

दुःख का कारण तो ममत्व ही होता है। ममत्व से ऊपर उठा हुआ ब्रह्मज्ञानी दुःख-सुख का अनुभव नहीं करता। जहाँ हम ममत्व से परे हुए वहाँ रस-दशा को प्राप्त होते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदार मनोवृत्ति का परिचय साहित्य में ही मिलता है। दूसरे के अनुभव को अपना बनाना ही करुणा का मूल सिद्धान्त है। इसी को सहानुभूति कहते हैं। शायद इसीलिए महाकवि भवभूति ने कहा है 'एको रसः करुण एव'। दूसरे के अनुभव को अपना बनाने में अपनी आत्मा का विस्तार होता है, यही सुख का कारण बन जाता है। 'भूमावैसुखम्' अपने गोत्र को बढ़ते हुए देख कर किसको सुख नहीं होता?

अब प्रश्न यह होता है कि रस मनोवेग नहीं तो है क्या वस्तु? किसी वस्तु को आस्वादन करने पर जो आनन्द मिलता है उसे रस कहते हैं। साधारण भाषा में कहते हैं कि अमुक कथा में 'बड़ा रस आया', 'कानों में रस पड़ रहा है', 'वे बड़े रसिक हैं'। रसिया शब्द का अर्थ है—जिसके आस्वादन में आनन्द आवे। आनन्द लेने वाले को भी रसिया कहते हैं, जैसे हनूमान चालीसा में 'राम-कथा सुनिबे को रसिया' संक्षेप में आस्वादनजन्य आनन्द को रस कहते हैं। 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः'। अब जरा शास्त्रीय परिभाषा सुन लीजिए—

> विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।
> रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्॥

विभाव (आलम्बन स्थायी भाव को जाग्रत करने के मुख्य कारण, शृंगार के सम्बन्ध में नायक-नायिका, रौद्र के सम्बन्ध में शत्रु तथा उद्दीपन अर्थात् सहायक कारण जो उस भाव को उद्दीप्त रक्खे, जैसे शृंगार से चाँदनी, गीत-वाद्य और आलम्बन की चेष्टाएँ), अनुभाव (भावों के वाह्य-व्यञ्जक, जैसे क्रोध में मुँह लाल हो जाना, ये कार्य रूप होते हैं), सञ्चारी (स्थायी भावों को पुष्ट करने वाले, उनके साथ रहने वाले भाव, जैसे करुणा में दैन्य) भावों से व्यक्त होकर स्थायी भाव सहृदयों के हृदय में रस को प्राप्त होता है। व्यक्त का अर्थ है परिणत हो जाता है। 'व्यक्तो दध्यादिन्यायेन परिणता विभावादिः' कारण अनुभावादि कार्य और सञ्चारी आदि सहकारी सभी रस की निष्पत्ति में कारण होते हैं। यह एक प्रकार का सामूहिक प्रभाव है. जो उन सहृदय लोगों पर जिनके हृदय में स्थायी भावों के प्राक्तत या आधुनिक संस्कार मौजूद हैं, पड़ता है। सहृदय पर जोर देकर हमारे आचार्यों ने मन की सक्रियता और ग्राहकता को स्वीकार किया है। इसीलिए कहा भी गया है—'अरसिकेषु कवित्तनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख।' इसका अङ्गरेजी में Sentiment से अनुवाद किया है। हम आगे चल कर कहेंगे कि रस कहाँ तक इस नाम से पुकारा जा सकता है।

यह जान लेने के पश्चात् कि रस मनोवेग नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरन् साधारणीकरण के भपके में खिंची हुई उनकी भावना का आस्वाद-मात्र है। अब हमको यह जानना चाहिए कि रस-सिद्धान्त से मनोवेगों के मनोविज्ञान पर क्या प्रकाश पड़ता है। इसके लिए हमको पहले यह समझ लेना चाहिए कि मनोवेग कहते किसे हैं। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य देशों के मनोवैज्ञानिकों का बहुत मतभेद है। पश्चिम के आचार्यों ने मनोवेगों के वाह्य-अभिव्यञ्जकों (External Expression) पर अधिक जोर दिया है, यहाँ तक कि जेम्स और लेंग ने तो मनोवेगों के वाह्य-व्यंजकों के परिज्ञान को ही मनोवेग माना है। हम अश्रुमोचन इसलिए नहीं करते हैं कि हम दुःखी हैं, वरन् हम अपने को दुःखी इसलिए अनुभव करते हैं कि हमको अश्रुमोचन का परिज्ञान हो रहा है। भय हमको इसलिए प्रतीत होता है कि हमको कम्प और पैरों की पलायनोन्मुखता का भान होने लगता है— We feel sorry because we cry, angry, beeause we strive, afraid because we tremble and not we cry, strike or tremble because we are sorry angry and fearful as the case may be.—William James. विलियम जेम्स साहब ने शायद उन्हीं मनोवेगों को ध्यान में रक्खा है जिनमें भौतिक अभिव्यंजकों का प्राधान्य है। वे शायद ऐसी परिस्थितियों को भूल गये जहाँ जरा-सी बात तीर का काम करती है और बिना अश्रु के भी विषम वेदना का दुःखद अनुभव सारी चेतना को व्याप्त कर देता है। ऐसी अवस्था में भौतिक परिवर्तनों की अपेक्षा मानसिक बोध अधिक होता है। दो एक कुत्तों पर ऐसे प्रयोग किये गये हैं कि उनके शारीरिक परिवर्तनों से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान-तन्तु नष्ट कर दिये जाने पर भी उनमें मनोवेगों के लक्षण दिखाई पड़े हैं। इसके अतिरिक्त एक ही प्रकार के अनुभाव या वाह्य-व्यंजकों का दो विपरीत मनोवेगों से सम्बन्ध रहना सम्भव है—जैसे अश्रु, विषाद और हर्ष दोनों के ही होते हैं। कम्प, प्रेम में भी होता है और भय में भी। यही हाल रोमाञ्च का है।

हमारे यहाँ भी मनोवेगों के वाह्य-अभिव्यंजकों को पर्याप्त महत्व दिया गया है। रस-शास्त्र का उदय ही वाह्य-अभिव्यञ्जकों के अध्ययन से हुआ है। रस-सिद्धान्त के मूल आचार्य हैं नाट्यशास्त्र के कर्त्ता भरत मुनि। उन्होंने अभिनय के सम्बन्ध में ही वाह्य-व्यञ्जकों का अनुसन्धान किया था किन्तु उनके सामने मनोवेगों का आन्तरिक पक्ष गौण नहीं हुआ, अनुभाव कार्य रूप समझे गये, कारण रूप नहीं।

मैकड्यूगल William Mc Dougall ने मनोवेगों को सहज वृत्तियाँ (Instincts) भावात्मक पक्ष माना है। सहज वृत्तियों में (जैसे डर से भागना या छिपना, चिड़िया का घोंसला बनाना या बच्चे का स्तनपान करना) ज्ञान-पक्ष, भावपक्ष और क्रियापक्ष तीनों ही लगे होते हैं। शेंगड ने मनोवेगों को एक संस्थान माना है जिसमें कि ये सहज वृत्तियाँ शामिल हैं। उन्होंने मनोवेग को एक बड़े संस्थान यानी भावात्मक वृत्तियों यानी sentiments का का अङ्ग माना है। पाश्चात्य मनोविज्ञान वेत्ताओं ने मनोवेगों और भाववृत्तियों में अन्तर किया है। भाववृत्तियाँ स्थायी होती हैं और एक भाववृत्ति से सम्बन्ध रखने वाले कई मनोवेग समय-समय पर जाग्रत हो सकते हैं, जैसे मैत्री-भाव एक भाव-वृत्ति है। मित्र के दर्शन से सुख, वियोग से दुःख, उसके संकट में पड़ने से भय की आशंका और उसके दुःख में पड़ने से करुणा के मनोवेग उत्पन्न होते हैं। मनोवेग और भाव-वृत्ति का अन्तर शुक्लजी के एक वाक्य से स्पष्ट किया जा सकता है—बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है। क्रोध हर समय नहीं रह सकता। बैर की भाव-वृत्ति बहुत काल तक रह सकती है। उसके अन्तर्गत कभी क्रोध उत्पन्न होगा, कभी वीरता के भाव और शायद भय भी उत्पन्न हो सकता है।

डाक्टर भगवानदास ने अपनी साइन्स ऑफ दी इमोशन्स नाम की पुस्तक में मनोवेगों को इच्छा के साथ एक जीव का दूसरे जीव के प्रति भाव के परिज्ञान का संयोग बतलाया है—"An emotion is a desire plus the cognition involved in the attitude of one Jiva towards

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

another." उन्होंने सब मनोवेगों का आकर्षण या विकर्षण का रूप बतलाया है, जैसे बराबर वाले के प्रति आकर्षण प्रेम है, बड़ों के प्रति आकर्षण श्रद्धा है।

इस प्रकार हम इन सब दृष्टिकोणों को मिलाते हुए यह कह सकते हैं कि मनोवेग मन की वह भावपरक उद्वेजित अवस्था है जो किसी वाह्य या (अन्तः स्मृतिजन्य कल्पनाजन्य और कभी-कभी शारीरिक) उत्तेजना के ज्ञान से उत्पन्न होकर शरीर की आन्तरिक स्थिति में परिवर्तन कर हमारी सहज वृत्तियों के सहारे कुछ प्रवृत्यात्मक या निवृत्यात्मक क्रियाओं को जन्म देती है।

रसों के वर्णन में स्थायी भावों द्वारा सूचित नौ या दश मनोवेग आ जाते हैं। अब यह देखना है कि वे वर्णन कहाँ तक मनोवैज्ञानिक है। यहाँ पर हम ड्रमन्ड (Margaret Drummand) और मेलोन (Sydney Herbert Mellone) के Elements of Psychology नाम की पुस्तक से एक उद्धरण देते हैं जिसमें बतलाया गया है कि किसी मनोवेग के वर्णन में क्या-क्या बातें आवश्यक हैं :—

In describing an emotion the following points should therefore be attended to—

(1) The nature of its object (the kind of situation which when perceived, imagined or remembered arouses it)

(2) Its affective quality, pleasant, painful or practically indifferent, the massiveness or volume of the affection ; its normal intensity.

(3) Mode of influencing the will (active tendencies involved).

(4) Bodily expression (a) internal organic sensations.

(b) Muscular movements.

(5) Different modifications of the emotions (if any) at different stages of mental development.

अर्थात् १—उसके विषय का वर्णन जो परिस्थिति कि देखी गयी हो, कल्पित की गयी हो या स्मरण की गयी हो।

२—उसका भावमूलक गुण। अर्थात् वह सुखद है, दुःखद है अथवा उदासीन-प्रायः, भाव का विस्तार और उसकी गहराई।

३—संकल्प शक्ति को प्रभावित करने का प्रकार। उससे संलग्न क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ।

४—शारीरिक अभिव्यञ्जक। (क) आन्तरिक अवयव सम्बन्धिनी सम्वेदनाएँ। (ख) पेशियों की क्रियाएँ।

५—भिन्न-भिन्न विकास की अवस्थाओं में मनोवेगों के विविध रूप (यदि कोई हों) मानसिक विकास के भिन्न-भिन्न धरातलों पर।

अब हमको देखना चाहिए कि हमारे रसशास्त्र के आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रसों का वर्णन किया है वह इसी प्रकार है या और किसी प्रकार ? अब हम एक-एक कलम को लेकर थोड़ी विवेचना करेंगे और देखेंगे कि रसशास्त्र की इमारत तैयार करने में भरत मुनि को कितनी मनोवैज्ञानिक आधार-भूमि तैयार करनी पड़ी होगी।

१—विषय का वर्णन—यह हमारे रस-शास्त्र के विभावों द्वारा होता है। ये रति आदि स्थायी भावों के कारण माने गये हैं। ये दो प्रकार के हैं—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन वे हैं जो स्थायी भाव की उत्पत्ति में मुख्य कारण होते हैं। उन्हीं पर स्थायी भाव अवलम्बित होता है। उद्दीपन वे हैं जो गौण कारण होते हैं; वे रस को उद्दीप्त करते रहते हैं। आलम्बन और उद्दीपन ही उस परिस्थिति को बनाते हैं, जिसके कारण कि स्थायी भाव की उत्पत्ति होती है। शेर भय का आलम्बन है—उसका आलम्बनत्व तभी तक है जब तक कि वह भय के उपयुक्त परिस्थिति में दिखाई पड़ता है अर्थात् जब वह बीहड़ बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की निर्जन निस्तब्धता में गरज कर चारों ओर की पहाड़ियों को प्रतिध्वनित कर रहा हो और कराल डाढ़ों को व्यक्त करता हुआ पंजा उठाये आक्रमण के लिए उद्यत हो, तभी वह हमारे भय का आलम्बन बनेगा, पिंजड़े में बन्द शेर हमारे मनोविनोद का कारण होता है। श्रीराधाकृष्ण की प्रेम-लीला के वर्णन में उपयुक्त वातावरण अपेक्षित रहता है। वृन्दारण्य, चन्द्र-ज्योत्स्ना-धौत-धवल यमुना-पुलिन, चन्दन-चोवा से सुवासित शीतल-मंद समीर, वंशी-निनाद, हासोल्लास ये सब मिल कर प्रेम की अभिव्यक्ति में योग देते हैं। इनके स्थान में यदि नीचे भूभल और ऊपर घाम हो, चारों ओर लू चपेटा मार रही हो तो रति-भाव यदि काफूर न हो जाय तो मन्द अवश्य पड़ जायगा। यदि उद्दीपन विभाव न हो तो स्थायी भाव शीघ्र ही शान्त हो जाय। आलम्बन की उपस्थिति-मात्र से जी ऊब जाय। इसी से उसकी चेष्टाओं को उद्दीपन माना है। रस को उद्दीप्त रखने में देश काल के साथ इनका भी महत्व है—

उद्दीपन विभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।
आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा॥

परशुरामजी का क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाता यदि लक्ष्मणजी की गर्वोक्तियाँ उनको उत्तेजित न करती रहतीं। श्री कृष्णजी का हँसना, किलकना, दौड़ना, गिर पड़ना ये सब यशोदा के लिए उद्दीपन होंगे। हमारे यहाँ के आचार्यों ने उद्दीपन विभावों को मान कर परिस्थिति की संश्लिष्टता पर अधिक ध्यान रक्खा है। वास्तव में चेष्टादि के उद्दीपन, आलम्बन से उसी भाँति अलग नहीं किये जा सकते, जिस प्रकार बिल्ली की म्याऊँ बिल्ली से। अन्तर केवल इतना ही है कि आलम्बन में अपेक्षाकृत स्थायित्व है। तरंग समुद्र की है, तरंग समुद्र नहीं है। हमारे यहाँ के आचार्यों ने परिस्थिति का पूर्ण वर्णन किया है।

२—मनोवेगों का गुण—इसके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि रस-शास्त्र के आचार्यों ने मनोवेगों या स्थायी भावों को केवल दुःखात्मक या सुखात्मक ही नहीं कहा है वरन् उस सुख-दुःख का प्रकार भी बतला दिया है। शृंगार के स्थायी भाव प्रेम को सुखात्मक कहा है 'तत्रमनोऽनुकूलेष्वर्थेषु सुखसंवदेनं रतिः' हास में चित्त का विकास बतलाया गया है। 'न्यङ्गवीडादिभिः चेतो विकासः हास्य उच्यते' शोक में चित्त का वैक्लव्य दिखाया गया है 'इष्टनाशादभिश्चेतो वैक्लव्यं शोक शब्द भाक्'। विस्मय में चित्त का विस्तार बताया गया है 'विस्मय श्चित्त विस्तारो वस्तुमाहात्म्यदर्शनात्'। रस का चित्त की वृत्तियों के आधार पर विभाजन भी किया गया है। हमारे सञ्चारी भाव रस के सुख-दुःखात्मक होने पर प्रकाश डालते हैं, जैसे वीर में हर्ष सञ्चारी रहता है।

३ और ४—क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ और शारीरिक अभिव्यञ्जना—ये शास्त्रवर्णित अनुभाव हैं। इनमें मुख की आकृति, स्वेद-कम्पादि सात्विक भाव जो शरीर की आन्तरिक क्रियाओं से सम्बन्ध रखते हैं और प्रेम में आलिङ्गन के लिए बाहुओं के फैलाना, भय में भागने या छिपने की चेष्टा करना, क्रोध में दाँती पीसना, मुट्ठी बाँधना, वीर में ताल ठोकना इत्यादि सब चेष्टाएँ और क्रियाएँ शामिल हैं। इस सम्बन्ध में हमको नायिकाओं के हावों का भी अध्ययन करना आवश्यक है। आचार्य शुक्लजी ने इनको उद्दीपन विभाव ही माना है क्योंकि ये आलम्बन की चेष्टाएँ हैं। कुछ आचार्यों ने इनको अनुभाव माना है। मुख्यतया तो हाव उद्दीपन ही हैं किन्तु नायिका भी नायक के सम्बन्ध में आश्रय हो सकती है। इस तरह हाव अनुभाव कहे जा सकते हैं।

मनोवेगों के वाह्य-अभिव्यञ्जकों के सम्बन्ध में हमारे आचार्यों ने बड़े सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। हम एक उदाहरण से इसको स्पष्ट करना चाहते हैं। भय को मुख्य मनोवेगों में माना गया है। डार्विन (Charles Darwin) के बतलाये हुए अनुभावों का रस ग्रन्थों में कहे हुए अनुभावों से मिलान करने पर हमको मालूम होगा कि इस विषय में हमारे आचार्य आधुनिक वैज्ञानिकों से कदम मिलाते हुए चल सकते हैं। पहले हम अपने यहाँ के आचार्यों का वर्णन देते हैं:—

अनुभावोत्र वैवर्ण्य गद्गदस्वरभाषणम्।
प्रलय स्वेद रोमाञ्च कम्पदिक्प्रेक्षणादयः॥

अर्थात् इसमें वैवर्ण्य, गद्गद्स्वर होकर बोलना यानी टूटे हुए शब्द बोलना, प्रलय (मूर्छा), पसीना, रोंगटे होना, चारों ओर देखना आदि। दूसरे आचार्यों ने और भी अनुभाव बतलाये हैं जो आदयः में शामिल कहे जा सकते हैं। इसी सम्बन्ध में हिन्दी का एक दोहा लीजिए :—

मुख शोषन, निश्वास बहु, भागि बिलोकनि फेरि।
तन गोपन, धुमनी, शरण, चाह आदि किय टेरि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय का भागने और छिपने की सहज वृत्तियों से सम्बन्ध है,वे दोनों इसमें आ गयी हैं। भागने के साथ पीछे मुड़ कर देखना भय की अवस्था में स्वाभाविक ही है। अब जरा डार्विन का वर्णन पढ़िए :—

The frightened man at first stands like a statue motionless, breathless and Crouches down as if instinctively to escape observation (तन गोपन) for the skin instantly becomes pale as during implicit faintness (मूर्छा और वैवर्ण्य) That the skin is much affected under the sense of great fear. we see in the marvellous and inexplicable manner in which perspiration exudes from it (स्वेद) One of the best symptoms is the trembling (कम्प) of all the muscles- From this cause the dryness of the mouth. (मुखशोषन, गीता में भी इस अनुभाव का उल्लेख है मुखंच परिशुष्यति) The Voice becomes husky or indistinct or may altogether fail. The uncovered and protruding eye balls are fixed on the object of teror as they may roll from side to side.

भरत मुनि ने जो भय की दृष्टि बतलायी है उसमें यह बात और भी स्पष्ट है :—

विस्फारितोभयपुटा भयकम्पित तारका।
निष्कान्तमध्यादृष्टिस्तु भयभावे भयान्विताः॥

भयभीत मनुष्य की आँखें खूब खुली रहती हैं। उसकी पुतलियाँ इधर-उधर घूमती हैं और दृष्टि मध्य में नहीं रहती यानी वह सामने नहीं देखता। भयभीत मनुष्य की गति बतलाते हुए भी भरत मुनि ने यही बात कही है—

विस्फारिते चले नेत्रे विधुतं च शिरस्तथा।
भयसंयुक्तया दृष्ट्या पार्श्वयोश्च विलोकनैः॥

प्रसङ्गवश भय के सम्बन्ध में एक बात और बता देना चाहता हूँ। मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि भय का प्रभाव इतना तीव्र होता है कि वह और सब मानसिक-क्रियाओं को स्थगित कर मन को भय के विषय पर केन्द्रस्थ कर देता है, देखिए मैकड्यूगल साहब क्या कहते हैं—

Fear, whether its impulse be to flight or to concealment, is charactarised by the fact that its excitement more than of any other instinct, tends to bring to an end atonce all other mental activities revetting the attention upon its object to the exclusion of others.

इस बात का हमारे आचार्यों ने मान-मोचन के सम्बन्ध में लाभ उठाया है। इसको प्रसङ्ग-विध्वंस कहते हैं। भय-प्रदर्शन से मान का प्रसङ्ग एक साथ टूट जाता है। प्रसङ्ग-विध्वंस की परिभाषा केशवदासजी ने इस प्रकार दी है—

उपज परै भय चित्त भ्रम, छूट जाय जहँ मान।
सो प्रसंग विध्वंस कवि, केशवदास बखान॥

साधारण अनुभावों के साथ हमारे यहाँ सात्विक भाव भी माने हैं, जो हैं तो अनुभाव ही किन्तु साधारण से भिन्न हैं। पाश्चात्य आचार्यों ने अनुभावों के दो प्रकार माने हैं। एक तो वे जो बिलकुल वाह्य और प्रत्यक्ष क्रियाओं से सम्बन्ध रखते हैं, जैसे भागना-दौड़ना, लोटना आदि। इनका अभिनय सहज में हो जाता है। दूसरे वे हैं जो शरीर के भीतर के अवयवों से सम्बन्ध रखते हैं, जैसे रुधिर की शिराओं के संकुचित हो जाने से भय में मुँह पीला पड़ जाना, मुख का सूख जाना। ये अपने आप हो जाते हैं, इन पर हमारा अधिक वश नहीं होता, जैसे कम्प। ऐसे ही अनुभावों को अलग कर के उन को सात्विक भाव का नाम दिया है। इनका सम्बन्ध प्रायः Vaso motor या sympathetic nerves स्वतः चालित संस्थानों (outomatic systems) से है। वैवर्ण्य उत्पन्न करने के लिए भरतमुनि ने नाड़ियों का पीड़न या दबाना बतलाया है। 'मुखवर्ण परावृत्या नाड़ी पीड़न योगतः'। आजकल के लोग भी नाड़ियों का संकोच ही इसका कारण मानते हैं :—

'This paleness of the surface however, is probably in large part or exclusively due to the Vaso

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

motor centre being affected in such a manner as to cause the contraction of the small arteries of the skin."

सात्विक भाव के सम्बन्ध में आचार्यों का मतभेद है। साहित्यदर्पणकार ने तो इनका सम्बन्ध सत्व नाम के आत्मा में विश्राम को प्राप्त होने वाले रस के प्रकाशक आन्तिरिक धर्म से माना है, दश-रूपक का भी ऐसा ही मत है। सत्त्व का अर्थ प्राण का भी है। सात्त्विक का अर्थ प्राण या जीवन-क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले भावों का लगाया जाय तो उनका अलग उल्लेख होना सार्थक हो जाता है। रस-तरंगिणी का यही मत मालूम होता है। "सत्त्व जीव शरीरं तस्य धर्माः सात्विकाः।"

५-भिन्न-भिन्न मानसिक दशाओं में मनोवेग के रूप—इस सम्बन्ध में हमारे यहाँ अधिक नहीं लिखा गया है। बालकों में क्रोध या भय जो रूप धारण करता है वह प्रौढ़ में नहीं। इस विषय में रस-सिद्धान्त को विशेष गति देने की आवश्यकता है। हमारे यहाँ रसों का विभाजन प्रकृतियों के अनुकूल अवश्य है किन्तु एक ही रस का भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में विविध रूप नहीं बतलाया गया है। मनोवेगों का सापेक्षत्व मानना पड़ेगा, इसके व्यवहारिक उदाहरण हमको साहित्य में मिलते हैं। भर्तृहरि ने शृङ्गार शतक में जिन बातों की प्रशंसा की है वैराग्य में उसकी बुराई की है। जो बात साधारण मनुष्य के लिए भयानक है, वीर के लिए नहीं। भयानक की स्वल्प मात्रा में हमको साहस का आनन्द मिलता है।

हमारे यहाँ रसों के औचित्य, अनौचित्य का प्रश्न उठा कर भी बहुत महत्व का कार्य किया गया है। बड़ों की हँसी करना और कमजोर पर वीरता दिखाना रसाभास है। मनोवेगों के विवेचन में यह बड़ी देन है।

हमने सञ्चारी भावों के विषय में बहुत कम कहा है, किन्तु इनका विशेष महत्व है। इनको व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। इनकी परिभाषा साहित्य-दर्पण में इस प्रकार दी है—

विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्विदाः॥

विशेष रूप से अर्थात् मुख्यता के साथ चलने के कारण व्यभिचारी कहलाते हैं। ये स्थायी भाव में आविर्भूत और तिरोभूत होते रहते हैं। स्थायीभाव स्थिर रहता है और ये आते और जाते रहते हैं। व्यभिचारी मनुष्य भी व्यभिचारी इसीलिए कहलाता है कि वह विशेष रूप से आता-जाता रहता है या विविध स्थानों में आता-जाता है। व्यभिचारी भाव भी विविध रसों में आते-जाते रहते हैं।

स्थायी भाव दबता नहीं है। सञ्चारी डूबते-उछरते रहते हैं, देखिए साहित्य-दर्पणकार क्या कहते हैं:—

अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादांकुरकंदोऽसौ भावः स्थायीति संमतः॥

अविरुद्ध या विरुद्ध भाव जिसको दबाने में असमर्थ रहते हैं आस्वाद यानी रस रूपी अंकुर का जो कन्द (जड़) है वह स्थायी भाव कहलाता है। हमारे यहाँ के आचार्यों ने मनोवेगों को टकसाली रुपयों की भाँति बिलकुल अलग-अलग नहीं माना है। हर एक स्थायी भाव एक समुद्र के समान है जिसमें सञ्चारी भावों की लहरें-सी उठती रहती हैं। 'कल्लोला इव वारिधौ'। मनोवेग (Emotion) गतिमान संस्थान है। सञ्चारी भाव उसकी गति के पद हैं किन्तु इनके बदलते हुए भी मनोवेग का एक व्यक्तित्व रहता है वही स्थायी भाव का स्थायित्व है। सञ्चारी भावों के कारण ही कभी-कभी रस की पहचान की जा सकती है, जैसे वीर और रौद्र में आलम्बन और उद्दीपन प्रायः एक होते हैं किन्तु उनके सञ्चारी अलग होते हैं। वीर में धृति (धैर्य) और हर्ष होते हैं, रौद्र में मद, उग्रता आदि सञ्चारी रहते हैं।

हमारे यहाँ के आचार्यों की यह विशेषता रही है कि न तो उन्होंने बाहरी कारणों में विच्छेद-बुद्धि से काम लिया न, मानसिक दशाओं में। बाहरी कारण भी उद्दीपनों से मिल कर एक संश्लिष्ट संस्थान का रूप धारण कर लेते हैं और स्थायी भाव और सञ्चारी भाव भी मिल कर एक संस्थान बनते हैं। मनोवेग चाहे जितना मुख्य क्यों न हो अमिश्रित नहीं होता। अमिश्रित होना उसकी हीनता का चिन्ह है। परिवर्तन जीवन का लक्षण है। केवल स्थायी भाव ही रहे तो जी ऊब उठे। सौन्दर्य के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी तो नवीनता की जरूरत रहती है, सञ्चारी भाव स्थायी भाव को यही सजीवता देते रहते हैं। शृङ्गार रस के रस-राजत्व का एक यह भी कारण है कि उसमें अधिक-से-अधिक सञ्चारी भाव आ जाते हैं। रसों में सञ्चारी-ही-सञ्चारी नहीं होते वरन् दूसरे रस भी गौण रूप से सञ्चारी बन जाते हैं :—

शृङ्गारवीरयोर्हासो वीरे क्रोधस्तथा मतः।
शान्ते जुगुप्सा कथिता व्यभिचारितया पुनः॥

शृङ्गार और वीर में हास, वीर में क्रोध और शान्त में वीभत्स (इसी प्रकार और रसों का भी हो सकता है।)

भारतीय आचार्यों ने रसों की शत्रुता और मैत्री पर ध्यान दिला कर हमको यह बतलाया है कि कौन रस किस से मेल खा सकते हैं। हास्य के साथ करुणा का योग नहीं हो सकता, शृङ्गार के साथ वीभत्स का। कुछ रस ऐसे हैं जिनका एक आलम्बन में योग नहीं हो सकता, कुछ का एक आश्रय में। शृङ्गार और वीर का एक आलम्बन में योग नहीं हो सकता। जिसके प्रति प्रेम दिखाया जाय उसके प्रति वीरता के भाव नहीं दिखाये जा सकते। जैसा रावण ने किया था। एक ही आश्रय (भावों के अनुभव कर्त्ता) में वीर और भयानक का योग नहीं हो सकता।

रस-शास्त्र के आचार्यों ने यह भी विवेचन किया है कि दो साथ-साथ न आने वाले रसों को किस प्रकार साथ लाया जा सकता है। इस बात का व्यावहारिक उदाहरण हमको शकुन्तला में मिलता है। महाराज दुष्यन्त शकुन्तला के वियोग में दुःखित बैठे थे। इन्द्र की ओर से मातलि दुष्यन्त की सहायता याचना के लिए आता है। वह जानता था कि दुष्यन्त को तैयार करने के लिए उसमें क्रोध (जो वीर का सहायक है) उत्पन्न करना आवश्यक है। इसीलिए वह दुष्यन्त के सखा और विदूषक माराडव्य को पीटता है। उसके आर्तनाद से दुष्यन्त का क्रोध जाग उठता है। इस सम्बन्ध में हमारे आचार्यों ने बहुत कुछ कार्य किया है। यहाँ विस्तार भय से नहीं लिखा जा सकता।

अभी हमको एक प्रश्न पर विचार करना शेष रहा है वह यह है कि रस को Sentiment कहना कहाँ तक उपयुक्त है अंगरेजी में Sentiment के कुछ निश्चित अर्थ नहीं हैं। लेकिन अब जो शेन्ड मैकड्यूगल प्रभृति ने अर्थ लिया है उसका वर्णन मेलोन और ड्रमन्ड के मनोविज्ञान में इस प्रकार दिया है :—

The emotion is the state of mind as it is consciously felt, the sentiment is the emotional disposition out of which it arises .

A comparively simple sentiment or emotional disposition is the result of frequent indulgence in a particular emotional state as anger.

अर्थात् मनोवेग मन की वह अवस्था है जिसका चैतन्य अनुभव हो। भाववृत्ति वह मनोवेगात्मक वृत्ति है जिससे मनोवेग की उत्पत्ति होती है। साधारण भाववृत्ति उससे सम्बन्ध रखने वाली—मनोवेग की बार-बार आवृत्ति का फल होती है। इस प्रकार की भाववृत्ति का हमारे यहाँ कोई अलग स्थान नहीं है। हमारे यहाँ रस की अनुभूति के लिए प्राकृत और नवीन संस्कार माने हैं। ये संस्कार Sentiment के निकट आ जाते हैं। ये रस नहीं वरन् रस के स्थायी भाव के संस्कार हैं जो सहृदय सज्जनों के मन में रहते हैं। मनोवेग और भाववृत्ति के अन्तर को लेकर रसों का अनुसंधान बहुत फलप्रद होगा।

यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने रस के सिद्धान्त को पर्याप्त विस्तार दिया है तथापि उस सम्बन्ध में बहुत कुछ अनुसंधान की आवश्यकता है। लेखक या कवि के मन में जो रस रहता है उसके सम्बन्ध में बहुत कम विचार हुआ है। हमारे यहाँ अनुभावों का विश्लेषण बहुत अच्छा है किन्तु फिर भी नवीन ग्रन्थों से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। हम सात्विक भावों के अलग रखने के कारणों पर विचार कर सकते हैं। संचारी भावों पर भी विशेष अनुसंधान की आवश्यकता है। मनोवेगों के वर्गीकरण में इनका स्थान निश्चित करना वाञ्छनीय है। इस प्रकार और भी बहुत-सी समस्याएँ हैं जिनके अनुसंधान से रस-सिद्धान्त को आगे बढ़ाया जा सकता है।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या साहित्य प्रोपेगेण्डा है ?

[श्री शिवदानसिंह चौहान]

प्रगतिवादियों के खिलाफ यह आरोप किया जाता है कि वे साहित्य को केवल प्रचारात्मक बना देना चाहते हैं ? श्री इलाचन्द जोशी तथा उनके ही समान इस प्रकार से साहित्य की समस्याओं पर विचार प्रकट करने वाले अनेक छोटे-बड़े आलोचक केवल इसी बात को लेकर प्रगतिवाद को अपने उचित-अनुचित प्रहारों का निशाना बनाते रहे हैं। उनका खयाल है कि उन्होंने प्रगतिवादियों की ऐसी कची नस पकड़ली है कि उसे दबाते ही वे उन्हें बैठा सकते हैं या उनका मुंह बन्द कर सकते हैं। साहित्य के साथ प्रोपेगेण्डा शब्द का प्रयोग करना (विशेषकर जब कि साहित्य में 'अमर कलाकारों' की भरमार हो और हमारा सारा साहित्य 'विश्वजनीन' और 'शाश्वत' हो) इनकी दृष्टि में ऐसा जघन्य अपराध है जिसके लिए पाठक प्रगतिवादियों को कभी क्षमा नहीं कर सकते। यह एक 'हेरेसी' है जो सच्चे साहित्य की जड़ें खोदना चाहती है, अतः अग्राह्य तथा दमन-योग्य है।

प्रोपेगेण्डा शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हो सकता है, हुआ है और आज भी होता है। प्रगतिवादियों ने जब कभी भी उसका प्रयोग किया है तब ऐसे सामान्य अर्थ में कि उससे किसी को विशेष आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि साहित्य को प्रोपेगेण्डा कह कर उन्होंने उसके उत्कृष्ट भावना-प्रधान, कल्पनात्मक और कलात्मक गुणों की अवहेलना नहीं की, न उनका बहिष्कार ही आवश्यक समझा है। मैं यहाँ यह नहीं कह रहा कि मैं साहित्य की इस व्याख्या से सहमत हूँ, अथवा यह दृष्टिकोण सही है—इसका विवेचन मैं आगे करूँगा। किन्तु जोशीजी और उनकी तरह से सोचने वाले आक्षेपकर्त्ता, खेद है, प्रगतिवादियों के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश न कर उसे ऐसे भद्दे अर्थ पहना देते हैं कि वह निन्दनीय दीख उठता है। मुझे यह स्वीकार करने में जरा भी आपत्ति नहीं कि यदि मुझे इन लोगों के लेखों द्वारा ही प्रगतिवाद के दृष्टिकोण का परिचय मिलता, तो मैं उसे इतना वीभत्स और कुत्सित, प्रगति-विरोधी और असाहित्यिक समझता कि मुझे अनायास ही प्रगतिवाद से घृणा हो जाती। मैं समझता कि प्रगतिवाद कला और साहित्य की कलात्मकता और साहित्यिकता तथा अन्य सभी उन गुणों को, जो इन्हें सजीव, मधुर और सुन्दर बनाते हैं, नष्ट कर उनके स्थान पर नीरस वादों की व्याख्या, हड़ताल करने के एलान और मजदूर-किसान सभाएँ या अन्य पार्टियाँ संगठित करने के प्रोग्राम और प्रदर्शनों में गाने योग्य गीत और नारे भरना चाहता है। किसी भी व्यक्ति को साधारणतया यह मान्य नहीं हो सकता, मुझे भी कैसे मान्य होता ? और मैं श्री इलाचन्द्र जोशी के उपकार को मानता हुआ कि उन्होंने प्रगतिवाद के चक्कर में पड़ने के पहले ही मेरी आँखें खोलदीं, प्रगतिवादियों को 'असाहित्यिक पेशेवर प्रोपेगेण्डिस्ट' 'गड्डलिका-प्रवाह-पंथी', 'उच्छृंखलतावादी', 'धूर्त' और न जाने क्या-क्या कह कर उनका कट्टर विरोधी बन जाता। सौभाग्य या दुर्भाग्य से मैं या हिन्दी के अधिकांश तरुण लेखक आज इस प्रकार की रचनाओं के मिर्च-मसालेदार, किन्तु विटामिन-हीन साहित्यिक खाद्य से मानसिक-भोजन प्राप्त कर साहित्य-क्षेत्र में नहीं आये हैं, इस कारण प्रगतिवाद के प्रति जोशीजी की घृणा के कीटाणु हमारे दिमागों में घुस कर बीमारी नहीं फैला पाते। लेकिन मुझे आश्चर्य इस बात का है कि लोग कितनी सरलतापूर्वक स्थिर-स्वार्थ मनोवृत्ति द्वारा उत्पन्न भ्रमों का प्रचार* करने लगते हैं। क्योंकि इस दृष्टिकोण का उद्देश्य प्रगतिवाद द्वारा उठाई समस्याओं, उसके वक्तव्यों और उसके दृष्टिकोण को समझ कर अपनी रचनात्मक आलोचना देना नहीं है, बल्कि उस पर कल्पित आरोप लगा कर ऐसे भ्रमों की सृष्टि करना

---

* खेद है कि प्रचार प्रोपेगेण्डा का पर्याय है और जोशीजी तथा उनके सहधर्मियों द्वारा प्रतिपादित बातों को प्रचार कह कर उनके प्रति अवज्ञा का प्रदर्शन नहीं करना चाहता तो भी किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में मुझे इस गर्हित-वर्जित शब्द का आश्रय लेना पड़ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जो प्रगतिवाद को बदनाम करदें, उसके विकास को रोकदें और पूँजीवादी समाज की साहित्यिक अराजकता को भी ज्यों-का-त्यों कायम रक्खें। 'प्रचारात्मकता' के नाम पर प्रगतिवाद के विरुद्ध स्वर ऊँचा करने वाले ये महाशय अपने कथनों के अर्थारोप स्वयं नहीं समझते या जान कर भी वे अनजान बने हैं, अतः 'क्या साहित्य प्रोपेगेण्डा है ?' प्रश्न पर विचार करते समय हम इन प्रगतिवाद विरोधी सज्जनों के आक्षेपों और मतों पर ध्यान न देंगे क्योंकि तर्क के अभाव के कारण वे समस्या को समझने में मदद नहीं देते। इसमें सन्देह नहीं है कि अधिकांश प्रगतिवादियों* का यह मत रहा है कि साहित्य प्रोपेगेन्डा है या प्रोपेगेण्डा का साधन है, किन्तु वे प्रोपेगेन्डा शब्द का प्रयोग किन अर्थों में करते हैं, यह स्थापना सही है या गलत है इस पर हमें विचार करना चाहिए।

'समस्त साहित्य प्रोपेगेण्डा है', यह मत कैसे और किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया और आगे चल कर किस-किस ने क्यों इसकी पुष्टि की इसका क्रमवद्ध विवरण देना कठिन है क्योंकि मेरे पास इस समय पूरे facts नहीं हैं। लेकिन मुझे जहाँ तक याद पड़ता है रूस की क्रान्ति के अवसर पर ट्रात्सकी ने यह नारा लगाया कि 'साहित्य वर्ग-युद्ध का एक हथियार है।' यह एक गलत नारा था। किन्हीं खास परिस्थितियों में कोई नारा किस प्रकार उठाना चाहिए यह एक साधारण कार्य नहीं है क्योंकि उन परिस्थितियों की तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुकूल कार्य-संगठन करने के उद्देश्य से जन-समूह को प्रेरित करने के लिए ही केवल नारा नहीं लगाया जाता—ऐसा नारा तात्कालिक आवश्यकताओं से इतना आबद्ध रहेगा कि परिस्थितियों के बदलने पर वह एकदम बेकार हो जायगा और कदाचित् नयी परिस्थितियों के विपरीत पड़ कर वह उनके विकास में बाधक हो उठे। भावों और विचारों में मनुष्य के मस्तिष्क में चिपके रहने की ऐसी आदत होती है कि नयी तथा विपरीत परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने पर भी वे हमारा जल्द पिण्ड नहीं छोड़ते। अतः केवल सम-सामयिक उपयोग के नारे आगे के विकास में बाधाएँ भी डाल सकते हैं। सही नारा वही होता है जिसके आधार पर नयी परिस्थितियों के अन्दर प्रयोग में लाने के लिए नयी नीति का विकास किया जा सके अर्थात् जिसमें भावी वास्तविकता की संभावनाएँ अन्तर्निहित हों तथा जो जन-समूह में ऐसी मिथ्या आशाएँ न उत्पन्न करे जिनकी कभी पूर्ति नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से देखने से ट्रात्स्की का यह नारा दोषपूर्ण ठहरता है क्योंकि जब तक रूस में वर्ग-युद्ध था उसी समय तक उसका उपयोग भी था, यद्यपि उस अवस्था में भी उसने साहित्य और कला की समस्याओं को बहुत हल्का करके तौलने की कोशिश की थी। इस नारे को मान्य मान कर प्रत्येक लेखक के लिए यह जरूरी हो गया कि वह केवल पूँजीपति और मजदूर, श्वेत सेना या लाल सेना, जारशाही और बोलशेविक पार्टी, कुलक और किसान के संघर्षों का, शोषित वर्गों की विजय कामना प्रकट करते हुए, ज्यों-का-त्यों तथा सीधा राजनैतिक वर्णन ही करे। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि इन संघर्षों का वर्णन करके उत्कृष्ट साहित्य की रचना नहीं की जा सकती; की जा सकती है और उसके उदाहरण मौजूद हैं। लेखक यदि मजदूर के व्यक्तिगत जीवन के प्रेम और विरह, आशा और निराशा आदि पहलुओं का वर्णन करता था तो चूँकि उसमें सीधे रूप से शोषक वर्ग पर आक्रमण न किया जाता था, इस कारण यह समझा जाने लगा कि वह वर्ग-संघर्ष के हथियार को कुन्द बना रहा था। इसके अतिरिक्त इस नारे में विरासत रूप में मिले प्राचीन साहित्य के प्रति एक नकारात्मक भाव भी था जिससे सामाजिक विकास के साथ-साथ बढ़ने वाली साहित्य की ऐतिहासिक परम्पराओं का तिरस्कार किया गया क्योंकि वे आज की क्रान्ति में वर्ग-युद्ध का तेज हथियार न बन सकती थीं। इस प्रकार इस नारे ने साहित्य और कला की उपयोगिता

* प्रगतिवादियों से मेरा अभिप्राय यहाँ उन लेखकों से है जो किसी-न-किसी रूप में मार्क्सवाद को स्वीकार करते हैं या उसके प्रति सहानुभूति रखते हैं। मार्क्सवाद को स्वीकार करना एक प्रगतिवादी के लिए आवश्यक है या नहीं, यह एक दूसरा विषय है और मैं यहाँ पर इसकी बहस में नहीं पड़ सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बहुत सीमित करके देखा। फलतः ट्रात्स्की के इस नारे को अपना कर लेखकों की संस्था R. A. P. P. ने रूस के लेखकों पर अनेक प्रतिबंध लगाये, जिसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि प्रोलेतेरियन साहित्य प्रोपेगेन्डा-प्रधान हो गया। गोर्की, स्टालिन तथा अन्य कई लेखकों ने इस गलत नारे के दुष्परिणामों का अनुभव किया और R. A. P. P. तोड़दी गयी और लेखकों का एक नया संगठन बनाया गया जिसने समाजवादी यथार्थवाद का (समाजवादी रोमेन्टिसिज्म भी जिसके अन्तर्गत है) नारा वुलन्द किया। समाजवादी यथार्थवाद साहित्य के एक विशिष्ट दृष्टिकोण और उसकी एक विशिष्ट शैली का द्योतन करता है अर्थात् वह साहित्य या कला की वस्तु और रूप-योजना दोनों को घेर लेता है। इसके अतिरिक्त उसमें प्राचीन साहित्य की सजाव परम्पराओं को ग्रहण करने, नयी परिस्थितियों के अनुकूल इनका विकास करने एवं कला और साहित्य को एक ऐसा मार्ग देने की संभावनाऐं मौजूद हैं जिसकी अगली मंजिलें भविष्य के गर्भ में हैं। किन्तु अब तक ट्रात्स्की का चलाया यह नारा विस्मृत नहीं हो सका है और आवेश में आकर हमारे लेखक इसे दुहराते जाते हैं। यहाँ तक कि अमेरिका के प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक जोजेफ फ्रीमेन ने भी 'संयुक्त राष्ट्र में श्रमजीवी साहित्य' पुस्तक की भूमिका में एक स्थान पर कुछ ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने लिखा है कि 'कला का, जो वर्ग-युद्ध का एक साधन यंत्र है, मजदूर-वर्ग को अपने एक हथियार के रूप में विकास करना चाहिए।' उनका कहना है कि कला 'अनुभव का विनिमय' करती है। लेकिन 'अनुभव' शब्द के अन्दर उसकी पकड़ छिपी है। पूंजीजीवी विचारक या आलोचक मजदूर वर्ग के जीवन की अभिव्यंजना को अनुभव के अन्तर्गत नहीं मानते, बल्कि किसी स्त्री के उरोजों की उपमाओं से भरे वाक्य-चमत्कारों को ही अनुभव मानते हैं। फ्रीमैन के पूरे लेख को पढ़ने से यह धारणा तो निर्मूल हो जाती है कि वे ट्रात्स्की के ही अर्थों में साहित्य वर्ग-युद्ध का हथियार मानते हैं। फ्रीमैन का केवल यह कहना है कि साहित्य का प्रयोग चूंकि पूंजीपति वर्ग अपने स्वार्थों की रक्षा के निमित्त कर रहा है ऐसी हालत में श्रमजीवी वर्ग को भी उसका उपयोग अपने हितों की रक्षा और संघर्ष के विकास में करना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि समूचा साहित्य वर्ग-युद्ध का हथियार है अथवा उसे होना चाहिए। तो भी ऐसे वाक्यों का प्रयोग यदि सावधानी से किया जाय तो अच्छा है यद्यपि इससे, खेद है, हमारे बहुत से पूंजी-जीवी आलोचकों की मौके-बेमौके फतवा देने की रोजी छिन जायगी।

चूंकि योरप के अन्य देशों में वर्ग-युद्ध ने एक सफल क्रान्ति का रूप धारण न कर पाया अतः वहाँ साहित्य को वर्ग-युद्ध का हथियार बनाने की उतनी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई जितनी प्रचार का साधन बनाने की, जिससे मज-दूर वर्ग का संगठन किया जा सके, उसके अन्दर समाजवाद और क्रान्ति की चेतना फैलाई जा सके। शायद इसीलिए वहाँ किसी ने यह नारा ईजाद किया कि 'समस्त साहित्य प्रोप्रेगेण्डा है (या होता है)' पाठकों ने शायद अमेरिका के प्रसिद्ध समाजवादी उपन्यासकार अप्टन सिन्क्लेयर की पुस्तक Mammonart पढ़ी हो। आलोचना साहित्य की दृष्टि से पुस्तक निम्न कोटि की है और वह प्रगतिवाद के समीक्षा-सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। लेकिन उसमें प्रारम्भ से लेकर रूस की समाजवादी क्रान्ति तक के योरुप और अमेरिका के सभी महान् लेखकों और कलाकारों की कृतियों का मूल्याङ्कन इस दृष्टिकोण को सामने रख कर ही किया गया है कि वे अपने समय के किसी-न-किसी वर्ग की भावनाओं का प्रोपेगेण्डा करती थीं। अप्टन सिन्क्लेयर के अनुसार समस्त साहित्य प्रोपेगेण्डा है, सार्व-भौम तथा अनिवार्य रूप से, कभी अज्ञात रूप से अन्यथा अधिकतर ज्ञात रूप से। कला जीवन की अभिव्यक्ति है जो कलाकार के व्यक्तित्व से प्रभावित होती है और उसका उद्देश्य अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करना और उन्हें भाव, विश्वास और कार्य-परिवर्तन के लिए प्रेरित करना होता है। महान् कला का जन्म तभी होता है जब जीवन्त तथा महत्वपूर्ण प्रोपेगेण्डा कलात्मक नैपुण्य से साथ किसी कला-विशेष के माध्यम-द्वारा किया जाता है। सिन्क्लेयर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कहना केवल इतना है कि यह दावा करना कि कला में प्रोपेगेण्डा को स्थान नहीं है तथा कला का स्वतंत्रता और न्याय की भावनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है, एक प्रवंचना है, एक ऐसा भ्रम है जिसे स्थिर-स्वार्थ वर्गों ने फैला रखा है। इसके विपरीत उनके अनुसार कला में प्रोपेगेण्डा ही प्रधान प्रेरणा है। क्योंकि साहित्य और कला की प्रत्येक रचना किसी-न-किसी भाव, विचार, विश्वास या दृष्टिकोण को व्यक्त करती है, और चूंकि अब तक समाज दो या दो से अधिक परस्पर विरोधी वर्गों में बँटा रहा है, इस कारण यह भाव, विचार, विश्वास या दृष्टिकोण किसी-न-किसी वर्ग के अनुकूल अवश्य रहते हैं और जब तक मनुष्य वर्ग-हीन समाज नहीं बना लेता तब तक कला-साहित्य का प्रधान गुण प्रोपेगेण्डा ही रहेगा। यदि सिन्क्लेयर की प्रोपेगेण्डा की इतनी व्यापक व्याख्या स्वीकार करली जाय तो कला और साहित्य को न्यायपूर्वक एक हद तक प्रोपेगेण्डा कहा जा सकता है।

सामान्यतः जो लोग आजकल प्रगतिवादियों पर प्रोपेगेण्डा के नाम से दोष मढ़ते हैं वे प्रोपेगेण्डा के इतने ही व्यापक अर्थ समझते हैं यद्यपि उसका जो पहलू प्राचीन साहित्य और पूँजीवादी साहित्य पर लागू होता है उसे मानने को तैयार नहीं होते। इन व्यापक अर्थों में प्रोपेगेण्डा शब्द से शायद पुराने लेखक और कलाकार इतना न चिढ़ते, वे शायद इसे स्वीकार भी कर लेते।

वीरगथा-काल के कवियों को यह स्वीकार करने में क्या संकोच होता कि वे अपने शासक या नरेश के वैभव और पराक्रम की गाथाऐं लिख कर उनका प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं और क्या यह प्रोपेगेण्डा न हुआ? आल्हा, पृथ्वीराज रासो तथा तत्कालीन काव्य-ग्रन्थों में क्या प्रोपेगेण्डा नहीं है और यह बात भी नहीं है कि चन्द-वरदायी को निम्न कोटि का कवि समझा जाता हो। इसी प्रकार भक्ति-कालीन कवियों ने वैष्णव तथा सूफी मतों का प्रचार किया था। तुलसीदासजी की रामायण में ऐसे कितने स्थल नहीं हैं जहाँ उन्होंने पाठकों को राम की भक्ति और उपासना करने के लिए प्रेरित नहीं किया है और राम के विमुख जाने वालों के सामने रौरव नरक की भीषण यातनाओं की तसवीर खींची है।

तुलसीदासजी के इस वर्णन को प्रोपेगेण्डा न मान कर यदि शाश्वत सत्य मान लिया जाय तो मुझे भय है कि आज कल के भौतिकवादी युग में रौरव-नरक के बन्दियों की संख्या इतनी बढ़ गयी होगी कि यमराज को ब्रिटिश सरकार की तरह डिटेन्शन कैम्प खुलवाने पड़ रहे होंगे। मीरा और सूरदास के पदों में भी प्रचार की मात्रा कम नहीं है। फिर भूषण तो, जिन्हें हमारे आलोचक महाकवि स्वीकार करते हैं, यद्यपि यह विवादास्पद है, अपनी रचनाओं द्वारा खुले आम महाराज शिवाजी का प्रोपेगेण्डा करते थे। उनकी शिवा-बावनी आदि से अन्त तक प्रोपेगेण्डा-प्रधान है। इसी प्रकार आधुनिक लेखकों की रचनाओं में किसी वर्ग या सम्प्रदाय का प्रोपेगेण्डा साबित किया जा सकता है। प्रेमचन्द, शरच्चन्द्र, टैगोर और इकबाल की कृतियों में भी, जो इस युग के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हुए हैं, प्रोपेगेण्डा की कमी न मिलेगी। कहने का तात्पर्य यह कि इस दृष्टिकोण से देखने से सभी कला और साहित्य-कृतियों में प्रोपेगेण्डा दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है। पुराने जमाने के लेखक इसे स्वीकार करने से कभी इन्कार न करते क्योंकि वे इस बात से इन्कार न कर सकते थे कि साहित्य और समाज में अविच्छिन्न सम्बन्ध है या कि साहित्य समाज का एक अङ्ग है और वह जीवन की अभिव्यंजना करता है—यद्यपि साहित्य के उपयोग और उद्देश्य के बारे में किसी सामाजिक दृष्टिकोण से साहित्य का मूल्य आँकने की भाषा से वे अवगत न थे। किन्तु आज के लेखक अक्सर इसे स्वीकार नहीं करते। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि कलाकार समाज की क्रियाशीलता से इतना दूर हो गया है कि उसके मस्तिष्क में 'कला कला के लिए' की भ्रामक पूँजीवादी धारणा ने स्थान जमा लिया है। दूसरा यह कि आज वर्ग-संघर्ष इतना तीव्र हो गया है कि इसे स्वीकर करने के अर्थ हैं कि या तो लेखक यह मानले कि वह पूँजीपति वर्ग का प्रोपेगेण्डा करता है, जो कि एक श्रेष्ठ लेखक कभी कहना मंजूर न करेगा क्योंकि पूँजीपति वर्ग ने उसका भी शोषण कर रखा है; या फिर वह यह स्वीकार करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह श्रमजीवी वर्ग का प्रोपेगेण्डा करता है, जो कि कहना उसके लिए अनेक कष्टों और यातनाओं और अभिजात वर्ग की उपेक्षा और निन्दा का कारण हो सकता है। अतः आज लेखक Above Battle बनने या तटस्थ रहने का उपक्रम करता है यद्यपि वह ऐसा कर नहीं पाता। लेकिन विगत युगों के लेखक इस प्रकार दो परस्पर विरोधी अवस्थाओं से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व से बचे रहते थे। उन युगों में वर्गों का संघर्ष अपने ऐतिहासिक विकास की उस प्रारम्भिक अथवा मध्य अवस्था में था जब लेखक या कलाकार के सामने दो में से एक वर्ग का दामन पकड़ना अनिवार्य न हो गया था। अतः प्रगतिवादियों ने यदि कभी साहित्य को प्रोपेगेण्डा माना है तो इसी अर्थ में किसी दूसरे अर्थ में नहीं। यहाँ यह बात विचारणीय है कि हमारे ये कतिपय आलोचक चन्दवरदायी या भूषण की कविता में अथवा अपनी रचनाओं में व्यक्त उद्‌गारों में किसी वर्ग का प्रोपेगेण्डा नहीं देखते। यदि कोई राजकुमारों और राजकुमारियों, कोमलाङ्गियों और सूट-बूट धारी पुरुषों के विषय में लिखता है तो वह उनकी दृष्टि में प्रोपेगेण्डा नहीं है किन्तु यदि कोई किसान मजदूर या मुफलिसों की बस्तियों के बारे में लिखता है तो वह प्रोपेगेण्डा है।‡ अतः यदि कुछ आलोचक प्रगतिवादियों पर यह आरोप लगाते हैं कि वे समीक्षा-सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देकर प्राचीन-साहित्य अथवा आधुनिक-साहित्य के अन्दर शासक-वर्गों की भावनाओं की अभिव्यक्ति ढूँढ़ कर उसे प्रोपेगेण्डा कहते हैं तो प्रगतिवादी भी न्यायपूर्वक उन पर आरोप लगा सकते हैं कि वे प्रगतिवादी साहित्य को प्रोपेगेण्डा कहते हैं। और खेद इस बात का है कि साहित्य-समीक्षा की प्रणाली की अवहेलना पर रोष प्रकट करने वाले ये आलोचक ही उस प्रणाली को तिरस्कार करने का सब से पहला अपराध करते हैं। प्रगतिवादी यदि पूँजीपति वर्ग के प्रोपेगेण्डा का आरोप करते हैं तो आलोचक मजदूर वर्ग के प्रोपेगेण्डा का। प्रगतिवादियों में कम-से-कम इतनी ईमानदारी तो अवश्य है कि समस्त साहित्य को प्रोपेगेण्डा कह कर वे समस्त साहित्य की राशि में शामिल अपने साहित्य को भी प्रोपेगेण्डा स्वीकार करते हैं, तथा प्रोपेगेण्डा को अपने में एक बुरी चीज नहीं मानते, यदि बुरा मानते हैं तो केवल शोषक वर्गों के प्रोपेगेण्डा को, क्योंकि वह शोषण के कायम रखने का साधन बनता है। इसके विपरीत प्रगतिवादियों के विरोधी प्रोपेगेण्डा को हेय मानते हैं लेकिन पूँजीपति वर्ग की भावनाओं की अभिव्यक्ति को प्रोपेगेण्डा नहीं मानते, उन्हें मनुष्य की शाश्वत भावनाएँ मानते हैं और मजदूर वर्ग की भावनाओं के व्यक्तीकरण को प्रोपेगेण्डा कहते हैं अर्थात् उसे हेय समझते हैं। लेकिन यह तो एक विवाद की बात हुई। वास्तव में क्या सारा साहित्य प्रोपेगेण्डा है ? यदि सारा साहित्य प्रोपेगेण्डा है तो निश्चय ही पूँजीपति वर्ग की अपेक्षा मजदूर वर्ग का प्रोपेगेण्डा ज्यादा अच्छा है। लेकिन बात ऐसी नहीं है।

अमेरिका के एक दूसरे प्रसिद्ध आलोचक-उपन्यासकार जेम्स० टी० फ़ेरेल ने, जो समाजवादी हैं, अपनी पुस्तक A note on literary criticism में इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट किये हैं। उनका कहना है कि हमें सब से पहले प्रोपेगेण्डा शब्द की व्याख्या निश्चित कर लेनी चाहिए। लेनिन की पुस्तक What is to be done ? से एक उद्धरण देकर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रोपेगेण्डा किन्हीं सिद्धान्तों, योजनाओं तथा विचारों का प्रचार होता है ताकि किसी प्रोग्राम या कार्यक्रम

---

‡ किसान मजदूरों या मुफलिसों की बस्तियों के बारे में लिखना वे वर्जित नहीं बताते और यदि इस वर्णन में किसी मजदूर से मिल मालिक की लड़की की, या जमींदार के बेटे से किसान की बेटी की शादी करा के लोक-कल्याण की भावना का पोषक, गांधीजी की भाषा में, हृदय परिवर्तन कर दिया जाता है तो ये आलोचक उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं थकते। प्रोपेगेण्डा का लेबिल तभी चिपकाया जाता है जब इस वर्णन में अन्त तक वर्ग-संघर्ष का निर्वाह रहता है, जैसे विद्युत-यंत्रों के आस-पास 'खतरा' की नोटिस टाँग दी जाती है। इस प्रकार तह में घुसने पर प्रोपेगेण्डा के प्रश्न के नीचे दृष्टिकोण का प्रश्न छिपा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार शीघ्र ही अमल किया जा सके। फेरेल का कथन है कि यदि इस व्याख्या को स्वीकार किया जाय तो साहित्य को प्रोपेगेण्डा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मार्क्स का 'कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो' प्रोपेगेण्डा की चीज होकर भी न केवल विचार-परिपाक का सुन्दर नमूना है, बल्कि एक श्रेष्ठ साहित्यिक रचना भी है; इसके विपरीत आन्द्रे मालरो का उपन्यास Man's fate यद्यपि एक उत्कृष्ट साहित्यिक रचना है, तथापि प्रोपेगेण्डा की दृष्टि से उसके विचार विवादास्पद हैं। अतः साहित्य और प्रोपेगेण्डा दो भिन्न चीज हैं, यद्यपि दोनों का किसी भी रचना में सम्मिश्रण भी होता रहता है। फेरेल ने इससे यह सिद्ध किया है कि साहित्य के अपने अलग नियम होते हैं। जिनसे उसकी उत्कृष्टता निकृष्टता का अन्दाजा लगाया जाता है। साहित्य में केवल सामयिक तत्व ही नहीं होते, बल्कि कुछ ऐसे भी तत्व होते हैं जो उसे सापेक्ष्य स्थायित्व का गुण प्रदान करते हैं। अतः फेरेल की राय है कि 'सारा साहित्य प्रोपेगेण्डा है' इस नारे को त्याग देना चाहिए और उसके स्थान पर 'साहित्य सामाजिक-प्रभाव का अस्त्र है' रखना चाहिए।

जेम्स टी० फेरेल से मैं कहाँ तक सहमत हूँ, यह ज्यादा महत्व की बात नहीं है यद्यपि यह स्वीकार करते मुझे कोई आपत्ति नहीं कि मैं फेरेल द्वारा की गयी प्रोपेगेण्डा की व्याख्या से सहमत हूँ। महत्व की बात यह प्रश्न है कि साहित्य की ऐसी समाज-शास्त्रीय व्याख्याओं की आवश्यकता क्यों पड़ती है और ये व्याख्याएँ चाहे जितनी सर्वमान्य क्यों न हों, कहाँ तक साहित्य की परिभाषा के रूप में स्वीकार की जा सकती हैं, अर्थात् कहाँ तक वे हमें साहित्य का मूल्यांकन करने में सहायता देती हैं, अतः हमारे समीक्षा-शास्त्र के अन्तर्गत सम्मिलित की जा सकती हैं। श्रीसुमित्रानन्दन पन्त की 'पल्लव' की भूमिका के इस वाक्य को 'हम व्रज की जीर्ण-शीर्ण छिद्रों से भरी, पुरानी छींट की चोली नहीं चाहते, इसकी संकीर्ण धारा में बन्द हो हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रुक जाता है।' देखिए इस वाक्य की शैली चाहे आज सन् १९४१ में अतंकृत और पुरानी क्यों न लगे—या अनुपयुक्त भी कह सकते हैं—लेकिन यह समीक्षा-प्रणाली के एक नये विकास की ओर अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्देश करता है। पहले जब सामन्ती काल में कविता मनोरञ्जन या आनन्द प्रदान करने के लिए लिखी जाती थी, तब कविता का 'उद्देश्य' रस का उद्रेक करना था। और समाज का सङ्गठन ऐसा था कि कविता या साहित्य के 'उपयोग' का कभी प्रश्न ही नहीं उठता था। 'उद्देश्य' के अन्दर ही 'उपयोग' शामिल था, अर्थात दोनों को एक ही मान लिया गया था। और इस 'उद्देश्य' या उसमें शामिल 'उपयोग' की सीमाएँ बहुत संकीर्ण थीं। इस कारण इस 'उद्देश्य' की प्राप्ति के लिए इसी सीमित परिधि के अन्दर प्रयोग किये जाते थे और इन प्रयोगों को सफल बनाने के प्रधान अस्त्र थे, अलंकार, ध्वनि, शब्द-शक्तियाँ, वक्रोक्ति, गुण आदि। जहाँ तक समाजशास्त्र, दर्शन या मनोविज्ञान का ताल्लुक था, उनके अपने अलग बाड़े थे, और यह आवश्यक न समझा जाता था कि इन सब बाड़ों में यातायात की आवश्यकता है। यह रीतिकाल की बात है। उसके पहले भी भक्ति-काल में जब काव्य की आत्मा के स्थान पर धर्म और नैतिकता विराजमान थे, आलोचना-पद्धति किसी सामाजिक दृष्टिकोण का अवलम्बन लेकर काव्य का मूल्यांकन नहीं करती थी। छन्दशास्त्र और अलंकार शास्त्र ये ही काव्य-समीक्षा रथ के दो पहिये थे। और रसवाद का सिद्धान्त उसके लक्ष्य या उद्देश्य की ओर एक अस्पष्ट इशारा-मात्र करता था। भाव या रूप के 'सौन्दर्य' का कुछ नियमों के अनुसार निरूपण करना ही शास्त्रीय समीक्षा का उद्देश्य था। काल स्थित समाज में काव्य या साहित्य का क्या उपयोग है, और उसके अनुकूल उसका क्या उद्देश्य है, अर्थात् उसका संविधायक पहलू क्या है, इस ओर किसी का ध्यान न जाता था मानो ये प्रश्न साहित्य या कला के मूल्यांकन में असंगत हों। और न कविता या साहित्य की सृष्टि के मानसिक उद्गम तक पहुँचने की कोशिश होती थी, अर्थात् मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण की आवश्यकता न समझी जाती थी—सत्य तो यह है कि यह शास्त्र उस समय न हमारे यहाँ था और न योरप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही—अतः कुछ मनस्थितियों या मनोविकारों के वर्णन तक ही समीक्षा सीमित थी, जिसमें शृङ्गार या वात्सल्य, वीर या रौद्र, अद्‌भुत या वीभत्स, करुण या हास्य रसों के जो मनस्थितियों का अनुपयुक्त द्योतन करते हैं, परिपाक को दिखा कर विश्रान्ति ले ली जाती थी। इस प्रकार हमारी प्राचीन समीक्षा-प्रणाली का क्षेत्र इतना संकीर्ण था कि समाजशास्त्र मनोवैज्ञानिक-विश्लेषणशास्त्र के विकास के साथ—यद्यपि इन दोनों शास्त्रों का विकास योरुप में हुआ—उसकी संकीर्ण सीमाओं का टूटना आवश्यक हो गया, और कविता या साहित्य जो अब तक प्राचीन समीक्षा-शास्त्र की शृङ्खलाओं में जकड़ा था, उसको भी नये ज्ञान के साथ अपना सीमा-विस्तार करने की आवश्यकता पड़ी। यदि इन बातों को ध्यान में रख कर पंतजी के उद्धरण को देखें तो उसका महत्व और भी बढ़ जाता है। व्रज-काव्य-प्रणाली की 'संकीर्ण कारा में बन्द हो', 'वायु की न्यूनता' से 'आत्मा का सिसक उठना' और 'शरीर का विकास रुक जाना' अनुभूति का द्योतक है कि काव्य और साहित्य का विकास तब तक रुका रहेगा जब तक उनका सीमा विस्तार नहीं किया जाता; और यह सीमा विस्तार समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के नये दृष्टिकोण का भी सूचक है, कि समीक्षा-शास्त्र को भी 'छींट की चोली' का रंग बिरंगापन ही नहीं देखना चाहिए बल्कि यह भी देखना चाहिए कि 'वायु की न्यूनता' से आत्मा और शरीर का विकास तो नहीं रुकता। इस सांकेतिक शब्दावली को हटादें तो इसका अर्थ है कि काव्य और साहित्य के उद्देश्य और उपयोग को हमें फिर से जाँचना चाहिए और उनके जाँचने के लिए हमें समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के मापदण्डों का भी प्रयोग करना चाहिए। तो कहने का तात्पर्य यह कि समाजशास्त्र के मापदण्डों से मूल्यांकन करने की प्रथा का श्रीगणेश प्रगतिवादियों के पहले ही शुरू हो गया था। साहित्य के संविधायक पहलू से उस पर विचार किया जाने लगा था। और 'सारा साहित्य प्रोपेगन्डा है', साहित्य के इसी संविधायक दृष्टिकोण का एक उत्तर है। लेकिन यहाँ हमें एक स्मरण रखना चाहिए कि सारे साहित्य को प्रोपेगेण्डा या सामाजिक प्रभाव का अस्त्र कह कर आज के समाज में उसके एक महत्वपूर्ण संविधायक पहलू का ही निर्देश किया जाता है, और केवल इस दृष्टि से खरी उतरने वाली कोई रचना अपने में श्रेष्ठ रचना नहीं हो जाती। उसकी श्रेष्ठता का निरूपण करते समय उसकी सौन्दर्यानुभूति, उसकी रूपयोजना, शैली और प्रौढ़ता, वाक्य-रचना, शब्द-प्रयोग आदि अनेक दूसरी कसौटियों पर भी उसे कसना आवश्यक है, और प्रगतिवादी इन सब कसौटियों पर किसी भी काव्य या साहित्य-कृति का कसना आवश्यक समझते हैं, उनके महत्व को जानते हैं, यद्यपि आज के संक्रमण काल में वे साहित्य के संविधायक पहलू को दृष्टि में रख कर उसका सामाजिक दृष्टिकोण से विवेचन करना अधिक आवश्यक समझते हैं। इसके अनेक कारण हैं, पहला तो यह कि आज के समाज में कला-साहित्य का उपयोग अनेक राजनीतिक और आर्थिक हितों को दृष्टि में रख कर किया जा रहा है, और जो समाज-व्यवस्था को बदलने में संलग्न शक्तियाँ हैं वे कला-साहित्य के प्रभाव को समझ कर भी उन्हें इस विश्वव्यापी संघर्ष में प्रगतिशील शक्तियों के शक्ति-वर्धन का साधन न बनाएँ यह उनकी बुद्धिमत्ता का प्रमाण न होगा—यह भाव कला या साहित्य के प्रति अवज्ञा या उपेक्षा का सूचक नहीं है वरन् उनके महत्व और उनकी शक्ति के प्रति स्वीकृति का द्योतक है; न यह भाव इस बात का सूचक है कि प्रगतिवादी कला और साहित्य के सौन्दर्यगत मूल्य की कद्र नहीं समझते। और न इसका यह अर्थ है कि प्रगतिवादी साहित्य के संविधायक पहलू पर जोर देकर लेखकों से इस बात की अपेक्षा नहीं करते कि कलात्मक दृष्टि से उनकी रचनाएँ चाहे न-कुछ हों, लेकिन आज की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर उनके वक्तव्य चौकस होने चाहिए। दूसरा यह कि प्रगतिवादी यह जानते हैं कि केवल रचना-कौशल के कारण ही, और वाक्य-विन्यास या शैली और कला के कारण ही कोई रचना श्रेष्ठ नहीं बन सकती, न पहले कभी बनी—चाहे तब समीक्षक इस पहलू से अवगत न हों, या उसे आवश्यक न समझते हों—न आज बन सकती है, और उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यांकन करने के लिए उसके सामाजिक दृष्टिकोण को जाँचना भी आवश्यक है, अर्थात कला या साहित्य को सामाजिक उद्देश्य और उपयोग से अलग नहीं किया जा सकता, ये दोनों उसके आवश्यक अङ्ग हैं। प्रगतिवादियों पर यदि किसी बात का न्यायोचित आरोप किया जा सकता है तो केवल इस बात का कि वे कला और साहित्य के सामाजिक दृष्टिकोण अर्थात् उसके उद्देश्य और उपयोग को ठीक-ठीक स्पष्ट रूप से आँक लेना चाहते हैं और कोरी वायवी, या काल्पनिक, या आदर्शवादी, भावुकता-प्रधान स्थापनाओं से सन्तुष्ट नहीं हैं। साहित्य को इतने विस्तृत चौखटे के अन्दर रख कर देखने का प्रयत्न तो अभी शुरू ही हुआ है, अतः प्रगतिवादी इस नये दृष्टिकोण को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने की ओर प्रयत्नशील हैं, अभी या कभी वे अन्तिम निर्णय पर पहुँच जाएँगे, ऐसा कोई भ्रम उन्हें नहीं है। लेकिन सत्य को अधिकाधिक प्राप्त करने का एक मात्र यही तो तरीका है कि हम नित नये अनुभव से अपनी स्थापनाओं को समृद्ध बनाते जायं।

इन विचारों की दृष्टि में यदि हम पुनः क्या साहित्य प्रोपेगेण्डा है ? प्रश्न को जाँचें तो हमें उस पर नयी रोशनी पड़ती दिखाई देगी। 'सारा साहित्य प्रोपेगेण्डा है' की स्थापना को अब हम आसानी से अस्वीकृत कर सकते हैं। क्योंकि इस स्थापना में प्रोपेगेण्डा की व्याख्या के अनुसार प्रोपेगेण्डा और प्रतिपादन को पर्याय मान लिया गया है। लेकिन योजना पर अमल करने या अमल कराने के लिए जनसमूह या उसके किसी अंग को प्रेरित करना एक चीज है और व्यक्ति या समूह के विचारों या भावनाओं का प्रतिपादन करना एक दूसरी चीज है। पहला प्रोपेगेण्डा है, दूसरा प्रोपेगेण्डा नहीं है। यदि साहित्य में अनिवार्यतः विचारों या भावनाओं का प्रतिपादन मिलता है तो उसे प्रोपेगेण्डा नहीं कहा जा सकता। यह दूसरी बात है कि सामाजिक क्रियाशीलता की अभिव्यञ्जना का साहित्य पाठक को भी उसकी अनुभूति कराता है पर इससे वह प्रोपेगेण्डा का पर्याय नहीं बन जाता। लेकिन फेरेल की यह स्थापना भी उपयुक्त नहीं है कि "साहित्य सामाजिक प्रभाव का अस्त्र है।" यह एक स्वयं-सिद्धि है उसी तरह की कि आदमी बुद्धि-धारी जानवर होता है; और अस्त्र जोड़ देने से वह स्वयं-सिद्धि न तीव्र हो जाती है न प्रभावपूर्ण। उसके स्थान पर 'साधन', 'चीज', आदि भी उपयुक्त रहते। इसके अतिरिक्त 'सामाजिक प्रभाव' बड़ा कमजोर वाक्यांश है, क्योंकि प्रभाव शब्द को सीधे तौर पर सामाजिक प्रगति की अपेक्षा में मापना कठिन है और सामाजिक प्रगति में इस प्रभाव की क्या सक्रिय-भूमिका रहती है, इसका बहुत क्षीण आभास इस शब्द से मिलता है। जिस क्रान्तिकारी युग में हम रहते हैं, उसकी वास्तविकता के मुकाबले में यह अभिव्यक्ति अत्यन्त लचर है। फिर साहित्य केवल सामाजिक प्रभाव का ही अस्त्र नहीं है वह सामाजिक परिवर्तन का भी अस्त्र है। सामाजिक परिवर्तन में साहित्य वह भाव-प्रधान सामाजिक शक्ति उत्पन्न करता है जो मनुष्य के भाव जगत को परिवर्तित कर इतना विस्तृत बना देती है कि वह हमारे अन्दर देखने और अनुभव करने की क्षमता पैदा कर हमें विगत तथा पुरातन के विकसित-परिवर्तित रूप आगत तथा नवीन को ग्रहण करने की शक्ति प्रदान करती है। भाव जगत का यह परिवर्तन भौतिक जीवन की आवश्यकताओं से प्रभावित होता है और पुनः वह भौतिक जीवन को बदल कर एक उच्च धरातल पर संगठित करने की शक्ति प्रदान करता है। यह भाव जगत और भौतिक जगत की क्रिया-प्रक्रिया मनुष्य की स्वतंत्रता प्राप्त करने की जीवन-क्रिया का एक अनिवार्य अंग है। श्रेष्ठ-साहित्य इस क्रिया में सहायक होता है, सहायक ही नहीं उसका साधन भी बनता है। श्रेष्ठ कला या साहित्य का यह गुण है। अतः यदि हमें साहित्य की कोई संविधायक स्थापना करनी ही है और यह कहना मुश्किल है कि आज की संघर्षपूर्ण परिस्थिति में उसकी अनिवार्य आवश्यकता नहीं है, तो हमें स्वर्गीय कॉडवेल की स्थापना स्वीकार करनी चाहिए कि 'साहित्य या कला मनुष्य की स्वतन्त्रता प्राप्त करने का एक अस्त्र है।' इसमें 'स्वतन्त्रता' शब्द विवादास्पद है अवश्य, और उसका उत्तर विज्ञान और दर्शन देने का प्रयत्न कर रहे हैं लेकिन उसमें अन्य स्थापनाओं के दोष नहीं हैं, और उत्कृष्ट कला या साहित्य के प्रति तो असीम श्रद्धा का भाव है।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचक के सामने

[श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के प्रश्न और श्री जैनेन्द्रकुमार के उत्तर]

श्री प्रकाशचन्द्र—आजकल हिन्दी में इतने उपन्यास निकलते हैं, लेकिन उनमें अधिकांश घटिया होते हैं। जीवन के अन्तस्तल को कम छू पाते हैं। क्या इसका कारण अपने समाज के प्रति हिन्दी उपन्यासकार की उपेक्षा नहीं ?

श्री जैनेन्द्र—नहीं, मेरा ख्याल और है। मैं इसकी तीन खास वजहें कह सकता हूँ।

श्री प्रकाशचन्द्र—कौन-कौन सी ?

श्री जैनेन्द्र०—पहली वजह तो हिन्दी का राष्ट्रभाषा माना जाना है। इस विचार से हिन्दी काम-काज की ज्यादा और विचार भावना को भाषा कम रह जाती है। दूसरे सब उसके दावेदार बनते हैं। यहाँ तक कि जो इस भाषा में कभी ही लिखते-बोलते हैं वे भी इस भाषा के लेखकों पर हिदायत जारी कर सकते हैं।

श्री प्रकाशचन्द्र—और दूसरी वजह ?

श्री जैनेन्द्र०—दूसरी वजह मैं मानूँ कि समाजवाद है।

श्री प्रकाशचन्द्र—समाजवाद कैसे ?

श्री जैनेन्द्र०—वह यों कि इसने रोटी और पैसे पर लोगों की निगाहें इतनी जमा दी हैं कि इन्सान की जैसे कोई अलग सार्थकता ही नहीं है। इस जमीन पर उपन्यास गहरा नहीं हो सकता।

श्री प्रकाशचन्द्र—जी, और तीसरी—

श्री जैनेन्द्र०—तीसरी कहिए गांधीवाद।

श्री प्रकाशचन्द्र—यह कैसे ?

श्री जैनेन्द्र०—इसके कारण दस्तकारी की कीमत इतनी बढ़ गयी है कि विचार और साहित्य की कीमत औसत आदमी की निगाह में जरूरत से कहीं कम रह गयी है।

श्री प्रकाशचन्द्र—किन्तु इसका असर तो दूसरी भाषाओं पर भी होना चाहिए।

श्री जैनेन्द्र—हिन्दी पर इसका असर इसलिए ज्यादा दीखता है कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता अधिकतर हिन्दी के द्वारा प्रकट होती है।

श्री प्रकाशचन्द्र—लेकिन क्या हिन्दी उपन्यास के क्षय का कारण कलाकार की गरीबी नहीं ? बहुत कुछ काम वह भरती का करता है, सिर्फ पेट भरने के लिए।

श्री जैनेन्द्र—नहीं, गरीब होने से चीज हल्की कभी नहीं हो सकती। गरीबी हमारी अन्दर की भावनाओं को तीखा करती है। यह तो अमीरी है जो अक्ल को मोटा कर सकती है। गरीबी से नुकसान यह तो हो सकता है कि उपन्यास लिखे ही न जायँ। किन्तु यह उपन्यास हल्के हो जायँ यह करने का बस गरीबी का नहीं। गरीबी आपने चखी है ? चख कर देखिए तो मालूम होगा कि उससे हैवानियत और इन्सानियत दोनों बढ़ती हैं। उपन्यास के बढ़ने के लिए आखिर जिन्दगी की तेजी ही तो चाहिए।

श्रीप्रकाशचन्द्र—आपने अब तक सिर्फ चार उपन्यास लिखे हैं, जो शायद लम्बी कहानियाँ मात्र हैं। आप फिलासफी पर अधिक लिखते हैं, प्रश्नोत्तर के रूप में। क्या आपको उपन्यास लिखने की प्रेरणा ही कम होती है, या जीविका का भी कुछ सवाल है ?

श्री जैनेन्द्र—जीविका की बात आपने अच्छी सुझाई। पर आपके सवाल से मालूम होता है कि बाजार का हाल आपको मालूम नहीं। मेरे प्रकाशकों ने मेरा चैन हराम कर रखा है कि उपन्यास लिखो, उपन्यास लिखो। देखिए जब अक्सर पढ़े-लिखे लोग भी सख्त और ठोस साहित्य पढ़ने में रुचि नहीं रखते तब मामूली पाठक की तो क्या पूछिए। उपन्यास के अलावा यदि प्रकाशक कोई दूसरी किताब छापते हैं तो बे-दिली से। हिन्दी में बिक्री है उपन्यास की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए अफसोस है कि आपके अन्दाज को मैं ठीक नहीं कह सकता। मेरे चार उपन्यासों में से कुल एक के लिखने का श्रेय मुझको दिया जा सकता है। बाकी तीन मुझसे लिखवा लिए गये हैं। Inspiration की बात न कीजिए। मुझ में कुछ भी Inspiration नहीं। न फिलासफी के लिए, न कहानी के लिए। इसलिए प्रश्नोत्तर शैली मुझे आसान होती है। सवाल ऊपर से आपड़ा तो जबाव भी भीतर से बन आया।

श्री प्रकाशचन्द्र—खैर यही सही। पर क्या आप टैकनिक को बिलकुल ही महत्व नहीं देते। आप बताइए कि आप अधिक महत्व वस्तु (Content) को देते हैं अथवा टैकनिक को ?

श्री जैनेन्द्र—टैकनिक के बारे में मेरी लाचारी निपट है। मैं उसका क, ख भी नहीं जानता। पर जो कहना है उसे कहने की कोशिश में यह विचार भी आ जाता है कि मैं उसे कैसे कहूँ। अपने अनुभव से मुझे ऐसा मालूम होता है कि 'क्या कहूँ' और 'कैसे कहूँ'। ये दो भिन्न कोटि के प्रश्न नहीं हैं। इसीलिए शैली भी उसकी ही होती है जिसके पास कुछ कहने को होता है। बिना कुछ बात हुए सिर्फ ढंग के जोर से साहित्य में कोई नयी सिफत पैदा नहीं की जा सकती।

श्री प्रकाशचन्द्र—मुझे 'सुनीता' पर कुछ आपत्तियाँ हैं। उसमें कुछ दोष हैं।

श्री जैनेन्द्र—दोष कुछ कहना आपकी कृपा है। वास्तव में 'सुनीता' में दोष बहुत हैं। उन्हें ढूँढ़ने में आपकी मदद में कर सकता हूँ। कहिए क्या दोष आपको खले—

श्री प्रकाशचन्द्र—बैकग्राउन्ड को ही ले लीजिए, एकदम खाली-खाली-सा है।

श्री जैनेन्द्र—ओः बैकग्राउन्ड। चाँदनी चौक जाते हुए परेड ग्राउन्ड के किनारे कुछ फोटोग्राफर बैठे रहते हैं। फोटो के पीछे का बैकग्राउन्ड खाली न रहे इसके लिए वे रंग-बिरंगे पर्दे तैयार रखते हैं। सच पूछिए तो मुझे इस तरह का भरा बैकग्राउन्ड पसन्द नहीं। इसी सिलसिले में एक तस्वीर की मुझे याद आती है। एक तनहा घुड़सवार, हारा-थका, गर्दन झुकाये, लड़खड़ाता-सा चला आ रहा है। जाने किस दम सवार का और घोड़े का दम टूट जाय। उसके बैकग्राउण्ड में क्या है? एकदम कुछ नहीं। निरा रेगिस्तान फैला है। उस खालीपन को जरा बिखराने के लिए किसी पेड़ की ठठरी तक भी तो वहाँ नहीं है। फिर भी यह खाली बैकग्राउण्ड का चित्र मुझे याद है, और परेड ग्राउण्ड वाले से कभी अपना फोटो उतरवाने की मेरी तबियत नहीं हुई।

श्री प्रकाशचन्द्र—चित्रों की इस बात में किसी उपन्यास के खाली बैकग्राउन्ड का औचित्य आप प्रकट नहीं कर सके। इस बात पर बहस और तरफ को चल पड़ेगी। क्या आप मुझे बता सकेंगे कि 'सुनीता' में तमन्चे की आवाज किसी को सुनाई क्यों नहीं दी ?

श्री जैनेन्द्र—शायद 'सुनीता' की कहानी में पुलिस और पड़ौस के लोग नहीं घिर आये। इसलिए आपको शक हुआ है कि यह पिस्तौल कैसा ? पर मैं आपको यकीन दिलाऊँ कि किताब का पिस्तौल किताबी नहीं असली है। लेकिन एक घर के अन्दर पिस्तौल छूटे, तो मुझे यह पसन्द नहीं कि पड़ोसियों या पुलिस को वहां पहुँचने की तकलीफ उठानी ही चाहिए।

श्री प्रकाशचन्द्र—क्या चाहिए, सवाल इस बात का नहीं। क्या होता है, सवाल इस बात का है। आप कहानी में भारत के लोगों का दिग्दर्शन कराते हैं तो फिर उनकी आधारभूत खूबियाँ या खामियों को कैसे छोड़ सकते हैं ? आपके मकान में पिस्तौल छूटे तो क्या आपका ख्याल है कि इसकी आवाज सुन कर भी पड़ौसी अपने घरों में चुप पड़े रहेंगे अथवा यदि सिपाही समीप हो तो क्या आपका ख्याल है कि वह निश्चल ही खड़ा रहना अपना फर्ज समझेगा ? और फिर यह तो मानव की आधारभूत उत्सुकता का प्रश्न है। बहरहाल यह मामूली बातें हैं। मैं पूछना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ कि 'सुनीता' में हरिप्रसन्न और सुनीता का सुनीता के पति की अनुपस्थिति में इकट्ठे रहना कहाँ तक भारतीय आदर्श से मेल खाता है। क्या उस आदर्श के ख्याल से यह बेजा नहीं ?

श्री जैनेन्द्र०—मैं दूर की क्या कहूँ। मैं खुद अपने घर से महीने-महीने बाहर रहता हूँ। घर में कोई दूसरा नातेदार नहीं। वक्त पर मित्र ही काम आते हैं। कह लीजिए कि मेरी घर-गिरिस्ती भारतीय गिरिस्ती का नमूना नहीं है, पर सुनीता की गिरिस्ती के बारे में वैसा नमूना होने का दावा कब किया गया है ?

श्री प्रकाशचन्द्र०—लेकिन सुनीता ही क्यों ? कल्याणी का प्लाट भी तो घूमता, चक्कर खाता, चल कर कुछ भी व्यक्त नहीं कर पाता।

श्री जैनेन्द्र०—लेकिन क्या यही बात जाहिर नहीं करती कि किताब की 'कल्याणी' घूम रही है, चक्कर काट रही है, पर बढ़ नहीं रही है। प्लाट चक्करों से उबर कर कुछ बढ़ता तो कल्याणी के लिहाज से यह चीज गलत होती। यह आपने कहाँ सुना कि तीर जैसे कमान को छोड़ कर जाता है वैसे दिल को सीने से निकल कर सीधी सिम्त (दिशा) में बढ़े ही चलना चाहिए। दिल में कभी कुछ होता है, जो घुमड़न पैदा करता है, गति नहीं।

श्री प्रकाशचन्द्र—आप अपनी कहानियों में से कोई गूढ़ सत्य कह रहे हैं या केवल जिन्दगी की झलक दे रहे हैं ?

श्री जैनेन्द्र०—ओः, तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि वह भी तस्वीर जिन्दगी की हो सकती है जिसमें कोई गूढ़ सत्य खुलता न हो। जिन्दगी और सचाई दो चीजें नहीं हैं और सचाई की पाने की कोशिश में ही जिन्दगी की असलियत खुलती है।

श्री प्रकाशचन्द्र—क्या आप बतायेंगे कि जीवन की बुनियाद पर सच खड़ा होता है या आँखें मूँद कर अन्तर से दार्शनिक सच को खोज निकालता है ?

श्री जैनेन्द्र०—बात फिर वही आयी। जिन्दगी और हकीकत दो नहीं हैं। जिन्दगी हक की तलाश है, यहां बेशक मैं आँखें मूंदने के अभ्यास का कायल हूँ। आँखें खोल कर बहुत थोड़ा दीखता है। ज्यादा देखने के लिए आंखें बन्द करनी होंगी। क्या बुद्धि और कल्पना ऊपरी आंखों से आगे नहीं जाती ? वे बुद्धि और कल्पना अन्दर की आँखें हैं। ऊपर की आंखें बन्द करना कोई नहीं जानेगा तो उसकी अन्दर की आंखें ठीक-ठीक खुलना नहीं सीखेंगी।

प्रकाशचन्द्र—कुछ आलोचक कहते हैं कि आप बुद्धि की सत्ता नहीं मानते, केवल भावना के बल पर जीते हैं ?

जैनेन्द्र—बुद्धि की सत्ता में न मानता तो क्या आप यहाँ मेरे साथ बातचीत करने आना गवारा करते ? इसलिए अक्ल के पीछे लाठी लिए फिरने वाला तो आप मुझे न मानें। पर उस बुद्धि से मैं दोस्ती चाहता हूँ, उसकी गुलामी नहीं।

प्रकाशचन्द्र—यह बताइए कि आपके समीप फिलासफी का आधार सामाजिक जीवन है अथवा मनुष्य का मन ?

जैनेन्द्र—फिलासफी का आधार क्या है ? अँ-अँ, शायद वह आधार तो मनुष्य का मन ही है ? क्योंकि वहीं उधेड़-बुन चला करती है और उधेड़-बुन के अलावा फिलासफी है क्या ? फिर मन है ही वह चीज जो अपने में बन्द नहीं है। अजी, समाज तो समाज, वह तो चाँद-तारे और जाने किस-किस से अपना वास्ता नहीं खोज लेता।

प्रकाशचन्द्र—लेकिन आपके कहने के अनुसार यदि माना जाय कि अन्दर की आँखें बाहर की आँखों से ज्यादा देखती हैं। पर आप जिस दुनियाँ का चित्रण करते हैं उसका दायरा उल्टा संकुचित है। आपकी कहानियों में सिर्फ दो-तीन ही पात्र रहते हैं।

जैनेन्द्र—दायरा जरूर संकुचित है, क्योंकि मैं संकुचित हूँ। लेकिन वह कौन आदमी है जो अपने साढ़े तीन हाथ से बड़ा है ? बढ़ाते जाइए दायरा, पर इस बे-छोर की दुनियां में आपके बड़े-से-बड़े दायरे की क्या नन्ही-से-नन्हीं बूंद से अधिक कुछ हस्ती हो सकती है ? भाई, आदमी वही साढ़े तीन हाथ का रहेगा। करले कितनी भी भाग-दौड़ और उछल-कूद, अपने से बाहर उसे कुछ हाथ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयेगा। इससे बड़े दायरे का मोह में क्या करूँ? यदि मेरी कहानियों में दो-तीन पात्र हैं तो बहुत हैं। एक है तो भी बहुत है। एक भी नहीं तो भी मुझे गम नहीं। क्योंकि ईश्वर कण क्या शून्य में भी है। वैज्ञानिक हो गये हैं, जिन्होंने कण (एटम) की खोज पर अपने को वार दिया।

श्री प्रकाशचन्द्र—हम वैज्ञानिकों की नहीं उपन्यासकों की बात कर रहे हैं और मैं सविनय पूछना चाहता हूँ कि उपन्यास की दृष्टि से क्या प्रेमचन्द का विशाल केन्वेस श्रेष्ठ नहीं? आपका दायरा-निम्नमध्य वर्ग का समाज है। क्या इसके बाहर आपको कोई दिलचस्पी नहीं?

श्री जैनेन्द्र—प्रेमचन्द, प्रेमचन्द हैं। क्या मैं उनकी हिर्स करूँ? आपके उत्तम और निकृष्ट वर्गों को मैं नहीं जानता। मैं आदमी को जानना चाहता हूँ और मैं किसी हालत में भी यह नहीं मान सकता कि कल्लू चमार किसी लखपती से कम या अधिक इन्सान है। इंसानियत की दृष्टि से मैं देखूं तो मुझे इंसान ही दिखाई दे सकते हैं, वर्ग दिखाई नहीं दे सकते। बेशक आदमी से बाहर मुझे किसी वर्ग में दिलचस्पी नहीं।

श्री प्रकाशचन्द्र—आप कहना चाहते हैं कि आप भावों की गहराई में जाते हैं। जीवन का सत्य विशालता में भी है, गहराई में भी। ब्रह्मांड में और पिंड में भी। लेकिन आपके प्लाट का फैलाव कुछ इस तरह होता है—'अ' ने 'ब' से प्रेम किया, 'ब' ने 'स' से और 'स' ने 'अ' से। क्या यही त्रिकोण जीवन का निचोड़ है। इसके बाहर जीवन के कोई सवाल नहीं उठते?

श्री जैनेन्द्र—आप मुझसे जीवन का निचोड़ पूछते हैं? मैं भटक रहा हूँ उस निचोड़ की एक बूँद पाने के लिए। मैंने अब तक कुछ भी नहीं पाया। इसलिए मैं खुद आपसे जानना चाहूँगा कि 'अ' 'का' 'ब' से, 'ब' 'का' 'स' से और 'स' का किसी और से प्रेम करना, विफल होना, फिर भी प्रेम करते रहना—यदि निचोड़ यह नहीं है, तो फिर वह निचोड़ क्या है?

मैंने कभी नहीं कहा कि मैं भावों की गहराई में जाता हूँ। लेकिन यह तो सच है कि जो ब्रह्माण्ड में है वह पिण्ड में भी है। और आदमी में जिसने ईश्वर को नहीं पाया, वह फिर उसे कहीं भी पा न सकेगा। मुझे आज यह सचमुच मालूम होता है कि प्रेम से बाहर दूसरा कोई सवाल नहीं है। सारे सवाल उसी एक तत्व में से बने हैं। दो के या अनेक के बीच प्रेम सार्थक नहीं होता, तभी उलझनें उपस्थित होती हैं। बाहरी दुनियाँ की सारी समस्याएँ क्षुब्ध और रुद्ध काम का फल हैं।

श्री प्रकाशचन्द्र—फिर आप यह बताइए कि आप किस आदर्श जीवन की कल्पना करते हैं? मनुष्य का मनुष्य द्वारा भक्षण किस तरह खत्म होगा सिर्फ 'हृदय-परिवर्तन' की आशा करके और ख्याली पुलाव पका कर या किसी भौतिक आधार पर।

श्री जैनेन्द्र—तो सुनिए, कि सब लिखने वाले ख्याली पुलाव पकाने वाले हैं। मैं इस बारे में भ्रम में नहीं हूँ। दुनियाँ के और इतिहास के सभी लिखने वाले ख्याली पुलाव वाले थे। गोर्की या किसी और नाम पर आप भी भ्रम में न पड़ें। लेकिन एक बात कहदूँ। वह यह कि असली पुलाव से ख्याली पुलाव कम कीमती नहीं। हो तो उसकी ज्यादा कीमत हो सकती है।

आदमी को आदमी खा रहा है सो यह कैसे खत्म होगा? इस भक्षण को रोकने का तरीका मैं एक ही जानता हूँ। वह यह कि भक्षक की श्रेणी में होने की जिसमें सामर्थ्य है, और इतना सुभीता और वक्त है, वह जानबूझ कर भक्षक की श्रेणी से उतर आये और भक्ष्य की श्रेणी में जा मिले। अँग्रेजी में शब्द है haves और have-nots। आप haves में हैं तो सब छोड़ दीजिए, have-nots में हो जाइए। लेकिन कोई have बिना दिल बदले have-nots में कैसे हो जायगा? किसी का माल मता छीन कर उसे सच्चा have-not नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि फिर वह अन्दर-अन्दर माल बटोरने लगेगा। इससे हम अपने भक्षक दिल को रक्षक दिल बनाएँ—इसके सिवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा उपाय नहीं। आदर्श समाज वह होगा जहाँ एक दूसरे से नफा उठाना नहीं, बल्कि एक दूसरे के काम आना चाहेगा।

प्रकाशचन्द्र—एक बात और है। कुछ आलोचकों का मत है कि आप ज्यादातर स्त्री-पात्रों के चित्र बनाते हैं, कहीं सुनीता, मृणाल, कल्याणी आदि। इसे एक तरह का complex कह सकते हैं। आपके पुरुष-पात्र शायद इस श्रेणी में कम पहुँचते हैं। क्या आप इसका कोई कारण बता सकते हैं?

जैनेन्द्र—हाँ, स्त्री-पात्र मेरे उपन्यासों में कुछ अधिक उभर आये हैं। जरूर आलोचक चाहें तो उसे complex कह सकते हैं। आदर्श अर्ध नारीश्वर है। पुरुष हूँ। पुरुष होने का मतलब ही है कि पुरुषत्व की सीमा (male-complex) से बाहर न होना।

प्रकाशचन्द्र—मैं समझता हूँ कि हिन्दी उपन्यास के उत्थान के लिए भारतीय समाज और संस्कृति के रूप प्रकार में क्रान्तिकारी तब्दीलियों की जरूरत है। जब तक सामाजिक परिस्थितियाँ कलाकार को पनपने का मौका न देंगी, कला का प्रौढ़तम विकास कठिन है। अन्त में मैं इस विषय पर आपकी धारणा जानना चाहता हूँ।

जैनेन्द्र—साहित्यिक निगाह से मैं क्या क्रान्ति का भक्त नहीं हूँ? लेकिन क्रांन्ति से पहले रूस में जो साहित्य उपजा, उसका क्या पासंग भी अब मिलता है? व्यक्ति और समाज के अनमेल से साहित्य में चमक आती है। सच पूछिए तो प्रतिभा को मैं बुराई का लक्षण मानता हूँ। जहाँ अव्यवस्था है, प्रतिभा का जन्म वहीं होता है। सुव्यवस्थित समाज हो तो प्रतिभा की आवश्यकता ही न हो। पर प्रतिभा की आवश्यकता निश्शेष कभी होने वाली नहीं है। इस से यह भी मान लीजिए कि स्वर्ग पूरे तौर पर कभी छाती पर उतरने वाला नहीं है, यानी क्रान्ति की आवश्यकता आज की या कल की, इस युग की या उस युग की नहीं बल्कि वह तो हर घड़ी और हर पल की आवश्यकता है। शायद क्रान्ति का अर्थ मैं आप से भिन्न लेता हूँ और मैं मानता हूँ कि सामाजिक परिस्थितियाँ सुभीता पहुँचा कर नहीं बल्कि रुकावट डाल कर साहित्यिक प्रतिभा को चेताया करती हैं। मैं उस दिन को मुसीबत का दिन समझूंगा जब हर लेखक को मौका होगा कि वह लखपती बन जाय। पर आइए, बहुत हुआ। आपके सवालों के कष्ट के लिए मैं आभारी हूँ। मैं तो बस इतना चाहता हूँ कि साहित्य को आलोचना के शास्त्र की ओर से नहीं, जीवन के विवेक की ओर से लिया जाय।

नोट—श्री जैनेन्द्रकुमारजी और श्री प्रकाशचन्द्रजी की यह बहस जो २४ जौलाई सन् १९४१ ई० को अखिल भारतीय रेडियो स्टेशन देहली से ब्रॉडकास्ट की गयी थी डाइरेक्टर महोदय के सौजन्य से यहां दी गयी है।

* * *

उपन्यास-अङ्क का दूसरा खण्ड

हमारे अनेक पाठक और लेखक उक्त अङ्क के संबंध में हमसे पूछते रहते हैं। उनकी विनम्र सेवा में हम निवेदन करना चाहते हैं कि उपन्यास-अङ्क के दूसरे खण्ड की सामग्री का धीरे-धीरे संकलन हो रहा है। हम अपने विशेषांक, केवल विशेषांक नाम के गौरव के लिए नहीं निकालते। लेकिन प्रयत्न करके हिन्दी की सेवा में एक ऐसा पुष्प अर्पित करना चाहते हैं जिसकी महक देर तक रहे, और उसकी स्मृति और भी अधिक समय तक। इसके लिए समय की आवश्यकता होती ही है। विद्वानों से अपने मन की तथा उपयोग की चीज सहज ही लिखा लेना कोई आसान काम नहीं है। फिर भी हम शीघ्र ही प्रयत्न कर के अङ्क निकाल देना चाहते हैं। पाठकों को न निराश होने की आवश्यकता है, न शीघ्रता करने की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थशास्त्र का सिद्धान्त-साहित्य

[श्रीभगवानदास केला]

गत वर्षों में अर्थशास्त्र सम्बन्धी साहित्य पहले की अपेक्षा अधिक प्रकाश में आया है, तथापि अभी तक इसकी अच्छी पुस्तकें इनी-गिनी हैं। सिद्धान्त सम्बन्धी मौलिक पुस्तकों में, कई एक पुस्तकें तो अर्थशास्त्र के किसी भाग-विशेष सम्बन्धी ही हैं—यथा, उत्पत्ति (लेखक श्री बालकृष्णजी एम० ए०), अर्थशास्त्र (प्रथम भाग, उत्पत्ति और उपभोग, लेखक–श्री राजेन्द्रकृष्ण कुमार), सम्पत्ति का उपभोग (लेखक–श्री दयाशंकरजी दुबे, एम० ए०, और मुरलीधरजी जोशी एम० ए०), धन की उत्पत्ति (लेखक–श्री दुबे और केला), राजस्व (लेखक–श्री केला)। अन्य पुस्तकें छोटी-छोटी हैं या भारतवर्ष की परिस्थिति को ध्यान में रख कर लिखी गयी है, अथवा भारतीय अर्थशास्त्र की हैं। इनमें सिद्धान्त को स्पष्ट करने की गुञ्जायश स्वभावतः कम रहती है, बहुत संक्षेप में ही उसकी चर्चा हो पाती है।

पिछले वर्ष सिद्धान्त सम्बन्धी दो अच्छी पुस्तकें हिन्दी संसार में प्रस्तुत हुई हैं। (१) अर्थशास्त्र की रूपरेखा। (२) अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त। इनमें से पहली पुस्तक के लेखक हैं, श्री प्रोफेसर दयाशंकरजी दुबे एम० ए०। इसमें उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय और वितरण का विवेचन है। बड़े आकार के इसमें लगभग पाँच सौ पृष्ठ की सामग्री है। इसकी वर्णन शैली मनोरञ्जक है, कहानी या वार्तालाप-मूलक। दूसरी पुस्तक के लेखक हैं, श्री भगवानदासजी अवस्थी एम० ए०। पुस्तक में लेखक का वक्तव्य नहीं है। इसकी भूमिका लिखी है श्री दुबेजी ने, एक पृष्ठ में। इस पुस्तक का क्षेत्र वही है, जो पहली पुस्तक का है। परन्तु इसमें अनावश्यक बातें नहीं हैं, साधारण आकार के सवा चारसौ पृष्ठ में ठोस सामग्री दी हुई है। प्रत्येक बात को उदाहरण, तालिका या कोष्ठक आदि द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया है। कई स्थानों पर किसी मत के पक्ष एवं विपक्ष की बातों का सुन्दर उल्लेख हुआ है। इस प्रकार हिन्दी के अर्थशास्त्र साहित्य में यह अपना विशेष स्थान रखती है। श्री अवस्थीजी ने अर्थशास्त्र का अच्छा अध्ययन किया है, और उनके द्वारा हिन्दी-संसार को यह कृति दी जाने पर प्रत्येक हिन्दी-अर्थशास्त्र प्रेमी को हर्ष होना स्वाभाविक है। प्रकाशक (हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी प्रयाग) ने इस उपयोगी पुस्तक का मूल्य, केवल १॥) डेढ़ रुपया रख कर इसे सर्व साधारण तक सुविधा-पूर्वक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अतः लेखक और प्रकाशक दोनों को बधाई।

अवश्य ही यह समझना अनुचित होगा कि पुस्तक निर्दोष है। कुछ भूलें तो चिन्तनीय हैं। विषय-सूची आदि के १६ पृष्ठों के बाद पुस्तक का वास्तविक विषय सत्रहवें पृष्ठ से आरम्भ होता है। और उसका पहला वाक्य ही यह है:—'अर्थशास्त्र में मनुष्यों के हितों के और सम्पत्ति के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।' यहां भाषा अस्पष्ट और भ्रम-मूलक है। अर्थशास्त्र में मनुष्य के केवल आर्थिक या सम्पत्ति सम्बन्धी हितों का विचार किया जाता है। लेखक का यह कहना है कि "अर्थशास्त्र में मनुष्य के हर पहलू का अध्ययन किया जाता है" (पृष्ठ २२) अशुद्ध है। चौथे अध्याय में वस्तुओं का वर्गीकरण सूचित करने वाला नकशा (वंश वृक्ष) दिया गया है, वह भी अशुद्ध है।

पुनः 'पूंजी' शीर्षक बारहवें अध्याय में लेखक कहता है कि "उत्पादक सम्पत्ति के भी दो भेद होते हैं–(अ) एक तो वह जो मनुष्य द्वारा उत्पन्न न की गयी हो, वरन् प्रकृति की देन हो, जैसे भूमि और अन्य प्राकृतिक देन।" इस प्रकार लेखक ने भूमि या प्राकृतिक देन को उत्पादक सम्पत्ति या पूंजी का एक भेद मान लिया है और यह सर्वथा अशुद्ध है। लेखक पहले कह चुका है, और ठीक ठीक कह चुका है कि "उत्पत्ति के साधन पांच हैं, भूमि, श्रम, पूंजी, प्रबन्ध, साहस" (पृष्ठ ६०), और "भूमि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति की देन है। अर्थशास्त्र में, भूमि में वे सब वस्तुएँ समावेशित हो जाती हैं, जो मनुष्य के श्रम के कारण उत्पन्न न की गयी हों, और जो धनोत्पत्ति के काम में जरूरी हों।" (पृष्ठ ६२)। ये दोनों कथन परस्पर विरोधी हैं। पूंजी और भूमि उत्पत्ति के दो स्वतंत्र और पृथक-पृथक साधन हैं। दूसरा पहले का भेद नहीं हो सकता।

अर्थशास्त्र आदि वैज्ञानिक विषयों के लेखक प्रायः भाषा की इतनी परवाह नहीं करते, जितनी भावों को स्पष्ट करने की। तथापि यह तो आवश्यक है कि भाषा अस्पष्ट या भ्रम-मूलक न होने पाये। खेद है कि इस पुस्तक के कई स्थलों पर ऐसा प्रतीत हुआ है कि लेखक महाशय ने इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया।

अब पारिभाषिक शब्दों की बात। लेखक की सहायक पुस्तकों में 'अर्थशास्त्र शब्दावली' भी रही है और उन्होंने अधिकांश ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया है जो प्रायः सर्वमान्य हैं, यह बहुत अच्छी बात है। हां कुछ शब्दों के सम्बन्ध में और अधिक सावधानी की जाती तो अच्छा था। कुशलता क्षमता (पृष्ठ ४१०) की जगह कार्यक्षमता और उत्पादक के साधन (पृष्ठ ४२०) की जगह उत्पत्ति के साधन होना बेहतर है।

पुस्तक का एक दोष इसके प्रूफ में अशुद्धियां अधिक रहना है। हिन्दुस्तानी ऐकेडमी से प्रकाशित पुस्तक में ऐसी अशुद्धि छपने की हमें बिलकुल आशा न थी। स्थान-स्थान पर गलतियों की भरमार है 'अनस्थिर बातों' (पृष्ठ २७), "(१) सैद्धान्तिक और (२) सैद्धान्तिक" (पृष्ठ ३२), व्यैयक्तिक (पृष्ठ ३३, और ४५), परमाण (पृष्ठ ४३), 'जो श्रम देहात कुशल श्रम समझा जायगा वही श्रम औद्योगिक नगरों में साधारण श्रम में माना जा सकता है।' (पृष्ठ ८८), 'साधारण और कुशलता दोनों तरह का काम करना पड़ता है' (पृष्ठ १३८), इत्यादि। कुछ अशुद्धियाँ तो पाठकों को बहुत ही भ्रम में डाल सकती हैं, उदाहरणवश पृष्ठ २२६ में ७॥ की जगह ७२ छपना, पृष्ठ ३११ से ३३६ तक के पृष्ठों का २२१, २२२, २२३ आदि छपना, पृष्ठ ३२७ (जो २२७ छपा है) में साधनों के उपयोग की जगह 'साधना का उपयोग' छपना आदि।

इन त्रुटियों का दूसरे संस्करण में सहज ही निवारण हो सकता है, और इनके होते हुए भी पुस्तक की उपयोगिता में सन्देह नहीं है, पाठकों को इससे यथेष्ट लाभ उठाना चाहिए, जिससे प्रकाशक को इसका नया संस्करण शीघ्र प्रकाशित करने का अवसर आये, तथा वह अर्थशास्त्र सम्बन्धी और भी उपयोगी साहित्य प्रकाशित करने के लिए प्रोत्साहित हो। जहाँ तक हमें मालूम है, ऐकेडेमी ने अर्थशास्त्र सम्बन्धी अन्य पुस्तकों की कीमत काफी अधिक रखी है। कुछ ही समय हुआ इसी पुस्तक के आकार की केवल डेढ़ सौ पृष्ठ की एक पुस्तक का मूल्य उसने एक रुपया रखा था। अब उससे तिगुने पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य इस मँहगी समय में भी, डेढ़ रुपया रखना निस्सन्देह हर्ष का समाचार है। क्या हम आशा करें कि ऐकेडेमी अब भविष्य में पुस्तकों का मूल्य कम रखने की इस नीति को निभायेगी?

बन्धुवर श्री अवस्थीजी से निवेदन है कि अपनी विभिन्न प्रवृत्तियों से अवकाश निकाल कर अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की एक और पुस्तक हिन्दी-संसार को भेंट करें। उस पुस्तक में मुद्रा, महाजनी, (बैंकिंग), राजस्व और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि उन सब विषयों का समावेश हो, जो इस पुस्तक में नहीं आये हैं। उनकी दोनों पुस्तकें एक दूसरे की पूरक होंगी और उनसे पाठकों को अर्थशास्त्र के सब भागों के सिद्धान्तों का ज्ञान होगा।

नोटः— मालूम हुआ है कि श्री दुबेजी की अर्थशास्त्र सिद्धान्त सम्बन्धी एक पुस्तक छप रही है, उसका नाम है 'सरल राजस्व'। इसकी वर्णन शैली कथात्मक है। हर्ष की बात है, श्री दुबेजी और जोशीजी की 'सम्पत्ति का उपयोग' का दूसरा संस्करण छप रहा है। यह पुस्तक बहुत समय से अप्राप्य थी।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक कवि : महादेवी वर्मा

[श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन]

पिछली पीढ़ी के आरम्भ में कविता के क्षेत्र में एक शब्द नये आविष्कार के उत्साह के साथ आया था। कुछ एक वर्षों तक क्रमशः उन्नति के पथ पर चलता हुआ यह शब्द चरम उत्कर्ष की अवस्था तक पहुँचा लेकिन इस पीढ़ी के आरम्भ में अचानक ही उस शब्द का मान घटने लगा और गिरते-गिरते यहां तक नौबत आ गयी कि वह एक शिष्ट गाली समझा जाने लगा। वह शब्द था 'छायावाद'। पिछले दो-एक वर्षों में छायावाद की अवहेलना सहसा घनी होकर विरोध के रूप में प्रकट होने लगी है और आये दिन छायावादियों की भर्त्सना होती रहती है।

इस परिस्थिति में श्रीमती महादेवी वर्मा के नये काव्य-संग्रह का प्रकाशन अपना एक विशेष महत्व रखता है। इस संग्रह की कविताएँ नयी नहीं हैं, किन्तु उनका संकलन नया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आधुनिक काल के प्रतिनिधि कवियों की संग्रहीत रचनाएँ प्रकाशित करने की योजना की है, इसी योजना के अन्तर्गत यह पहला संग्रह है। इसमें महादेवीजी ने अपनी प्रकाशित रचनाओं में से स्वयं ७५ कविताएँ चुन दी हैं जो उनकी दृष्टि से सर्वोत्तम हैं। एक लम्बी भूमिका में उन्होंने काव्य के सम्बन्ध में अपने विचार भी प्रकट किये हैं, और आधुनिक कविता के साथ अपनी कविता के सम्बन्ध या असम्बन्ध का भी विवेचन किया है।

इस विषय में विवाद हो सकता है कि जो रचनाएँ संग्रह में रक्खी गयीं हैं वास्तव में वही कवि की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं या नहीं। मैं ही क्यों न कहूँ कि बिना पुराने संग्रहों के साथ मिला कर देखे भी मैंने अनुभव किया कि मेरी कुछ एक अत्यन्त प्रिय कविताएँ इस संग्रह में नहीं हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में विवाद कुछ विशेष फलप्रद हो सकता है ऐसा नहीं जान पड़ता। अगर कवि को यह अधिकार है कि वह लिखने के बाद कुछ कविताएँ न भी छपाए, तब हमें उसका यह अधिकार स्वीकार करने में आपत्ति न होनी चाहिए कि वह प्रकाशन के बाद भी कुछ कविताओं को महत्व दे और कुछ को अनदेखी कर जाए। यदि निर्वाचन से हमारा मतभेद हो, तो अधिक-से-अधिक रुचि-वैचित्र्य ही समझ लिया जा सकता है। चुनी हुई कविताएँ अगर घटिया हों, तब अवश्य आलोचक को कुछ कथनीय हो सकता है, और इस दृष्टि से प्रस्तुत संग्रह के सम्बन्ध में विशेष कुछ कथनीय नहीं जान पड़ता। महादेवीजी उच्चकोटि की कवि और कलाकार हैं। इस परिचित सत्य को इस संग्रह की कविताएँ प्रमाणित करती हैं। कोमल और बहुधा करुण भाव-धारा, सुघर-संयत शब्दावली, मँजी हुई शैली और असाधारण लयमयता—महादेवीजी की कविता के सब गुण इस संग्रह में झलकते हैं। अपनी कविता की चर्चा करते समय महादेवीजी ने स्वयं एकाधिकबार बुद्ध अथवा मीराबाई अथवा रहस्य वादियों का नाम लिया है। उनकी कविता में करुणा है, किन्तु बुद्ध की-सी व्यापक करुणा नहीं; आत्म निवेदन है, किन्तु मीराबाई जैसी निरपेक्ष तन्मय आत्म विस्मृति नहीं; असीम की खोज और हल्का स्पर्शानुभव है, चिन्तन है, किन्तु रहस्यवादियों का अटपटा, अनगढ़, तेजस्वी, दार्शनिक असन्तोष नहीं। मीराबाई की व्याकुलता इतनी व्यक्तिगत है कि कला की निर्व्यक्तिक कसौटी पर खरी नहीं उतरती। रहस्यवादी कबीर का दार्शनिक असन्तोष बहुधा उसके पहले ही से अनमिल छन्दों को नीरस बना देता है। महादेवीजी की कविता चिर कलामय है, सदा रसमय है। यह कलाकार की विजय है; व्यक्ति की आलोचना में अवश्य प्रश्न उठ सकता है कि क्या जीवन-प्रवाह सदा

*आधुनिक कवि : महादेवी वर्मा; प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; मूल्य १।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सर्वत्र इतना सीधा और स्निग्ध हो सकता है, क्या नदी नहर के पाट में बह सकती है ?

प्रस्तुत संग्रह में विशेष ध्यान देने की बात है उसकी भूमिका। यों तो किसी भी कवि का आत्म-विवेचन अथवा अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण माननीय होता है, किन्तु इस संग्रह की भूमिका का विशेष महत्व इसलिए है कि महादेवीजी ने प्राय: अपनी कविताओं के स्पष्टीकरण अथवा अपनी विचारशैली के मंडन का वह प्रयत्न नहीं किया है जो कि आजकल का फैशन है और जिसे प्रगतिवादी इतनी प्रगल्भता के साथ करते हैं। पद्य की तरह गद्य शैली पर भी असाधारण अधिकार रखते हुए भी यह शायद पहला अवसर है कि महादेवीजी ने स्वयं अपने काव्य के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण जनसाधारण के सामने उपस्थित किया है। उनका दृष्टिकोण वस्तुतः छायावाद का स्पष्टीकरण और अनुमोदन है, अतः उनकी तर्क-प्रणाली का संक्षिप्त विवेचन समीचीन होगा।

वस्तु का मूल्य दुहरा होता है। एक का निरूपण उसकी स्थूल उपयोगिता से होता है (utility), दूसरे का उसकी सूक्ष्म भाव-प्रेरणा (aesthetic value) से। दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक, जीवन को केवल बुद्धि-पक्ष से देखता है, इसलिए उसका चिन्तन एकांगी होता है और उसके द्वारा अङ्कित जीवन का चित्र अपूर्ण। उसका जीवन के साथ रागात्मक सम्बन्ध नहीं होता। सम्पूर्णता और सामञ्जस्य साहित्य में ही सम्भव है कविता मानो जीवन का वातायन है। जिस तरह कक्ष के बँधे वायुमण्डल को झरोखा बाहर के मुक्त आकाश से मिलाता है, इसी प्रकार कविता हमारे 'व्यष्टि-सीमित जीवन को समष्टि-व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक सत्य को अपनी-अपनी परिधि में बाँधती है। (दूसरे शब्दों में महादेवीजी काव्य के उसी गुण की ओर संकेत कर रही हैं। जिसे आधुनिक आलोचक निर्व्यक्तीकरण कहता है—व्यक्तिगत अनुभूति को समष्टिगत अनुभूति के साँचे में ढालना)। इतिहास की दृष्टि से देखें तो कविता बारबार चार सीढ़ियों के अनुक्रम में से बीतती रहती है। पहले स्थूल जीवन से सम्बन्ध रखने वाला इतिवृत्त, फिर सूक्ष्म सौंदर्य की भावना, फिर चिन्तन का अत्यधिक प्रसार और अन्त में निर्जीव अनुकृतियाँ। हिन्दी काव्य-परम्परा में वीरगाथा काल, भक्ति-काल और रीति-काल का अनुक्रम इसका प्रमाण है। आधुनिक काव्य में इसी क्रम की आवृत्ति फिर से हो रही है। रीति-काल की प्रतिक्रिया में खड़ी बोली की कविता स्पष्टतया इतिवृत्तात्मक थी और यह लहर इतनी फैली कि मनुष्य की कोमल और सूक्ष्म भावनाएँ विद्रोह कर उठीं। सूक्ष्म का यह विद्रोह ही छायावाद का उद्गम है। अपनी आवश्यकता के अनुसार छायावादी कवि ने खड़ी बोली की सात्विक कठोरता को मांज कर तथा अनेक शब्द नये गढ़ कर एक नयी कोमलतर, भावना-बहुल भाषा का निर्माण किया। छायावाद ने बुद्धि और भावना दोनों का उपयोग करके जीवन में सामञ्जस्य का मार्ग ढूँढ़ निकाला। छायावाद सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह है, न कि यथार्थ के प्रति।

छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के निरूपण से शायद ही किसी का मतभेद होगा, किन्तु इससे आगे जहाँ महादेवीजी आधुनिक मानों के आधार पर छायावाद का मूल्यांकन करती हैं, वहाँ मतभेद अनिवार्य जान पड़ता है। यह ठीक है कि जिस प्रकार अध्यात्म रूढ़ियों में पड़ कर गतिरोधक और विनाशक हो सकता है और अतीतकाल में हुआ है, उसी प्रकार विज्ञान भी एकांगी होकर घातक हो सकता है। यह भी ठीक है कि विज्ञान जीवन को बुद्धि की कसौटी पर परखता है, भावना की नहीं। यह मानने में किसी को आपत्ति न होगी कि विज्ञान का आधुनिक झुकाव विश्लेषणात्मक है, और विश्लेषण से जीवन का अखण्ड रूप नहीं दीखता, खण्ड ही दीखते हैं। किन्तु यह सब मान लेने पर भी इनकी अनिवार्यता सिद्ध नहीं होती। यह आवश्यक नहीं है कि विज्ञान मार्ग रोधक ही हो। विश्लेषण विज्ञान का एक पहलू है। आज के अधिकांश वैज्ञानिक विज्ञान और दर्शन के समन्वय पर जोर दे रहे हैं। बुद्धिवादी भावना को अस्वीकार नहीं करता; वह मानता है कि भावना भी अनिवार्य है। उसका आग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल इतना है कि भावना को अत्यधिक न मान कर उसका और उसे उत्पन्न करने वाली स्थूल परिस्थिति का सम्बन्ध न भुलाया जाय। यह कहना ठीक नहीं है कि इस अन्वेषण से रागात्मक सन्बन्ध की स्थापना नहीं हो सकती। बल्कि यह भी सोचना चाहिए कि सूक्ष्म और स्थूल के सम्बन्ध के ऐसे अन्वेषण के बिना वह निर्व्यक्तीकरण depersonalisation हो कैसे सकता है जिसकी आवश्यकता महादेवीजी ने भी स्वीकार की है। व्यक्तिगत अनुभूति को समष्टिगत अथवा जातिगत अनुभव पर परखने का यह अन्यतम नहीं, उत्तम साधन है। इसकी उपेक्षा के कारण ही छायावाद एक ऐतिहासिक आवश्यकता को पूरा करके भी अधूरा रह गया। उसने रागात्मक सम्बन्ध जोड़ा तो एक काल्पनिक सौन्दर्य लोक के साथ। यहाँ पर स्वयं महादेवीजी का एक वाक्य उद्धृत करना ठीक होगा। यद्यपि हम मानेंगे कि हम उसे प्रकरण से उखाड़ कर ही ले रहे हैं। 'छायावाद के कवि को एक नये सौन्दर्य-लोक में ही यह भावात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन में नहीं; इसी से वह अपूर्ण है।"

'पलायन' का समर्थन भी एक भ्रान्ति पर आश्रित जान पड़ता है। प्रतिक्रिया अथवा क्षतिपूर्ति (Compensation), और पलायन (Escape) में जो सूक्ष्म किन्तु मौलिक मनोवैज्ञानिक अन्तर है, उसे ध्यान में रखा जाता तो कुछ अनावश्यक बातें भूमिका में न आतीं।

आधुनिक काल की विभिन्न धाराओं का विवेचन करते समय महादेवीजी ने प्रगतिवाद की कविता के और भारतीय राष्ट्रीयवाद के बारे में जो विचार प्रकट किये हैं, वे विशेष मननीय हैं। 'आदर्शवाद की विरोध-भावना से उत्पन्न' प्रगतिवादी कला की मौलिक त्रुटियों का विवेचन बहुत मार्मिक है, यद्यपि बुद्धिवाद के सम्बन्ध में जिस भ्रान्त धारणा का उल्लेख मैंने अभी किया उससे वह भी अंशतः दूषित है। अर्थात् जो त्रुटियाँ प्रगतिवाद की आधुनिक धारा में हैं, वे अनिवार्यतः प्रगतिशीलता में होंगी ही ऐसा नहीं है।

'कवि जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर जीवन में घुलमिल जावे', यह परामर्श शुभ है। सम्भव है ऐसा करने से बहुत-से कवि कविता छोड़दें, और यह कवि और कविता दोनों के लिए शुभ हो। यद्यपि जब महादेवीजी कहती हैं कि उनकी कविता 'उनके विश्राम के क्षणों का ही प्रतिविम्ब' है, और 'शेष जीवन वे वहाँ देंगी, जहाँ उसे देने की आवश्यकता है', तब उनकी स्पष्टवादिता का आदर करते हुए आलोचक एक संशय से भर उठता है कि क्या ऐसी कविता में जीवन का वह सम्पूर्ण सामञ्जस्य मिल सकता है?

* *

शुक्ल-अङ्क की समाप्ति—

हमारे शुक्ल अङ्क का आशा से अधिक हिन्दी में स्वागत हुआ। हिन्दी के लगभग सभी मासिक, साप्ताहिक और दैनिकों ने इस अङ्क की लम्बी-लम्बी चर्चाएँ छापीं और हिन्दी के सभी विद्वानों ने व्यक्तिगत पत्र लिख कर संपादकों के प्रयत्न की सराहना की, जिसके लिए हम सभी के निकट अत्यन्त कृतज्ञ हैं और हम समझते हैं कि यह उन्हीं के सहयोग और सदभावनाओं का फल है कि तीन ही महीनों में शुक्लांक की इतनी खपत हुई कि आज उसका एक भी अङ्क स्टाक में बाकी नहीं है।

अस्तु आगे से हम अपने ग्राहक शुक्ल-अङ्क से न बना सकेंगे और न फुटकर बिक्री के लिए ही गुंजायश है। किन्तु हम यह अवश्य चाहते हैं कि ग्रंथ रूप में या फिर अङ्क रूप में ही इसको दुबारा प्रकाशित किया जाय। और यह ऐसी अवस्था में सम्भव है जब कि २५० प्रतियों के आर्डर हमारे पास पेशगी आजायँ। इस प्रकार शुक्लांक चाहने वाले सज्जनों को पेशगी रुपया नहीं भेजना पड़ेगा, सिर्फ तीन पैसे के पोस्टकार्ड में अपना पता लिख कर अपनी प्रति सुरक्षित करा लेनी पड़ेगी। आशा है कि शुक्ल-अंक के पुनर्मुद्रण की इस व्यवस्था में शुक्ल-अङ्क से वंचित पाठक हमें अवश्य ही सहयोग देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त रश्मि* सेठ गोविन्ददासजी के एकांकी

[श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह]

"वाक्यं रसात्मक काव्यम्" से जान पड़ता है कि वाक्यों का रसात्मक रूपक ही काव्य है और "काव्येषु नाटकं रम्यं" से प्रकट होता है कि काव्य का भी रमणीय रूप नाटक है। वैसे नाटक भी काव्य का ही एक अङ्ग माना गया है और श्रवण की मधुरता के कारण काव्य को श्रव्य काव्य और दर्शन की रमणीयता के कारण नाटक को दृश्य काव्य कहा गया है। चाहे यह परिभाषा एकांगी भले ही हो किन्तु इसमें दोनों के मुख्य लक्षणों का वर्णन आ जाता है। काव्य का अङ्ग माने जाने ही के कारण प्राचीन संस्कृत नाटकों में हमें लम्बे-लम्बे कवित्वपूर्ण वर्णनों की भरमार तथा श्रावण-सुखद समासबद्ध संवादों की प्रचुरता मिलती है। क्या भारत और क्या यूरोप सभी जगह नाटक इसी प्रकार के होते थे।

एक समय आया जब नाटकों को श्रवणीय की अपेक्षा अधिक दर्शनीय बनाने की ओर प्रवृत्ति हुई। और इसी कारण आधुनिक नाटकों में पद्य की अपेक्षा गद्य का प्राधान्य हुआ—हिन्दी में तो भारतेन्दु-युग तक यह प्रथा (पद्य के आधिक्य की) चलती आयी और पारसी नाटक कम्पनियों के कई नाटकों में अभी तक पायी जाती है। यूरोप में इस सुधार के नेता प्रसिद्ध नाटककार इब्सन हुए। जिनका अनुकरण प्रायः सभी देशों के नाटककारों ने किया। नाटकों का विवेचन करने के लिए उनके उद्देश्यों की कुछ चर्चा आवश्यक है।

नाटककार का काम उपदेशक का है अथवा कवि का? यदि हम ऊपर कहे हुए नाटक के मुख्य लक्षण रमणीयता को ध्यान में रक्खेंगे तो नाटककार कवि के अधिक समकक्ष होगा। बल्कि श्रवण की अपेक्षा दर्शन अधिक शीघ्र परिणाम-जनक होने के कारण नाटक जनता के चित्त पर अधिक स्थाई प्रभाव उत्पन्न करने वाला सिद्ध होगा। चाहे हम नाटक का उद्देश्य जनता को शिक्षा देना अथवा उसका मनोरञ्जन करना—कुछ भी मानें किन्तु परिणाम की दृष्टि से नाटक दोनों का उत्तम साधन है। रस्किन के शब्दों में—"मैं तो उस वस्तु को कला की सब से महान् वस्तु मानता हूँ जो किसी भी मार्ग द्वारा हृदय में सब से अधिक महान् विचारों को उत्पन्न कर सके।"

इस प्रकार यदि महान् विचारों को उत्पन्न करना ही हमारा उद्देश्य है तो उसके लिए सब से उत्तम मार्ग खोजना होगा और यह निर्विवाद है कि काव्य अपनी रसात्मकता के द्वारा महान् विचारों को जितना ग्राह्य नहीं बना सकता उससे भी अधिक नाटक अपनी रमणीयता के कारण उन्हें चित्त-पटल पर स्थाई कर देता है। काव्य में जो बात मानसिक अप्रत्यक्ष रहने के कारण छायामात्र रहती है वह नाटक के चाक्षुष प्रत्यक्ष के कारण स्पष्ट चित्र बन जाती है। मेरे विचार से तो नाटककार कवि और चित्रकार दोनों की सम्मिलित और इसी कारण दोनों से अधिक प्रभावशाली मूर्ति है। कवि के भाव-चित्रण में रेखाओं की जो कमी रहती है तथा चित्रकार के रेखा-चित्रण में शब्दों की जो कमी रहती है) नाटककार रङ्गमञ्च पर अपनी मुखर-मूर्तियों द्वारा उसकी पूर्ति कर जन-मन पर एक अमिट छाप लगा देता है।

प्राचीन काल से नाटक शिक्षा की अपेक्षा मनोरञ्जन के ही साधन अधिक रहे। अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि वे 'गुरु सम्मित' उपदेश-परम्परा की अपेक्षा 'कान्ता सम्मित' उपदेश-प्रणाली के प्रतीक रहे। वे रमणीयता के भीतर छिपा हुआ ऐसा उपदेश दे जाते हैं जो कि अन्तः मानस पर छिपे-छिपे अपनी छाप लगा देता है। इस प्रकार उपदेश या मनोरञ्जन दोनों की दृष्टि से नाटकों का विशेष महत्व है।

हाँ, तो हम नाटक में परिवर्त्तन की चर्चा कर रहे थे। युग के साथ प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता है। जिस

* सप्त रश्मि—लेखक सेठ गोविन्ददास। प्रकाशक—किताबिस्तान, प्रयाग; मूल्य २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ने इस युग को 'त्वरा युग' कहा है उसने इस युग का यथार्थ चित्र खींचा है। प्रत्येक वस्तु में हमें समय-संकोच रहता है। इसीलिए जिस संकोच ने थोड़े समय में अधिक दूर ले जाने वाले त्वरितवाहनों, थोड़ी देर में अधिक काम करने वाले त्वरायंत्रों तथा अधिक आदमियों की जगह थोड़े आदमियों से काम चलाने वाले श्रम-संकोचक यन्त्रों को जन्म दिया, उसी समय-संकोच ने साहित्य में बड़े उपन्यासों की जगह कहानियों, महाकाव्यों की जगह स्फुट कविताओं, बड़े चरित्रों की जगह जीवनियों तथा बड़े नाटकों की जगह एकांकी नाटकों को जन्म दिया।

वैसे तो प्राचीन भारत तथा ग्रीस आदि में भी पुरातन काल में भी एकांकियों का उल्लेख मिलता है (प्राक्कथन पृ० ५-६) किन्तु उनका आधुनिक ढङ्ग से विकास यह इसी युग की देन है।

किन्तु यह समयकृत परिवर्तन हुआ, व्यक्तियों द्वारा नहीं। इब्सन तथा पिनेरो आदि नाट्यकारों ने पुरानी अभिनय परिपाटी, पुराने काव्यमय सम्वादों, पुराने लम्बे-लम्बे कथानकों, मनोरञ्जनों, प्रदर्शनों आदि बातों में परिवर्तन करने का अर्थ भी नाटकों को अधिक स्वभाविक बनाना तथा जीवन के अधिक समीप लाना है। प्राचीन काल के सम्पूर्ण नाटकों से भी अधिक एकांकी नाटकों का मुख्य उद्देश्य केवल मनोरञ्जन या शृंगार वर्णन करना ही था जैसा कि भाण, प्रहसन तथा बीथी आदि में प्रकट है। उसी प्रकार योरुप के पन्द्रहवीं सदी के आफ्टर पीसेज (after pieces) तथा अठारहवीं सदी के कर्टेन रेजर (curtain raiser) आदि में भी बड़े नाटकों के आरम्भ, मध्य या अन्त में मनोरञ्जन ही करना मुख्य उद्देश्य होता था। नवीन परिवर्तन में केवल मनोरञ्जन के बदले किसी खास समस्या को लेकर मनोरञ्जक ढङ्ग से उपस्थित करना एकांकी नाटकों का काम हो गया।

आधुनिक काल में हिन्दी के नाट्य-साहित्य में तीन युग माने जा सकते हैं—भारतेन्दु-युग, प्रसाद-युग तथा आधुनिक युग। भारतेन्दु ने प्राचीन परिपाटी के अनुसार पौराणिक ऐतिहासिक—नाटकों की रचना की। प्रसाद ने प्राचीन गद्य-पद्य-मय परिपाटी तो छोड़दी किन्तु गद्य को सांकेतिक बनाने की परिपाटी शुरू की। उसके बाद आधुनिक काल में एकांकी नाटकों का विकास होना शुरू हुआ है। इस समय में सेठ गोविन्ददास, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी तथा श्री रामकुमार वर्मा आदि प्रमुख हैं। सांकेतिक तथा रहस्यमयी भाषा छोड़ कर जन साधारण के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कथानकों के हाथ में लेने वालों में शायद सेठ गोविन्ददास का विशेष स्थान है।

एकांकी नाटकों की विशेषता क्या है? कथावस्तु परिस्थिति तथा व्यक्तित्व के निर्दशन में मितव्ययिता और चातुरी ही एकांकी नाटकों की विशेषता मानी गई है। आकार का केन्द्रीकृत प्रभाव तथा वैयक्तिक और स्थानिक विशेषताओं की केवलता ही एकांकी नाटकों को अधिक सुन्दर बना देती है (सद्गुरुशरण अवस्थी : दो एकांकी नाटक-भूमिका)

सेठजी ने अपने 'सप्त-रश्मि' नामक एकांकी नाटक संग्रह के प्राक्कथन में एकांकी नाटकों की विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया है जिसमें उनकी नाट्यकला पर भी प्रकाश पड़ता है—यूनान के नाटककारों ने जिन तीन सिद्धान्तों की स्थापना की थी वे इस प्रकार हैं:—(१) नाटक घटना का स्थान एक ही हो, (२) उसकी अवधि भी एक ही दिन की घटना तक परिमित हो और (३) वह एक ही कृत्य के सम्बन्ध में हो (प्राक्कथन पृष्ट ७)

इन्हें हम संक्षेप में स्थल-संकलन, काल-संकलन तथा कृत्य-संकलन भी कह सकते हैं। इसे 'समक' या संकलन त्रय (Unities) कहते हैं। सेठजी ने भी इन्हीं आधार पर अपने एकांकी नाटकों की रचना की है और इन्हें निवाहने पर पूरा ध्यान दिया है। सेठजी की दृष्टि में स्थल-संकलन उतना आवश्यक नहीं किन्तु काल-संकलन अनिवार्य है अर्थात् नाटक की घटनाओं को लगातार थोड़े समय के अन्तर में ही होती रहना चाहिए। किन्तु ऐसे अवसर आ सकते हैं जब घटनाओं के बीच में अधिक काल व्यतीत हो जावे। अतः उसके लिए सेठजी ने एक सुन्दर उपाय से काम लिया है। एक ही समय में होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली घटना को बीच के दृश्यों में रख कर मुख्य घटना के पहले होने वाली घटना को उपक्रम तथा बाद की घटनाओं को उपसंहार में रख कर इस काल-संकलन में आपने व्याघात नहीं आने दिया है। कभी-कभी काल-संकलन रहते हुए भी सेठजी ने उपक्रम और उपसंहार का प्रयोग किया है। 'अधिकार-लिप्सा' नाटक में उपक्रम और उपसंहार के बीच में मुख्य दृश्य की योजना बड़ी ही सुन्दर हुई है। अपने एक पिछले नाटक 'प्रकाश' में भी आपने इस प्रकार उपक्रम और उपसंहार का प्रयोग किया है। सेठजी ने काल-संकलन की रक्षा के लिए जो उपाय सुझाया है वह अवश्य ही अन्य नाटककारों का पथ-प्रदर्शक होगा।

उनके नाटकों में काल-संकलन के साथ स्थल-संकलन तथा कृत्य-संकलन भी पूरी तौर से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः एक विचार को ही लेकर उन्होंने अपने एकांकी नाटक लिखे हैं। इस संग्रह के प्रथम नाटक "धोखेबाज" में सट्टा से होने वाली हानियों का मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद प्रदर्शन है। "कंगाल नहीं" में एक पुराने राजघरानों को मजदूरी तक न मिलने का करुणाजनक दृश्य है। "वह मरा क्यों" में अनुभवहीन अधिकारी की विचित्र कल्पनात्मक झाँकी है। "अधिकार-लिप्सा" में अधिकार की रक्षार्थ अपने प्राण तक गवाँ बैठने वाले रईस की मनोवृत्ति का पता लगता है। "ईद और होली" में दो अबोध बालकों के प्रेम के द्वारा हृदय-परिवर्तन बतला कर हिन्दू-मुसलमान एकता का पदार्थ-पाठ दिया गया है। "मानव मन" में रुग्ण पति की लम्बी बीमारी से ऊब कर पति परायणा पत्नी की भी मनोवृत्तियों में कैसा परिवर्तन हो सकता है इसका चित्र है। अन्तिम नाटक "मैत्री" में दो स्नेही हृदयों के बीच क्षुद्र स्वार्थ के कारण भेद पड़ने और फिर उस पर लात मार एक अभिन्न हृदय हो जाने का सुन्दर चित्रण है।

सेठजी ने एकांकी नाटकों के लिए जो सिद्धान्तवाक्य रखा है वह इस प्रकार है :—

"जिस एकांकी नाटक में जितना बड़ा विचार होगा उस विचार के विकास के लिए जितना स्पष्ट और तीव्र संघर्ष होगा, उस विचार और संघर्ष के लिए जितनी स्पष्ट और मनोरञ्जक कथा होगी, जितने कम चरित्र और उन चरित्रों का जितना विशद चरित्र-चित्रण होगा तथा जितनी स्वाभाविक कृति एवं कथोपकथन होंगे वह उतना ही सफल होगा" (प्राक्कथन पृष्ठ १४)।

आइये, अब इसी कसौटी पर हम स्वयं सेठजी के एकांकियों को कसें। विचारों के विषय में तो हम देख चुके। विचार-संघर्ष हमें 'मैत्री' तथा "मानव मन" में सब से अधिक दीख पड़ता है। "धोखेबाज" की कथा सब से मनोरञ्जक है। पात्रों की संख्या सेठजी के नाटकों में कम से कम तीन और अधिक से अधिक दस है। चरित्रों का विशद चित्रण "अधिकार लिप्सा" और "धोखेबाज" में अच्छा हुआ है। स्वाभाविकता जो इन सब बातों में प्रधान है प्रायः सभी नाटकों में फूटी पड़ती है। 'प्रायः' कहने का यह अर्थ कि 'मानव मन' में पति की बीमारी से ऊब कर भारतीय नारी का उसकी मृत्यु की इच्छा करना जरा अस्वाभाविक जान पड़ता है। रहे कथोपकथन, सो उनकी स्वाभाविकता तो मुहाविरेदार भाषा तथा पात्रों से उनकी निजी बोली बोलवाने से और भी बढ़ गयी है।

सेठजी के नाटकों की सब से बड़ी विशेषता है उनकी स्वाभाविकता और स्पष्टता। किसी ने ठीक ही कहा है कि "स्पष्टता ही सच्ची कला है, स्पष्टता के बिना कला बिना अर्थ की कला है।"

नाटकों के कई वाक्य बड़े मार्मिक हैं—

बड़े राजा—मां, हमें पिनसन मिलती है। हम महाराजाधिराज राजाराजेश्वर संग्रामशाह और महारानी दुर्गावती के कुल के हैं। हमारी बड़ी इज्जत है, हमारा बड़ा मान है, हमारी आमदनी चाहे तीन पैसा रोज ही हो पर हमें कंगालों की रोजन्दारी दो आना रोज कैसे मिल सकती है ? (कंगाल नहीं)

राजा के वंशजों को मजदूरी तक न देकर उनके "मान और इज्जत" की बात करना कितनी मर्मान्तिक वेदना पहुँचाता है।

× × ×

कृष्ण वल्लभः—अभी भी तुम्हें आशा है ? प्रिये !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा की जगह न होते हुए भी कई दफा मनुष्य आशा को मन में हँसने का बलात्कार करना है। इस तरह की आशा अपने आपको धोखा देने की कोशिश करना है। यह झूंठी आशा है। (मानव मन)

× × ×

दानमल—सट्टा ? फाटका ? हाँ सट्टा फाटका। कितने बने इस सट्टे फाटके में। इस समय के सभी दानवीर तो। सट्टा फाटका—यानै जुआ। और ये सब जुआड़ी। कौन इन जुआड़ियों का मान नहीं करता ? कौन इन धनवानों की इज्जत नहीं करता ? बड़े-बड़े धर्माचार्य, बड़े-बड़े समाज सेवक, बड़े-बड़े राजनैतिक नेता.......अरे-अरे सभी तो, इसके चारों ओर घूमते हैं। इसकी पद-वन्दन करते हैं। (धोखेबाज)

इसके अतिरिक्त दृश्यों के प्रारंभ में जो ब्राकिटों में प्रारम्भिक वर्णन है, वे कहीं-कहीं लम्बे हो गये हैं। कई नाटककारों के मत से यह अनावश्यक है किन्तु कभी-कभी दृश्य का चित्र स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक भी हो जाता है। जैसे "धोखेबाज" में सट्टा बाजार का विस्तृत विवरण दृश्य को यथार्थता देने के लिए आवश्यक है। यह इतना बारीक है कि सट्टे बाजार का आँखों देखा चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। बिना प्रत्यक्ष अनुभव और दर्शन के लेखक के लिए इस प्रकार के चित्र खींचना असम्भव है। "धोखेबाज", "वह मरा क्यों" तथा "अधिकार लिप्सा" बड़े सुन्दर प्रहसन हैं जो कि अन्य नाटकों के साथ बड़ी अच्छी तरह खेले जा सकते हैं।

"अधिकार लिप्सा" में वैद्य, तांत्रिक तथा डाक्टरों की अपनी-अपनी विशेष बोलियों में अपने विषयों का प्रतिपादन बड़ा ही विनोद उत्पन्न करती है। जैसेः—

गंगाधर राव—"विशुद्ध कूप जल एक मृत्तिका के पात्र मध्य अग्नि पर धरिये ; जब अर्ध भस्म हो जाय तब शेष अर्ध को रजत पात्र में शनैः शनैः शीतल कर सुवर्ण के चम्मच से तृषाकाल बीच दीजिए।

इस प्रकार यह संग्रह हास्यरस प्रधान होने पर भी इसमें शृंगार और शान्त रसों का भी आस्वाद मिल जाता है—कहा जा चुका है कि प्रारम्भ काल में एकांकियों का उद्देश्य मनोरंजन करना था किन्तु इस शिष्ट विनोद के भीतर से भी हमारे हृदय में सट्टा की बुराइयों तथा अधिकार लिप्सा के प्रति जो घृणा के भाव उत्पन्न होते हैं वे अमिट हैं। क्योंकि इनके नायकों का अन्त मृत्यु में दिखा कर लेखक ने इतनी विफलता का चित्र हमारे हृदय में स्थाई कर दिया है।

गोविन्ददासजी आप अपने आसपास के जीवन को जैसा पाते हैं उसी प्रकार उसे उपस्थित कर देते हैं और वह भी सरल भाषा और थोड़े शब्दों में। वे सरल और स्वयंसिद्ध सिद्धान्तों को सीधे और सरल तरीके से उज्ज्वल नाटकीय रूप में उपस्थित करते हैं, उनमें कोई गूढ़ रहस्यवाद नहीं होता, उनका मतलब वही होता है जो वे कहना चाहते हैं। वे कोई सुधारक या मसीह बन कर नहीं उतरते। वे यथार्थता को उपस्थित करने वाले नाटककार हैं। वे उपदेशक नहीं, कलाकार हैं और यथार्थता के कलाकार हैं। उनके चरित्र अति प्राकृत देवता या दानव नहीं हैं बल्कि जीते-जागते गुण दोषमय मानव हैं। उनके नाटक यथार्थता की प्रतिकृतियां हैं, आदर्श के अनुकरण नहीं। इब्सन के शब्दों में "नाटक का काम कोई प्रश्नों का उत्तर देना नहीं बल्कि स्वयं प्रश्न पूछना है। उनका काम मानव का चित्रण है मानव मनोविकारों का चित्रण है, सामाजिक परिस्तिथियों के बीच उनके मानसिक संघर्ष का चित्र कला है। उनका काम शब्दों के द्वारा आपको सुनने के लिए, बाध्य करना है। अनुभव करने के लिये बाध्य करना, और देखने के लिए बाध्य करना है।" हम यह कहने में गौरव अनुभव करते हैं कि सेठजी इब्सन के इस आदर्श की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते चले जा रहे हैं। हम आशा करते हैं कि सेठजी नाट्य-साहित्य में एक नवीन आदर्श हमारे सामने रखेंगे और अपने नाटकों द्वारा हमारी मातृभाषा के एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति करेंगे।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-गद्य की प्रगति का काल-विभाग

[श्री प्रेमनारायण टण्डन]

हिन्दी साहित्य का जो काल-विभाग स्वर्गीय पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल ने किया था, मुख्यतः वह काल की प्रगति से सम्बन्ध रखता है। हिन्दी-गद्य के प्रगति-काल को उन्होंने अपने इतिहास के प्रथम संस्करण में—

(१) गद्य-साहित्य का आविर्भाव।

(२) गद्य-साहित्य का प्रसार।

(३) गद्य-साहित्य की वर्तमान गति।

इन तीन प्रकरणों में विभाजित किया है। यह विभाजन रचना-प्रकार, अथवा रचना-प्रसिद्धि की दृष्टि से नहीं है, इसी से स्थूल और अस्पष्ट है। इधर शुक्लजी के इतिहास का नया संस्करण प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने गद्य की प्रगति को निम्नलिखित पाँच शीर्षकों में विभाजित करके विशेष स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है—

(१) गद्य का विकास (आधुनिक गद्य के पूर्व की अवस्था, ब्रजभाषा और खड़ी बोली के गद्य)

(२) गद्य-साहित्य का अविर्भाव

(३) आधुनिक गद्य-साहित्य परम्परा का प्रवर्तन (प्रथम उत्थान)

(४) गद्य-साहित्य का प्रसार (द्वितीय उत्थान)

(५) गद्य-साहित्य की वर्तमान गति (तृतीय उत्थान)

परन्तु हिन्दी-साहित्य के अन्य इतिहास-लेखकों में से अधिकांश ने शुक्लजी के प्रथम काल-विभाजन का अनुकरण करके काम चलाया है। यदि किसी ने कुछ नवीनता दिखलायी है तो इन कालों को—

(१) आदि काल (२) भारतेन्दु युग

(३) द्विवेदी युग (४) आधुनिक काल

ये नाम देने में। इधर हरिऔधजी के "हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास" नामक ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसमें हिन्दी-गद्य की प्रगति काल के शुक्लजी वाले काल-विभाजन को—

(१) आदि काल (२) विकास काल (३) विस्तार काल (४) प्रचार काल (५) वर्तमान काल

नाम देकर प्रगति के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट संकेत करने का प्रयत्न किया गया है। इनकी सार्थकता की व्याख्या भी उन्होंने स्थल-स्थल पर की है। परन्तु किसी ग्रन्थ में अभी तक ऐसा सर्वसम्मत काल-विभाजन नहीं देखने में आया जिसमें साथ-साथ समय भी दिया गया हो। प्रस्तुत लेख में हिन्दी-गद्य की प्रगति को विभिन्न-कालों में विभाजित करके उनका प्रस्तावित समय दिया जा रहा है।

हिन्दी गद्य के नमूने प्रायः तेरहवीं शताब्दी से मिल रहे हैं। अठारहवीं शताब्दी तक इनका क्रम चलता अवश्य रहा परन्तु गद्य की उन्नति नहीं हुई। इसके पश्चात् उसकी प्रगति के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में हिन्दी-गद्य की उन्नति के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया गया। बीसवीं शताब्दी के इन चालीस वर्षों में इस कार्य में हमारे साहित्य-सेवियों को उचित सफलता मिली है। इस क्रम को दृष्टि में रख कर हम हिन्दी-गद्य के प्रगति-काल को निम्नलिखित कालों में विभाजित कर सकते हैः—

(१) प्राचीन-चिन्ह काल (सन् १४०० से १८००तक)

(२) प्रगति-चिन्ह काल (सन् १८०० से १८२५ तक)

(३) प्रगति-प्रस्तावना-काल (सन् १८२५ से १६०० तक)

(४) प्रगति-काल पूर्वार्द्ध (सन् १६०० से १६२० तक)

(५) प्रगति काल—उत्तरार्द्ध (सन् १६२० से १६४०तक)

(५) वर्तमान प्रगति (सन् १६४० से—)

उक्त कालों का नामकरण जिस उद्देश्य को लेकर दिया गया है उसकी ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है। 'समय' के प्रश्न को लेकर यहाँ थोड़ी व्याख्या भी की जाती है—

(१) प्राचीन चिन्ह-काल—इस नाम की विशेषता और उपयुक्तता के सम्बन्ध में, मैं समझता हूँ, किसी को कुछ कहना नहीं होगा। 'समय' के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। सन् १४०० से १८०० तक हिन्दी-गद्य के जो चिन्ह मिलते हैं वे न तो साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्व के हैं और न शैली अथवा भावा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा की जगह न होते हुए भी कई दफा मनुष्य आशा को मन में हँसने का बलात्कार करना है। इस तरह की आशा अपने आपको धोखा देने की कोशिश करना है। यह झूंठी आशा है। (मानव मन)

× × ×

दानमल—सट्टा ? फाटका ? हाँ सट्टा फाटका। कितने बने इस सट्टे फाटके में। इस समय के सभी दानवीर तो। सट्टा फाटका—याने जुआ। और ये सब जुआड़ी। कौन इन जुआड़ियों का मान नहीं करता ? कौन इन धनवानों की इज्जत नहीं करता ? बड़े-बड़े धर्माचार्य, बड़े-बड़े समाज सेवक, बड़े-बड़े राजनैतिक नेता........अरे-अरे सभी तो, इसके चारों ओर घूमते हैं। इसकी पद-वन्दन करते हैं। (धोखेवाज)

इसके अतिरिक्त दृश्यों के प्रारंभ में जो व्राकिटों में प्रारम्भिक वर्णन है, वे कहीं-कहीं लम्बे हो गये हैं। कई नाटककारों के मत से यह अनावश्यक है किन्तु कभी-कभी दृश्य का चित्र स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक भी हो जाता है। जैसे "धोखेवाज" में सट्टा बाजार का विस्तृत विवरण दृश्य को यथार्थता देने के लिए आवश्यक है। यह इतना बारीक है कि सट्टे बाजार का आँखों देखा चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। बिना प्रत्यक्ष अनुभव और दर्शन के लेखक के लिए इस प्रकार के चित्र खींचना असम्भव है। "धोखेबाज", "वह मरा क्यों" तथा "अधिकार लिप्सा" बड़े सुन्दर प्रहसन हैं जो कि अन्य नाटकों के साथ बड़ी अच्छी तरह खेले जा सकते हैं।

"अधिकार लिप्सा" में वैद्य, तांत्रिक तथा डाक्टरों की अपनी-अपनी विशेष बोलियों में अपने विषयों का प्रतिपादन बड़ा ही विनोद उत्पन्न करती है। जैसे:—

गंगाधर राव—"विशुद्ध कूप जल एक मृत्तिका के पात्र मध्य अग्नि पर धरिये। जब अर्ध भस्म हो जाय तब शेष अर्ध को रजत पात्र में शनैः शनैः शीतल कर सुवर्ण के चम्मच से तृषाकाल बीच दीजिए।

इस प्रकार यह संग्रह हास्यरस प्रधान होने पर भी इसमें शृंगार और शान्त रसों का भी आस्वाद मिल जाता है—कहा जा चुका है कि प्रारम्भ काल में एकांकियों का उद्देश्य मनोरंजन करना था किन्तु इस शिष्ट विनोद के भीतर से भी हमारे हृदय में सट्टा की बुराइयों तथा अधिकार लिप्सा के प्रति जो घृणा के भाव उत्पन्न होते हैं वे अमिट हैं। क्योंकि इनके नायकों का अन्त मृत्यु में दिखा कर लेखक ने इतनी विफलता का चित्र हमारे हृदय में स्थाई कर दिया है।

गोविन्ददासजी आप अपने आसपास के जीवन को जैसा पाते हैं उसी प्रकार उसे उपस्थित कर देते हैं और वह भी सरल भाषा और थोड़े शब्दों में। वे सरल और स्वयंसिद्ध सिद्धान्तों को सीधे और सरल तरीके से उज्ज्वल नाटकीय रूप में उपस्थित करते हैं, उनमें कोई गूढ़ रहस्यवाद नहीं होता, उनका मतलब वही होता है जो वे कहना चाहते हैं। वे कोई सुधारक या मसीह बन कर नहीं उतरते। वे यथार्थता को उपस्थित करने वाले नाटककार हैं। वे उपदेशक नहीं, कलाकार हैं और यथार्थता के कलाकार हैं। उनके चरित्र अति प्राकृत देवता या दानव नहीं हैं बल्कि जीते-जागते गुण दोषमय मानव हैं। उनके नाटक यथार्थता की प्रतिकृतियां हैं, आदर्श के अनुकरण नहीं। इब्सन के शब्दों में "नाटक का काम कोई प्रश्नों का उत्तर देना नहीं बल्कि स्वयं प्रश्न पूछना है। उनका काम मानव का चित्रण है मानव मनोविकारों का चित्रण है, सामाजिक परिस्तिथियों के बीच उनके मानसिक संघर्ष का चित्र कला है। उनका काम शब्दों के द्वारा आपको सुनने के लिए, बाध्य करना है। अनुभव करने के लिये बाध्य करना, और देखने के लिए बाध्य करना है।" हम यह कहने में गौरव अनुभव करते हैं कि सेठजी इब्सन के इस आदर्श की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते चले जा रहे हैं। हम आशा करते हैं कि सेठजी नाट्य-साहित्य में एक नवीन आदर्श हमारे सामने रखेंगे और अपने नाटकों द्वारा हमारी मातृभाषा के एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति करेंगे।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-गद्य की प्रगति का काल-विभाग

[श्री प्रेमनारायण टण्डन]

हिन्दी साहित्य का जो काल-विभाग स्वर्गीय पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल ने किया था, मुख्यतः वह काल की प्रगति से सम्बन्ध रखता है। हिन्दी-गद्य के प्रगति-काल को उन्होंने अपने इतिहास के प्रथम संस्करण में—

(१) गद्य-साहित्य का आविर्भाव।

(२) गद्य-साहित्य का प्रसार।

(३) गद्य-साहित्य की वर्तमान गति।

इन तीन प्रकरणों में विभाजित किया है। यह विभाजन रचना-प्रकार, अथवा रचना-प्रसिद्धि की दृष्टि से नहीं है, इसी से स्थूल और अस्पष्ट है। इधर शुक्लजी के इतिहास का नया संस्करण प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने गद्य की प्रगति को निम्नलिखित पाँच शीर्षकों में विभाजित करके विशेष स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है—

(१) गद्य का विकास (आधुनिक गद्य के पूर्व की अवस्था, व्रजभाषा और खड़ी बोली के गद्य)

(२) गद्य-साहित्य का आविर्भाव

(३) आधुनिक गद्य-साहित्य परम्परा का प्रवर्तन (प्रथम उत्थान)

(४) गद्य-साहित्य का प्रसार (द्वितीय उत्थान)

(५) गद्य-साहित्य की वर्तमान गति (तृतीय उत्थान)

परन्तु हिन्दी-साहित्य के अन्य इतिहास-लेखकों में से अधिकांश ने शुक्लजी के प्रथम काल-विभाजन का अनुकरण करके काम चलाया है। यदि किसी ने कुछ नवीनता दिखलायी है तो इन कालों को—

(१) आदि काल (२) भारतेन्दु युग

(३) द्विवेदी युग (४) आधुनिक काल

ये नाम देने में। इधर हरिऔधजी के "हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास" नामक ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसमें हिन्दी-गद्य की प्रगति काल के शुक्लजी वाले काल-विभाजन को—

(१) आदि काल (२) विकास काल (३) विस्तार काल

(४) प्रचार काल (५) वर्तमान काल

नाम देकर प्रगति के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट संकेत करने का प्रयत्न किया गया है। इनकी सार्थकता की व्याख्या भी उन्होंने स्थल-स्थल पर की है। परन्तु किसी ग्रन्थ में अभी तक ऐसा सर्वसम्मत काल-विभाजन नहीं देखने में आया जिसमें साथ-साथ समय भी दिया गया हो। प्रस्तुत लेख में हिन्दी-गद्य की प्रगति को विभिन्न-कालों में विभाजित करके उनका प्रस्तावित समय दिया जा रहा है।

हिन्दी गद्य के नमूने प्रायः तेरहवीं शताब्दी से मिल रहे हैं। अठारहवीं शताब्दी तक इनका क्रम चलता अवश्य रहा परन्तु गद्य की उन्नति नहीं हुई। इसके पश्चात् उसकी प्रगति के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में हिन्दी-गद्य की उन्नति के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया गया। बीसवीं शताब्दी के इन चालीस वर्षों में इस कार्य में हमारे साहित्य-सेवियों को उचित सफलता मिली है। इस क्रम को दृष्टि में रख कर हम हिन्दी-गद्य के प्रगति-काल को निम्नलिखित कालों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) प्राचीन-चिन्ह काल (सन् १४०० से १८००तक)

(२) प्रगति-चिन्ह काल (सन् १८०० से १८२५ तक)

(३) प्रगति-प्रस्तावना-काल (सन् १८२५ से १६०० तक)

(४) प्रगति-काल पूर्वार्द्ध (सन् १६०० से १६२० तक)

(५) प्रगति काल—उत्तरार्द्ध (सन् १६२० से १६४०तक)

(५) वर्तमान प्रगति (सन् १६४० से—)

उक्त कालों का नामकरण जिस उद्देश्य को लेकर दिया गया है उसकी ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है। 'समय' के प्रश्न को लेकर यहाँ थोड़ी व्याख्या भी की जाती है—

(१) प्राचीन चिन्ह-काल—इस नाम की विशेषता और उपयुक्तता के सम्बन्ध में, मैं समझता हूँ, किसी को कुछ कहना नहीं होगा। 'समय' के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। सन् १४०० से १८०० तक हिन्दी-गद्य के जो चिन्ह मिलते हैं वे न तो साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्व के हैं और न शैली अथवा भावा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिव्यंजन की दृष्टि से ही। इनसे हमें हिन्दी-गद्य के प्राचीन रूप मात्र का ज्ञान होता है। इस युग को चिन्ह काल कहने का यही कारण है।

(२) प्रगति चिन्ह-काल—अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक हिन्दी-गद्य के लिए भूमि तैयार होती रही। इसके पश्चात् शासक और शासित, दोनों की स्थिति ऐसी विषम हो गयी कि गद्य के बिना उनका काम चलना असंभव हो गया। इसी समय से गद्य की प्रगति होती दिखाई देती है। 'गद्य की प्रगति' का सीधा-सादा अर्थ है भाषा को साहित्यिक रूप मिलने के पश्चात् उसमें उच्चकोटि के साहित्य का सृजन हुआ। भाषा को पहले व्यावहारिक रूप मिलता है और तब साहित्यिक। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक पहला कार्य होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में इस व्यावहारिक भाषा को साहित्यिक रूप देने का प्रयत्न किया गया। परन्तु यह कार्य अनिश्चित और परोक्ष रूप से हुआ। इसलिए हम इस काल को प्रगति-चिन्ह-काल मात्र कह सकते हैं।

इस काल का समय सन् १८०० से १८२५ तक रखने के पक्ष में भी एक बात कहनी है। मुन्शी सदासुख लाल, इंशाअल्लाखाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र इन चार लेखकों ने इस समय काम किया। इनकी पुस्तकें यद्यपि सन् १८०३–४ के लगभग ही प्रकाशित हुईं तथापि इनकी मृत्यु क्रमशः सन् १८२४, सन् १८२६, सन् १८२५ और सन् १८४१ में हुई। हम समझते हैं कि अपनी मृत्यु तक ये हिन्दी-गद्य के लिए थोड़ा-बहुत कार्य अवश्य करते रहे होंगे और कुछ वर्ष तक इनकी देखा-देखी दूसरों ने भी कुछ प्रयत्न अवश्य किया होगा। अतः प्रगति-चिन्ह-काल को सन् १८०० से १८१५ तक मान लेना असंगत नहीं जान पड़ता।

(३) प्रगति प्रस्तावना-काल—इस युग का नाम स्पष्ट ही है। हाँ, इसका समय सन् १८२५ से १९०० तक या आगे को रखने में कदाचित् कुछ इतिहास लेखक तैयार न होंगे। हमारा इस सम्बन्ध में निश्चित मत है। अठारहवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में हिन्दी-गद्य के भावी विशाल वृक्ष का बीजारोपण किया गया। तैयार भूमि में पड़ा हुआ साधारण बीज शक्ति-संचय करके अंकुरित होने के लिए कुछ समय चाहता है। गद्य-वृक्ष का बीज भी प्रस्फुटित होने के लिए लगभग ५० वर्ष तक शक्ति-संचय करता रहा। थोड़ा बहुत कार्य जो इन ५० वर्षों में हुआ भी वह साहित्यिक दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं है। हाँ, लगभग सन् १८६० से राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, स्वामी दयानन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा इनके अन्यान्य सहयोगियों और समकालीन साहित्य सेवियों ने इस समय हिन्दी-गद्य-क्षेत्र में जो कार्य किया वह मानो भावी प्रगति की प्रस्तावना थी।

(४) (५) प्रगति-काल—सन् १९०० से १९४० तक के ४० वर्षों को दो कालों में विभाजित करने का कारण है द्विवेदी-युग के साहित्य सेवियों की वर्तमान साहित्यकों के कार्य से अलग विवेचना करने का उद्देश्य हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखकों ने इस प्रकार इस काल को दो भागों में विभाजित तो नहीं किया है, परन्तु इन ४० वर्षों को प्रगति-काल मानना आवश्यक है।

(६) वर्तमान-काल—अधिकांश इतिहास लेखक इस काल को प्रगति-काल के अंतर्गत कर देना चाहेंगे। मैं इसे स्वीकार करने को तैयार हूँ। परन्तु हिन्दी-गद्य की प्रगति से सम्बन्ध रखने वाला जो कार्यशेष है, जिसकी आवश्यकता सभी अनुभव कर रहे हैं और जिसकी पूर्ति के लिए अधिकांश अधिकारी प्रयत्नशील भी हैं वह आगे ही होगा। जो कार्य हो चुका है वह आगे आने वाले कार्य से भिन्न ही रहेगा। एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि यदि सन् १९४० तक हिन्दी-गद्य को प्रगति-काल का समय मान लिया गया तो वर्तमान काल के अन्तर्गत वर्णन किस विषय का होगा। हम यह शीर्षक देकर "हिन्दी गद्य की वर्तमान आवश्यकताएँ और उनकी पूर्ति के साधन" की विवेचना करना चाहेंगे। हम समझते हैं यह एक स्वतंत्र और मौलिक लेख का विषय है भी।

ऊपर प्रगट किये गये विचार संकेत रूप में ही हैं। हिन्दी-गद्य का पूर्ण और स्वतंत्र इतिहास तभी लिखा जा सकेगा जब लेखक के सामने उसके विकास का क्रम स्पष्ट हो। अतः इस सम्बन्ध में विचार-विनिमय और आलोचना-प्रत्यालोचना की बड़ी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य समीक्षा

समालोचना

हिन्दी-उपन्यास—लेखक-शिवनारायण श्रीवास्तव एम० ए० । प्रकाशक-सरस्वती मन्दिर, काशी । पृष्ठ-संख्या ३०३, मूल्य २)

साहित्य-सन्देश के उपन्यास-अंक के जब प्रूफ तय्यार हो रहे थे, तभी एक दिन देखा कि हिन्दी उपन्यास पर एक अच्छी-खासी पुस्तक अभी-अभी निकली है । पुस्तक को लौट-पलट कर देखा और पढ़ा, पाया कि यदि कुछ महीने प्रथम यह पुस्तक निकल गयी होती तो प्रस्तुत अंक का कार्य बहुत आसान हो गया होता । अर्थात् हिन्दी उपन्यास की जो एक मोटी रूप-रेखा स्थिर करने में हम लोगों को काफी समय लग गया था, उसे हम श्रीवास्तवजी के कार्य का उपयोग कर सहज ही बचा सकते थे ।

इससे प्रथम श्री ताराशंकर पाठक की "हिन्दी के सामाजिक उपन्यास" पुस्तक निकल चुकी है लेकिन वह केवल सामाजिक उपन्यासों को लेकर चली है और उसका क्षेत्र अपेक्षाकृत कम है ।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास पर यह प्रथम पुस्तक है, जिसमें उसके इतिहास और स्रष्टाओं पर अध्ययन के साथ लिखा गया है । पुस्तक का ढंग शास्त्रीय है । इसमें उपन्यास की सीमा, उसके तत्व, प्रकार, कहानी की प्रवृत्ति एवं परम्परा पर प्रारम्भ में संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है और इसके बाद हिन्दी-उपन्यास के दो खंड करके—एक आदि-काल और दूसरा आधुनिक-काल—उपन्यासकारों की रचनाओं पर समालोचनात्मक चर्चा की गयी है । पुस्तक में हिन्दी के सभी उपन्यासकार आ गये हैं; और उनकी समीक्षा उपन्यास के शास्त्रीय तत्वों को लक्ष्य करके लिखी गयी है । लेखक क्रमशः वस्तु, चरित्र, कथोपकथन, देशकाल और आदर्श-नीति के सहारे एक लेखक की परख करता है और फिर दूसरे की । यह परिपाटी विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोग की है; इस प्रकार की शैली से कला-कृति को खंड-खंड रूप में अवश्य देखा जा सकता है परन्तु इसमें एक शिकायत की भी गुंजाइश रहती है कि वस्तु का समष्टि रूप इस पद्धति द्वारा प्रस्फुटित नहीं होता । ऐसी ही कुछ शिकायत हमें श्रीवास्तवजी से है कि वे उपन्यासकारों की मूल समस्याओं को तो छू-भर गये हैं और चीर-फाड़ में उन्होंने अधिक समय दे दिया है ।

एक आपत्ति इस पुस्तक के विषय में हमें लेखक से यह भी है कि उसने प्रमुख उपन्यासकार और अन्य उपन्यासकार नाम से दो भेद किये हैं । प्रमुख उपन्यासकारों के विषय में तो हमें कुछ कहना नहीं है क्योंकि यह प्रमुखता तो लेखक की अपनी बनाई चीज है, लेकिन कुछ उपन्यासकार ऐसे अवश्य हैं जिनको 'प्रमुख' की कोटि में आना चाहिये था, जैसे श्री भगवती-प्रसाद बाजपेयी, श्री निराला और श्री ऊषादेवी मित्रा । वाजपेयीजी का स्थान लेखक ने 'प्रेम-पथ', "लालिमा" और "पिपासा" नामक तीन ही उपन्यासों को पढ़ कर निर्धारित किया है । मैं समझता हूँ इस निर्धारण में गलती इसीलिए हुई है कि लेखक ने उनकी 'पतिता की साधना' और "दो बहिनें" को नहीं पढ़ा । वाजपेयीजी रोमां-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिक और वैज्ञानिक विश्लेषण से युक्त कथाओं के लिए हिन्दी में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। वे अपनी कथाओं की टेकनीक बड़ी कुशलता से गढ़ते हैं। उनकी 'दो बहिनें' तो हिन्दी के अच्छे उपन्यासों में से है। निराला जी के संबंध में भी लगभग यही बात है। लेखक उनके उपन्यास—'निरुपमा' को बचा गया है और निरालाजी के उपन्यासों में जो एक सहज काव्य-माधुर्य और व्यंग-स्कैच की निजी विशेषता है, उसकी ओर उसने ध्यान नहीं दिया। ऊषा मित्रा का तो लेखक ने नाममात्र ही गिनाया है। उनकी रागपूर्ण अलंकृत भाषा और जीवन के प्रति रोमांटिक दृष्टिकोण और उसके अभावों की व्याख्या को एक दम भुला दिया गया है।

अब आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी उपन्यास-पर एक ऐसा ग्रन्थ निकले जो हिन्दी के उपन्यासों को प्रवृत्तियों के हिसाब से पृथक कर के उनका विस्तृत विवेचन करे। श्रीवास्तवजी इस ओर ध्यान दें तो अधिक अच्छा है।

पुस्तक के दूसरे संस्करण में छूटी हुई पुस्तकों और नये उपन्यासकारों पर श्रीवास्तवजी अवश्य ही कुछ लिखेंगे, जैसे श्री अज्ञेय, श्री सर्वदानन्द वर्मा आदि। पुस्तक की उपयोगिता हम ऊपर ही स्वीकार कर चुके हैं और आशा करते हैं कि लेखक ने हिन्दी के विस्तृत उपन्यास साहित्य पर जो एक ही स्थान पर सुन्दर सामग्री प्रस्तुत कर दी है उसका उचित स्वागत होगा। —गोपालप्रसाद व्यास

महाकवि हरिऔधजी का प्रियप्रवास—लेखक-श्री प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। प्रकाशक-रामनारायण लाल पब्लिशर और बुक्सेलर, इलाहाबाद। पृष्ठ १७०, मूल्य १)

प्रिय-प्रवास की समीक्षा प्रस्तुत पुस्तक में की गयी है। यह बड़े हर्ष का विषय है कि हिन्दी में ऐसी उच्च कोटि-की समीक्षाएं निकलने लगी हैं। यह ग्रन्थ बड़े ही विवेक-पूर्ण ढंग से पक्षपात रहित होकर भी श्रद्धा और सहानुभूति के साथ लिखा गया है। किसी कृति को कितने पहलुओं में देखना चाहिए इसका ज्ञान शास्त्रीजी को है। वे देखना और दिखाना दोनों जानते हैं। बीच-बीच में समीक्षा-तत्वों की भी व्याख्या की गयी है।

'हरिऔध'जी की 'प्रिय-प्रवास' की भाषा के सम्बन्ध में लेखक ने लिखा है—"भाषा सौकर्य्य-साधन रूपी लक्ष्य को पूरा करने में प्रिय-प्रवास असफल रहा है।"

अन्यत्र लिखा है-"किसी भी कविता का मुख्य उद्देश्य है प्रभाव की प्रेषणीयता और इस उद्देश्य का मुख्य साधन है प्रसाद गुण से युक्त प्राञ्जल भाषा, किन्तु प्रिय-प्रवास में प्रायः प्रसाद का अवसाद ही दीख पड़ता है।"

प्रसाद गुण की एकांत उपयोगिता प्रभाव-प्रेषणीयता के लिए न भी स्वीकार की जाय तो भी प्रिय-प्रवास की भाषा बोझीली है-यह सभी स्वीकार करेंगे। हिन्दी की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति बड़े-बड़े समस्त पदों और वाक्यों को सौकर्य्य के साथ कभी अपना नहीं सकती।

पुस्तक में कई स्थानों पर हरिऔधजी की त्रुटियों को भी दिखाया गया है और एक सतर्क विद्यार्थी की भाँति उनकी व्याख्या की गयी है। कहीं-कहीं पर उनकी व्याख्या अधिक बढ़ी-सी दिखायी देती है। शास्त्रीजी का अभिप्राय उपाध्यायजी के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करना कदापि नहीं है फिर भी साधारण से भी साधारण भूलों को बाहर रखने का एक कारण दोष-निदर्शन ही हो सकता है। ऐसे दोष अन्य बड़े कवियों में भी प्रचुर मात्रा में मिलेंगे।

शास्त्रीजी ने प्रिय-प्रवास के सुन्दर स्थलों की भी व्याख्या की है। अलंकार-निबन्धना की कुशलता को भी परखा है।

कथा-प्रभाव के सम्बन्ध में शास्त्रीजी कहते हैं—"सारे प्रिय-प्रवास में कोई जातिशीलता नहीं है। यदि बीच-बीच में कवि ने प्रकृति के दृश्यों के मनोरम वर्णन प्रायः न किये होते तो सम्भवतः प्रिय-प्रवास का आद्योपांत पढ़ना दूभर हो जाता।"

देखना यह है कि क्या उपाध्यायजी का ध्यान कथा-विस्तार की ओर था भी ? यदि नहीं, तो इसका दोष उनकी अपनायी हुई काव्य-पद्धति पर है। इस सम्बन्ध में शास्त्री जी ने जो 'फिर फुरफुर' वाली नरपति की कहानी का उल्लेख किया है, वह नागरिक नहीं कहा जा सकता।

यही बात चरित्र-चित्रण की है। शास्त्रीजी के राधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कृष्ण के चरित्र-निर्वाह में आदर्शवादी सुधारवाद का जो जामा पहनाया है वह निरूपित स्वरूप के आभ्यंतर में स्पष्ट न होने के कारण अवश्य अस्वाभाविक है। पात्रों में वर्णसंकरता है। वे लड़खड़ाते हैं। परन्तु फिर क्या? देखना यह है कि क्या 'हरिऔध' जी का ध्यान सशक्त पात्रों को देने की ओर था? क्या उन्होंने अपनी काव्य-कला को उधर की ओर प्रेरित किया? अथवा उसकी गति-विधि ही दूसरी ओर रही। जायसी के पद्मावत में कथा की गति भी मलय की भाँति वेग-सम्पन्न नहीं। वह बहुत ही मन्द है, उसके पात्र तो नितांत निर्बल और आदर्श विहीन ही नहीं अयथार्थ भी हैं। फिर भी हम पद्मावत को महाकाव्य कहते हैं।

शास्त्रीजी की समीक्षा-कृति में बड़ा दोष यह है कि उन्होंने हरिऔधजी की प्रिय-प्रवास विषयक काव्य-कला की मीमांसा नहीं की। प्रिय-प्रवास के निर्माण में वे काव्य-लक्षण की किस महत्ता से प्रेरित थे जिसके प्रयोग के लिये उन्होंने प्रिय-प्रवास को चुना? यदि शास्त्रीजी ने इस बात को पकड़ा होता और सहानुभूति के प्रकाश में प्रिय-प्रवास को देखा होता तो चाहे वे पहुँचते इसी निष्कर्ष पर, परन्तु कवि-सम्राट के प्रति इतना अन्याय न हो पाता।

संस्कृत के ह्रास-काल में काव्य के कला-पक्ष की बहुलता इतनी बढ़ गयी थी कि कवि का ध्यान भाषा-चमत्कार, अलंकार-प्रयोग-कुशलता, छन्द-बहुलता, बहुज्ञता-प्रदर्शन की ओर तो था ही, पुराने लक्षण-ग्रन्थों में इंगित किये हुए नायिका-भेद, रस-भेद, षट्-ऋतु वर्णन, महाकाव्य-खण्डकाव्य की निभायी हुई परिभाषा के भीतर ही चक्कर लगाने का था। ये लोग आचार्य थे। कविता को उसी तल से तोलते थे और लक्षण ग्रन्थों के बांधों से सजाते थे। पुराने कवियों से आगे हम अब क्या लिख सकते हैं, उनके दिखाए मार्ग से हटना धृष्टता है। यह भावना जोरों से काम करती थी। प्राचीन परिपाटी का ही कुछ हेर-फेर से निबाहना अच्छी कविता का लक्षण था। श्री हरिऔधजी भी इसी भावना के पोषक थे। उन्होंने प्रिय-प्रवास में प्रिय के प्रवासजन्य क्लेशों की गहरी अनुभूति के धक्के से रस-गगरी नहीं छलकाई, उन्होंने खड़ी बोली का स्वरूप दिखाने के लिए, अपनी विद्वत्ता और आचार्य-पटुता दिखलाने के लिए प्रिय-प्रवास रचा। अन्यथा पवनदूत लिख कर मेघदूत की समता न करते। रस-कलश में नायिकाओं की नयी संख्या का इजाफा न करते। यह प्राचीनता का मोह ही है, मौलिक रसात्मक उद्भावना नहीं।

तो शास्त्रीजी को हरिऔधजी को इसी रूपमें देखना चाहिए। और इसी रूप में समीक्षा करनी चाहिए।

एक सच्चा कलाकार सुन्दर कहानी की नाना प्रकार की मनोरम परिस्थितियों को सामने रखते हुए, घटनाओं और वर्णनों की संकुलता से छलकती हुई कथावस्तु को औत्सुक्य की बलवान पटरियों पर आगे वेग से बढ़ाता जाता है। वह विशद अध्ययन और व्यापक अनुभव द्वारा भीतर निर्मित हुए मौलिक रूपों को ही सशक्त पात्रों के रूप में बाहर रखता है, जो भुलाये नहीं जा सकते और मेटे नहीं मिटते। वह जीवन के गहरे तलों का घात-प्रतिघात गम्भीरता के साथ सद्गामिनी और विरोधगामिनी कृतियों के मेल में सामने रख देता है। ऐसा कलाकार इस जीवन की ओर अतीन्द्रिय जगत के भाव-विभोर की झाँकी ही सामने नहीं रखता वरन् उनकी समस्त आकांक्षाएँ और रागात्मक चिंतनाएँ उकसा दिया करता है। उसकी शैली में शब्दों का बोझ अथवा मृदंग का सारहीन नाद नहीं। जिसके बीच से छन कर भाव और रस टपक जाते हैं, बस वह सूक्ष्म ध्वनियों के सहारे अर्थ-रमणीयता और आघात-प्रेषणीयता उत्पन्न करता है। यदि हम आज के इस कलाकार के रूप में प्रिय-प्रवास के रचयिता को देखने का प्रयास करें तो उसके साथ अन्याय होगा। शास्त्रीजी को इस बात पर ध्यान देना चाहिए। —सद्गुरुशरण अवस्थी

कविता

राधा (भाव नाट्य)—लेखक-श्री पं० उदयशङ्करजी भट्ट। प्रकाशक-हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। मूल्य ॥≈)

कई शताब्दियों से 'राधा' काव्य रसिकों की लेखनी की आराध्य-देवता रही है। राधा और कृष्ण नायक और नायिका के रूप में संस्कृत और हिन्दी के भक्त तथा शृङ्गारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों के इष्टदेव के रूप में माने जाते रहे हैं। संस्कृत साहित्य में इस ओर गीतगोविन्द के रचयिता कविवर श्री जयदेव तथा हिन्दी में मैथिल कोकिल विद्यापति का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी के बहुत से कृष्ण-भक्त कवियों ने तथा रीतिकालीन शृङ्गारी कवियों ने भी इस विषय पर लेखनी का बहुत-सा प्रयोग किया है। प्रस्तुत भाव-नाट्य भी उसी शृङ्खला का एक रत्न है।

"भाव-नाट्य" में—जैसा कि इसके नामकरण से स्पष्ट है—भावों की प्रधानता होती है। अन्य नाटकों के समान इसका कार्य क्षेत्र बाह्य-जगत नहीं है, अपितु अन्तर्जगत है. और इसके साथ ही हृदय में उठने वाली घात-प्रतिघात की भावना ही प्रधान है। जिस नाटक में अन्तर्द्वन्द की यह भावना जितनी अधिक होगी उतना ही वह नाटक अधिक स्थायी तथा महत्व-पूर्ण होगा। शैक्सपीयर के नाटकों में "हैमलेट", "जूलियस सीजर" आदि की प्रसिद्धि का यही प्रधान कारण है। ऐसे नाटकों में न कथा की प्रधानता होती है और न घटनाओं की प्रधानता। एकांकी-नाटकों के समान इन में भावों का एकीकरण तथा अन्तर्जगत के भावों का उथल-पुथल अथवा संघर्ष ही प्रधान होता है। ऐसे नाटकों में गतियां उनके भावों को अधिक सुन्दर तथा आकर्षक बनाने का प्रयत्न करती हैं। उनमें शारीरिक प्रदर्शन की अपेक्षा मानसिक चिन्तन की ही प्रधानता होती है। प्राकृतिक दृश्य तथा उनका आकर्षक वर्णन इस चिन्तन में सहायक सिद्ध होता है। प्रस्तुत नाटक में हमें यह सब बातें देखने को प्राप्त होती हैं।

'राधा' का प्रारम्भ जमुना तट की प्राकृतिक शोभा के वर्णन से होता है। कुशल नाटककार ने अपनी नायिका के प्रथम परिचय के लिए प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि को अपनाकर अपनी दूर-दर्शिता का परिचय दिया है। 'राधा' को प्रथम दर्शन में ही हम प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न युवती के रूप में ही देखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति सौन्दर्य ने 'राधा' को थोड़ी देर के लिए बरबस खींच लिया है, किन्तु एकाएक उसे किसी की स्मृति, शिथिल कर देती है। वह विवश होकर अपने अन्तःकरण को मसोसती हुई अन्दर के द्वार कैद नहीं कर पाती और गुनगुना उठती है:-

"मन अँधेरे में उजेले की रहा कर आस क्यों?"

इतने में राधा की एक सखी 'विशाखा' प्रवेश करती है। वह राधा को दुःखी देख कर उसके मन की बात पूछती है। राधा अपने मन की अशान्ति का कारण बताते हुए अन्त में कह ही देती है:—

......................मैं मग्न थी अपनी लहर में,
पर न जाने दृष्टि पथ में आगए वे क्या कहूँ री!

इसी से ही विशाखा 'कृष्ण' के प्रेम का समाचार समझ लेती है और राधा को चेतावनी देना चाहती है कि वह क्यों ऐसी अनधिकार चेष्टा कर रही है। राधा उत्तर में अपनी विवशता प्रकट करती हुई कहती है: —

क्या करूँ, कैसे करूँ, सब कुछ हुआ विपरीति जीवन,
कूप पर जाती कलश ले नीर लेने हेतु जब मैं,
पैर ले आते मुझे अनजान में यमुना नदी तट।

इसी प्रसङ्ग में कुशल नाटककार ने विशाखा के मुख से 'नारी-हृदय' का कितना सुन्दर वर्णन किया है देखिए—

हाय, कितना सरल, कोमल, तरल है नारी हृदय यह,
दूध-सा मीठा, धवल, निश्छल बनाया कौन विधि ने,
जो पिघलता स्वयं गल-गल प्रेम औ सौन्दर्य पाकर,
और खिलता है कुमुद-सा स्वयं ही विधु प्रिय निरख कर,
देखता कुछ भी न कोई नियम-बंधन-धर्म जग का!

इसी प्रसंग में विशाखा भी कृष्ण के प्रति निजी आकर्षण को स्वीकार करती है। फिर राधा यह अनुभव करने लगती है, मानो मोहन की मोहक-छवि ने सब प्राणियों को—सारे संसार को ही अपने जाल में फँसा रक्खा है—वह कहती है—

कौन-सा माधुर्य लेकर धरा पर उतरा कि उसने,
बना डाला जगत पागल, व्यथित कर डाला हृदय री!

फिर दोनों सखियाँ प्रियतम को प्राप्त करने के प्रयत्न के विषय में उपाय सोचती हैं। राधा विशाखा से उपाय पूछती है और विशाखा उसे प्रेम के विषम मार्ग का प्रदर्शन कराती है। राधा लोक-लाज को छोड़ने का निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए कह उठती है—

यही बस, में लाज तज, मर्याद बन्धन तोड़, कुल जग,
त्याग सब कुछ बन वियोगिनि, मुक्त जीवन हो सकूँ री !

दूसरे दृश्य में फिर उसी यमुना तट का कुल दृश्य उपस्थित है। कृष्ण बंशी बजा रहे हैं, गौएँ भागती चली आ रही हैं और दौड़ती हुई राधा भी आती है—वह है अस्तव्यस्त वस्त्र वाली तथा चञ्चल, किन्तु उद्विग्न मुखाकृति वाली। राधा और कृष्ण का मेल होता है। राधा बहुत कुछ कहना चाहती थी किन्तु सब कुछ शान्त हो गया है। कुछ समय के बाद अन्ततः राधा पूछती है—

कौन तुम अनुराग-सागर, कौन तुम मन्मथ हृदय के ?
अरे बोलो, प्राण ! बोलो, तान ऐसी छेड़दी क्यों ?
सभी कम्पित गात्र मेरा, सभी कम्पित विश्वकानन।

कृष्ण सरल स्वभाव से उत्तर देते हैं—

विश्व कण-कण में सुवासित व्याप्त है पीयूष सरिता,
जो हुई प्रच्छन्न नर की कालिमा से, छल कपट से,
उसी को जाग्रत किया है प्राण ने वंशी लहर से।
तुम पियो, यह जग पिये, अक्षय मधुर-रस, प्राण-पावन
हृदय में भरता रहे उच्छ्वास की गति-सी मनोहर।
मैं लहर हूँ एक उसकी, उसी सुख की, उसी स्वर की।

इसके पश्चात् राधा कृष्ण से 'प्रेम' के विषय में बहुत से प्रश्न करती है और कृष्ण उसे यथोचित उत्तर देते हैं। वह जिसे प्रेम कहती है, कृष्ण उसे वासना कहते हैं किन्तु, कृष्ण के इन तर्कों का राधा पर कुछ भी स्थायी प्रभाव नहीं होता। वह विवशता की अवस्था में फिर कहती है—

"मैं न कुछ भी जानती हूँ, जानती हूँ एक केवल
मचलने वाला मिला मन, मनोरथ जिसमें सहस्रों।
किसी मधु में निमज्जित हो, स्वप्न का संसार रच कर,
गा रहे हैं क्या न जाने समझ पाना दूर माधव !
चाहती, क्या चाहती हूँ, कुछ नहीं, पर चाहती हूँ,
एक तुम हो, एक वंशी, मैं सुनूँ सुनती रहूँ निशि
दिवस, पलपल, पक्ष ऋतु, ऋतु वर्ष युगकल्पान्तर भी।"

अब कृष्ण के लिए और कोई उपाय नहीं; कि वे अपना सच्चा स्वरूप प्रकट कर दें, इसीसे वे कहते हैं:—

"मैं जगत का पाप, मिथ्याचार, छल, विद्वेष हरने,
और वास्तवधर्म की संस्थापना का सुनिश्चिय ले,
तथा नैतिक प्रेम का ही रूप जग को दिखाने को,
यहां आया हूँ महाव्रत यही मेरा सत्य राधे !
है न मुझ में पाप कोई, शुद्ध सत्य अनन्त अतिबल।"

राधा की प्रार्थना पर कृष्ण फिर बंशी बजाना प्रारम्भ करते हैं। छिटकती हुई चाँदनी में बंशी की मधुर ध्वनि को सुन कर राधा की कुछ सखियां भी उपस्थित हो जाती है। इसी प्रसंग में नाटककार ने कृष्ण और सखियों से वार्तालाप के रूप में एक गीत गवाया है जिसे पढ़ते हुए "भ्रमरदूत" की हठात् स्मृति आ जाती है। कृष्ण सखियों को शुद्ध प्रेम का स्वरूप दर्शाना चाहते हैं, किन्तु सखियाँ कृष्ण में तन्मय और एकाकार हैं। वे कुछ और सुनना नहीं चाहतीं।

तीसरे दृश्य में फिर वही यमुना के तट का कुंज प्रस्तुत किया गया है। राधा अनमनी-सी किसी की प्रतीक्षा में बैठी है और बैठे-बैठे गीत गुनगुनाती है:—

"चिर प्रतीक्षा, चिर मिलन की रात"

इतने में उसकी सखी विशाखा प्रवेश करती है। दोनों अपने-अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट करती हैं। राधा अपनी सारी गाथा सुनाती है कि किस प्रकार एक दिन उसके ससुर उसके घर पर आए और उसकी जग विख्यात निन्दा पर टीका-टिप्पणी की। यहीं इस वार्तालाप में नाटककार ने राधा के द्वारा आज की विवाह-प्रणाली के विषय में सरल रूप से कहलाया है:—

"सदा कन्या को वरण में स्वेच्छ होना चाहिए ही।"

इसी समय कृष्ण प्रवेश करते हैं और फिर दोनों सखियाँ 'विवाह' समाज तथा धर्मादि विषयों पर कृष्ण से प्रश्नोत्तर करती हैं और कृष्ण यथाशक्ति उत्तर देने का प्रयत्न करते हैं। 'धर्म' के विषय में नाटककार ने कृष्ण से क्या ही सारपूर्ण बात कहलाई है—

धर्म है केवल समाजोन्नति, स्व-उन्नति, राष्ट्र-उन्नति
आत्मचिन्तन, लोकहित कर्तव्यपालन बस यही तो।

फिर से राधा अपनी विवशता की बात छेड़ देती है। वह कहती है, हम कड़ी-से-कड़ी यातना तो सहन कर सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। किन्तु माधव के बिना हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं :—

"हम महासागर कदाचित एक अंजलि में पिएँ सब
एक अंजलि में गगन घन पी सकें, विद्युत निगललें।
भू धरों को चूर्ण कर भी सकें, इन कोमल करों से,
और विष भी पी सकें,मर भी सकें पर जी न सकतीं?
....बिन तुम्हारे..............

राधा कृष्ण के चरणों पर गिर पड़ती है। कृष्ण उसे उठाते हैं और बताते हैं कि उन्हें दूसरे दिन अक्रूर और बलराम के साथ मधुपुरी चले जाना है। राधा को वे साहस देते हैं, किन्तु वह अचेतन हो जाती है। कृष्ण उसे संज्ञा में लाते हैं और कर्तव्यपालन का उपदेश देते हैं। राधा प्रभावित होती है और कृष्ण की यात्रा की सफलता चाहने लगती है। यहीं कृष्ण सप्रेम उसे उठा लेते हैं और विदा माँगते हुए कहते हैं—

तुम्हारा चिर सखा हूँ, बिदा दो सखि!
है बुलाता रोम-कूपों से ध्वनित कर्तव्य मेरा।

यहीं हम कृष्ण की आँखों में आँसुओं के दर्शन करते हैं।

चौथे तथा अन्तिम दृश्य में हम एक सूखे मैदान में एक फूस की कुटिया के बाहर चबूतरे पर बिछी चटाई पर राधा को देखते हैं। वह शोक और चिन्ता की मूर्ति है। किसी की स्मृति में, किसी की प्रतीक्षा में वह व्याकुल है। धीरे-धीरे गुनगुनाने लगती है। गीत अत्यन्त ही मार्मिक है— "कौन युग से पथ निरखती

हृदय में अंगार भर कर श्वासमें पीड़ा छिपाये,
प्राण का उपहार लेकर साधना में स्वर सजाये,
चल रही हूँ मैं युगों से—
युगों के पल-पग परखती।"
स्वर सँजोए, प्राण साधे, हृदय का दीपक जलाए,
शूल प्रतिमा, तिमिर ऊपर, तिमिर दाएँ, तिमिर बाएँ,
चली मैं पगचाप सुनने,
चली चुपचुप पैर रखती।"
फूल सा हँस झड़ चुका है, हृदय का उल्लास मेरा,
सतत पतझर से घिरा सा, अमा-सा आकाश मेरा,
कहीं भी तुमको न पाकर,
आँसुओं में छवि पुलकती।"

वह सोचती है—क्या वे उसे भूल गये हैं? इतने में नेपथ्य से आवाज आती है कि उसे भूल जा। नारद प्रविष्ट होते हैं और उसे उपदेशामृत से तृप्त करना चाहते हैं। वे उसे अनेक प्रकार से विचलित करना चाहते हैं, किन्तु राधा पर इन बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं होता। इसी अवसर पर नारद के द्वारा गीतगोविन्द के कुछ पद कहलाए गये हैं, जो अत्यन्त मार्मिक, विशद तथा अवसरानुकूल हैं।

सा विरहे तब दीना राधा......

गीत गाते हुये चले जाते हैं। राधा मन-ही-मन इस गीत में लीन होकर गुनगुनाती रहती है। सहसा उसकी पुकार सुन कर छिपे हुए कृष्ण प्रकट हो जाते हैं। राधा का सिर उठा कर गोद में रख लेते हैं। राधा कृष्ण को 'विशाखा' मान कर अपने हृदय के उद्‌गार प्रलाप के रूप में प्रकट करती है। एकाएक आँखें खोलते ही राधा कृष्ण के दर्शन करती है और वह अत्यन्त प्रसन्न होकर नाचने लगती है और गाती है—'मैं स्वर्ग लूट कर लाई।'

नाटक का अन्त यहाँ स्वाभाविक रूप से हुआ है। प्रेम की अन्तिम अवस्था भी यही एकाकार की भावना है।

प्रस्तुत भाव-नाट्य को जितनी बार पढ़ा जाए, उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होता है। भाषा प्रवाहशील तथा माधुर्य-रस में पूर्ण रूप से भरी हुई है। 'कृष्ण और राधा' का जो आदर्श दृष्टिकोण नाटककार ने प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा नवीन तथा मनन योग्य है। हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि प्रस्तुत भाव-नाट्य हिन्दी साहित्य में स्थायी स्थान प्राप्त करेगा। —रामकृष्ण भारती

कहानी

आत्म-परिणय—'लेखक–श्री वीरेन्द्र प्रकाशक–हिन्दी-साहित्य समित इन्दौर। पृष्ठ संख्या २०८, मूल्य ३)

श्री वीरेन्द्रकुमार का प्रस्तुत कहानी-संग्रह विशिष्ट दिशा की ओर संकेत करता है। कहानी-क्षेत्र में भावना, हृदय की गूढ़ अनुभूति ही कहानियों का प्राण है। काव्य को कहानियों में उतारना वीरेन्द्रकुमार का अपना प्रयास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी से वीरेन्द्र की कहानियों में बहता हुआ रस मनोमुग्धकारी है सही, किन्तु वह हमारी भाव-वेदना ही के क्षणों में सुखद है। जिस प्रकार काव्य का रसास्वादन हर घड़ी हो सकना काव्य ही का दूषण है, उसी प्रकार जब काव्य की आत्मा को आख्यायिकों में सफलतापूर्वक जगाया जा चुका है तब भावाकुल क्षणों ही में जीवन के परम सत्य तत्व का निदर्शन, आस्वादन व रञ्जन हमें सुहला सकेगा। यही वीरेन्द्र की विशेषता है और कमजोरी भी। इनकी कहानियाँ हमें तभी रुच सकेंगी जब हम गला घोंटने का श्रम कुछ शिथिल होने दें।

वीरेन्द्र की स्नेह-परवशता, आत्माका कोमलाङ्ग ही उनके चित्रित जीवन का सार है। जीवन के दो पक्ष हैं—एक सार, दूसरा विस्तार। आत्म-वादियों को उत्सर्ग, समर्पण, स्नेह, संघर्ष, आत्महति ही सार है, शेष निस्तार—वीरेन्द्र की यही परिधि है। लेखक को भावना-प्रधान स्वप्न-लोक ही उनका सत्य है। उसमें चिन्तन का अभाव नहीं है, किन्तु चिन्तन के दूध का उबाल भावना की आँच पर निर्भर है।

नारी को वीरेन्द्र में अपने तईं समझने की जिज्ञासा है। नारी पहेली है, अबूझ है। उनकी नारी का रूप आत्मोत्सर्ग की नींव पर स्थित है। 'सुहाग चुनड़ी के आँचल में', 'माँ कि प्रणयिनि,' 'आत्म परिणय' आदि इसके प्रमाण हैं।

'पवित्र पाप' की कुंकुम मालन की लाड़िली सुकुमारी अपने भोले मन की गहराई पर विश्व की भौतिकता को चुनौती देती अडिग खड़ी है। कला में स्वाभाविक ज्ञान के तत्व वीरेन्द्र में खूब निखरे हैं। लम्बे-लम्बे भाव-चित्र प्रत्येक शब्द की नाप-तोल में सुघर दिखते हैं। भाषा का मालवयपन मीठा-सा लगता है। नारी का हृदय 'वह पत्थर' में यदि विवेचन का विषय है, तो 'शीश महल की रानी में' सम्पूर्ण वीरेन्द्र है। 'आत्मा की मैत्री' बड़ी सजीव कहानी है। मैं तो यहीं कहूँगा—'हाँ, भाई ऐसा तो होता है।' मेरे जाने तो यही साहित्य की निधि है। 'कवि-हृदय' सचमुच अच्छी कहानी है। 'तिवारी' के चरित्र में सिद्ध-हस्तता निरख उठा है।

कहानियों में वस्तु का अधिक मूल्य नहीं है, चरित्र ही सर्वस्व बन गये हैं। चरित्र एकान्ततः भावुक हैं। मुख्य पात्र नारी ही रहती है। तब भी वीरेन्द्र स्वयम् अधिकांशतः चरित्र बन जाते हैं तब वहां गद्य काव्य का सा रस आने लगता है। वीरेन्द्र का विषय स्नेह है, पृष्ठ-भूमि मानव का अन्तस्तल है। यही आत्म-चिन्तन या जो भी कहिए वीरेन्द्र का अपना है। एक बात अखरती है वह यह कि वीरेन्द्र की कहानियाँ बहुत लम्बी होती हैं। स्वर्गीय प्रसादजी की छोटी-छोटी भाव-कहानियाँ अधिक सरस हैं यही कारण है कि वीरेन्द्र की आख्यायिकाओं में विस्मय या औत्सुक्य कुछ घटता-सा जाता है। कला की सादगी वीरेन्द्र में नहीं है। नक्काशी एवम् बेल बूटों की सजावट उनमें भरी मिलती है।

वीरेन्द्र हिन्दी के होनहार कहानीकार हैं, उनकी कहानियों का आदर होगा। —कमलाकान्त पाठक

नागरिक शास्त्र

नागरिक शास्त्र की विवेचना—ले० - श्री० गोरखनाथजी चौबे एम०ए०। प्रकाशक—रामनारायणलाल, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या ३६८। मूल्य ३)

हिन्दी में नागरिक शास्त्र आदि विषयों की बड़ी बड़ी पुस्तकें कम ही छपती हैं। लिखने वालों का कथन रहता है कि प्रकाशक कहते हैं, छाप कर क्या करें, पाठक ही काफी नहीं हैं। अस्तु, मुझे यह पुस्तक देख कर बड़ा हर्ष हुआ। मुझे प्रतीत हुआ कि अब हवा का रुख बदल रहा है। आगे ऐसी पुस्तकों की कमी न रहेगी। मैंने इस पुस्तक को बड़े चाव से पढ़ा। लेखक अपने विषय के विद्वान हैं, और हिन्दी में इस विषय का साहित्य प्रस्तुत करने की आपकी बड़ी इच्छा है। पुस्तक में स्थान-स्थान पर आपके गम्भीर ज्ञान और अध्ययन का परिचय मिलता है, आपका दृष्टि-कोण भी उदार है। आपने प्रस्तुत विषय पर सम्पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। पुस्तक में १५ अध्याय हैं, कुछ के शीर्षक हैं:—नागरिकता, अधिकार और कर्तव्य, सामाजिक जीवन, राज्य के आवश्यक अंग और उसकी उत्पत्ति, राज्य के कर्तव्य, मताधिकार, राष्ट्रीयता, कानून आदि। पुस्तक पढ़ने से इन विषयों की अच्छी जानकारी हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी अल्प बुद्धि में पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसमें कुछ सुधार अभीष्ट है। लेखक ने कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग ऐसा किया है, जो अप्रचलित अथवा भ्रम-मूलक हैं। अँगरेजी के 'पार्टी सिस्टम' को मित्र मंडल, 'लीग-आफ-नेशन्स' को शान्ति सभा, और 'इनडायरेक्ट इलेक्शन' को द्वै निर्वाचन लिखा है। इनकी जगह क्रमशः दलबन्दी प्रथा, राष्ट्र-संघ और परोक्ष निर्वाचन शब्दों का प्रयोग किया जाना अच्छा है। पुस्तक में कई जगह व्यक्तियों के नामों को अँगरेजी में भी लिखा है। मैं समझता हूँ ऐसा करना प्रायः अनावश्यक है। पुनः लेखक का, हिन्दी की पाठ्य सामग्री में अँगरेजी (रोमन-लिप) का भी उद्धरण देना भी मुझे अच्छा नहीं लगता। कहीं-कहीं तो लेखक ने अँगरेजी की कई-कई पंक्तियां देते हुए उनका अनुवाद भी नहीं दिया है। उदाहरणार्थ पृष्ठ १४६-५० और ३२६ में। हिन्दी की पुस्तकों में पाठ्य-विषय के बीच में अँगरेजी आना बड़ा अटपटा लगता है। जो पाठक अँगरेजी न जानता हो, उसकी स्थिति का विचार किया जाना चाहिए। प्रामाणिकता के लिए यदि अँगरेजी पुस्तक का मूल उद्धरण देना ही हो तो फुट-नोट में दिया जा सकता है।

कुछ विषयों में मेरा विद्वान लेखक से मत-भेद है। स्थानाभाव से इस विषय पर मैं अपने विचार विस्तार-पूर्वक नहीं दे सकता, केवल कुछ प्रसंगों का संक्षेप में उल्लेख करता हूँ—(१) "जब कोई लड़ाई छिड़ती है तो सरकार जिसे चाहे फौज में भरती कर सकती है। उस समय नागरिक की रक्षा का प्रश्न उठता ही नहीं" (पृष्ठ ४६)। क्या अनेक युद्ध साम्राज्यवाद की भावना से नहीं होते? और सरकार व्यक्तियों की नागरिक स्वतंत्रता कहाँ तक मान्य करती है, इसकी परीक्षा तो युद्ध जैसे अवसर पर ही होती है। [२] "असाध्य रोग में पीड़ित व्यक्ति आत्म-हत्या कर सकता है" (पृष्ठ ४६)। जिस रोग को कुछ डाक्टर असाध्य कह देते हैं, दूसरे डाक्टर उसका इलाज करने में सफल हो जाते हैं। फिर असाध्य की सरल व्यावहारिक परिभाषा क्या? अनेक व्यक्ति असाध्य प्रतीत देने वाले रोगों से मुक्त हुए और अपने भावी जीवन में मानव समाज के लिए बहुत उपयोगी प्रमाणित हुए। यदि लेखक का सिद्धान्त मान्य किया जाय तो क्या उसका बहुत दुरुपयोग होने की सम्भावना नहीं? [३] म० गांधी का सन् १९२० का आमरण उपवास "किसी भी दृष्टि से न्याय संगत नहीं था।" (पृष्ठ ४६)। क्या मेक्स्विनी के बलिदान की तरफ कोई अंगुली उठाने का साहस करेगा? शहरों का त्याग जनता में कैसी भावना भरता है, यह कौन नहीं जानता। [४] "हिन्दोस्तान समाजवाद के लिए कदापि अनुकूल नहीं है। इस देश में समाजवाद की स्थापना करना एक स्वप्न देखना है' (४२)। इतिहास में अनेक बार स्वप्न सी प्रतीत होने वाली बातें कार्य में परिणत हुई हैं। क्या समाजवाद का कोई भारतीय संस्करण कभी भी न हो सकेगा?

इस प्रकार के मत-भेदों के होते हुए भी मैं पुस्तक का सहर्ष स्वागत करता हूँ और पाठकों से इसे अपनाने की आशा रखता हूँ। लेखक ने इसे विशेषतया इन्टर क्लास के विद्यार्थियों को लक्ष्य रख कर लिखा है, इस दृष्टि से इसमें (१) राज्यों का वर्गीकरण, (२) लोकमत और पत्र-पत्रिकाएँ और (३) नैतिक तथा धार्मिक प्रभाव विषयों पर भी प्रकाश डालना आवश्यक था। आशा है, अगले संस्करण में यह कमी दूर कर दी जायगी।

—भगवानदास केला

नागरी लिखावट (दो भाग)—प्रकाशक-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, वर्धा। पृष्ठ ४०, मूल्य प्रत्येक का ।≈)

अहिन्दी प्रान्तों के निवासी हिन्दी पढ़ने के अभ्यस्त हों और छापे की ही नहीं हाथ की लिखावट को भी पढ़ने लगें—इस ही पुनीत उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित की गयी है। इसमें हिन्दी के विभिन्न प्रान्तों के निवासी या विद्वानों की हस्तलिपि के ब्लाक बना कर छापे गये है। कई दृष्टियों से इस पुस्तक की बड़ी महत्ता है, अतः हम उसका सहर्ष स्वागत करते हैं। —म

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

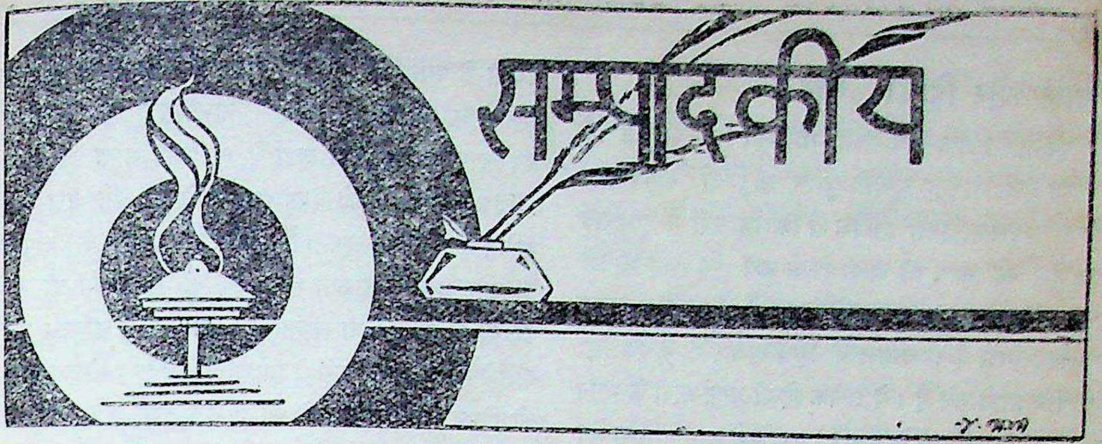

साहित्य-सन्देश का पंचम वर्ष-प्रवेश—

आप लोगों का साहित्य-सन्देश इस अंक के साथ पांचवे वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इसमें बहुत कुछ श्रेय आप लोगों के लालन-पालन का है किन्तु हम क्षम्य गर्व के साथ कह सकते हैं कि यथाशक्ति हमने 'लालने बहुवः दोषाः' की बात सार्थक नहीं होने दी है। लालन के भी पांच वर्ष अगली साल समाप्त हो जायँगे। हम आप लोगों के ताड़न-अधिकार से भागना नहीं चाहते।

हमारे पाठकों ने इसका जो स्वागत किया है उसके लिए हम हृदय से अनुगृहीत हैं। यह उन लोगों की सहृदयता का ही फल है कि हम उनकी इतनी सेवा कर सके हैं और साल भर में ५७२ पृष्ठों की सुपाठ्य सामग्री और तीन विशेषांक—उपन्यास-अङ्क, परीक्षांक और शुक्लांक—उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं। कागज की इस भयंकर मंहगाई के समय में भी हम चार पृष्ठ बढ़ाने का साहस कर रहे हैं। हमने आलोचनात्मक क्षेत्र में (रचनात्मक क्षेत्र हमारी परिधि से बाहर है) सभी प्रकार के मानसिक धरातल के लोगों की तुष्टि करने का प्रयत्न किया है, फिर भी हम विद्यार्थियों का भी ध्यान रक्खेंगे। हमारे पास इस सम्बन्ध में कई पत्र आये हैं। कुछ सज्जनों ने हमको यह भी सुझाया है कि हम विद्यार्थियों के लिए परीक्षा उपयोगी प्रश्नोत्तर दें। हम उनके प्रस्ताव की अवहेलना तो नहीं करते किन्तु हम विद्यार्थियों को पचापचाया पेप्सीन मिला भोजन नहीं देना चाहते। उससे मानसिक पाचक-शक्ति का ह्रास होगा। हम मानसिक विकास के अनुकूल उपयोगी सामग्री अवश्य देंगे किन्तु वह होगी प्रायः लेख रूप में ही—हम आगे से सुपाठ्य सामग्री का संकेत भी देंगे।

अभी तक हमने साहित्य की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों का विवेचन करना अपना लक्ष्य रक्खा है। हमने पक्ष और विपक्ष दोनों ही के लेख छापने का उद्योग किया है और ऐसा ही अब भी करेंगे। जिन प्रगतियों के हम स्वयं व्यक्तिगत रूप से पक्ष में नहीं हैं, उनके भी साहित्यिक महत्व को पूरा प्रकाश देने में संकोच नहीं किया। पुस्तकों की आलोचनाओं में भी हमने किसी खास दृष्टिकोण का पक्ष न लेते हुए इस बात का उद्योग किया है कि लेखक का दृष्टिकोण और वक्तव्य अच्छे से अच्छे आलोक में रक्खा जाय फिर उसके साथ यदि मतभेद हो तो उसके भी प्रकाशन में संकोच न किया जाय। यही हमारी नीति है, और इसीका अनुसरण हम आगे भी करना चाहते हैं।

हिन्दी साहित्य के प्राचीन और नवीन दोनों अङ्गों के ही आलोचनात्मक अध्ययन में अधिक से अधिक सुविधा पहुँचाना हमारा मुख्य लक्ष्य है। साहित्य-निर्माण की गति-विधि देना बड़ा काम है। यदि इसमें भी दिग्दर्शन कराने के योग्य बन सकें तो हमारा परम सौभाग्य होगा।

हम अपने पाठकों और लेखकों के प्रति एक बार पुनः कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए उनसे अनुरोध करेंगे कि वे इस पत्र को जितना सहयोग देते रहे हैं उससे से भी अधिक हमारे कार्य में सहायता देकर हमको आभारी बनायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगाल और हिन्दी प्रचार—

पूर्व-भारत-राष्ट्र-भाषा-प्रचार-सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिया हुआ डाक्टर सुनीति कुमार चाटुर्ज्या महोदय का भाषण 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' शीर्षक से विभिन्न पत्रों में प्रकाशित हुआ है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह भाषण अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण और विचारोत्तेजक है और बड़ी सद्भावना से लिखा गया है। बंगाल में हिन्दी-प्रचार के बाधक छः कारण बतलाये गये हैं। वे प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी के ध्यान देने योग्य हैं। संक्षेप में वे हैं:-(१) बङ्गालियों का मातृभाषा-प्रेम (२) हिन्दी संस्कृति-वाहिनी भाषा नहीं अर्थात् उसमें उच्च कोटि के ग्रन्थों का अपेक्षाकृत अभाव (३) हिन्दी-उर्दू का झगड़ा और कांग्रेस द्वारा उर्दू का पक्षग्रहण (४ और ५) मद्रास में तथा बंगाल से मिले हुए बिहार के कुछ जिलों में हिन्दी का अनिवार्य करना (६) बाजारू हिन्दी के आगे हिन्दी की कठिनाई। सुनीति बाबू ने सहृदयता के साथ हिन्दी का राष्ट्रभाषा होने का दावा स्वीकार करते हुए आधुनिक बंगाल में उसकी उपेक्षा के उपर्युक्त कारणों पर जोर दिया है। इन कारणों के दूर करने के भी कुछ उपाय बतलाये हैं। जो बातें उन्होंने सुझायी हैं, उनके अतिरिक्त भी इस सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है।

(१) मातृ-भाषा का प्रेम—राष्ट्रभाषा कभी मातृ भाषा प्रेम में बाधक नहीं होती। प्रान्त-प्रेम के साथ देश-प्रेम और देश-प्रेम के साथ विश्व-प्रेम चल सकता है। उसी प्रकार मातृभाषा के साथ राष्ट्रभाषा-प्रेम भी चल सकता है। लेकिन इसमें उस गुण की अर्थात् त्याग की जिसको सुनीति बाबू ने आर्य-धर्म का एक मुख्य अंग माना है आवश्यकता है। राष्ट्र के नाते उनको अंग्रेजी के स्थान पर एक देशी राष्ट्र-भाषा को अपनाना चाहिए। हिन्दी से उनका ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और वंशगत संबंध है। जितना बंगालियों ने हिन्दी के लिए किया है उस सब को स्वीकार करते हुए भी कहना पड़ेगा कि बंगाल में इस मनोवृत्ति के उत्पन्न करने में वहां के नेताओं ने यथेष्ट योग नहीं दिया है। अपनी भाषा के सौन्दर्य पर मुग्ध होना अत्यन्त सराहनीय है किन्तु उसके साथ देश की भी आवश्यकताएँ हैं। हिन्दी-प्रेमी बंगालियों को बंगला के पत्रों द्वारा, चाहे थोड़ी लोकप्रियता का बलिदान ही क्यों न करना पड़े, हिन्दी के राष्ट्र-भाषा रूप का पक्ष समर्थन करना चाहिए। जहां वे संस्कृत भाषा के इतने समर्थक हैं वहाँ उनको देवनागरी लिपि का भी पक्ष लेना उचित है। जब मुसलमानों से संस्कृत शब्दों के अपनाने की बात कही जा सकती है तब देवनागरी लिपि की बात पर भी जोर दिया जा सकता है। संस्कृत से सम्बन्ध रखने वाले सभी प्रान्तों में उसको अपनाना चाहिए। संस्कृत शब्दों को रोमन लिपि में लिखने की अपील देशी आत्मा रख कर विदेशी पोशाक धारण करना है। 'आधा तीतर आधी बटेर' की बात जचती नहीं। इस प्रचार के सम्बन्ध में हिन्दी भाषा-भाषियों का जो कर्तव्य हो उसको निसंकोच बताया जाय।

२—हिन्दी संस्कृति-वाहनी भाषा नहीं। यह बात तो माननी पड़ेगी कि हिन्दी का साहित्य, खास तौर से शास्त्रीय अंश, योरोप की भाषाओं के साहित्य से बहुत पीछे है किन्तु इसी कारण उससे नाता तोड़ना उचित नहीं। अङ्गरेजी का मुकाबला तो भारत के किसी प्रान्त की भाषा नहीं कर सकती? फिर क्या लोग प्रान्तीय भाषाओं को छोड़ दें? हिन्दी के प्राचीन साहित्य का महत्व बङ्गाली लोग स्वीकार करते हैं किन्तु उसके नवीन साहित्य का नहीं। इस में सहृदयता की जरूरत है और साथ ही इस पूर्व-भावना को—कि आधुनिक हिन्दी में है क्या?—त्यागने की आवश्यकता है। हम शीघ्र ही ऐसी पुस्तकों की सूची देना चाह रहे हैं जिनका अध्ययन करीब-करीब अंग्रेजी की पुस्तकों की तरह लाभप्रद हो सकता है। हिन्दी में रवीन्द्र जैसी विश्व विभूति नहीं है किन्तु बङ्गाल या और किसी प्रान्त में ही कितनी हैं? देश के सौभाग्य से ही ऐसे लोगों का जन्म होता है। उनकी कृतियाँ नवनीत के समान हैं किन्तु निरे नवनीत से पेट नहीं भरता। स्वाद और पुष्टि के लिए दूध और अन्न की भी आवश्यकता है। यह अन्न और दूध हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में है। हिन्दी की कमियों को हम भूलना नहीं चाहते किन्तु उसके वर्तमान साहित्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। हिन्दी की कमी को पूर्ण करना हिन्दी भाषा भाषियों का ही कर्तव्य नहीं वरन् उन लोगों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी है जो उसे राष्ट्रभाषा मानते हैं। डाक्टर सुनीतकुमार ही अपने बङ्गाली के भाषा-विज्ञान का साधारण और सैद्धान्तिक अंश हिन्दी को देने की कृपा करते तो उसका कितना गौरव बढ़ता ? हिन्दी में भाषा-विज्ञान की शब्दावली की कमी नहीं। संस्कृत और संस्कृति का सम्बन्ध स्वीकार करते हुए वैज्ञानिक शब्दावली के एकीकरण में बंगला का सहयोग अपेक्षित है। महाराष्ट्र ने तो इस ओर ध्यान दिया है। हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली की कमी नहीं। स्वयं 'विज्ञान' की फाइलें इसका सब से अच्छा प्रमाण हैं। शब्दावली के एकीकरण से न केवल हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों को लाभ होगा वरन् अखिल भारतवर्ष का। प्रान्तीय सहयोग से हम एक भारतीय विचार-धारा का निर्माण कर सकेंगे।

राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने में हिन्दी ने बहुत योग दिया है। जिस प्रकार स्वदेशी आन्दोलन ने मेंचेस्टर की धोतियों को अनावश्यक सिद्ध कर दिया है उसी प्रकार भाषा सम्बन्धी स्वदेशी आन्दोलन समय पाकर हमारे शिक्षित लोगों की ज्ञान-पिपासा तृप्त कर देगा, लेकिन हमको इस दूषित चक्र से बचना चाहिए कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसमें उच्चकोटि का साहित्य नहीं और उसमें उच्चकोटि का साहित्य निर्माण करने में योग देना वृथा है क्योंकि वह राष्ट्रभाषा नहीं। बिना पानी में पैर दिये तैरना नही आता। हम राष्ट्रीयता के नाम पर बङ्गाली पत्रों से अपील करेंगे कि वे अपने पाठकों को हिन्दी के आधुनिक साहित्य से अधिकाधिक रूप में परिचित करावें। हमारी यही अपील अन्य प्रान्त के पत्रों से भी है।

३—हिन्दी उर्दू का झगड़ा—इसको हिन्दू मुस्लिम-विभेद और भारतीय स्वराज्य की भाँति राष्ट्रभाषा के पथ में बाधक न बनाया जाय। यह मानते हुए भी कि कांग्रेस हिन्दी में फार्सी-अर्बी के शब्दों के प्रवेश कराने के पक्ष में है, अधिकांश लोग (काँग्रेस क्षेत्र के भी) अपनी भाषा को विकृत करने के पक्ष में नहीं हैं। हिन्दी का प्राचीन संस्कृति से अटूट संबंध है। यह समस्या हिन्दी से दूर खड़े रह कर हल नहीं हो सकती। मुसलमान भाइयों की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उनको अखिल भारतवर्षीय आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिलाने की जरूरत है। बंगाल का राष्ट्रभाषा के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर उसकी रूप-रेखा निश्चित करने में योग देना वांछनीय है।

४ और ५—राजकीय दबाव—इस सम्बन्ध में हम भी राजकीय दबाव के पक्ष में नहीं। जो काम बंधुत्व से हो सकता है वह दबाव से नहीं। हिन्दी-भाषा-भाषियों की ओर से प्रचार-बुद्धि (Missionary spirit) की आवश्यकता है और अन्य प्रान्त के लोगों की ओर से उदार-ग्राहक बुद्धि की। काँग्रेस के अधिकारी यदि कुछ अनुचित करें भी तो उसके बदले हिन्दी-भाषा से द्वेष करना संकीर्णता है।

६—बाजारू हिन्दी के सामने शुद्ध हिन्दी की कठिनाई—हम हिन्दी के व्याकरण को सरल और कुछ अंश में शिथिल बनाने के पक्ष में अवश्य हैं किन्तु उस बाजारू हिन्दी को टकसाली हिन्दी बनाने के पक्ष में नहीं हैं। जो लोग केवल बोली से सम्बन्ध रखते हैं वे अपनी सुविधा के अनुकूल उसे ढाल लें किन्तु साहित्यिक भाषा में अधिक परिवर्तन की गुन्जाइश नहीं। हम भाषा का साम्राज्यवाद नहीं चाहते तो भी उसके व्यक्तित्व को नष्ट करने के पक्ष में नहीं हैं।

ये कठिनाइयाँ अनुल्लङ्घनीय नहीं हैं। यदि त्याग, सहृदयता और परस्पर आदान-प्रदान की बुद्धि से काम लिया जाय तो 'पंगुं लंघयते गिरिम्' की बात सार्थक होने में देर न लगेगी।

सहयोगी आलोचक-मण्डल—

श्री कालिदास कपूर तथा श्री प्रेमनारायण टंडन ने आलोचक-मण्डल की एक आयोजना कई पत्रिकाओं में प्रकाशित कराई है। इस बात को मानने में किसी को आपत्ति न होगी कि हमारी जनता पाठ्य सामग्री के चुनाव में आलोचकों पर निर्भर रहती है और यदि आलोचक उस विषय के अधिकारी नहीं होते तो 'अन्धेन नीयमानाः अन्धाः'' की बात हो जाती है। सम्पादक सर्वज्ञ नहीं होते। ऐसी अवस्था में आलोचक-मण्डल की आयोजना स्वागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने योग्य है। संस्था का उद्देश्य यह होगा कि लेखक और प्रकाशकों के लिए यह गारंटी रहे कि उनके साथ अन्याय न होगा। पाठक भी गुमराह न होंगे, चाहे उन्हें भिन्न-भिन्न मतों के जानने का मोह संवरण करना पड़े। आलोचकों के लिए भी समालोचना-कार्य बेगार न होगा। अखबार वाले केवल इतने घाटे में रहेंगे कि जहां उन्हें छोटी आलोचनाओं का कुछ नहीं देना पड़ता था, अब कम से कम एक रुपया पेज देना पड़ेगा। इसके बदले में उनको ठोस और विश्वास-योग्य सामग्री मिलेगी। ऐसा मालूम पड़ता है कि सब भार पत्रों पर ही डाला जाता है किन्तु प्रकाशक और लेखकों को भी न्यायतः कोर्ट फीस की भांति पुस्तक के पृष्ठों या मूल्य के अनुपात में कुछ देना चाहिए। पत्र सम्पादक लोग तो केवल अग्रगराय पुस्तकों की आलोचना चाहेंगे। प्रश्न आयोजना की व्यावहारिकता का है। एक आपत्ति तो स्वयं आयोजना के जन्मदाताओं ने उपस्थित की है। वह यह कि सब लोग एक ही आलोचना का सब पत्रों से पढ़ना पसन्द नहीं करेंगे। इसका जो समाधान किया गया है वह सन्तोषजनक नहीं। लेखक लोग जहाँ मतों की फाइलें बनाते हैं, वहां एक मत को ही भालांकित विधि की रेखा समझ कर सन्तोष करेंगे। राज-कीय फ़ैसलों में एक या दो जगह अपील की गुन्जायश रहती है, क्या इसमें भी ऐसी कोई व्यवस्था रहेगी? एक कठिनाई और भी है। आलोचक-मण्डल एक होते हुए भी आलोचकों के दृष्टिकोण अलग-अलग हो सकते हैं। हमें विश्वास है कि प्रोफेसर नगेन्द्र और पं किशोरीदास वाजपेयी का एक दृष्टिकोण होना करीब-करीब उतना ही कठिन होगा जितना कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों का मिल जाना। इसके लिए आलोचना के मान भी स्थिर करने पड़ेंगे। आशा है कि आयोजना के विधायक-गण इन कठिनाइयों पर ध्यान देंगे। साहित्य-सन्देश ने और शायद अन्य जिम्मेदार अखबारों ने भी विषयवार अपने आलो-चक नियत कर रक्खे हैं। फिर भी हम लोग यथाशक्ति इस आयोजना से लाभ उठाना चाहेंगे क्योंकि इनमें से कई हमारे स्थायी आलोचक हैं। इस नामावली में बहुत कुछ परिवर्तन की गुंजायश है। डा० बाबूरामजी सक्सेना संस्कृत और भाषा-विज्ञान के पण्डित हैं, न कि अर्थशास्त्र के। प्रोफेसर बी० एल० आत्रेयी (बनारस) और प्रोफेसर प्रभाकर माचवे (उज्जैन) का नाम जोड़ना वांच्छनीय होगा। राजनीति और अर्थशास्त्र में केलाजी का नाम न होना खटकने वाली बात है। कठिनाइयाँ हर काम में होती हैं, वे आयोजना को चालू करने पर ही दूर हो सकेंगी।

लिफाफा-आन्दोलन—

कुछ दिन हुए पं० किशोरीदासजी वाजपेयी ने स्वर्गीय द्विवेदीजी के बन्द लिफाफे के सम्बन्ध में आन्दोलन उठा कर सुप्तप्राय: हिन्दी संसार में एक हल-चल मचादी थी, उस समय ऐसा मालूम पड़ने लग गया था कि किसी तिलस्मी कोठरी का द्वार खुलने वाला है और उसका वर्णन सुनने के लिए जनता राजा पृथु के समान सहस्र-करण हो उत्सुक हो उठी थी। किन्तु लोगों को निराशा-सी हुई। अब हाल में उस आन्दोलन ने करवट बदली है और उसमें जीवन का सञ्चार दिखाई पड़ने लगा है। इस सम्बन्ध में देशदूत में अभी एक नोट निकला है। उससे प्रतीत होता है कि उक्त लिफाफे के कागजों की सूची बन गयी है। यह आन्दोलन हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु नहीं और इसका सहज में ही अन्त हो सकता है। इसके दो ही प्रकार हैं; या तो नागरी प्रचारणी सभा उस सूची को प्रकाशित कर दे और यदि किन्हीं कारणों से सभा उस सूची को प्रकाशित नहीं करना चाहती तो स्वयं वाजपेयीजी काशी जाने का कष्ट करें। अगर कनखल के लोग काशी जाने की अधिक परवाह न करते हों तो वाजपेयीजी बनारस के ही किसी विश्वस्त आदमी को यह काम सौंप दें और आप्त प्रमाण से संतुष्ट हो जायँ। काशी सत्य हरिश्चन्द्र की नगरी है उसमें कम से कम दो-चार सत्यवादी लोगों का मिल जाना कठिन नहीं है।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ वर्ष की विषय-सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ	अङ्क
१ अलौकिक बनाम लौकिक	नरोत्तमप्रसाद नगर	१	१
२ अनूदित बुद्धचरित	गोपाल व्यास एम० ए०	८-९	४२९
३ आज की हिन्दी कविता	प्रकाशचन्द्र गुप्त	१२	५३७
४ आज के हिन्दी नाटक की पृष्ठभूमि	नगेन्द्र एम० ए०	६	२८४
५ आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल : एक झाँकी	केशवचन्द्र शुक्ल	८-९	३७०
६ आचार्य शुक्ल और श्री आई० ए० रिचर्ड्स्	नगेन्द्र एम० ए०	८-९	३९१
७ आचार्य शुक्ल और काशी नागरी प्रचारिणी सभा	रामबहोरी शुक्ल	८-९	४०५
८ आचार्य शुक्लजी की सर्वप्रथम मौलिक रचना	शिवपूजन सहाय	८-९	४२२
९ आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल	रामस्वरूप शर्मा	८-९	४०१
१० अङ्ग्रेजी उपन्यासों का विकास	हरिवंशराय बच्चन	२-३	१६०
११ अंचल : एक कवि	रमेश	४	२०२
१२ अन्तिम आकांक्षा	सोहनलाल द्विवेदी	८-९	२६९
१३ उपन्यास	हजारीप्रसाद द्विवेदी	२-३	४१
१४ उपन्यास का शरीर-विज्ञान	गुलाबराय एम० ए०	२-३	४६
१५ उपन्यासों का स्वरूप	विनोदशंकर व्यास	२-३	५२
१६ उपन्यासों का वर्गीकरण	रामचन्द्र शुक्ल	२-३	८३
१७ उपन्यासकार कौशिकजी	शर्मनलाल अग्रवाल	२-३	११९
१८ उन चार वर्षों की याद में	उदय एम० ए०	८-९	३७८
१९ उर्दू से सम्बन्धित तीन हिन्दी पुस्तकें	धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०	११	५०९
२० कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२-३	५४
२१ कबीरदासजी के दार्शनिक सिद्धान्त	गुलाबराय एम० ए०	५	२३५
२२ कबीर और सृष्टि-विज्ञान	कैलाशचन्द्र मिश्र एम० ए०	७	३१६
२३ कविता के पथ पर	मैथिलीशरण गुप्त	१२	५३३
२४ काव्य और प्रकृति	सत्यप्रसाद थपलियाल	१	५
२५ कामायनी	विश्वंभरदयाल मानव एम० ए०	७	३४१
२६ केशव की काव्यकला	प्रकाशचन्द्र जैन	७	३३४
२७ कोष के संपादन में	श्यामसुन्दरदास	८-९	३९५
२८ ग्राम्या : पन्तजी की अभिनव कृति	नगेन्द्र	११	५११
२९ गुप्तजी की भारत-भारती	महेन्द्र	१२	५५३
३० गुजराती का उपन्यास साहित्य	नटवर	२-३	१५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	लेख	लेखक	पृष्ठ	अङ्क
३१	चिन्तन के क्षणों में	महादेवी वर्मा	५	२५७
३२	,, ,, ,,	,,	६	२६१
३३	,, ,, ,,	,,	१०	४७
३४	चन्द और पृथ्वीराज रासौ	शर्मनलाल अग्रवाल	७	३०८
३५	चलती कविता	रामविलास शर्मा	१२	५५०
३६	छायावाद और प्रगतिवाद	शिवनन्दनप्रसाद बी० ए०	११	५०३
३७	जन-साहित्य	रामजीलाल शर्मा एम० ए०	१०	४५३
३८	जायसी का प्रेम काव्य	शिवनन्दनप्रसाद बी० ए०	७	२१
३९	जापानियों के वैज्ञानिक साहित्य की भाषा	डा० सत्यप्रकाश	६	२७६
४०	जैनेन्द्र कुमार दो दृष्टिकोण से	नन्ददुलारे बाजपेयी, माचवे	२-३	१०८
४१	तीन नयी पुस्तकें	स० ही० वात्स्यायन	४	२०७
४२	तीन प्रत्यालोचनाएँ	जैनेन्द्र, यशपाल, जगदीश०चतु०	१२	५५५
४३	तुलसी के दार्शनिक और धार्मिक सिद्धान्त	ब्रजमोहन गुप्त	७	३२६
४४	दो हिन्दी पुस्तकें : ग्राम्या और रेखाचित्र	स० ही० वात्स्यायन	१०	४७१
४५	दो पत्रों के कुछ अंश	हरिऔध, नन्ददुलारे बाजपेयी	६	२६७
४६	नहुष : गुप्तजी की नवीन कृति	गुलाबराय	१	१७
४७	निरालाजी के उपन्यास	गोपालप्रसाद व्यास	२-३	१३६
४८	नूरजहाँ	बिश्वंभरदयाल मानव	५	२४२
४९	नन्ददुलारे बाजपेयी के भाषण की समीक्षा और स्पष्टीकरण	प्रभाकर माचवे और बाजपेयीजी स्वयं	११	४६३
५०	पल्लविनो	प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए०	५	२३६
५१	परिचय	रामचन्द्र शुक्ल	८-९	३६५
५२	पूना सम्मेलन के विविध भाषण	सम्पादकीय	६	२९२
५३	प्रबन्धकार शुक्लजी	सद्गुरुशरण अवस्थी	८-९	४१२
५४	प्रसादजी का चन्द्रगुप्त	सत्येन्द्र एम० ए०	७	२४९
५५	प्रसादजी के उपन्यास	कृष्णदेवप्रसाद गौड़	२-३	९९
५६	प्राचीन कथा-साहित्य	वासुदेवशरण अग्रवाल	२-३	१४७
५७	प्रेमचन्द्र और गोदान	ओ३म्प्रकाश शर्मा	७	३५७
५८	प्रेमाश्रम का प्रतिपाद्य	हजारीप्रसाद द्विवेदी	१०	४६७
५९	प्रेमचन्द	गोपालप्रसाद व्यास	२-३	९१
६०	पं० रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय	श्यामसुन्दरदास	८-९	३६७
६१	पं० भगवतीप्रसाद बाजपेयी के उपन्यास	उदयशंकर भट्ट	२-३	१२९
६२	पं० चतुरसेन शास्त्री	बद्रीप्रसाद सारस्वत	२-३	१३१
६३	पंच पात्र (श्री नाथसिंह, ऊषादेवी, मिश्रा, उग्र, अनूपलाल मंडल, राजा राधिकारमणसिंह)	करुण, सरोजिनी देवी, शर्मनलाल, खूबलाल मंडल, प्रताप साहित्यालंकार	२-३	१४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख	लेखक	अङ्क	पृष्ठ
६४ बंगला का आधुनिक उपन्यास-साहित्य	निर्मलचन्द्र चट्टोपाध्याय	२-३	१५०
६५ भगवतीचरण वर्मा	प्रकाशचन्द्र गुप्त	२-३	१२२
६६ भाषा विज्ञान का ध्येय	राममूर्त्ति मेहरोत्रा	१	११
६७ भाषा विज्ञान का इतिहास	” ”	४	२११
६८ ” ” ”	” ”	५	२४६
६९ भाषाओं का रचनात्मक वर्गीकरण	” ”	६	२७९
७० ” ” ”	” ”	१०	४७८
७१ महादेवी की रहस्य भावना	विश्वम्भरदयाल मानव	४	१९८
७२ मराठी के राजनैतिक उपन्यास	प्रभाकर माचवे	२-३	१५४
७३ मानव सौन्दर्य का कवि विद्यापति	जगदीशचन्द्र माथुर	१२	५४३
७४ मालविकाग्नि मित्र का समय	चन्द्रबली पांडे	१२	५४७
७५ मेरे विषय में कुछ प्रासंगिक बातें	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	१	१५
७६ युद्ध सम्बन्धी सामयिक साहित्य	रमेश वर्मा	१	२०
७७ रस और दोष	गुलाबराय	७	३६०
७८ रामचन्द्र शुक्ल : समालोचक और निबन्धकार	नलिन विलोचन शर्मा	८-९	४१०
७९ लोक-व्यवहार : एक आलोचना	श्री "म" महोदय,	१२	५५०
८० वर्तमान कविता का क्रम-विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	४	१८७
८१ विद्यार्थीगण आलोचकों की आँखों से न देख कर अपनी आंखों से देखें	गुलाबराय	११	५०६
८२ विद्यापति का हिन्दी-साहित्य में स्थान	गुलाबराय	७	३१३
८३ वृन्दावनलाल वर्मा : तुलनात्मक अध्ययन	ज्ञानचन्द जैन	२-३	१११
८४ शुक्लजी की मानसिक भूमिका	जैनेन्द्रकुमार	८-९	३८३
८५ शुक्लजी और हिन्दी की परम्परा	रामविलास शर्मा	८-९	३८९
८६ शुक्लजी का आलोचकों में स्थान	शान्तिप्रिय द्विवेदी	८-९	४०६
८७ शुक्लजी के मनोविज्ञानिक निबन्ध	गुलाबराय	८-९	४१४
८८ शुक्लजी के इन्दौर वाले भाषण की कुछ विशेषताएँ	प्रभाकर माचवे	८-९	४२४
८९ शुक्लजी के काव्य में रहस्यवाद की झलक	गुलाबराय	८-९	४२५
९० शुक्लजी के अनुवाद	कृष्णदेवप्रसाद गौड़	८-९	४३२
९१ शुक्लजी की तीन भूमिकायें १-जायसी, २-सूर, ३-तुलसी	कन्हैयालाल सहल, सत्येन्द्र, गुलाबराय	८-९	४३५
९२ शुक्लजी की हिन्दी साहित्य को देन	विविध	८-९	४४२
९३ शुक्लजी का कवि-हृदय	केशरीनारायण शुक्ल	१०	४६१
९४ सूर का वियोग शृङ्गार	चिरंजीलाल एकाकी	७	३२५
९५ सेनापति का कवित्त रत्नाकर	अम्बिकाचरण शर्मा	७	३३८
९६ स्वर्गीय आचार्य का अन्तिम दर्शन	शिवमंगलसिंह सुमन	८-९	३७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख	लेखक	अङ्क	पृष्ठ
९७ साकेत पर एक दृष्टि	भारतभूषण अग्रवाल	७	३४१
९८ सेवासदन	मुंशीराम शर्मा सोम	७	३५०
९९ साँझ के तारे	नगेन्द्र एम० ए०	५	२३१
१०० संस्कृत साहित्य में एकांकी नाटक	सूर्यनारायण व्यास	४	१६६
१०१ सेठ गोविन्ददास के नाटक	प्रकाशचन्द्र गुप्त	४	२०५
१०२ सियारामशरणजी उपन्यासकार के रूप में	गुलाबराय	२-३	११५
१०३ श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के तीन उपन्यास	चिरंजीलाल एकाकी	२-३	१२५
१०४ हिन्दी आलोचना	प्रकाशचंद्र गुप्त	१०	४५७
१०५ हिन्दी आलोचना और आचार्य शुक्लजी	नन्ददुलारे बाजपेयी	८-९	३६६
१०६ हिन्दी-साहित्य का इतिहास	विश्वम्भरदयाल मानव	८-९	४१८
१०७ हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य	नेमिचंद	६	२७३
१०८ हरिऔधजी की दो नवीन काव्य पुस्तकें	गुलाबराय	६	२८०
१०९ हिन्दी आलोचना जगत की समस्यायें	ब्रजमोहन गुप्त	५	२५०
११० हिन्दी का कथा-साहित्य	पदुमलाल पुन्नालाल बख्सी	२-३	६४
१११ हिन्दी उपन्यासों का प्रवृतिगत विकास	गोपालप्रसाद व्यास	२-३	७१
११२ हिन्दी उपन्यास का भविष्य	प्रकाशचन्द्र गुप्त	२-३	७५
११३ हिन्दी उपन्यासों के कुछ अभाव	ताराशंकर पाठक	२-३	८४
११४ हिन्दी उपन्यास के तीन अग्रदूत	विविध	२-३	८४
११५ हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार और परिचय	विविध	२-३	१६८
११६ हमारा मासिक साहित्य	संपादकीय		
११७ साहित्य परिचय (लघु आलोचनाएँ)	विविध लेखकों द्वारा		
११८ संपादकीय			

पुरानी फाइलों के सम्बन्ध में :—

साहित्य सन्देश की तीसरे और चौथे वर्षों की पूर्ण सजिल्द फाइलें मिलती हैं। तीसरे साल की फाइल के दाम ३) हैं, और चौथे साल की फाइल के ४) हैं। चौथी साल की फाइल में तीन विशेषाङ्क हैं और ५७२ पृष्ठ का ठोस मैटर है।

पहले और दूसरे साल की फाइल में पूरे अङ्क नहीं हैं। दोनों वर्ष के २४ अङ्कों में से ८ अङ्कों की यह सजिल्द फाइल २) में प्राप्त हो सकेगी।

प्रत्येक वर्ष की फाइलें के लिए ।≈) पोस्टेज को पृथक से भेजने चाहिए। रुपया मनी आर्डर से पेशगी आना चाहिए। बी. पी. से फाइलें नहीं भेजी जातीं।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलभ साहित्य माला की नई योजना

अन्य नामी लेखकों के ग्रन्थ भी प्रकाशित होने लगे

मूल्य, पृष्ठ-संख्या, टाइप आदि वही

पाटन का प्रभुत्व

बम्बई की कांग्रेस-सरकार के गृह-सचिव और गुजराती के प्रतिभाशाली लेखक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का यह ऐतिहासिक उपन्यास दो भागों में प्रकाशित हो गया है और दूसरा उपन्यास 'गुजरात का नाथ' प्रेस में जा रहा है।

फ्रान्स के अमर लेखक ड्यूमा ने जिस तरह अपने देश के इतिहास के आधार पर एक दूसरे से सम्बद्ध कई उपन्यास लिखे हैं उसी तरह मुन्शी ने गुजरात के इतिहास को लेकर चार उपन्यास लिख कर गुजराती साहित्य में अमर कीर्ति प्राप्त की है, ये उपन्यास इतने सुन्दर, सरल और मनोरंजक हैं कि गुजरात में घर-घर पढ़े जाते हैं। इनका एक-एक पात्र हृदय में हमेशा के लिए घर कर लेता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की कमी को देखते हुए हमारा विश्वास है कि इनका खूब सत्कार होगा। दोनों भागों का मूल्य दस-दस आना।

सुनीता और परख-स्पर्धा

इसी माला में श्री जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों के ये दो भाग भी छपे हैं। इनका मूल्य भी दस-दस आना है। 'सुनीता' का मूल्य पहले तीन रुपया था।

राधा (भावनाट्य)

पं० उदयशंकर भट्ट हिन्दी के नामी कवि और नाटक-लेखक हैं। उनका यह पद्यबद्ध भाव-नाट्य बिलकुल ही नये ढंग की रचना है। मूल्य दस आना।

शरत्-साहित्य

१६ भाग निकल चुके हैं। 'शेष-प्रश्न' प्रेस में जा रहा है और 'श्रीकान्त' चतुर्थ पर्व शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

नोट—पास के बुकसेलरों से खरीदिए। नहीं तो फिर हमसे मँगाइए। सूचीपत्र के लिए पत्र लिखिए।

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय**, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्र] [वार्षिक मूल्य १) नमूना मुफ्त

धर्म-दूत

—:o×o:—

यदि आप संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष भगवान बुद्ध की जीवनी और उनका उपदेश पढ़ना चाहते हैं, यदि आप बौद्धकालीन भारतीय संस्कृति, सभ्यता साहित्य और कला का अध्ययन करना चाहते हैं और यदि आप यह जानना चाहते हैं कि बौद्ध धर्म के साथ-साथ इन वस्तुओं का संसार में कैसे प्रचार हुआ तो शीघ्र ही धर्म-दूत बनिए।

पता —'धर्म-दूत' सारनाथ (बनारस)

हिन्दी की सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

वीणा

सम्पादक— श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'

प्रकाशक— श्री मध्यभारत-हिन्दी साहित्य-समिति

डाक्टर बाबूराम सक्सेना, एम०ए०, डी० लिट०, भू०पू० प्रधान-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग—'वीणा' हिन्दी की उच्च कोटि की पत्रिका है जो मातृ-भाषा और साहित्य की प्रचुर सेवा कर रही है।

आगामी विशेषाङ्क दिवाली के अवसर पर

वार्षिक मूल्य ४) नमूने का अङ्क फ्री नहीं भेजा जाता एक प्रति ।=)

व्यवस्थापक—'वीणा', इन्दौर !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबकी बोली सम्पादक—काका कालेलकर

[यह मासिक पत्रिका हर महीने की १५वीं तारीख को निकलती है ।]

अिसमें आहिस्ता आहिस्ता हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की साहित्यिक और भाषा-विषयक बातें प्रकाशित हुआ करेंगी ।

अिसका मुख्य उद्देश्य है:—हिंदुस्तान की तमाम भाषाओंका आपसमें हार्दिक संगठन करना भारतमाता को पहचाननेके लिये और अुसकी सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये जिन बातोंकी जरूरत होगी, अुन सभी विषयोंकी चर्चा 'सबकी बोली' में हुआ करेगी ।

अिसके 'साहित्य-सत्कार' विभागमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सहयोग से राष्ट्रकी अुन्नति करनेवाले सेवकोंकी विचारधाराका परिचय तथा अुनके साहित्य की समालोचना रहा करेगी ।

अिसमें अेक खास विशेषता यह होगी—पारिभाषिक शब्द-चर्चा, कहानी, प्रवास, विशिष्ट व्यक्तियोंके शब्द-चित्र राष्ट्रभाषा-आंदोलन-संबंधी व विद्यार्थियों के लाभ के नियमित लेख ।

वर्धा-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति भी अपनी सभी जरूरी सूचनायें अिसमें प्रकाशित करती है

खास सूचना:—राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओंमें बैठनेवाले विद्यार्थी अपनी चालू **क्रम-संख्या** बतलाकर, १ रुपया वार्षिक चंदा देकर, अेक वर्षके लिये **'बोली'** पा सकते हैं । सर्वसाधारण से वार्षिक चंदा रु. १-४-० मनीऑर्डरसे ही लिया जायगा । हम वी० पी० नहीं भेजते । पत्र व्यवहार करते समय अपना नाम और पता साफ साफ नागरी हर्फोंमें लिखनेकी कृपा करें । फुटकर संख्या का तथा पुराने अङ्कका मूल्य दो आना । डाकखर्च; पुरानी संख्याके लिये प्रति अङ्क)॥ और नये अङ्कके लिये)। अङ्क की कीमत के साथ अवश्य आ जाना चाहिये ।   पता—व्यवस्थापक, सबकीबोली

घर बैठे डाक्टरी का पूरा ज्ञान करना हो तो !

नीचे लिखी पुस्तकें मँगाइये

डाक्टरी चिकित्सा—डाक्टरी रीति से रोगी का निदान, लक्षण, चिकित्सा—मू० ६)

एलोपैथिक मेटेरिका मेडिका—डाक्टरी औषधियों का पूरा वर्णन, बनाने की विधि, मात्रा, विरोधी दवाओं के नाम मू० ६)

कम्पाउन्डरी शिक्षा—मूल्य ॥)

इन्जैक्शन चिकित्सा, चरित्र [सुई द्वारा इलाज] मू० १)

डाक्टरी नुसखे—बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा परीक्षित १)

चिकित्सा के कर्तव्य—१॥)

प्रसिद्ध देशीय औषधियों के अँग्रेजी डाक्टरों द्वारा परीक्षित प्रयोग । कीमत १)

भारतीय बनस्पतियों पर विलायती डाक्टरों के अनुभव—कीमत २)

याद रखो—अगर आपको तन्दुरुस्त रहना है तो इसकी बातें याद रखो । कीमत ।)

कायाकल्प—घर बैठे कायाकल्प करने की विधि व औषधियें । कीमत ।)

जच्चा-बच्चा—सन्तान पैदा होने से लेकर बच्चे के पालन पोषण की विधि । कीमत ।)

सन्तति निग्रह—जो लोग सन्तान पैदा होना पसन्द नहीं करते, उसकी निर्दोष विधियाँ तथा बिना दवा के उपाय बताते हैं । कीमत ।)

पुस्तकों का पैकिंग माफ, डाकखर्च मनीआर्डर जुदा पड़ेगा ।

मँगाने का पता—सुख संचारक कम्पनी लि०, मथुरा ।

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालोपयोगी इतिहास-माला

उथल-पुथल के इस जमाने में अनेक देश के भावी नागरिकों को संसार के उलट-फेर से परिचित कराने के लिये 'बालोपयोगी संसार का संक्षिप्त इतिहास' ३७ खंडों में निकालने की योजना है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से लिखी गयी हैं कि ऐतिहासिक ज्ञान कर नीरस और उलझनदार न समझें। कहानी के ढङ्ग पर लिखी पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार मूल्य प्रत्येक का १)

प्रकाशित—वैदिक भारत, पौराणिक भारत, रामायण, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश और बौद्ध भारत। तुर्क भारत, मुगल भारत, राजस्थान, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) सिख जाति और महाराष्ट्र।

विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मँगाइए।

बिहार, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बड़ौदा में शिक्षा-विभाग की स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक पठन-सामग्री देनेवाला अपने ढङ्ग का अकेला सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराता है।

प्रेरक कविताएँ, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।—)

४था अप्रेल के अंक 'उपकथांक' से आरम्भ हो गया है, किराये के नमूने के लिए ।) का टिकट भेजिये।

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार वर्मा	[illegible]
बिहार-दर्पण	गदाधरप्रसाद अम्बष्ठ	[illegible]
बिहार के दर्शनीय स्थान	,, ,,	१।)
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक	१।)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	१)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१।)
जीवन-यात्रा	,, ,,	।।।=)
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय	२)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	।।।)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२।)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अम्बष्ठ	१।)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	।।)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	।।।)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।=)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	।।।)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	२)
स्टालिन	रामइकबालसिंह	२)
खिलौना घर	हेनरिक इबसेन	।।)
हृदय की ओर	दुरगशंकर प्र० सिंह	२)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१।)
रजकण	,, ,,	।।।)
विभेद	राधाकृष्णप्रसाद	।।।)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१।।)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	।।)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	।।।)
कहानी-एक कला	गिरधारीलाल शर्मा गर्ग	।।=)
संस्मरण	सर्वदानन्द वर्मा	१।।)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	।।=)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	२)

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बांकीपुर (पटना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य जगत को दो उपहार

ओस के बूँद

[लेखक—कलाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी]

जो पाठक वाजपेयीजी की कहानियों तथा उनके उपन्यासों से परिचित हैं, उन्हें इस कविता संग्रह को पढ़ कर यह मान लेना पड़ेगा कि वाजपेयीजी कवि की हैसियत से भी कितने सफल और उच्च हैं। नये दृष्टिकोण से लिखी हुई उनकी सर्वाङ्ग सुन्दर कविताएँ इसमें दी गयी हैं मूल्य ।।।)

किरण बेला

[लेखक—कविवर "अञ्चल"]

'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' का यशस्वी कवि अपने इस कविता-संग्रह में सर्वथा प्रगतिशील होकर सामने आया है। आज का युग, अपनी जटिल समस्याओं के साथ, ऐसे ही कवि की वाणी की प्रतिष्ठा करता है। एक-एक कविता सामाजिक वैषम्य और विप्लव का चित्र सामने उपस्थित कर देती है। मू० १)

जर्मन युद्ध में युवती

उद्भ्रान्त किन्तु संयमित प्रेम; जलता उबलता देश प्रेम; अद्भुत साहस; आश्चर्य-जनक कौशल; विचित्र घटनाक्रम; विकट युद्ध; विस्मय से डराने वाली कूटनीतपूर्ण चालें; संसार में उथल-पुथल मचा देने वाले सनसनी-दार कार्यों का जीता जागता हृदय-हारी वर्णन इसमें एक साथ ही मिलेगा।

आकर्षक रुचित्र गेटअप, उत्तम कागज छपाई; पृष्ठ २७५, मूल्य केवल १।।)

पापी धर्मात्मा

राजनीतिक विवशता के तड़पते-बोलते चित्र, विशाल वैभव के दुर्दमनीय दृश्य, एवं पैशाचिक काण्ड; राजकुमारियों की भीषण प्रणय लीलाएँ; धर्म के विकृत सत्यानाशी स्वरूप तथा निरंकुश शासन के विकराल सच्चे नग्न चित्र इसमें पाठकों को मिलेंगे।

मनमोहक साज-शृङ्गार, बढ़िया कागज-छपाई, पृष्ठ २१६, मूल्य १।)

महामना मालवीयजी, माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन, यूनिवर्सिटियों के वाइसचांसलर प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक आदि जिनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे हैं और जिन्हें हर एक, हिन्दू को अपने पास रखना चाहिए, वे ही हैं :—

वाल्मीकि रामायण

सम्पूर्ण ७ काण्ड, ६६१ सर्ग सचित्र ५६० पृष्ठ मूल्य १।।।=)

श्रीमद्भागवत

सम्पूर्ण १२ स्कंध, ३३५ अध्याय, अनेक रङ्ग-बिरंगे चित्र, मूल्य १।।।=)

महाभारत

सम्पूर्ण सवा लाख श्लोकों की कथा (अध्याय प्रति अध्याय पृष्ठ १००० मूल्य ५)

(रूपान्तरकार पं० भगवानदास अवस्थी एम० ए०)

ज्ञानलोक दारागंज, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमला

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]

सम्पादक—श्री बाबूराम विष्णु पराड़कर

सहायक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

मैनेजर—'कमला' गायघाट, बनारस

नारी-जागरण का महान् सन्देश सुनाने वाली हिन्दी की प्रमुख सर्वोत्तम मासिक पत्रिका 'कमला' के प्रकाशन से हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में एक अजीब तहलका मच गया। हर एक उसकी गम्भीरता और उपयोगिता का कायल हो रहा है। यदि आपका विश्वास न हो तो एक प्रति मँगाकर देख लें। नमूने के लिए ।≈) के टिकट भेजिए। वार्षिक मूल्य ४।।) रखा है। आज ही चन्दा भेजिए या नमूना मँगाइए।

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

काशी का

मकरंदीय दशवार्षिक पँचांग

सं० २००१ से २०१० तक

पञ्चाङ्गकर्त्ता पं० इन्द्रदत्त ज्योतिषी मूल्य २।।)

पुस्तक व पंचाङ्ग मिलने का पता—

भार्गव पुस्तकालय, गायघाट बनारस।

क्या आप किसी के पिता और पति है ?

यदि हां तों

।। भाभी के पत्र ।।

पढ़िए और अपनी स्त्री तथा कन्याओं को पढ़ाइए

भूमिका लेखिक—कृष्णादेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' : लेखक—श्री 'व्यथितहृदय'

मूल्य सजिल्द १।)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, ब्रांच कचौड़ी गली बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब कोई बेकार न रहेगा

जिसके पास 'दौलत की खान' पुस्तक है वह एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक है। बेचारे गरीब आदमियों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे अपना जीवकोपार्जन करके कोई रोजगार कर सकें। यदि थोड़ा पैसा भी है तो उन्हें आसानी से थोड़ी लागत का रोजगार शुरू करने का तरीका ज्ञात नहीं जिसके कारण वे सर्वथा बेकार हैं, हमारी इस पुस्तक को मंगा कर पढ़ें। आप मामूली लागत और मेहनत से अपने शहर और कस्बों व गांवों में इज्जत के साथ काम शुरू करके थोड़े ही दिनों में अमीर बन जायँगे। लोग ऐसी पुस्तक को पाकर छिपाने की कोशिश करते हैं क्योंकि मनुष्य थोड़े ही दिनों में इस पुस्तक से एक बड़ी भारी सम्पत्ति का मालिक बन सकता है।

यदि आप [१] विलायत के बेकारों की भांति केवल कलम दवात के सहारे घर बैठे डाक द्वारा या पचासों आश्चर्यजनक किन्तु बेहद सरल एवं बिला पैसे की युक्तियां द्वारा अच्छी आमदनी करना चाहते हैं। [२] संसार की सुविख्यात कम्पनियों के पेटेन्ट और कई गुणे नफे में बिकने वाली प्रसिद्ध वस्तुओं के मामूली लागत के सच्चे नुस्खे बनाकर मालामाल होना चाहते हैं। विलायत की नई वस्तुओं के नमूने सर्वोत्तम व्यापारिक सलाह तथा संसार की प्रत्येक वस्तु का पता मुफ्त देने वाली फर्मों के पते जानने [३] २, ४, ६ आने से लेकर १०, २०, ५० रुपये की लागत के बेशुमार लाभ के बीसियों सरल रोजगार [४] प्रत्येक व्यापार एवं धन्धे में अच्छी सफलता पाने के गुप्त भेद [५] प्रत्येक बाजार एवं परिवार में धड़ाधड़ बिकने वाली पचासों आसान साधारण लागत और अत्यधिक नफे की वस्तुओं के बनाने तथा बेचने की विधियाँ जान कर अपनी बेकारी, बेरोजगारी, खर्च की तंगी और गुलामी की मार मिटाना चाहते हैं, तो आज ही इस पुस्तक को मंगाइये। मूल्य फी पुस्तक १॥) एक रुपया आठ आना, डाक खर्च ॥)

रूपविलास कम्पनी, नं० ४, कानपुर।

आयुर्वेद की परीक्षा देने वालों के लिये खुशखबरी !

चिकित्साचन्द्रोदय

पहिला भाग

आयुर्वेद विद्यापीठ की उत्तमा परीक्षा में शामिल !

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग को ही पढ़ने से आचार्य-परीक्षा तक में आसानी। परीक्षार्थी इसे ही मँगा कर पढ़ें।　　मूल्य ३) डाकखर्च ।||=)

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

नोट—याद रखो, चिकित्साचन्द्रोदय ७ भाग पढ़ कर अनेकों परीक्षार्थी आयुर्वेदाचार्य-परीक्षा में संस्कृत वालों से अच्छे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव वर्ष के विशेषांक में नवीनता

'कहानी' की भेंट

युद्ध और शान्ति की रोमांचकारी कहानियां
अद्वितीय गाम्भीर्य और हास्य
आधुनिक प्रेम-कथायें
निम्न वर्गों की मार्मिक गल्पें
भारत और विदेशों की चुनी कहानियाँ
कहानी-कला पर समीक्षात्मक लेख
पद्यबद्ध रसमय कथायें
कलात्मक रेखाचित्र, नखचित्र
आदि के साथ।

अनेकों सादे बहुरंगे मनोरम और कलापूर्ण चित्र

इनके अतिरिक्त :—

भेंट में

दो रुपये मूल्य का एक उत्कृष्ट उपन्यास

यह आठ आने मूल्य का कहानी-कला का ग्रन्थ रूप विशेषाङ्क भेंट-पुस्तक केवल वे ही ग्राहक पा सकेंगे जो अपना चन्दा ४) मनीआर्डर से २५ सितम्बर तक भेज देंगे।

विशेषांक और भेंट-पुस्तक की सीमित प्रतियां ही छप रही हैं

इसलिए चार आने भेज कर ही अगस्त की कहानी में विवरण देखें या हम से पूछें—

'कहानी' कार्यालय, बनारस कैन्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल १५ सितम्बर से ३१ अक्टूबर तक

नये ग्राहकों को नयी सुविधा

परीक्षांक— सम्मेलन की विशारद और रत्न परीक्षा, यू० पी० की विशेष योग्यता, पंजाब की प्रभाकर, भूषण आदि और दक्षिण की राष्ट्रभाषा विशारद, सूरत की कोविद और बिहार की साहित्यालंकार परीक्षाओं को दृष्टि में रख कर निकाला गया है।

— एवं —

हिन्दी लेकर जो विद्यार्थी इंटर, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाओं में प्रविष्ट हो रहे हैं, उन्हें यह अंक विशेष रूप से सहायता देगा।

परीक्षांक

देखिए परीक्षांक के कुछ निबंध

- चन्द और पृथ्वीराजरासो
- विद्यापति का हिन्दी साहित्य में स्थान
- कबीर और सृष्टि-विज्ञान
- जायसी का प्रेम काव्य
- सूर का वियोग-शृंगार
- केशव की काव्य-कला
- सेनापति का कवित्त रत्नाकर
- कामायनी
- साकेत पर एक दृष्टि
- सेवा-सदन
- गोदान
- रस और दोष

मुफ्त मिलेगा

साहित्य-संदेश हिन्दी का एकमात्र समालोचनात्मक पत्र है, जिसमें हिन्दी-साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों, विभिन्न वादों और समस्याओं पर प्रति माह नियमित लेख छपते हैं। हिन्दी साहित्य में उसके लेखकों और उनके ग्रंथों पर आलोचनात्मक प्रकाश डालने वाला यही सर्व प्रथम मासिक है।

वार्षिक मूल्य ३) साधारण अङ्क का नमूना मुफ्त मँगाइए। विद्यार्थियों से केवल २) साल

पत्र-व्यवहार का पता—साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

JUL 1983

बीमा कम्पनी ही क्यों ?

अधिक ब्याज दे सकने का कारण !

बीमा कम्पनी और बैंकों की रुपया देने लेने की नीति में बड़ा अन्तर है। बैंकें अपना रुपया कभी लम्बी मियाद के लिए देना पसन्द नहीं करतीं क्योंकि उन्हें कभी भी रुपए की जरूरत पड़ सकती है, और इसीलिए वे ज्यादा ब्याज भी पैदा नहीं कर पातीं। इसके विपरीत बीमा कम्पनियां सदा यह चाहती हैं कि अगर उनका रुपया सुरक्षित है तो वह ज्यादा से ज्यादा समय के लिए लगा रहे और इसीलिए रुपया सुरक्षित रखते हुए भी वे ब्याज अच्छी पैदा कर लेती हैं और इस दृष्टि से वे बैंकों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं और इसीलिए वे अपने ग्राहकों के लिए अच्छी ब्याज पैदा कर सकती हैं।

स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड

ने सारा खर्च काट कर और जोखिम के लिए रुपया अलग निकाल कर भी ६) प्रतिशत से अधिक ब्याज पैदा किया है और उसी से प्रभावित और उत्साहित होकर स्वदेशी ने अपने यहां रुपया जमा करने की नई योजना निकाली है कि जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति १००) से लेकर १०,०००) तक कम्पनी में डिपाजिट के रूप से निम्न ब्याज पर जमा कर सकता है :—

एक वर्ष की मुद्दत पर	...	३) प्रतिशत
दो वर्ष की मुद्दत पर	...	३।।) प्रतिशत
तीन वर्ष की मुद्दत पर	...	४) प्रतिशत

ब्याज हर छटे महीने मिलता है। विधवाओं, बच्चों और संस्थाओं को यह सूद हर महीने भी मिल सकता है।

सफलता का प्रमाण

रुपया जमा करने की यह योजना जनवरी सन १९४० से शुरू हुई है। इस थोड़े से समय में ही उसमें काफी सफलता मिली है और अधिकाधिक मिलती जा रही है। प्रमाण लीजिए—

१ जनवरी से ३० जून १९४० तक	६ मास में जमा हुए— ३९,४३४) रु०
१ जुलाई से ३१ दिसम्बर १९४० तक	६ मास में जमा हुए—१,००,८४८) रु०
१ जनवरी से ३१ जनवरी १९४१ तक	एक मास में जमा हुए— २९,९५१) रु०
१३ मास में कुल रुपया जमा हुआ	१,७०,२३३) रु०

कम्पनी की मजबूती का प्रमाण

उसने अपने बीमेदारों को आजीवन और मियादी बीमे पर १८) तथा १४) प्रतिवर्ष बोनस दिया है। और हिस्सेदारों को कई वर्ष से ६) प्रतिशत मुनाफा दे रहा है।

विशेष ब्यौरा जानने के लिए लिखिए या मिलिए ——

श्रीचन्द दौनेरिया मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर

स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

महेन्द्रजी के लिए साहित्य प्रेस, ५३ ए० सिविल लाइन्स आगरा से मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहकों के लिए नियम

१—यह पत्र प्रतिमास १ तारीख को प्रकाशित होता है।

२—पत्र का वार्षिक मूल्य ३) और एक प्रति का ।≈) है। विद्यार्थियों शिक्षा-संस्थाओं और पुस्तकालयों से पत्र का मूल्य २) वार्षिक लिया जाता है। भारत से बाहर सर्वत्र ४) वार्षिक।

३—वी० पी० मँगाने से ।) रजिस्ट्री के और देने होते हैं। इसीलिए मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजना चाहिए। रियायती मूल्य वालों को वी० पी० नहीं भेजी जाती उन्हें अपना मूल्य अग्रिम मनीआर्डर से भेज देना चाहिए।

४—सन्देश का वर्ष सितम्बर से प्रारम्भ होता है। नियम और सुविधा की दृष्टि से यही ठीक होता है कि वर्ष के प्रारम्भ से ही ग्राहक बनाये जायँ, फिर भी पाठक जिस अङ्क से ग्राहक होना पसन्द करेंगे, हो सकेंगे।

५—यदि नियत समय से एक सप्ताह बाद तक पाठक को अपना अङ्क न मिले तो उसे डाकघर से इसकी तलाशी करनी चाहिए, और फिर हमें अपने ग्राहक नम्बर और पूरे पते के साथ सूचना देनी चाहिए। इस प्रकार १५ दिन के अन्दर मिलने वाले पत्रों पर अङ्क पुनः भेज दिये जायंगे, बाद में नहीं।

६—मनीआर्डर भेजते समय अपना पता, स्थान, पोस्ट और जिला स्पष्ट अक्षरों में लिखना चाहिए और सब प्रकार की लिखा-पढ़ी यथासंभव हिन्दी में ही करनी चाहिए।

७—यदि थोड़े समय के लिये पता बदलवाना हो तो स्थानीय डाकघर से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और अधिक दिनों के लिए हमें सूचित करना चाहिए।

८—प्रत्येक प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक नम्बर लिखना आवश्यक है। कई हजार ग्राहकों में बिना नम्बर के पता तलाश करना आसान नहीं। ग्राहक नम्बर ग्राहकों के पतों पर लिखा रहता है।

लेखकों के लिए

१—साहित्य-सन्देश हिन्दी का पूर्णतः साहित्यिक (आलोचनात्मक) पत्र है। इसमें रचनात्मक साहित्य—कविता, कहानी आदि नहीं छपते।

२—नवीन पुस्तकों पर वे ही लेख जा सकेंगे, जिनकी पुस्तकें हमारे यहां समालोचनार्थ आ गयी होंगी।

३—लेख या आलोचना की एक नकल रख कर ही उसे छपने भेजा जाय, या लौटाने के लिए टिकट रखे जायं।

४—व्यक्तिगत आक्षेप और पक्षपातपूर्ण आलोचनाएं इस पत्र में स्थान नहीं पातीं।

५—पुरस्कार दिया जाता है, लेकिन सब लेखों पर नहीं अर्थाभाव के कारण कुछ अच्छे लेख ही पुरस्कृत किये जाते हैं।

६—लेख कागज के एक ओर हांसिया छोड़कर स्पष्ट और स्याही से लिखा जाना जरूरी है। लेख के अन्तिम पृष्ठ पर लेखक का पूरा नाम और पता भी रहना चाहिए।

विज्ञापन के नियम

१—साहित्य-सन्देश में निम्न-श्रेणी के विज्ञापन नहीं छापे जाते:—

क—विदेशी वस्तुएं।

ख—औषधियाँ।

ग—पजलें।

ङ—चमत्कार, धोके-धड़ी व अश्लील प्रकार के विज्ञापन।

२—विज्ञापन की दर इस प्रकार हैं:—

(अ) साधारण पूरा पृष्ठ	२०)
(इ) " आधा "	१२)
(उ) " चौथाई "	८)
(ए) टाइटिल का चौथा पृष्ठ	३०)
(ओ) " का दूसरा पृष्ठ	२५)
(अं) " का तीसरा "	२५)

३—पूरे छः मास और एक साल तक के विज्ञापनों की कुछ विशेष सुविधायें दी गयी हैं, वह पत्र-व्यवहार से मालूम कीजिए।

पत्र-व्यवहार का पता :— **साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पुस्तकें

दर्शन

१—भारतीय दर्शन का इतिहास—श्री देवराज एम० ए० १॥)

उपन्यास

२—पाटन का प्रभुत्व (दो भाग)—क० मा० मुंशी ॥।) + ॥=)

३—कुचक्र—नरसिंहराम शुक्ल १॥)

कहानी

४—सच्ची रोमांचक कहानियां—शिवनाथसिंह शांडिल्य १)

बालोपयोगी

५—बाल नाटक माला—बालगोबिन्दप्रसाद श्रीवास्तव ।)

६—अनौखी दुनियां—व्यथित हृदय ॥=)

स्त्रियोपयोगी

७—अभागे दम्पति—व्यथित हृदय १।)

विषय सूची

१—प्रगतिवाद किधर ?—श्री विश्वम्भरदयाल मानव ४६
२—आलोचक के सामने—श्री गुलाबराय और डा० रामकुमार वर्मा ५४
३—हिन्दी साहित्य में गोपालकृष्ण—श्री सूर्यपाल सिंह एम० ए० ६१
४—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—श्री गङ्गाप्रसाद मिश्र ६७
५—शरद की नारी—चन्द्रकिरण सोनरिक्सा ७२
६—शेखर : एक जीवनी—डा० श्रीकृष्ण सक्सेना एम० ए०, पी० एच० डी० ७५
७—उन्मुक्त—श्री गुलाबराय एम० ए० ७८
८—साहित्य समीक्षा ८०
९—सम्पादकीय ८६

पुरानी फाइलों के सम्बन्ध में:—

साहित्य सन्देश की तीसरे और चौथे वर्षों की पूर्ण सजिल्द फाइलें मिलती हैं। तीसरे साल की फाइल के दाम ३) हैं, और चौथे साल की फाइल के ४) हैं। चौथी साल की फाइल में तीन विशेषाङ्क हैं और ५७२ पृष्ठ का ठोस मैटर है।

पहले और दूसरे साल की फाइल में पूरे अङ्क नहीं हैं। दोनों वर्ष के २४ अङ्कों में से ८ अङ्कों की यह सजिल्द फाइल २) में प्राप्त हो सकेगी।

प्रत्येक वर्ष की फाइलों के लिए ।=) पोस्टेज को पृथक से भेजने चाहिए। रुपया मनीआर्डर से पेशगी आना चाहिए। वी० पी० से फाइलें नहीं भेजी जातीं। —मैनेजर

विशेषांकों के सम्बन्ध में

हमारे अब तक ५ विशेषांक निकल चुके हैं।

१—प्रसाद अङ्क मूल्य ॥।) २—द्विवेदी अङ्क ॥) ३—उपन्यास अङ्क १)
४—परीक्षांक ।=) ५—शुक्ल अङ्क १)

प्रसाद अङ्क और शुक्लांक स्टाक में नहीं हैं। और प्रसाद अङ्क के लिए ॥।=) हमारे साहित्य-रत्न भण्डार आगरे के पते से भेजने चाहिए। कारण कि उक्त अङ्क पुस्तक रूप में पुनः प्रकाशित हुआ है। शेष अङ्कों के लिए नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करें—

❀ साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा ❀

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मिलने का एक मात्र पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी संसार में हलचल मचा देने वाला

'जीवन-सखा' का व्यायाम अंक

१ जनवरी १९४२ को प्रकाशित होगा

'जीवन सखा' के छठे वर्ष में प्रवेश करने के अवसर पर आगामी जनवरी में इसका 'व्यायाम अङ्क' निकलने जा रहा है, जो प्राकृतिक साधनों के द्वारा स्वास्थ्य लाभ करने के इच्छुक हिन्दी प्रेमियों के लिए स्वास्थ्य विषयक एक अभूतपूर्व ग्रन्थ होगा।

इसमें क्या रहेगा ?

१—फेफड़ा और मांस पेशियों पर व्यायाम का प्रभाव
२—हृदय पर व्यायाम का प्रभाव।
३—व्यायाम के समय शरीर की आन्तरिक अवस्था और क्रियाएँ।
४—व्यायाम के लिए अवस्था, व्यायाम तथा स्त्री-पुरुष का विचार।
५—जर्मन व्यायाम प्रणाली।
६—स्वीडिश व्यायाम प्रणाली।
७—फ्रान्स व्यायाम प्रणाली।
८—खेलाड़ियों (Sportsman) का व्यायाम।
९—युवक और युवतियों के लिए व्यायाम।
१०—स्कूलों की व्यायाम-पद्धति।
११—कालेजों और विश्वविद्यालयों में व्यायाम।
१२—लड़कियों के स्कूलों और कालेजों में व्यायाम
१३—व्यायाम बीमारियों के लिए।
१४—मालिश।
१५—कन्धों की विषमता का कारण और इलाज।
१६—पेट की कमजोरी और आँत उतरने का इलाज।
१७—कब्ज का इलाज।
१८—श्वास रोग का इलाज।
१९—रक्त-संस्थान के बीमारियों का इलाज।
२०—मोटापा इसका कारण और इलाज।
२१—नाड़ी दौर्बल्य और दर्द में व्यायाम चिकित्सा।
२२—हलकाना और गले का इलाज।
२३—फालिज का इलाज।
२४—भोजन और व्यायाम।
२५—व्यायाम और विश्राम।
२६—शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग का व्यायाम।
२७—आँखों के लिए व्यायाम।
२८—जापान व्यायाम प्रणाली।
२९—हिन्दुस्तानी व्यायाम पद्धति।
३०—हिन्दुस्तानी व्यायाम प्रवर्तकों की जीवनी और उनका कार्य।
३१—सूर्य्य नमस्कार।
३२—योग व्यायाम।
३३—अन्दरूनी सफाई के लिए योग क्रियायें।
३४—हिन्दुस्तान के प्रान्तों में व्यायाम।
३५—शरीर पर व्यायाम का प्रभाव।
३६—देश में व्यायाम-प्रसार की आवश्यता।
३७—हिन्दुस्तान में व्यायाम केन्द्रों का सिंहावलोकन।

अनेकानेक चित्रों से सुसज्जित इस वृहद् विशेषाङ्क मूल्य १) होगा, किन्तु 'जीवन सखा' के सभी नए व पुराने ग्राहकों को मुफ्त मिलेगा। इसलिये यदि आप अब तक 'जीवन-सखा' के ग्राहक न बने हों, तो शीघ्र ग्राहक बन कर इसे प्राप्त करें, अथवा १५ दिसम्बर के पूर्व ही ?) अग्रिम भेज कर विशेषाङ्क की कापी आप अपने लिए रिजर्व करा सकते हैं। युद्ध के कारण जो अनिवार्य कठिनइयाँ उत्पन्न हो गई हैं उनकी वजह से सीमित संख्या में यह विशेषाङ्क प्रकाशित होगा। इसलिए १५ दिसम्बर के पूर्व ही जिन्होंने केवल विशेषाङ्क की प्रति के लिए आवेदन नहीं किया, उन्हें फिर बाद में अङ्क प्राप्त न हो सकेगा। अतः शीघ्रता कीजिए, अन्यथा निराश होना पड़ेगा।

—मैनेजर, 'जीवन-सखा'
८७ हिम्मतगञ्ज, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार बातों का एक ही उत्तर

१—कपड़ा किस सूत से ज्यादा बुना जाता है ?
२—बटाई किस सूत की अच्छी होती है ?
३—सफेदी किस सूत में अच्छी होती है ?
४—एकसा और मजबूत सूत कौन-सा होता है ?

कबीर छाप सूत

स्वदेशी बीमा काटन मिल्स अलीगढ़

अच्छे सूत की जाँच—क्या आपने सोचा है कि ऊँचे नम्बर के सूत के दाम ज्यादा क्यों होते हैं इसलिए कि यह बारीक कता होता है और बढ़िया रुई का सूत होता है। अगर १० नम्बर का सूत है तो उसका वजन आठ आने भर और लम्बाई १०७॥ गज होनी चाहिए। जितना वह वजन में ज्यादा हो उसी हिसाब से कम नम्बर का होगा। १०७॥ गज सूत अगर चार आना भर हो तो वह २० नम्बर का होगा। यह सब बातें आपको 'कबीर छाप' सूत में मिलेंगी। एक पुड़ा में बाजारू सूत से बना हुआ कपड़ा मजबूती और नाप में हमारे सूत से ८० फीसदी भी तैयार न होगा।

भविष्य में सूत खरीदते समय एक बार इसकी भी परीक्षा करें

संचालक—स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड, आगरा

बी० एस० गुप्ता	मैसर्स सीताराम ज्वालाप्रसाद	श्रीचन्द दौनेरिया
मैनेजर	सोल एजेण्ट	मैनेजिंग डाइरेक्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप एक भारी उलझन में पड़ जाते हैं
जब आपके परिवार में
जेवर खरीदने व बनवाने की समस्या खड़ी हो जाती है
ऐसे समय के लिए आप अपनी डायरी में

T. 卐 M. R. केवल T. 卐 M. R.

कर्णसिंह रामसिंह सर्राफ का पता
नोट कर लीजिये

शहर में एकमात्र ऐसी दुकान जिसके लिये प्रत्येक समझदार व्यक्ति आपसे शिफारिस करेगा

फो० ११७ चौबेजी का फाटक किनारी बाजार आगरा।

हिन्दी की सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

'वीणा'

सम्पादक—
श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'

प्रकाशक—
श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य-समिति

डाक्टर बाबूराम सक्सेना, एम०ए०, डी० लिट०, भू० पू० प्रधान-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग—'वीणा' हिन्दी की उच्च कोटि की पत्रिका है जो मातृ-भाषा और साहित्य की प्रचुर सेवा कर रही है।

आगामी विशेषाङ्क दिवाली के अवसर पर

वार्षिक मूल्य ४) नमूने का अङ्क फ्री नहीं भेजा जाता एक प्रति ।=)

व्यवस्थापक—'वीणा', इन्दौर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष की सामाजिक, औद्योगिक और सांस्कृतिक उन्नति का दावेदार

'समाजसेवक' का

दीपावली अंक

: सचित्र :

उस विशेषांक में आपको ६४ पृष्ठों की ठोस सामग्री मिलेगी। उद्योग और वाणिज्य के इतिहास और विकास के विभिन्न पहलुओं पर विषय के अधिकारी लोगों के लिखे हुए लेख होंगे इसके अतिरिक्त सुन्दर साहित्यिक निबन्ध, मनोरंजक कहानियाँ और उत्कृष्ट कविताएँ सब मिलाकर यह अङ्क वास्तव में संग्रहणीय होगा।

नयनाभिराम छपाई

अलग से लेने पर इस अङ्क का मूल्य ४ आना होगा।

ग्राहक बनने में शीघ्रता कीजिए।

विज्ञापनदाताओं को यह अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए।

क्यों कि यह अङ्क सिमित संख्या में ही प्रकाशित होगा।

लिखिए: 'समाज सेवक', १५२ बी हरीसनरोड, कलकत्ता।

A Boon to Drawing Students.

When purchasing please buy the 'Crown Flag' Pastles only, free from all sorts of girt and waxy material.

A TRIAL SHALL CONVINCE YOU.

THE UNITED PENCIL WORK.

Manufacturers of :—

All sorts of Chalks & Pastles etc.

GUR-KI-MANDI, AGRA.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४॥)

२—वीरकाव्य संग्रह—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्य-रत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)

३—डिङ्गल में वीर रस—डिङ्गल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सं०—श्रीमोतीलाल मेनारिया एम०ए०। मूल्य १।॥)

४—संक्षिप्त हिन्दी साहित्य—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृतियों पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पं० ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' मूल्य ।॥)

५—चित्ररेखा—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम०ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १॥)

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवियत्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखी हुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवियित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १॥)

बाल-साहित्य-माला
१—वीरशतमन्यु (कविता) मूल्य ।)
२—छत्रपति शिवाजी (जीवनी) मूल्य ।)
३—बालभारती (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ
४—बालकथा (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ≈)
५—बालकवितावली (कविता) मूल्य ।)

— सम्मेलन पत्रिका —

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की यह मुख पत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य १)

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अशान्ति के जमाने में 'शान्ति' देने वाली शीतल छाया !

तृषित···जीवन की प्रिय करुण-सुधा ?

'सन्तप्त' मानव को आर्द्र करने वाली अनूठी अनुभूति-निर्झरिणी

क रु णा त रं गि णी

क रु णा त रं गि णी

एक अद्भुत पुस्तक, आज ही मँगाकर देखिए।

[लेखक—कविवर पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री]

इस 'पुस्तक' पर प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं का क्या ? मत है देखिए :—

विशाल भारत—प्रत्येक कविता कवि की सर्वतोमुखी कतिभा, कल्पना शक्ति और नीतिज्ञता की परिचायक है। भाव-गाम्भीर्य साथ ही भाषा का सौष्ठव और कल्पना की अनोखी उड़ान सोने में सुहागे का काम काम करती है।······

सुकवि—'करुणी तरुङ्गिणी' की करुण रागिनी मर्मस्पर्शिनी गति से भाव-सुधा का वर्षण करती है। कुशल 'कवि' की लेखनी का कमाल देखते ही बनता है।······

वर्तमान—भाषा की सरलता एवं भावों की उच्चता रचनाओं की खास वस्तु है। श्री 'गांगेय' जी को अपने मौलिक भावों पर पूर्ण अधिकार है। इसीलिए हर जगह उनकी यह दृढ़ता स्पष्ट झलकती है।······

विश्वामित्र—पुस्तक आरम्भ से अन्त तक सरस और भावमय कविताओं से पूर्ण है। प्रायः सभी विख्यात विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है।······

लोकमान्य—इस महत्वपूर्ण पुस्तक में समाज विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिष, मनोविज्ञान, आध्यात्म इतिहास आदि की पुटें सचित्र दिखायी पड़ती हैं। ऐसे ग्रन्थ के लिए शास्त्रीजी को भूरि २ धन्यवाद दें ?

विश्ववाणी—'गांगेय' जी की काव्य-प्रतिभा सर्वतोमुखी है। रस और भक्ति भाव तो उनके काव्य की निधि है। इस 'कृति' का हृदय से स्वागत ? देशी उत्तम पुस्तक ! छः सुन्दर चित्र ! सुनहरी जिल्द ! मूल्य सिर्फ एक रुपया आज ही इस पते पर आदेश भेजिये।

पुस्तक मिलने का पता—**श्रीमकरन्द साहित्य मन्दिर,**

गांगेय भवन, २८० चित्तरञ्जन एवेन्यू, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमला

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]
सम्पादक—श्री बाबूराम विष्णु पराड़कर
सहायक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

मैनेजर—'कमला'
गायघाट, बनारस

'कमला' का प्रथम उद्देश्य नारी समाजकी सेवा करना, भारतीय नारीकी विभिन्न समस्याओं तथा प्रश्नों पर विचार करना और नारी समाजको समुन्नत बनाना है। नारी-समाजकी उन्नतिके उपादान-शिक्षा, गृहस्थी, कला, कौशल आदि विषयों पर प्रकाश डालना भी पत्रिका का उद्देश्य है। महिलाओं को 'कमला' से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए। 'आज' काशी।

अधिकांश लेख महिलाओंके लिखे हुए हैं और भारत में नारी-जागृतके प्रमाण माने जा सकते हैं। पत्रिकाकी छपाई बँधाई भी अच्छी है, चित्र बहुत हैं और दाम कम। 'लीडर' प्रयाग।

'भाभीके पत्र' के यशस्वी लेखक श्रीयुत व्यथित हृदय की दूसरी देन

अभागे दम्पति

समाजका विष और अमृत। विवादग्रस्त दाम्पत्य-जीवन का प्रकाशमय चित्र

दाम्पत्य जीवन का विषाक्त रूप, स्त्री-पुरुषों के मनका हाहाकार, नारीकी दृष्टि में पुरुषकी दृष्टि में नारी, पुरुषके प्रति नारीकी धारणा, नारीके प्रति पुरुषका विचार—स्त्री पुरुषके सजीव पत्रोंमें पढ़िए

भाव और भाषा दोनों ही बहुत सजीव, बहुत चित्ताकर्षक।

अवश्य एक प्रति आज ही खरीदिए और अपने दाम्पत्य जीवन को सुन्दर बनाइये।

पृष्ठ संख्या १७५ सजिल्द मूल्य १)

भूमिका—लेखक—सम्पादक शिरोमणि श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर।

हजारों प्रशंसा पत्र प्राप्त
आपकी पत्नी की सबसे अधिक प्रिय वस्तु
जानते हैं क्या

॥ भाभी के पत्र ॥

आज ही एक प्रति खरीद कर उपहार रूप में दीजिए। पृष्ठ सं० १५० सजिल्द मू० १।)

भूमिका लेखक—श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़, बेढब बनारसी

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ५] आगरा—आश्विन १९९८ वि०; अक्टूबर १९४१ [अङ्क २

प्रगतिवाद किधर ?

[श्री विश्वम्भरदयाल 'मानव' एम० ए०]

प्रगतिवाद हिन्दी-साहित्य की नवीनतम प्रवृत्ति है। वह जीवन की कठोर वास्तविकता को लेकर चलती है। वैसे साहित्य सतत विकासोन्मुख है, और 'विकास' तथा 'प्रगति' एक ही भाव के दो शब्द होने से हमें इस निश्चय पर पहुँचाते हैं कि 'प्रगति' साहित्य का एक स्थायी विशेषण है अर्थात् नदी की धारा की भाँति साहित्य की विचार-धारा समय की ढलकाऊ भूमि पर सतत् गतिमयी, विकास-मयी और प्रगतिमयी होती है। हिन्दी-साहित्य को ही देखें तो वह एक ही प्रवृत्ति में बँध कर कभी नहीं रहा। कभी वह वीरगाथाओं को लेकर चला, कभी अज्ञातशक्ति की जिज्ञासा को, कभी राम-कृष्ण के किलकते-मंगलमय रूप को, कभी नारी के वाह्य आकर्षक स्वरूप को, कभी मन के छायामय अस्पष्ट भावों को और अब दलितों के दुःखी जीवन को। सुधार से भी उसका विरोध नहीं रहा। हमारे यहाँ कबीर और तुलसी महान सुधारक हो गये हैं, जो सामान्य जीवन में शान्ति स्थापित करने आये थे। पर 'प्रगति' शब्द आज एक नियत अर्थ में प्रयुक्त होता है। वह किसान, मजदूर, दलित एवं शोषित वर्ग के सुख-दुःख को चित्रित करने का दावा करता है। निश्चित ही राजनीति के क्षेत्र का 'समाजवाद' प्रगति के नाम से काव्य के क्षेत्र में आन्दोलन करने, खलबली मचाने आया है।

प्रगतिवादियों ने अपने को जाग्रति का अग्रदूत सिद्ध करने के लिए चार चीजों को समेटा है:—

(१) समाजवाद।
(२) राष्ट्रीय-भावना।
(३) यथार्थवाद।
(४) जड़वाद।

प्रगतिवाद भी पिछले कई वादों की भाँति विदेशी हवा है जो इस देश वालों के साथ उड़ कर आयी है। पर हवा भी चाहे कैसी ही विषम हो, अकारण नहीं चलती। आज के संसार में धन का विभाजन कुछ इतना अस्वाभाविक है कि वह चौंकाने वाला हो गया है। एक ओर स्वच्छ खुले वातावरण में बँगले खड़े हैं, दूसरी ओर तंग गलियों में दुर्गन्ध से पूर्ण टूटे घरौंदे हैं, जिन्हें पशुओं की खोह कहना अधिक उपयुक्त होगा; एक ओर दिन में इत्र से सुवासित कपड़े दो बार बदले जाते हैं, दूसरी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लज्जा ढकने तक को वस्त्र नहीं हैं; एक ओर ग्रीष्म में खस-खाने, वर्षा में सुरक्षित कमरे और शीत में इलैक्ट्रिक हीटर हैं, दूसरी ओर गर्मी में तन झुलसता, वर्षा में भीगता और जाड़ों में ठिठुर-ठिठुर जाता है। एक ओर मखमली गद्दे पर बैठा कुत्ता दूध और जलेबी भी नहीं खाता, दूसरी ओर नवजात शिशु के लिए भी अन्नाभाव के कारण माता के स्तनों तक में दूध सूख गया है। कैसी विषमता है ? किसी भी देश में ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर यदि यह पता चले कि मोटे आदमियों का मांस अधिकतर गरीबों का खून चूस कर बढ़ा है तो क्या खून खौल उठने के कारण नहीं उपस्थित होंगे ? देश के मन की वह हलचल क्या भूकम्प नहीं उत्पन्न करेगी ? यदि उस देश में संवेदनशील कवि रहते हैं तो क्या यह क्षोभ काव्य में नहीं व्यक्त होगा ?

पर जीवन के किसी सत्य का प्रकाश में आना और बात है और उसकी उचित अभिव्यक्ति तथा प्रचार और बात। जैसे धर्म में ऋषियों और पैगम्बरों की वाणी सुनें तो सभी का मन कैसा मुग्ध होता है, पर उनके अनुयायियों के आचरण से जो विरोध उठता है वह कितने अमङ्गल का कारण होता है ? इसी प्रकार सशक्त साहित्य की सृष्टि किसे रुचिकर नहीं है ? सत्य की अभिव्यक्ति कौन नहीं चाहता ? फिर जिसे आम लोग सत्य और सब कुछ समझते हैं उसका विरोध क्यों होता है ? क्या विरोध करने वाले बुद्धि-हीन हैं या समर्थक भी विवेकशील नहीं रह पाते ?

ईश्वरदत्त होने से प्रतिभा का समान विभाजन असम्भव होने पर भी धन का विभाजन सम्भव है, अतः दरिद्रता, परवशता आदि रोगों का उपचार यदि किसी देश के समाज में किसी 'वाद' विशेष को नष्ट कर किसी अन्य 'वाद' विशेष का स्वप्न देखना है तो इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है। 'सामूहिक मंगल' किसे अप्रीतिकर है ? पर अनुचित है विरोध का मूल कारण प्राचीन कला एवं सभ्यता का तिरस्कार और साहित्यकारों पर घृणित लाञ्छनों का आरोप। मध्य श्रेणी के लोगों के प्रति जैसे भाव प्रगतिवादी प्रकट करते हैं या कवियों को पूँजीपतियों का मानसिक दास बताते हैं या किसी काल के कलाकारों को 'जनाने' या स्त्रैण बनाते हैं उनमें उनके हृदय का द्वेष ही अधिक परिलक्षित होता है। कोई आदमी यदि बुरे ढङ्ग से धनोपार्जन करता है तो उस ढङ्ग को बुरा कहना तो बुरा नहीं है, पर सभ्यता या कलात्मक जीवन को बुरा कहना तो पाखण्ड है। प्रगतिवादी भी तो यही चाहते हैं कि छोटे आदमी अच्छे घरों में रहें, अच्छे कपड़े पहिनें, अच्छा खाना खायँ, विज्ञान और ललित कलाओं से उनका अच्छा परिचय हो। अतः सभ्यता या कला तो बुरी वस्तुएँ नहीं हैं ?

प्रगतिवादी एक नवीन दृष्टिकोण लेकर उतरे हैं और एक नवीन युग का निर्माण करना चाहते हैं। वे मनुष्य के समान अधिकारों को उद्घोषित करते हैं और पूँजी-प्रथा को मिटाना चाहते हैं। उनका कहना है कि यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो समाज का हाहाकार साहित्य में प्रतिबिंबित होना चाहिए। इस दृष्टि से जो कवि शृंगार की रचना करते हैं या अनन्त की ओर दौड़ लगाते हैं, उन्हें वे निम्नकोटि का कवि समझते हैं। 'रोमान्टिक' कवियों को वे प्रतिक्रियावादी कह कर उनका उपहास करते हैं और उनकी लेखनी को थामना चाहते हैं। उनका कहना है कि कवि अब तक धनपतियों के ही उपासक रहे हैं, क्योंकि प्राचीन काल से लेकर अब तक कवियों ने राजाओं, रानियों या मध्यवर्ग के सुख-दुःख को ही गाया है। दुष्यन्त-शकुन्तला, राम-सीता, रत्नसेन-पद्मावती के स्थान पर अब किसान, मजदूर और महतरानियों की जीवन-गाथा गायी जानी चाहिए। महलों, उद्यानों की चर्चा छोड़ कुटियों और गंदी नालियों के दृष्य सामने लाने चाहिए। ठीक है।

उच्चवर्ग के जीवन को चित्रित करने में जो कवियों पर धन की उपासना का दोष लगाया जाता है वह निराधार है। वास्तविक स्थिति यह है कि उच्चवर्ग के उत्थान-पतन के चित्रण करने में जो व्यापक प्रभावोत्पादकता का गुण आप-से-आप आ जाता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। जिसे अभ्यास है उसका पृथ्वी पर सोना अधिक अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता, पर राम और सीता के पृथ्वी पर सोने से जो विषाद निषाद को हुआ है वह किसका हृदय नहीं हिलाता ? किसी साधारण आदमी का अपनी महरिया के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वियोग में हाय-हाय करना संभवतः उतना प्रभावशाली न हो, जितना सीता के परित्याग पर राम का शोकाकुल होना। राम की आँखों में आंसू! उफ़!

अतः नवीन मार्ग के अनुयायियों की मनोवृत्ति में दो भावनाएँ काम करती हैं :—

(१) यह अभिमान कि हमारा दृष्टिकोण सर्वश्रेष्ठ है; अतः दूसरों का दृष्टिकोण हल्का ही नहीं हेय भी है।

(२) यह धारणा कि अपने से भिन्न कलाकारों के काव्य में जो सुन्दरता है उसे विकृत प्रमाणों की कीच से कुरूप करना है।

हो यह रहा है कि जो लेखक या कवि प्रगतिवाद के सिद्धान्तों की किसी प्रकार पूर्ति करते हैं उनकी तो सामान्य-से-सामान्य रचनाओं की प्रगतिवादी आलोचक अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हैं और अन्य क्षेत्र के महान-से-महान कवियों को तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, जैसे प्रसाद और महादेवी को प्रतिक्रियावादी कहना प्रारम्भ हो गया है। जो जिसका विषय नहीं है—उसमें उसको घसीटना और फिर आलोचना करना—इसको क्या कहा जाय, मैं कह नहीं सकता। कुछ दिन से महादेवीजी के काव्य पर असंगत आक्षेप एक साधारण बात हो गयी है। कोई उनकी रचनाओं में 'क्षयरोग के कीटाणु' देखता है, उनकी काव्य-धारा को क्षीण एवं सूखती बतलाता है, कोई उनकी विचारधारा को निष्प्राण ठहराता है, उनकी अनुभूति को 'चेतनाहीन' कहता है। 'यामा' की भूमिका में महादेवीजी ने दो बातें स्वीकार की हैं—

(१) जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है; उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी।

(२) मेरे गीत मेरा आत्म-निवेदन मात्र हैं।

पर आलोचकजी अपनी अक्ल की बारीकी के भीतर से यह प्रस्ताव सामने रखते हैं कि भौतिक जगत में अरमान पूरे न होने से वे उन्हें स्वप्न-जगत में पूरे करती हैं। उनके आध्यात्मिक विरह को सांसारिक निराशा समझ कर 'पतवार छूटने, नक्षत्र-प्रकाश बुझाने' को किसी मजदूर के घर का सामान लुटना समझ कर 'क्रान्ति के मजबूत जंगी जहाज' को उनके सामने पेश करते हैं। जिसकी दिशा भिन्न, गति भिन्न, लक्ष्य भिन्न है उसके लिए यह खामखाह की सहानुभूति या उपचार हास्यास्पद है। समाज के बाहर आप मानव-जीवन न मानें न सही, पर मानव-मन रहा है, और सदैव रहेगा। दूसरों के दृष्टिकोण के लिए थोड़ा आदर होना चाहिए। आपके स्वर में स्वर न मिलाने से हिन्दी में 'कामायनी' के स्रष्टा को या व्याकुल प्राणों की इस अमर गायिका को आप फूंक से नहीं उड़ा सकेंगे।

यह सब कुछ होता है प्रचार-भावना से। 'प्रॉपैगैंडा' का तो नाम लेते ही प्रगतिवादी चौंक उठते हैं, यद्यपि उसमें चौंकने की कोई बात नहीं। जब कोई वस्तु पनपना चाहती है तो एक ओर विरोधी वस्तुओं का संहार करती है, चाहे उसमें सफल न हो और दूसरी ओर अपना प्रसार। यह कार्य आलोचक ही नहीं कवि भी जाने-अनजाने करते हैं। कवि एक ओर निर्गुण का खंडन, साखी-सबदी दोहाकारों की निन्दा करता दूसरी ओर भक्ति की महत्ता प्रतिष्ठापित करता है; एक ओर रीतिकारों की वासनावृत्ति को गर्हित ठहराता दूसरी ओर ब्रह्म की उपासना का मार्ग प्रशस्त करता है; एक ओर छायावादियों की पलायन-वृत्ति को कायरता शब्द से अभिहित करता है और दूसरी ओर सामान्य प्रगतिवादी रचनाओं की प्रशंसा में पृथ्वी-आकाश एक करता है। आलोचक की सहायता मिलने से उसकी शक्ति और भी जोर पकड़ती है। किन्तु सत् साहित्य और प्रचारात्मक साहित्य के प्रचार में अन्तर है। केवल सिद्धान्तों के कथन करने वाले साहित्य को जब राजनीतिक प्रोपेगैंडा का रूप दिया जाता है और साथ ही सत्साहित्य की बुराई की जाती है तो उससे क्षोभ और प्रतिक्रिया का जन्म होता है जो हानिकर है। साहित्य का पहला प्रचार सुकवि, सुलेखक उत्पन्न करना है। केवल प्रचार के बल पर न कोई साहित्य आज तक पनपा है और न पनप सकता है। प्रगतिशील साहित्य के विरुद्ध जो यह आवाज उठी है कि वह अभी प्रायः बौद्धिक है, आराम कुर्सी पर बैठ कर प्रगतिशील रचनाएँ नहीं हो सकतीं, मोटर में घूम कर या रेल की खिड़की से गाँव या उसके वास्तविक वातावरण का अन्दाजा नहीं हो सकता, उसमें बहुत कुछ तथ्य है। जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम सिद्धान्त के रूप में जनता के सामने रखना चाहते हैं उसे अनुभव के रूप में ग्रहण करना ही होगा। प्रगतिवादी चाहें तो उनके प्रचार के कई शुभ और सफलरूप हो सकते हैं—

(१) प्रगतिशील-लेखक-संघों के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक सभाओं, समितियों या गोष्ठियों में व्याख्यानों द्वारा अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करना।

(२) पुस्तक के रूप में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करना।

(३) कवि सम्मेलनों में जनता को अपनी शक्तिदायिनी रचनाओं से प्रभावित करना।

प्रगतिवादियों से राष्ट्रीय कवियों को थोड़ा-सा आदर मिला है। यह इसलिए कि वे उनके सब से अधिक निकट हैं। पर राष्ट्रवादियों के केवल गाँधीवाद से वे संतुष्ट नहीं हैं। उनका अधिक उग्ररूप वे देखना चाहते हैं। राष्ट्रीय प्रेम में देश के स्वरूप की स्तुति, पूज्य पुरुषों के प्रति आदर, देश की दुर्दशा पर शोक एवं सुप्त जाति को जगाने का प्रयत्न आदि सम्मिलित हैं, काल के प्रभाव से अब युद्ध-गान, मार्चगान, विप्लवगान आदि प्रारम्भ हुए हैं। अब तक उपरूप धारण न करने का कारण कवियों की अनिच्छा रही है, पर एक बड़ा कारण यह भी है जिसे 'हल्दीघाटी' के प्रणेता ने उस वीर काव्य के प्रारम्भ में स्वीकार किया है—'मेरी लेखनी स्वतन्त्र नहीं' ज्यों-ज्यों यह भय छूटता जायगा, त्यों-त्यों आशा की जाती है कि कवि लोग देश के शरीर को अधिक स्वस्थ और प्राणों को अधिक बलवान बनाने में समर्थ होंगे। राष्ट्रीय कवि भी गीत-काव्य की ओर झुक गये हैं, या प्रबन्ध काव्यों में रात के जाने और सूर्य के आने के संकेत का अवकाश मात्र ही पाते हैं, नहीं तो स्वतन्त्ररूप से भारत-भूमि के विशालपट पर आधुनिक उलझनमय समस्याओं के सधे रंग से एक अमर महाकाव्य का वह चित्र प्रस्तुत किया जा सकता था जो देश की आत्मा को मानस की भांति युग-युग तक मुग्ध करता। उसके लिए समाजवाद या मार्क्सवाद ही स्वीकार किया जाय, यह कुछ आवश्यक **नहीं है।**

यथार्थ चित्रण स्वाभाविक चित्रण है इसका कोई विरोधी नहीं हो सकता। आदर्श चित्रण लोक-कल्याण को दृष्टि में रख कर हुए। वहाँ सत्य का अपलाप नहीं है। जहाँ कहीं अस्वाभाविकता दिखायी दे, वहाँ पृथक वस्तुओं या पात्रों के स्वरूप पर ध्यान न देकर पूर्ण काव्य या आख्यान का तात्पर्य ही ग्रहण करना चाहिए, फिर भी इस वैज्ञानिक युग में लोग यथार्थ की ओर जितना झुकें उतना अच्छा है। पर यथार्थ की भी एक सीमा है। काव्य का स्वरूप धारण करने से पहले कवि के मन के रस में वस्तु को डूबना पड़ता है, जहाँ उसके स्वरूप में बड़ा परिवर्तन होता है। आजकल ग्राम-युवतियों आदि के वर्णन में आप यह बात देख सकते हैं। इसी प्रकार जगत के वास्तविक सुख-दुःख, पाप-पुण्य आदि का चित्रण भी समझिए। पर आजकल एक बात और देखने में आरही है। 'कला जीवन के लिए है' को इतना घसीटा, जारहा है और 'कविता का समाज से अविच्छेद्य सम्बन्ध है' की ऐसी ऐनक आँखों पर लगी है कि सुन्दर को, केवल सुन्दर को लोग अच्छी आँखों नहीं देखते। 'तांज' के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। ताज पर सुन्दर-से-सुन्दर रचनाएं हुई हैं, पर कला, भाषा के माधुर्य और भावों की मार्मिकता की दृष्टि से टैगौर कृत 'बलाका' पुस्तक की 'शाजहान' शीर्षक कविता की शायद ही कोई समता कर सके। उनके थोड़े से भावों का अनुवाद मात्र देखिए:—

"भारतेश्वर शाहेजहां! तुम इस बात को जानते थे कि काल-स्रोत में जीवन, यौवन, धन, मान सब बह जाते हैं केवल तुम्हारे अंतर की वेदना चिरन्तन होकर रहे, तुम्हारी यही साधना थी।

"हीरा-मुक्ता-माणिक्यों की घटा तो शून्य दिगन्त में इन्द्रजाल इद्रधनुष्छटा के समान है। उसे लुप्त होना है। तो हो जाय, पर केवल रह जाय काल के कपोल पर शुभ्र समुज्ज्वल नयन का यह एक जलबिंदु—यह ताजमहल।

"बारहमास तो (किसी के पास) विलाप के लिए अवकाश नहीं रहता, अतः तुमने अपने अशांत क्रन्दन को चिरमौन जाल के कठोर बंधन में बांध दिया।

"ज्योत्स्नास्नात रातों में एकांत मन्दिर में प्रेयसी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस नाम को तुम धीरे-धीरे गुनगुनाते थे, उसी नाम को अनन्त के कानों में धीरे-धीरे गुनगुनाने के लिए इस स्थान में रख गये हो।

"हे सम्राट् कवि ! यह तुम्हारा नवीन मेघदूत है जो अपूर्व, अद्भुत, छंद एवं गान में अलदय की ओर उठ रहा है, जहां तुम्हारी विरहिणी प्रिया प्रभात के अरुण आभास में, क्लांत संध्या के दिगन्त व्यापी करुण विश्वास में, पूर्णिमा के देह-हीन चमेली के लावण्य विलास में परिवर्तित हो गयी है। जो भाषा के तीर से परे है। कंगाल नयन जिसके द्वार से लौट-लौट आते हैं। फिर भी तुम्हारा सौन्दर्य-दूत युग-युग से चुप-चुप इस बात को घोषित कर रहा है।

"वह प्रिया विस्मृत नहीं हुई, विस्मृत नहीं हुई, विस्मृत नहीं हुई।"

प्रगतिवादी कहेंगे यह कोरी सस्ती भावुकता है। यह विकृत दृष्टिकोण है, यह धनिकों की, पूंजीपतियों की, राजाओं की उपासना है। शुद्ध, स्वच्छ और स्वस्थ दृष्टिकोण यह है:—

"हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन !
जब विषएण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।
मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति,
आत्मा का अपमान, प्रेत औ छाया से रति !!"

इस पर हमारा कहना यह है कि काव्य की दृष्टि से दोनों ही दृष्टिकोण ठीक हैं। सच्ची कसौटी यह है कि किसी भी विषय को यदि कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है तो वह सच्ची कविता है। चाहे वह प्रगतिशील सिद्धान्तों के अन्तर्गत हो या न हो।

एक बात और। आज हम जिसके प्रति दयाभाव रखते हैं कल उसके प्रति हमारी अनुरक्ति भी होगी और आगे चल कर जड़ मोह भी। भविष्य में चल कर ऐसी कहानियां लिखी जायंगी कि एक शिक्षित ब्राह्मण युवक एक महतर की लड़की पर आसक्त हो गया और उसे लेकर भाग गया, आदि···। विषय की भलाई-बुराई पर तो कुछ नहीं कहना पर एक तथ्य की ओर संकेत करना है। वह यह कि हम घूम-फिर कर उसी रोमांस पर आ गये, जिसकी प्रगतिवादी बुराई करते हैं। कारण यह है कि रति जीवन की सब से प्रबल और आदि भावना है जिसे कोई वाद नहीं मिटा सकता, चाहे उसका रूप बदल दे।

प्रगतिवाद के साथ एक जो अकल्याणकर बात आरही है वह अनीश्वरवाद। जहाँ संसार और शरीर को सब कुछ समझा जाता है वहाँ जड़वाद स्वाभाविक रूप से आता है। महादेवीजी का मानसिक विश्लेषण करते समय जैसे एक विज्ञानी ने यह कहा है कि उनकी स्वप्नलोक की कल्पना आधुनिक विषमताओं का मुकाबिला करने की असमर्थता का परिणाम है, उसी प्रकार मुझे यह कहना है कि आधुनिक विषमताओं—राजनीतिक असंतोष, सामाजिक असंतोष एवं आर्थिक संकट—की टक्कर से जो घबराहट पैदा हुई है, वह जड़वाद की ओर भी ले जारही है। धर्म में चार्वाक मत बहुत पहले एक बार अपनी असफलता देख चुका है। काव्य में उसे वही असफलता यदि फिर देखनी है तो कोई हानि नहीं है। संकट में सब से पहली बात जिस पर मनुष्य संशय करता है वह ईश्वर है। इस संशय से बचने की प्रार्थना टैगोर ने गीताञ्जलि में की है :—

नम्र शिरे सुखेर दिने
तोमार मुख लइबे चिते
दुखेर राते निखिल धरा जे दिन करे वंचना
तोमारे जेन ना करि संशय

हिन्दी का किसी वाद विशेष से विरोध नहीं है। जैसे नदी में अनेक सोते आकर मिलते हैं और उसे परिपुष्ट करते हैं, उसी प्रकार साहित्य की धारा भी अनेक प्रवृत्तियों से परिपुष्ट होती है। पर यदि कोई प्रवृत्ति अमरता की अभिलाषिणी है तो उसे सामयिक वस्तु को चिरंतनता का रूप देना चाहिए। पूछा जा सकता है कि देश की जब यह दशा न होगी तब इस सामयिक साहित्य का क्या मूल्य होगा ? हम 'कला', 'शाश्वत' आदि शब्दों का उपहास होता रात-दिन देखते हैं, फिर भी आशा करते हैं कि प्रगति की भावना हमारे साहित्य में हमारे आचार-विचार, हमारी संस्कृति और हमारे देश के वातावरण के अनुकूल होकर आवेगी।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचक के सामने

[२]

[श्री गुलाबराय के प्रश्न और डा० रामकुमार वर्मा के उत्तर]

प्रश्न—काव्य का जीवन से लगाव होना, उसकी श्रेष्ठता के लिए आप कहाँ तक जरूरी समझते हैं? यदि जरूरी समझते हैं तो संसार और जीवन से मन हटाने वाली निराशावादी कविता साहित्य को ऊंचा उठाने में कहाँ तक सहायक होगी?

"यह विकास है मुरझा जाने का ही पहला रूप।"

अथवा

"यहाँ जीत में छिपी हुई है इस जीवन की हार।"

या

"धूल समझ कर छोड़ चुका हूँ यह कलुषित संसार।"

क्या ऐसी पंक्तियाँ जीवन से उदासीनता उत्पन्न नहीं करतीं और हमको पलायनवाद यानी Escapism की ओर नहीं ले जातीं? क्या आप ऐसे पलायनवाद से दूर हटाने की जरूरत महसूस नहीं करते, या आप प्रेयसि की चाहे वह ईश्वर का ही दूसरा नाम क्यों न हो, शरण में जाकर यह कहना कि—

"आओ आज स्वर्ग पृथ्वी मिल कर हों जावें एक—
मेरे उर का आज तुम्हारे उर से हो अभिषेक"

काफी समझते हैं? क्या काव्य का उद्देश्य यानी मकसद मन का बोझ हलका करने के अलावा और भी कुछ है?

उत्तर—मैं काव्य का जीवन से गहरा सम्बन्ध मानता हूँ। मैंने तो अपने "आधुनिक कवि" की भूमिका में लिखा है कि "जीवन से हटी हुई कविता साहित्य की सब से बड़ी निर्लज्जता है।" जब मैं कविता का जीवन से इतना बड़ा सम्बन्ध मानता हूँ तो निराशा भी जीवन का एक भाग होने से अपना चित्रण पा सकती है, किन्तु निराशा को मैं साहित्य के सिर पर नहीं चढ़ा सकता। मैं केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में निराशा का पोषक हूँ। भौतिकवाद की निराशा कविता की कल्याणकारी भावना को दूर नहीं लेजा सकती, जहाँ-जहाँ मेरी कविता में रहस्यवाद आ गया है, वहाँ मेरी निराश भावनाएँ आप-से-आप प्रकट हो गयी हैं।

"करुणा के सागर में उठती हैं जब विषम हिलोरें,
प्रिय दर्शन वरदान मांगती हैं नयनों की कोरें।"

जब कभी रहस्यवाद में आशा का संचार होता है तब मेरी भावना निराशा से निकल कर आशा में उठना चाहती है, और मैं आनन्द-विभोर होकर कह उठता हूँ—

"आओ आज स्वर्ग पृथ्वी मिल कर हो जावें एक।
मेरे उर का आज तुम्हारे उर से हो अभिषेक॥"

या

"मैं तुम से मिल गया प्रिय, रह है जीवन का अन्त।
इसी मिलन का गीत कोकिले, गा जीवन पर्यन्त॥"

रहस्यवाद की इन भावनाओं में आप कभी सूफी मत का प्रभाव भी देखेंगे। जहाँ मेरा आराध्य स्त्री भी बन गया है और मेरी उमंग में पुरुषत्व ऊपर उभर आया है। इस जिन्दगी की निराशा में मेरा विश्वास नहीं है। मैं तो भगवान कृष्ण के उस स्वर्ण वाक्य का समर्थक हूँ जो उन्होंने अर्जुन से कहा था—

"क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप"

इसीलिए चट्टान शीर्षक कविता में मैंने लिखा है:—

"क्या इसमें है परिव्याप्त आग, मुझमें भी जागी यही आग
मैं दृढ़ हूँ सागर उठे, देखना निकल न आए कहीं आग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं हूँ अखंड, कायरता का मुझमें न कहीं भी लगा दाग।
मुझको आकर चाहे देखें भूमंडल का प्रत्येक भाग॥
मैं अपनेपन की प्रकट शक्ति से चिर वर्षों तक हूँ प्रचंड।
दृढ़ खड़ी कड़ी टेढ़ी अखंड चट्टान अटल जड़-सी विषंड॥"

मेरे अभिशाप की पंक्तियाँ:—

"यह विकास है मुरझा जाने का ही पहला रूप
या
यहाँ जीत में छिपी हुई है इस जीवन की हार
या
धूल समझ कर छोड़ चुका हूँ यह कलुषित संसार"

केवल अध्यात्मवाद की पुष्टि करती हैं और इसका संकेत मैंने प्रथम पंक्ति में कर दिया है—कि 'नश्वर स्वर से कैसे गाऊं आज अनश्वर गीत—' पलायनवाद या Escapism को मैं मनुष्य की सब से बड़ी कमजोरी समझता हूँ। अतः मेरे काव्य का उद्देश्य मन के बोझ को हल्का करने के अलावा जीवन के परिष्करण और उसके गतिशील होने में है।

प्रश्न—काव्य में शक्ति और सजीवता लाने के लिए आप अनुभूति (Personal Experience) को कहाँ तक जरूरी समझते हैं? भाव में तीव्रता लाने में कल्पना यानी Imagination कहाँ तक अनुभूति का स्थान ले सकती है? आप अनुभूति और साधना यानी रियाज़ की कमी वर्तमान रहस्यवाद के ऊंचे उठने में कहाँ तक बाधक समझते हैं?

उत्तर—काव्य में शक्ति और सजीवता लाने के लिए अनुभूति (Personal Experience) को बहुत जरूरी मानता हूँ। केवल भावुकता (Emotion) कविता को ऊपर नहीं उठा सकती। कविता में प्राण तो केवल अनुभूति ही भरती है। इसीलिए कवि को द्रष्टा बन कर ऊँचे धरातल पर जाने की आवश्यकता है और चूँकि यह खासियत बहुत से कवि कहलाने वालों में नहीं होती, वे अपने ही दिल की आवाज नहीं सुन सकते, अपनी ही साँस की गति से परिचित नहीं होते, वे कविता में प्राण-प्रतिष्ठा करने में असफल होते हैं और चूँकि इस अनुभूति की आवश्यकता रहस्यवाद के क्षेत्र में और भी अधिक होती है, हमारे वर्त्तमान रहस्यवाद की बहुत-सी कविताएँ प्राणहीन होकर पड़ी हुई हैं। कल्पना यद्यपि कविता में नये संसार की सृष्टि करती है, किन्तु वह अनुभूति का स्थान नहीं ले सकती। उससे भावना में तीव्रता तो अवश्य आ जाती है, किन्तु वह कविता में स्पन्दन नहीं ला सकती। मुझे तो कल्पना वैसी ही मालूम होती है जैसे असितकुमार हलदार या कनू देसाई की तूलिका से बने हुए कलापूर्ण चित्र जिनमें सौन्दर्य तो अवश्य है किन्तु वे चित्र चल-फिर नहीं सकते, मेरे कमरे में एक जगह सजे हुए रखे हैं।

प्रश्न—क्या भाव की सचाई यानी sincerity की मात्रा बढ़ाने के लिए कवि के विचारों का उसके जीवन से साम्य होना आवश्यक नहीं? क्या उन प्रगतिवादी कवियों से जो खस की टट्टियों के पीछे बिजली के पंखे के नीचे और स्प्रिङ्गदार सोफों के ऊपर Fountain pen से धूप में गिट्टी तोड़ने वाले मजदूरों की कविता लिखते हैं और उन रहस्यवादी कवियों से जो जीवन की भाग-दौड़ और कशमकश में भाग लेते हुए भी इस संसार से मुँह फेरने या प्रियतम या प्रियतमा से वियोग की विषम वेदना का राग अलापते हैं, यह कह देना ठीक न होगा कि आप सच्चा अनुभव प्राप्त करें। यह आपके बस का रोग नहीं—

"कठिन भूमि कोमल पद गामी।
कवन हेतु बन बिचरहु स्वामी॥"

क्या आप अनुभूति वाले, कम पढ़े कबीर जैसे तन्मय कवि को, काव्य की कला में पारङ्गत, परन्तु साधना और अनुभवहीन कवि से अच्छा नहीं समझते?

उत्तर—कविता और आत्मगत सत्यता (Sincerity) को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कार्य और कारण ही मानता हूँ। बिना Sincerity के कविता नहीं लिखी जाती और जो कविता लिखी जाती है, वह केवल बहुरूपिया-पन है। केवल अभिनय मात्र है। इसीलिए आधुनिक काल में खस की टट्टी के पीछे रहने वाले कवि Fountain pen से लिखी हुई भूखे किसान की कविता में मैं भाव की सचाई का अभाव पाता हूँ। इसी प्रकार मौज से रहने वाले कवि की विरह कविता में बनावट है। उसमें ज्यादा वजन नहीं है। आपने बड़े मार्के की बात कही।—

"कठिन भूमि कोमल पद गामी।
कवन हेतु बन बिचरहु स्वामी॥"

अच्छा तो यही है कि ये कोमल पदगामी कवि अल्फ्रेड पार्क के लान पर टहलते हुए एलायंस होटल में दी जाने वाली किसी मिल ओनर की पार्टी में जाने की बात सोचें और विरह काव्य लिखने वाले ये जीवन के क्लर्क या एकाउटेन्ट आँसुओं की अपेक्षा, रुपया, आना, पाई का टोटल लगाएं। लिखने में Sincerity होने के प्रस्तुत विषय में सांस लेना या 'लिव' करना कवि या कवि कहलाने वाले 'कलमवान' के लिए आवश्यक है। कबीर ने जो लिखा अनुभव किया था, जीवन की सच्ची कविता लिखने के लिए पिंगल या किसी शास्त्र की आवश्यकता नहीं है। कम पढ़े कबीर ने जो कुछ भी लिखा है उसमें पूरा अनुभव है और वे काव्य के पंडितों से ऊपर माने जाने योग्य हैं।

प्रश्न—हिन्दी नाटकों में कोई बात ऐसी पैदा हो रही है जो उनको दूसरे देश के नाटकों के मुकाबिले में एक निजी व्यक्तित्व दे सके? इब्सन् और शॉ का अनुकरण हमारे नाटककारों के लिए कहाँ तक श्रेयस्कर हुआ है? क्या एकांकी नाटक बड़े नाटकों का स्थान ले सकेंगे? आपकी रुचि पूरे नाटक लिखने की ओर क्यों नहीं हुई?

उत्तर—हमारे यहाँ के नाटकों में ऐसी विशेषता पैदा हो रही है जो उन्हें दूसरे देश के नाटकों के मुकाबिले में एक निजी व्यक्तित्व दे रही है और वह है अपनी संस्कृति और समाज का जीता-जागता चित्रण करना। लेकिन यह अभी अधिक नहीं हो रहा। हमारे नाटककारों को अपनी भारतीयता नहीं भुला देनी चाहिए। उन्हें मनुष्य के साथ-साथ उसमें संस्कार भी रखने हैं यदि संस्कार भूल जाएंगे, तो मनुष्य का व्यक्तित्व भूलते भी देर न लगेगी। इब्सन् और शॉ का अनुकरण हमारे नाटककारों के लिए वहीं तक श्रेयष्कर हुआ है जहाँ तक उन्हें मनोविज्ञान के चित्रित करने की शैली की आवश्यकता है। इससे अधिक नहीं। मुझे विश्वास है कि एकांकी नाटक बड़े नाटकों का स्थान अवश्य ले सकेंगे क्योंकि हमारे व्यस्त जीवन में समय की बहुत कमी होती जा रही है। जिस तरह हमारी सारी रात के थियटर सिनेमा में Replace होते जा रहे हैं, उसी प्रकार कहानियों के सामने बड़े-बड़े उपन्यास उखड़ते जा रहे हैं। केवल एकांकी नाटक को और भी परिमार्जित करने की आवश्यकता है। यों तो एकांकी नाटक जीवन की सधी हुई झांकी है, फिर भी उसकी व्यञ्जना इतनी स्पष्ट होनी चाहिए कि वह कौतूहल के साथ-ही-साथ स्वाभाविकता और जीवन की सचाई की ओर संकेत कर सके। मैंने पूरे नाटक नहीं लिखे, एक तो मुझ में पूरे जीवन का अनुभव ही नहीं है, फिर यथेष्ट अवकाश भी नहीं। जब तक मैं आपकी उम्र तक पहुँचूँ, तब तक शायद एक आध पूरा नाटक लिख सकूँ। अभी तक जीवन के किसी पहलू को लेकर जिस पर मेरा यथाशक्ति अधिकार है—मैं एकांकी नाटक की रचना कर देता हूँ किन्तु पूरा नाटक लिखना सारी जिन्दगी के दैत्य को धुवां बना कर एक घड़े में भर देने की युक्ति की तरह है और किसी धीवर ने यह युक्ति मुझे अभी तक नहीं सिखाई। यहाँ मेरी लाचारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न—आपने "पृथ्वीराज की आँखें" के पूर्वरंग में कहा है कि नाटक में वर्णनात्मक (Descriptive) की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्व (Acting) की प्रधानता रहती है। आपके एक्ट्रेस (Actress) नाम के नाटक में क्या वर्णनात्मक तत्व की प्रधानता नहीं है? क्या Story के रूप में वह इससे अच्छा न होता? आपने अपने "चंपक" में करुणा को प्रेम से अधिक प्रधानता दी है। क्या करुणा के लिए प्रेम को छोड़ना जरूरी है? क्या आपके नाटकों में संयोग यानी Chance से ज्यादा काम नहीं लिया गया है? 'चंपक' में कुत्ते का पीटने वाला भिखारी के रूप में आ जाता है। मिस्टर अनङ्ग वर्मा की पत्नी कमलकुमारी एक्ट्रेस प्रभा में प्रभावती के दर्शन करती है। क्या बदला लेने के अलावा पति के सुधार का और कोई तरीका न था। "एक तोले अफीम" में भी ऐसे ही संयोग से काम लिया गया है। क्या इस नाटक के नायक की मुखरित विचार-धारा (Loud thinking) बहुत लम्बी नहीं हो गयी है? बादल की मृत्यु को आप नाटक कहेंगे या गद्य-काव्य? क्या सन्ध्या, बादल, हवा का मनुष्यों की तरह बोलना अस्वाभाविक नहीं है? नारी की वैज्ञानिक परीक्षा में प्रेम जैसी स्वर्गीय वस्तु को परीक्षा का विषय बनाना कहाँ तक उचित है?

उत्तर—आप इस प्रश्न में मेरे नाटकों की पूरी व्याख्या करवाना चाहते हैं। लेकिन समय बहुत नहीं है, इसलिए यदि मैं सब बातें थोड़े में कहूँ तो मुझे दोष न दें। मैंने "पृथ्वीराज की आँखें" के पूर्व-रंग में अभिनयात्मक तत्व की नाटक में प्रधानता मानी है और यह तत्व आपको मेरे नाटकों में अधिक स्थानों पर मिलेगा। "एक्ट्रेस" नाटक के बारे में जो आपको सन्देह हुआ है, उसका मुख्य कारण यह है कि उसकी कथावस्तु ऐसे पेचीदे रास्ते से चल पड़ी है कि मेरे न चाहते हुए भी पात्र उलझते चले गये हैं। उन्हें सुलझाने के लिए एक से अधिक दृश्यों की आवश्यकता थी। मैं समझता हूँ यदि मैं एक्ट्रेस को एकांकी के रूप में न लिख कर पूरे नाटक के रूप में लिखता तो अधिक अच्छा होता या एकांकी ही में तीन-चार दृश्य और रख देता जैसा आज-कल के कुछ नाटककार कर रहे हैं, पर वह मुझे मान्य नहीं है। मैं तो एकांकी नाटक में स्थान-संकलन (Unity of place) बहुत जरूरी समझता हूँ। जो बात वर्णनात्मकता की भावना आपको दे रही है, वह केवल परि-स्थिति की मांग है, फिर कमलकुमारी अवकाश में है, प्रभा से कुछ भी बात करना उसके लिए आवश्यक है, क्योंकि अनंग उसे कुछ देर के लिए प्रभा के पास छोड़ गया है। फिर वह प्रकृति की क्रीड़ा-भूमि में है, जहाँ बातें भी पेड़ों की भांति बढ़ती हैं। इन सब बातों ने वार्तालाप को कुछ अधिक रूप दिया है। पर यह सब परिस्थिति की माँग है। 'चंपक' में करुणा को प्रेम से प्रधानता अवश्य दी गयी है, लेकिन कवि की करुणा व्यक्तिगत नहीं है, उसका प्रेम व्यक्तिगत है। अतः जब किसी उदार व्यक्ति में किसी के प्रति स्वभावजन्य करुणा होती है, तो वह व्यक्तिगत आत्म-तुष्टि की बात छोड़ देता है। अपनी सुविधाओं का मोह होते हुए भी आप जो विद्या-र्थियों को पढ़ाने में श्रम करते हैं, इस भावना को आपने कभी जाँच कर देखा? बड़े और उदार आदमियों का यही तो लक्षण है कि वे अपने सुख की उपेक्षा कर दूसरे का दुःख दूर करना चाहते हैं कि समष्टि के लिए व्यष्टि का बलिदान करते हैं। आपने संयोग यानी chance का बड़ा सुन्दर प्रश्न उठाया है। मैं नाटकों में आकस्मिक घटनाओं का वहीं तक पोषक हूँ जहाँ तक कि वे सौ में दस के अनुपात में घटित होती हैं। किन्तु जहां वे महज चमत्कार के लिए होती हैं, वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उनका दुश्मन हूँ। नाटक में chance कुछ अधिक हो जाता है और उसका कारण है। नाटक के भीतर हमें वर्षों या महीनों मे घटित होने वाली घटनाओं को केवल आध घंटे या उससे भी कम समय में बिना किसी अस्वाभाविकता के लाने की आवश्यकता पड़ जाती है, तब हमें जीवन की वास्तविकता को घनीभूत करने में कला का आश्रय लेना पड़ता है। यहीं असलियत में आकर्षण उत्पन्न होता है। अकस्मात का प्रयोग अगर अस्वाभाविक नहीं है, तो हमें आपत्ति करने के लिए कम स्थान है। जीवन की वास्तविकता हमारे नाटक का आधार होनी चाहिए, पर जिस वास्तविकता में कोई आकर्षण नहीं है, वह हमें रुचिकर नहीं हो सकती। जब हमें रंगमंच के थोड़े समय में जीवन का चित्रण करना होता है, तब हमें जीवन की ऐसी घटनाएँ तो चाहिए ही जो हृदय की सहानुभूति प्राप्त कर सकें। या हमारी रचनात्मक प्रवृत्ति में कुछ चेतना ला सकें। एक्ट्रेस में प्रभावती की ओर से बदला लेने की बजाय आपने उसके पति के सुधार का दूसरा हल पूछा है। जिस स्थिति में प्रभा थी वह कैसी थी स्वयं प्रभा कहती है "क्षणिक मिलन, वह भी उस समय जब मदिरा से उनकी आँखें झूमती रहती थीं। दो-चार कर्कश शब्द के बाद उनका एक सप्ताह के लिए वियोग—यह था मेरा जीवन"। शराबी पति के सुधार के लिए जूते की तासीर अच्छी होती है, लेकिन हिन्दुस्तान की स्त्री ऐसा नहीं कर सकती। एक्ट्रेस बनने की प्रेरणा प्रभा को अपने पति से ही मिली। जब कि वह बेचारी हिन्दू-स्त्री प्रतिहिंसा से भरी हुई थी और कुछ नहीं कर सकती थी। पति के सुधार की भावना उसके मनोविज्ञान में है जो Change of heart के रूप में सब से अच्छा सुधार माना जाता है। "एक तोले अफीम की कीमत में" नायक का स्वगत कथन लम्बा है। वह आत्म-हत्या करने जा रहा है। इसलिए जीवन के इस पार और उस पार की सभी बातें सोचता है। यह पूर्ण स्वाभाविक भी है। दुर्भाग्य से नाटककार के पास और कोई साधन नहीं है। इस आत्म-हत्या की सैकड़ों बातों को प्रकट करने के लिए मैं अपने नाटकों में स्वगत-कथन का प्रयोग कम-से-कम करता हूँ। इस स्थान पर मैं विवश था, फिर यदि नायक आत्म-हत्या जैसे गम्भीर और भयानक कार्य में प्रवृत्त न होता, तो मैं शायद स्वगत-कथन रखता भी नहीं।

'बादल की मृत्यु' एक रूपक है, मैटरलिंक पर। की शैली वह अभिनय के लिए नहीं है। जीवन के स्वार्थ की एक झांकी है। उसमें केवल कल्पना है, उसके चित्रण में नाटककार और कवि में समझौता हुआ है।

'नारी की वैज्ञानिक परीक्षा' में प्रेम जैसी स्वर्गीय वस्तु को परीक्षा का विषय बनाना कौन पसन्द करेगा। किन्तु जरा किसी जवान स्त्री के बूढ़े पति से पूछिए कि उसके हृदय में अपनी पत्नी के प्रति कैसी-कैसी शंकाएँ होती हैं। जिनकी जाँच वह चुपके-चुपके किया करता है। प्रोफेसर केदार अपनी युवती पत्नी के बूढ़े पति हैं। उनके मन में भी कुछ शंकाएँ हैं। जिन्हें वे सुलझी भाषा में अपने निजी दोस्त डाक्टर रुद्र के सामने रखते हैं। जो एक बड़े मनोवैज्ञानिक हैं। आपकी तरह डाक्टर रुद्र भी परीक्षा करने से इन्कार करते हैं। वे तो यहाँ तक कह जाते हैं कि "परीक्षा करना एटीकेट के खिलाफ है", पर बूढ़े पति सिर जो हो जाते हैं। फिर एकान्त में ले जाकर वे डाक्टर रुद्र से क्या कहते हैं, इसका अनुमान भी कर लीजिए! तो बुढ़ापे की पत्नी अपने साथ शंकाएँ भी ले आती है। यों पत्नी के पवित्र प्रेम को परीक्षा का विषय बनाने वाले को मैं जानता हूँ—क्या कहूँगा—अन्धेरे में देखने वाला पक्षी, या धोबी के कपड़ों का साथी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त प्रश्न

प्रश्न—क्या यह समझ लिया जाय कि आज कल कोई सच्चे रहस्यवादी व्यक्ति नहीं हैं ? क्या रहस्यवाद के सम्बन्ध में यह कह देना ठीक न होगा कि "वीर विहीन मही में जानी ?"

उत्तर—इसमें कोई सन्देह नहीं कि रहस्यवाद की वास्तविक अनुभूति के लिए जिस साधना की आवश्यकता है, वह साधना बीसवीं शताब्दी की वर्तमान परिस्थितियों में जहाँ जीवन का संघर्ष प्रति दिन का नियम-सा हो गया है सम्भव नहीं। कबीर और तुलसीदास की मानसिक परिस्थिति तो हमारे सामने इस समय एक कल्पना का विषय है किन्तु मैं इतना तो मानता ही हूँ कि कविता जिस समय हृदय में उदय होती है उस समय जीवन के संघर्ष से ऊपर उठ कर कवि का हृदय किसी ऐसे धरातल पर अवश्य पहुँच जाता है जिसमें कविता के अतिरिक्त किसी प्रकार का आध्यात्मिक मनोवेग अवश्य होता है और जब इस परिस्थिति में लिखी हुई कविता रहस्यवाद के पथ का अनुसरण करती है तो उस मनोवेग में और भी अधिक पावन भावनाएँ सम्मिलित हो जाती हैं। आप इस पवित्र मनोविज्ञान को चाहे कबीर और तुलसी की साधना के समकक्ष न रख सकें किन्तु उस दिशा की ओर संकेत तो होगा ही। यह संकेत तीव्रतर होता हुआ यदि अत्यन्त ऊँचे स्वर तक पहुँच जाता है तो हमें रहस्यवाद की अनुभूतियाँ पर्याप्त मात्रा में मिल जाती हैं फिर यह मनोविज्ञान व्यक्ति-विशेष पर भी निर्भर रहता है जिसे आप अंग्रेजी में subjective element कह सकते हैं। यदि कवि-विशेष में इस आध्यात्मवाद की भावना नैसर्गिक रूप से हो—चाहे वह सूक्ष्म और अविकसित रूप में क्यों न हो, तब हमें अन्य कवियों की अपेक्षा रहस्यवाद की अनुभूतियाँ अधिक मात्रा में मिल सकती हैं। अतः मैं कह सकता हूँ कि वर्तमान कविता में चाहे कबीर और तुलसी का उत्कृष्ट रहस्यवाद देखने को न मिले तथापि वर्तमान कविता के अपार्थिव जगत में आपको कुछ भावनाएँ ऐसी अवश्य मिल जायँगी जिसमें रहस्यवाद किसी-न-किसी रूप में परिलक्षित अवश्य होगा।

प्रश्न—यह तो आप जानते हैं कि हिन्दी में रंग-मंच का अभाव-सा है और उसको विकास देने में बहुत सी बाधाएँ हैं। इन्हीं बाधाओं के कारण नाटककार अनभिनेय नाटक भी लिखने लगे हैं। ऐसे कच्च के श्रव्य नाटकों के आकार में क्या प्रलोभन है जो उपन्यास में नहीं है ?

उत्तर—हिन्दी में रंगमंच अभी तक स्थापित नहीं हो सका उसका कारण यह है कि हिन्दी भाषा-भाषियों की रुचि साहित्यिक दृष्टिकोण से इतनी परिमार्जित नहीं हुई जिससे कि वे समाज के प्रस्तुत चित्रों को रंगमंच पर देख कर अपने जीवन के चित्रों का सामञ्जस्य कर सकें। इसके साथ-ही-साथ किसी संस्था ने इतना प्रयास नहीं किया कि वह धन-संग्रह कर देश के अभिनेता होने वाले जिज्ञासुओं को पर्याप्त शिक्षा दे सके। इन अभावों के कारण रंगमंग हिन्दी से साहित्यिक संस्था के रूप में प्रतिफलित नहीं हो सका। जब हिन्दी में उचित अभिनय-कर्त्ताओं की कमी है और जनता में नाटक के द्वारा प्रस्तुत की गयी सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों के समझने की क्षमता नहीं आ सकी तो हमारे नाटककारों ने भी ऐसे नाटक लिखे जिनमें रंगमंच का अभाव-सा है। नाटक को मिश्रित कला (Compound Art) के रूप में साहित्य ने स्वीकार किया है जिसमें साहित्य और रंगमंग की परिस्थितियों का अभिन्न सहयोग है। रंगमंच की कला से अनभिज्ञ साहित्यकारों ने हमारे सामने एक मात्र साहित्यिक सौंदर्य से परिपूर्ण नाटक लिखे हैं। स्वर्गीय श्रीजयशंकरप्रसादजी ने हमें जो नाटक दिये हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें सांस्कृतिक वातावरण के साथ ही-साथ जीवन के विश्लेषण की ऐसी सूक्ष्म प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं जो किसी भी साहित्य का शृङ्गार कर सकती हैं, आन्तरिक द्वंद्व और घटनाओं का घात-प्रतिघात चरम सीमा (Climax) में प्रतिफलित होकर जीवन की बहुमुखी अभिव्यक्ति हमें प्राप्त हुई है। किन्तु उसमें रंगमंच के अनुसार दृश्यों के क्रम-विकास का ध्यान नहीं रक्खा गया है। Dramatic Irony (अभिनयात्मक व्यङ्ग्य) केवल शाब्दिक व्यङ्ग्य (Verbal Irony) में रह गया है, फलस्वरूप हम प्रसादजी के नाटकों के लिए मानसिक रंगमंच ही तैयार करते हैं। मैं यह विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यदि हिन्दी में रंगमंच के आदर्श स्थिर कर लिए होते तो प्रसादजी के नाटक विश्व-साहित्य में आदर की वस्तु हो जाते।

वस्तुतः मैं उपन्यास में और पाठ्य नाटकों में कोई विशेष अन्तर नहीं मानता, चूंकि उपन्यास में भी अभिनयात्मक तत्व का सन्निवेश कथोपकथन या वार्तालाप में हो जाता है। अन्तर केवल यही रहता है कि उपन्यास में लेखक का व्यक्तित्व एक इतिहासकार की भांति ही रहता है और वह उन पात्रों से हट कर स्वयं अपनी वर्णनात्मक शैली में छूटी हुई घटनाओं को जोड़ देता है। लेकिन नाटक में नाटककार का व्यक्तित्व छिपा रहता है और वह जो कुछ भी कहता है परोक्ष रूप से पात्रों से कहलाता है, उपन्यासकार की भांति घटना-निर्देश के लिए वह स्वयं सामने कभी नहीं आता। नाटकीय कथावस्तु में आकर्षण का कारण उसकी घनीभूत घटना और भाव शैली है जो अभिनयात्मक भावना से मिल कर और भी अधिक शक्तिशाली हो जाती है, और यह स्वाभाविक है कि किसी भी घटना का अभिनेय रूप वर्णनात्मक रूप से अधिक आकर्षक होता है, चाहे यह अभिनेय रूप पाठक के हृदय में ही क्यों न रहे। इसी कारण उपन्यास से श्रव्य नाटक में अपेक्षाकृत अधिक आकर्षण है। उपन्यासों में और पढ़ने योग्य नाटकों में कोई विशेष अन्तर मैं नहीं मानता। जहाँ तक कि दोनों के कथा-निर्माण और कथा-विकास का सम्बन्ध है।*

---

* आल इण्डिया रेडियो स्टेशन दिल्ली के सौजन्य से।

* * *

रङ्गमञ्च के सम्बन्ध में प्रसादजी लिखते हैं

रङ्गमञ्च के सम्बन्ध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रङ्गमञ्च के लिए लिखे जायँ। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रङ्गमञ्च हों, जो व्यावहारिक है। हाँ, रङ्गमञ्च पर सुशिक्षित और कुशल अभिनेता तथा मर्मज्ञ सूत्रधार के सहयोग की आवश्यकता है। देश-काल की प्रवृत्तियों का समुचित अध्ययन भी आवश्यक है। फिर तो पात्र रंगमञ्च पर अपना कार्य सुचारु रूप से कर सकेंगे। इन सब के सहयोग से ही हिन्दी रंगमञ्च का अभ्युत्थान संभव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य में गोपाल कृष्ण

[श्री सूर्यपालसिंह एम० ए०]

भारतीय साहित्य में हमें कृष्ण के अनेक रूप मिलते हैं। इसलिए कृष्ण का स्वरूप बहुत ही जटिल एवं गम्भीर है। जो कृष्ण महाभारत में चतुर राजनीतिज्ञ, दार्शनिक एवं राष्ट्र-विधाता हैं, जो कृष्ण गीतोपदिष्ट महान् धर्म के प्रवर्तक हैं, वे ही कृष्ण श्रीमद्भागवत, हरिवंश पुराण तथा अन्य पुराणों में शक्तिमय, असुरों के संहारक होते हुए भी लीलामय हो गये हैं। वे गोपियों के साथ नाना प्रकार की रास-क्रीड़ाएँ करते हुए मिलते हैं। यद्यपि इस लीलामय रूप का दर्शन हमें भागवत दशम स्कन्ध में ही मिल जाता है, पर आगे चल कर इस रूप का अधिक विस्तार होता है। इस लीलामय रूप में वे विष्णु के अवतार न रह कर गोपालकृष्ण का रूप धारण करते हैं। इसके प्रथम कि उनके इस रूप का विश्लेषण हिन्दी-साहित्य के क्रमिक विकासानुसार किया जाय, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कृष्ण पूजा का विकास किस प्रकार हुआ, इस पर कुछ प्रकाश डाल दिया जाय।

कृष्ण की भावना का प्रचार ईसा की चौथी शताब्दी से पूर्व ही हो चला थी। श्रीकृष्ण की पूजा का प्रादुर्भाव वासुदेव या नारायण की पूजा से हुआ ज्ञात होता है। महानारायण उपनिषद में विष्णु का पर्यायवाची वासुदेव को माना है, कृष्ण है वासुदेव का पर्यायवाची। अतः कृष्ण ही विष्णु के द्योतक हैं। इस प्रकार वासुदेव का प्रथम रूप नारायण हुआ, फिर विष्णु और अन्त में गोपालकृष्ण। छांदोग्य उपनिषद में कृष्ण को देवकी का पुत्र माना है। और उन्हें घोर आंगरिस का शिष्य होना कहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्ण की भावना का प्रादुर्भाव उपनिषद्-काल में ही हुआ था।*

महाभारत-काल में कृष्ण पूर्ण दैवी अवतार का रूप ले लेते हैं। सभापर्व में भीष्म ने उन्हें अव्यक्त एवं सनातन कह कर पुकारा है, और उन्हें समस्त भूतों से परे माना है। महाभारत-काल तक कृष्ण के गोपाल रूप का सर्वथा अभाव है क्योंकि उसमें कृष्ण की गोकुल में की गयी लीलाओं का वर्णन नहीं मिलता। इससे कहा जा सकता है कि महाभारत में कृष्ण के परब्रह्म रूप की ही भावना है, गोपालकृष्ण की नहीं। महाभारत ने विष्णु के महत्व को प्रतिपादित किया है और कृष्ण को माना है विष्णु का अवतार। महाभारत में कृष्ण उच्चकोटि के कर्मवीर हैं, जिन्होंने सारे राष्ट्र का भार अपने ऊपर ले रक्खा था, वे चतुर राजनीतिज्ञ और राष्ट्र-विधाता थे। महाभारत-युद्ध के मुख्य प्रेरक कृष्ण ही थे जिन्होंने छिन्न-भिन्न राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधा था। इसके साथ ही हम उन्हें भक्तवत्सल भी पाते हैं। द्रौपदी की पुकार पर वे नंगे पैरों दौड़े थे और उचित अवसर पर उसकी रक्षा की थी। भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा की रक्षा उन्होंने रथ के चक्र को धारण कर की थी। महाभारत के कृष्ण विष्णु के अवतार ही हैं जो एक महान् उद्देश्य—देश को एक सूत्र में बाँधना—की पूर्ति में हर समय तत्पर रहते हैं।

श्रीमद्भागवद्गीता में कृष्ण विष्णु के अवतार न रह कर पूर्ण ब्रह्म के अवतार हो जाते हैं :—

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जयः।
मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव ॥ गीता

गीता के कृष्ण पूर्ण परब्रह्म हैं। गीता के एकादश अध्याय में जब वे अर्जुन के मोह को अपने विराट् स्वरूप के दर्शन द्वारा छुड़ाते हैं तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। गीता के अनुसार उपासना के तीन मार्ग हैं—ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग और भक्ति-मार्ग। आगे चल कर भक्ति-मार्ग का रूप ही अधिक विकसित हुआ, क्योंकि यही

* इस विषय का श्री नलिनीमोहन सान्याल की उच्च विषयक लेख-माला में अच्छा प्रतिपादन हुआ है। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग सब से सुगम और भारतीय जनता के अनुकूल पड़ा। इसी भक्ति-मार्ग का आश्रय लेकर कृष्ण का रूप भी विकसित हुआ।

भगवद्गीता काल तक कृष्ण का रूप निर्विकल्प है, वे एक कर्मयोगी हैं। गोपालकृष्ण की भावना का विकास हरिवंश पुराण में आकर होता है। ३८०८वें श्लोक में कृष्ण ने अपने पिता नन्द से गोवर्धन-पूजा की प्रार्थना की है, और अपने को 'पशु-पालक' कहा है, तथा अपना वैभव गोधन से ही माना है। बस यहीं से आदर्श पुरुष कृष्ण गोपालकृष्ण हो जाते हैं। आगे चल कर यही गोपालकृष्ण का रूप अधिक विकसित होता है। हिन्दी-साहित्य में प्रायः कृष्ण का यही रूप मिलता है।

कुछ लोगों का कथन है कि सम्भव है 'कृष्ण' शब्द 'क्राइस्ट' (Christ)‡ से निकला हो और बाद में आभीर जाति ने इसी कृष्ण को वेद, उपनिषद् और महाभारत के वासुदेव से सम्बद्ध कर दिया हो। पर यह सर्वथा असत्य है। जिस प्रकार 'क्राइस्ट' कृष्ण का रूपान्तर नहीं हो सकता उसी प्रकार कृष्ण भी 'क्राइस्ट' के रूपान्तर नहीं हो सकते। 'वेबर' ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, किन्तु 'जैकोबी' ने अपनी तर्कपूर्ण युक्तियों से वेबर की युक्तियों को निस्सार कर दिया है। आभीरों का यहाँ आगमन ईसा से बहुत पहले हुआ था, वे अवश्य ही अपने पूज्य देवता—बालकृष्ण को साथ ही लाये होंगे। यदि कृष्ण क्राइस्ट का रूपान्तर होते तो राधा और अन्य गोपियों की कथा, जो निश्चित रूप से आभीरों की देन है, कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध नहीं हो सकती थीं। मथुरा के बालकृष्ण देवता हैं, मनुष्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं; जब कि ईसा का रूप मनुष्य और ईश्वर-शक्ति का सम्मिश्रण है। ग्रियर्सन ने यह स्वीकार किया है कि गीता का बहुत-कुछ अंश ईसा से बहुत पहले का है; पर इस कृष्ण में आभीरों का बाल-कृष्ण रूप नहीं मिला था। किन्तु फिर भी बाल-कृष्ण की कथाएं एवं गोपियों के साथ उनकी लीलाएं और राधा के साथ उनके सम्बन्ध आदि की कथाएं बहुत पहले ही प्रचलित हो चुकी थीं।

मैकनीकल के अनुसार कृष्ण में ईश्वरीय भावना 'बनदेव' (Vegetation Deity) के रूप में आयी। प्रकृति के प्रति प्रेम होना मनुष्य-हृदय का स्वाभाविक लक्षण है। आर्यों ने प्रकृति के अनेक रूपों को देवताओं के रूप में मान इन्द्र, वरुण, अग्नि, मरुत आदि देवों की सृष्टि की। इसी प्रकार कृष्ण का गोपाल रूप भी प्रकृति से लिया जान पड़ता है, क्योंकि (१) हम कृष्ण के जीवन की भावना को स्पष्ट रूप से गोप रूप में पाते हैं। उनका गायों से सम्बन्ध निश्चित है। गाएँ प्रकृति की ही साक्षात् निर्दोष एवं सरल प्रतिमाएँ हैं। श्रीकृष्ण उनके पोषक हैं। इसलिए उनका 'बनदेव' होना सिद्ध होता है। बिहारी का श्लेष युक्त व्यंग्य हमें बहुत ही उपयुक्त जान पड़ता है:—

चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

(२) बलराम कृष्ण के भाई हैं। उनका आयुध हल है। वे भी ऋतु के देव ही हैं। (३) गोवर्धन पूजा से भी यही सिद्ध होता है कि अनाज की पूजा हो इसका दूसरा नाम है भी अन्नकूट। उसका प्रारम्भ होना भी कृष्ण के ही द्वारा कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि गोपाल कृष्ण के रूप का विकास उन्हीं सिद्धान्तों पर हुआ जो सिद्धान्त प्रकृति के प्रति आदर-भाव से परिपूर्ण थे। बाद में धार्मिक एवं अन्य सिद्धान्त भी उनके इस रूप में मिल गये; किन्तु आदि रूप निश्चय ही 'बनदेव' के रूप से लिया जान पड़ता है। हिन्दी-साहित्य के मध्य काल में कृष्णोपासना के लिए इसी मिश्रित रूप को लिया गया। (श्रीराम कुमार वर्मा के हिन्दी-साहित्य के इतिहास के आधार पर)।

कृष्ण भक्ति भागवत पुराण में दृढ़ हो गयी थी, इस लिए कृष्ण भक्ति शाखा का विकास भागवत पुराण से ही समझना उचित है। भागवत पुराण के पश्चात् कृष्ण भक्ति के अनेक सम्प्रदाय चले जिनमें कृष्ण के भिन्न-भिन्न रूपों को अपनाया गया। यहाँ हमारा तात्पर्य उन भिन्न-भिन्न रूपों का विश्लेषण करना नहीं है, हमारा तात्पर्य

‡ यह भ्रान्ति कृष्ण के बंगाली उच्चारण के कारण, और भी फैली। बंगाली लोग कृष्ण को 'क्रुष्टो' कहते हैं। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो केवल कृष्ण-भक्ति-शाखा के विकास से है। इस शाखा का मूल श्रोत है भागवत और आदि प्रचारक हैं श्री चैतन्य स्वामी तथा श्री बल्लभाचार्यजी श्री वल्लभाचार्य ने निम्बार्क स्वामी, मध्वाचार्य और विष्णु स्वामी के सिद्धान्तों को सामने रख कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। उनकी भक्ति में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का महत्व अधिक है, और आत्म-चिन्तन की अपेक्षा आत्म-समर्पण की भावना का प्राधान्य है। श्री वल्लभाचार्यजी दर्शनिक क्षेत्र में शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक थे और उपासना क्षेत्र में पुष्टिमार्ग के। उन्होंने दोनों के योग से श्री कृष्ण को ब्रह्म माना और उन्हीं की कृपा से जीव के आनन्द-मंगल की कल्पना की। हिन्दी-साहित्य का श्री वल्लभाचार्यजी ने महान् उपकार किया। श्री वल्लभाचार्यजी वैष्णव धर्म के मुख्य प्रवर्तकों में से थे। इनका सिद्धान्त संक्षेपतः यह था:—ब्रह्म सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है, वह इन्हीं तीन गुणों में प्रकट हुआ है। "सत् गुण के आविर्भाव और चित् तथा आनन्द गुण के तिरोभाव से वह प्रकृति रूप में प्रकट हुआ तथा सत् और चित् के आविर्भाव तथा आनन्द के तिरोभाव से वह जीव रूप में प्रकट हुआ। सत्, चित् और आनन्द के रूप में वह सर्वव्यापक हुआ।" प्रकृति और जीव अग्नि से चिनगारी की तरह उसी से प्रकट हुए। कृष्ण भक्ति की अनुभूति कृष्ण के अनुग्रह से ही होती है इसी अनुग्रह का नाम बल्लभाचार्यजी ने पुष्टि रक्खा, जिससे उनका मत पुष्टि मार्ग (The Path of Devine Grace) कहलाया।

हिन्दी के कृष्णोपासक कवियों के विभिन्न भेद हैं। इस भेद का कारण कुछ तो वैयक्तिक रुचि है, कुछ सम्प्रदायों का प्रभाव और कुछ समय का प्रभाव। विद्यापति एवं मीरा पर विष्णु स्वामी एवं निम्बार्क का प्रभाव पड़ा और सूरदास आदि अष्ट-छाप के कवि वल्लभाचार्य से प्रभावित हुए। रीतिकाल के कवियों ने कृष्ण का भिन्न रूप अपनाया जिस पर उस समय का अधिक प्रभाव पड़ा। हिन्दी-साहित्य में कृष्ण काव्य का प्रारम्भ विद्यापति से ही समझना चाहिए, किन्तु विद्यापति गीत-गोविन्दकार जयदेव से अधिक प्रभावित हुए इसलिए जयदेव का उल्लेख यहाँ अनुचित न होगा।

जयदेव ने कृष्ण का माधुर्यमय रूप लिया है। उन्होंने राधाकृष्ण का मिलन, उनकी लालाएँ और प्रेम की सरस अनुभूति बड़ी ही मधुर शब्दावली में वर्णित की है। जयदेव के काव्य में कृष्ण एक साधारण नायक के रूप में ही हमारे सम्मुख आते हैं। कृष्ण की लीलाओं आदि के वर्णन में घोर लौकिक शृंगार है, और आध्यात्मिकता का सर्वथा अभाव। कामसूत्रों के आधार पर राधाकृष्ण के चुम्बन, परिरम्भन, हास-विलास आदि क्रीड़ाओं का ही वर्णन अधिक है। कुछ आलोचकों के अनुसार यही रहस्य-मय आध्यात्मिकता है, पर प्रत्यक्ष रूप में है यह लौकिक शृङ्गार ही। जयदेव के अनुसार राधा एक परकीया स्त्री थीं और कृष्ण पर पुरुष। दोनों में प्रेम होता है और फिर समागम। उनके कृष्ण बहुवल्लभ हैं, स्वच्छन्द भाव से व्रज की अन्य स्त्रियों के साथ रमण करते हैं। वे शठ नायक हैं; चारित्रिकता का तो उनमें नाम भी नहीं है। जयदेव ने स्वयं हिन्दी में कुछ नहीं लिखा पर कृष्ण काव्य-धारा के लिए कृष्ण के इसी रूप के अपनाये जाने के लिए द्वार अवश्य उन्मुक्त किया। कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने प्रायः कृष्ण का यही रूप अपनाया। सब से प्रथम कवि जो श्री जयदेव से अधिक प्रभावित हुए वे विद्यापति हैं, जिन्होंने हिन्दी के अन्य कवियों को प्रभावित किया है।

विद्यापति ने भी प्रायः कृष्ण का वही रूप लिया है जो जयदेव ने लिया था। विद्यापति के कृष्ण प्रेमिक एवं रसिक हैं। मर्यादा-पालन तो विद्यापति के कृष्ण में नाममात्र को भी नहीं है। उन्होंने राधा और कृष्ण के संयोग-शृंगार का ही अधिक वर्णन किया है, और उसमें कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गयी है। उन्होंने कृष्ण को साधारण नायक और राधा को साधारण नायिका मान कर शृंगार की सृष्टि की, जिसमें हाव, भाव, विभाव, अनुभाव, सञ्चारी-भावों का दिग्दर्शन कराया है। उनके कृष्ण मनुष्य की सतह से एक तिल भर भी उँचे नहीं उठे हैं और ईश्वरीय भावना का उनमें सर्वथा अभाव है। विद्यापति में स्थान-स्थान पर वासना का रंग बहुत हो प्रखर हो गया है। उनके कृष्ण यौवनोन्माद से मत्त नायक और राधा यौवन-मदिरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मतवाली नायिका हैं।

मीरा के प्रेम में अनन्यता है। उनके कृष्ण प्रेमी तो हैं किन्तु साथ ही भक्त-वत्सल भी। उनके पदों में आराध्य के प्रति भक्त की उच्च भावना सन्निहित है। मीरा ने कृष्ण को पति रूप में लिया है। मीरा के कृष्ण विद्यापति के कृष्ण की तरह दुराचारी नहीं हैं। मीरा के पदों में जो कुल-मर्यादा का तिरस्कार आगया है इसके लिए उनके प्रेमातिरेक को ही प्रधान कारण मान सकते हैं। वह आध्यात्मिक एवं आत्मानुभूत कविता है। सांसारिक वासनामय नहीं। "जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई" इस भावना से प्रेरित हो कर उन्होंने कुल की कान को भी तिलाञ्जलि दे दी थी। मीरा के पदों में कृष्ण के वियोग से व्यथित विरही हृदय खुला पड़ा है, जहाँ जाकर भक्त को अपार शान्ति मिलती है।

अष्टछाप के सूर आदि कवियों ने भी भगवान् कृष्ण का प्रेममय रूप ही लिया और उसी को आलम्बन मान कर हृदय की कोमल वृत्तियों को प्रकट किया है। समाज को कृष्ण के इस आमोद-प्रमोदमय रूप के दर्शन करा कर इन कृष्ण भक्त कवियों ने समाज का महान् उपकार किया। निर्गुण पंथियों के अनेक पंथों ने जनता के हृदय में नैराश्य के भाव जाग्रत कर दिये थे। कृष्ण-भक्त कवियों ने उस घोर नैराश्य से समाज को मुक्त किया और जीवन के सौन्दर्य एवं माधुर्य-पूर्ण पक्ष को दिखा कर जीवन के प्रति अनुराग जगाया।

सूर ने कृष्ण के प्रेममय रूप में 'वात्सल्य' और शृंगार का बड़ा ही उत्कृष्ट चित्रण किया है। इन दोनों ही क्षेत्रों में सूर अद्वितीय हैं। प्रेम की चरमसीमा में आश्रय और आलम्बन एक हो जाते हैं। बल्लभाचार्य के अनुयायी कृष्णोपासक कवि इसी प्रेम-तत्व को लेकर चले हैं। सूरदास भावोन्माद में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि वे अपने में, तथा कृष्ण में कोई अन्तर नहीं समझते सूर की भक्ति सख्य-भाव की थी इसलिए बालकृष्ण के चित्रण में वे कृष्ण की अन्तःभावनाओं में प्रविष्ट हो सके और इसी कारण बालचित्रण में उन्हें अद्वितीय सफलता मिली। कृष्ण के बाल-वर्णन में माधुर्य-भाव ही प्रधान है। वे एक अत्यन्त नटखट एवं चपल बालक के रूप में चित्रित किये गये हैं, जिसने अपनी चपलता के कारण सारे ब्रज पर मोहनी डाल रक्खी थी। बाल-वर्णन में कृष्ण एक साधारण बालक के रूप में हमारे सामने आते हैं। राम के बाल रूप की तरह उसमें ईश्वरीय सत्ता की पुकार नहीं मचाई गयी है। सूर उन्हें हर समय तुलसी की तरह परमेश्वर नहीं समझते। बाल रूप का कितना मधुर चित्र है:-

हरि अपने आगे कछु गावत
तनक-तनक चरनन सों नाचत मनही मनहि रिझावत।

बालकों के साम्यमय क्षोभ का एक दृश्य देखिए:—

खेलत में को काको गुसइयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ॥
जाति-पाँति हमतें कछु नाहीं, न बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारे हें कछु गैयाँ॥

इस बाल-वर्णन के पश्चात गो-चारण का मधुर रूप सामने आता है। इसे हम पशु-चारण-काव्य Pastoral Poetry कह सकते हैं। इसमें सूर ने यह दिखलाया है कि राधा एवं अन्य गोपियों का अनुराग किस प्रकार धीरे-धीरे प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम रूपजन्य व साहचर्यजन्य है। सहवास के कारण उत्पन्न होने से यह प्रेम बड़ा ही स्वाभाविक हुआ है। इस प्रेम में न तो राधा परकीया स्त्री हैं और न कृष्ण ऐसे पुरुष जो सुन्दर स्त्रियों की टोह में घाट-बाट घूमा करते हैं। सूरदासजी ने जमुना के कछारों में इस पवित्र प्रेम की अटूट भित्ति खड़ी की है जो अत्यन्त ही स्वाभाविक बन पड़ी है।

सूर के कृष्ण में माधुर्य-भाव की प्रधानता है और मर्यादा की कमी। सूर ने कृष्ण के शक्ति-शील और सौन्दर्य इन तीनों गुणों में से सौन्दर्य को ही विशेष रूप से अपनाया है। शक्ति और शील को दिखलाने का भी उन्हें अवसर था। पर ऐसे स्थलों में उनकी वृत्ति लीन नहीं हुई है ऐसे स्थानों पर साधारण घटनात्मक वर्णन मिलते हैं। समाज पर काव्य का क्या प्रभाव पड़ सकता है, इसका सूर को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान न था। लोक-मर्यादा-पालक तो तुलसीदास ही थे जिन्होंने किसी भी अवस्था में अपने आराध्य देव राम से मर्यादा के विरुद्ध आचरण नहीं कराया।

सूर के कृष्ण मर्यादा-पालक न रह कर उच्छृङ्खल हो गये हैं। समाज पर इसका प्रभाव बुरा पड़ा। प्रथम तो समाज अपनी पूर्व शक्ति को भूल कर नाच-रङ्ग में मस्त हुआ। द्वितीय शृंगारी कवियों को कृष्ण के आश्रय में अपने हृदय के उद्गार निकालने का अच्छा अवसर मिला, जिससे कृष्ण का रूप और भी अधिक विकृत हुआ।

अष्ट-छाप के कवि अधिकतर श्री वल्लभाचार्यजी से प्रभावित थे, इसलिए सभी पुष्टि मार्ग की ओर झुके। प्रायः सभी कवियों ने कृष्ण का माधुर्यमय रूप ही लिया। माधुर्य का पल्ला पकड़ कर कृष्ण-गोपियों की रास-क्रीड़ा आदि का वर्णन सब ने किया। नन्ददास ने तो रास पंचाध्यायी के पाँचवे अध्याय में यह रास-क्रीड़ा बड़े ही विस्तार के साथ दिखलाई है। प्रथम तो नानाप्रकार के नृत्य आदि होते हैं और फिर जल-क्रीड़ा और इस प्रकार सारी रात जङ्गल में ही व्यतीत की जाती है:—

इहि बिधि बिबिध विलास हास सुख कुञ्ज सदन के।
चले जमुन जल क्रीड़न, बीड़न कोटि मदन के॥

कृष्णोपासक कवियों का प्रभाव समाज एवं साहित्य पर अत्यधिक पड़ा। राम-काव्य का मर्यादावाद केवल अपने ही में सीमित रह गया। जनता को कृष्ण के माधुर्यमय रूप ने अधिक प्रभावित किया, यहाँ तक कि जीवन की सफलता केवल-कृष्ण के बाल और किशोर जीवन में ही केन्द्रीभूत हो गई। कृष्ण भगवान् कृष्ण न रह कर विद्यापति के नायक कृष्ण रह गये और उनको आधार मान नायक-नायिका-भेद तथा नख-शिख-वर्णन की सृष्टि हुई।

कृष्ण-काव्य का वर्ण्य-विषय केवल भक्ति सम्बन्धी उद्गार न रह कर नख-शिख-वर्णन, ऋतु-वर्णन नायक-नायिका-भेद तथा विरह-वर्णन भी होने लगा।

इसका प्रथम कारण तो काव्य-क्षेत्र में कृष्ण का साधारण रूप का अपनाना है। सूर आदि अष्ट-छाप के कवियों ने इस रूप को अपना कर निर्गुण-पंथियों द्वारा प्रचलित नैराश्य को तो हटाया किन्तु साथ ही साहित्य की निर्मल धारा को रीति की गलियों में बहने के लिए उन्मुख भी किया। कृष्ण-भक्त-कवियों द्वारा अपनाया गया कृष्ण का माधुर्य-मय रूप अन्य कवियों में साधना के अभाव के कारण रसिक कृष्ण के रूप में परिणत हो गया उनके पुरुषत्व की सारी महत्ता नष्ट हो गयी और वे साधारण नायक रह गये। इसका द्वितीय कारण है समय का प्रभाव। कृष्ण-काव्य के समाप्त होते-होते यहाँ मुसलमानी अमन-चैन पूर्णतया व्याप्त हो चुका था। देश ने स्वतन्त्रता का ध्यान छोड़ मुसलमनों को ही अपना अधीश्वर मान लिया था। लोगों के हृदय से नैराश्य भी हट चुका था। मुसलमानी प्रभाव से समाज भी बंचित न रह सका। अपने शासकों की तरह समाज भी विलास-प्रिय हुआ और शासक और शासित दोनों ही नैतिक दृष्टि से अधः पतित होने लगे। वे विलास की प्रगाढ़ निद्रा में सो गये। इसके अतिरिक्त राज-दरबारों में हिन्दी कविता को आश्रय मिला। अपने मालिकों की बाहवाही लूटने के लिए कवि घोर शृंगार की उक्तियों से काव्य-क्षेत्र को भरने लगे। अब रसखान जैसे 'कोटिन कलधौत के धाम करील की कुञ्जन ऊपर वारों' वाले भक्त न रह कर 'नैन नचाइ कही मुसकाइ लला अब आइयौ खेलन होरी' वाले रसिक कवियों प्रादुर्भाव होने लगा जिनके काव्य का उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय' न रह कर 'स्वामिनः सुखाय' हो गया था।

वास्तव में तथ्य यह है कि रीतिकाल में 'कृष्ण' शब्द न तो महाभारत के कृष्ण का सम्बोधक है, न गीता के कृष्ण का और न सूर के बालकृष्ण का। यह शब्द तो एक साधारण नायक का बोध कराता है—

'खेलन चोर मिचीं चले आजु गई हुती पाछिले द्यौस की नाई।'

शृंगार शिरोमणि विहारी ने भी कृष्ण को छैला रूप में देखा था। यद्यपि विहारी ने कृष्ण को आराध्य रूप में भी लिया है :—

लटकि-लटकि लटकत चलत, डटतु मुकुट की छाँह।
चटक भरयौ नर मिलि गयौ, अटक भटक वट भौंह॥

भारतेन्दु-काल में यद्यपि हिन्दी साहित्य में नवीन भावनाओं का प्रचार हुआ, पर इस क्षेत्र में कोई भी सुधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र भी कृष्ण के माधुर्यमय रूप के उपासक थे। इससे उनके काव्य में भी कृष्ण का वही रूप मिलता है जो पिछले खेवे के शृंगारी कवियों में था। उनके कृष्ण भी छैला के रूप में सम्मुख आते हैं।

छाड़ौ मेरी बहियाँ लाल, सीखी यह कौन चाल।
हा हा तुम परसत तन औरन की नारी॥
अंगुरी मेरी मुरुक गई, परसत तन पीर भई,
भीर भई देखत सब ठाड़ी व्रजनारी।

प्रिय-प्रवास में आकर कृष्ण का वास्तविक रूप दिखलाई देता है। उसमें वे एक आदर्श महापुरुष के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। यहाँ कृष्ण का जैसा चित्रण हुआ है वैसा हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता। वहाँ कृष्ण एक आदर्श पुरुष हैं जिनके जीवन का उद्देश्य मनुष्य-मात्र की सेवा करना है :—

छलकती मुख पै छवि-पुञ्जता,
छिटकती छिति पै तन की छटा।
वगरती वर दीप्ति दिगन्त में,
छितिज की छनदाकर कांति-सी।

इस शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त उनका हृदय महान् गुणों का आकार था। महावृष्टि के समय, जब कि व्रज एक महान् संकट से घिरा हुआ था, उन्होंने स्वयंसेवक का कार्य कर सब के प्राणों की रक्षा की थी और उन्हीं के कारण व्रज का बाल भी बाँका न हुआ था—

परम वृद्ध असम्बल लोक को,
दुखमयी बिधवा, रुज ग्रस्त को।
बन सहायक थे पहुँचा रहे,
गिरि सुगह्वर में बहु यत्न से॥

अग्नि की ज्वाला में गोपों एवं गायों को भस्म होते देख उन्होंने जातीय भावों को इस प्रकार जगाया था—

विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का,
सहाय होना असहाय जीव का।
उबारना संकट से स्वजाति का,
मनुष्य का सर्व प्रधान कृत्य है॥
हितैषणा से निज जन्मभूमि की,
अपार आवेश हुआ व्रजेश को।
बनी महा बंक भवें गठी हुई,
नितान्त विस्फारित नेत्र हो गए॥

श्री वियोगी हरिजी इस विषय में अलग ही स्थान रखते हैं। उन्होंने कृष्ण का माधुर्यमय रूप न लेकर वीर एवं रण-क्रान्त रूप लिया है। वे कृष्ण के वीर रूप के उपासक भी हैं। अपनी वीर-सतसई में जहाँ कहीं भी कृष्ण का वर्णन किया है उनके भयङ्कर रूप का ही किया है। उन्होंने कृष्ण के इस रूप की साहित्य में झांकी करा कर एक भारी कमी की पूर्ति की है।

वर्तमान समय में विज्ञान के प्रभाव के कारण लोगों की भावनाएँ बदली हैं और लोग कृष्ण को प्रेमी रूप में न देख कर एक आदर्श पुरुष के रूप में देखने लगे हैं। बड़े हर्ष की बात है कि कृष्ण के जिस रूप का रीतिकाल में एकच्छत्र साम्राज्य था अब वह साहित्य से प्रायः लुप्त हो चुका है और उनका असली रूप जिसके कारण वे एक महान् पुरुष हुए थे, समाज एवं साहित्य में प्रचलित हो रहा है। अयोध्यासिंह उपाध्याय एवं श्री वियोगीहरिजी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। रीति-काल में कृष्ण के विकृत रूप के कारण ही विदेशी एवं विधर्मी उन पर नाना प्रकार के दोषारोपण करते हैं। कृष्ण पर ही नहीं हिन्दू धर्म पर भी इसी कारण अनेक दोषारोपण किये गये हैं। किन्तु अब साहित्य में कृष्ण के नवीन रूप को देख कर आशा है कि लोगों का भ्रम दूर होगा और वे असली तथ्य को समझेंगे।

* *
*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

[श्री गङ्गाप्रसाद मिश्र]

गुलेरीजी ने हिन्दी-साहित्य में सब से कम कहानियाँ लिख कर सब से अधिक ख्याति प्राप्त की है। हिन्दी के साहित्यिकों ने गुलेरीजी की तीन कहानियों के बारे में सुना तो है किन्तु लोगों को उनका विशेष परिचय 'उसने कहा था' द्वारा ही प्राप्त हुआ है। यह कहना अनुचित न होगा कि जो गुलेरीजी को जानता है 'उसने कहा था' को भी जानता है। इसी के बल पर वे कहानी-संसार में प्रसिद्ध हुए हैं।

गुलेरीजी की तीन कहानियों में से सर्वप्रथम 'सुखमय जीवन' है जो १९११ के प्रजामित्र में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में 'उसने कहा था' के कलाकार की प्रतिभा का बीज दिखलाई देता है। उनकी तीन कहानियों में कला की दृष्टि देखने से यह कहानी तृतीय सिद्ध होगी इसका कथानक इस प्रकार है :—

"सुखमय जीवन" नामक पुस्तक के लेखक जयदेव शरण बर्मा बी० ए०, लॉ फाइनल का इम्तिहान देकर घर आये हैं, परीक्षा-फल की प्रतीक्षा में मन ही नहीं लगता। अपने गाँव से १५ मील पर काला नगर जाने की सोचते हैं, एक मित्र से मिलने के लिए, जिससे मन बहले। आधी दूर जाने पर रास्ते में साइकिल में पंचर हो जाता है पर किसी तरह आगे बढ़ते जाते हैं, कि एक बालिका अपने नौकर से साइकिल ठीक करवा देने की बात कह कर उन्हें लगभग जबरदस्ती ही अपने घर ले जाती है। घर के रास्ते में उसे मालूम होता है कि आगन्तुक 'सुखमय जीवन' के लेखक हैं जो उसके पिता को बहुत ही पसन्द है। लड़की के पिता स्वतन्त्र विचारों के व्यक्ति इतनी सुन्दर पुस्तक के लेखक को मेहमान पाकर उन्हें उस दिन जाने की इजाजत न दे सके और लेखक साहब को भी बालिका कमला के आकर्षण के कारण रुक जाना ही पड़ा। सन्ध्या को इन महोदय ने कमला को एकान्त में पाकर उससे प्रेमालाप करना शुरू किया तो वह आग बबूला होगयी। और मौकए बारदात पर लड़की के पिताजी भी पहुँचे। अब लेखक पर फटकार पड़ने लगी, बड़े जोरों में कि 'सुखमय जीवन' का लेखक और ऐसा पतित! लेखक महोदय बिगड़ कर कहते हैं कि अगर वह पुस्तक मैंने लिखी है तो क्या मैं आजीवन कुमार ही रहूँगा? यह सुन कर लड़की के पिता को आश्चर्य होता है कि इतनी अच्छी पुस्तक यह बिना व्याहे ही लिख सका। उनको प्रसन्नता होती है कि उन्हें घर बैठे ही कमला के लिए वर मिल गया।

इस कहानी में ऐसे लेखक का चित्रण है जो सांसारिक अनुभव बिना ही पुस्तक लिखता है और संसार के व्यवहार का अनुभव नहीं रखता। कहानी में कथानक बहुत थोड़ा है। एक हरापन इसमें काफी है और एक घटना पर ही सारा कथानक निर्भर है। जयदेवशरण का चरित्र लेखक ने कुछ विचित्र-सा ही कर दिया है। पहले वह बिलकुल मूर्ख मालूम होता है और एक नजर पड़ते ही कमला पर दिल फेंक देता है। फिर बिना किसी झिझक के उससे हाथ पकड़ कर उसी दिन शाम को प्रेम प्रकट करने लगता है। पर यह कहिए कि लेखक, परमात्मा की दया से है तकदीर का सिकन्दर जो कमला के चाचा उसका सिर नहीं फोड़ देते। उन्हें ठीक वैसे ही युवक की आवश्यकता है जैसे बाबू जयदेवशरण हैं और इस कारण वे उसे दामाद बनाने पर राजी हो जाते हैं। कहानी साधारणतया सुन्दर है, हाँ, गुलेरीजी की प्रतिभा के कारण उनके स्वाभाविक वार्तालाप और उक्तियों के गुण से तो यह कहानी भी भरी-पूरी है। वर्णन और मानव-समाज का चित्रण बड़ा ही सुन्दर हुआ है। कहानी के प्रारम्भ में परीक्षा-फल की उत्कंठा का वर्णन बड़ा सुन्दर हुआ है समाज-सुधार विषयक दो-चार व्यंगोक्तियाँ और चुटकुले भी बीच-बीच में कहे गये हैं।

दूसरी कहानी है 'बूद्ध का कांटा' जो सन् १९११ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९१५ ई० के बीच में किसी समय लिखी गयी और गालिबन किसी पत्रिका में प्रकाशित न हुई। अभी यह हिन्दी के आलोचकों की दृष्टि तले नहीं आयी है नहीं तो यह भी अब तक काफी प्रसिद्ध हो गयी होती। चित्रण की दृष्टि से यह बड़ी ही सुन्दर कहानी है जैसा स्वाभाविक कथोपकथन इसमें है वैसा अच्छी-से-अच्छी कहानियों में भी ढूँढ़ने पर न मिलेगा। इसका कथानक इस प्रकार है :—

"पिता की आज्ञा पाकर रघुनाथ 'एम० ए०' का इम्तहान देकर इलाहाबाद से अपने पहाड़ी गांव के लिए चलता है। वह उन युवकों में से है जो संसार में सर्फ पुस्तकों पर ही नजर रखते हैं और नहीं जानते हैं कि दुनियाँ में कहां क्या होता है। रास्ते में एक कुंए पर डोर लेकर पानी भरने जाता है पर अभ्यास न होने के कारण लोटा ही नहीं फाँस पाता। गांव की स्त्रियाँ उस पर छींटे कसती हैं, खास तौर से एक लड़की जिसके वाक्य-बाणों से रघुनाथ बिलकुल विकल हो जाता है, पर उसके हृदय में पहली बार एक स्त्री के प्रति आकर्षण का भाव जाग्रत होता है। वह उसके सामने फिर कभी नहीं पड़ना चाहता पर फिर भी उसे भुला नहीं पाता। गाँव पहुँच कर फिर एक दिन सुबह घूमने आता है तो उस लड़की से मुलाकात होती है और अपनी हरकतों से वह इसे तंग कर मारती है। छीना-झपटी में रघुनाथ नदी में गिर जाता है, तब वह निकालती है। परेशान होकर रघुनाथ उसे दौड़ाता है और पकड़ लेने पर उसकी नाक पर एक मुक्का मार देता है जिससे उसके लहू बहने लगता है, तब रघुनाथ को आत्म-ग्लानि होती है। बातचीत में यह मालूम होने पर कि कांटा लग जाने के कारण वह लड़की को पा सका है वह कांटे को खुद निकालता है और व्यथित होकर घर जाता है। रघुनाथ का व्याह होता है, मुँहदिखायी के वक्त मालूम होता है कि उसकी पत्नी वही लड़की बनी है। दोनों एक दूसरे को पाकर प्रसन्न हैं पर अपने-अपने व्यवहार पर लज्जित हैं, डरे हुए हैं, अन्त में प्रेम-प्रभाव उनके मन की झिझक हटा देता है।

कहानी के प्रारम्भ में रघुनाथ के पिता की भावभंगी का जो वर्णन किया गया है वह बड़ा ही रोचक है। मुहल्ले की वृद्धाओं की बातचीत बड़ी ही स्वाभाविक है और ढ़ ... वाले की कथा बड़ी मार्मिक। गाँव के कुंवे का बड़ा मनोहर वर्णन किया गया है और रघुनाथ पर कसी हुई चोटें बड़ी व्यङ्ग्यपूर्ण हैं। एक उछलने-कूदने वाली बालिका जब बधू बनती है तब उसकी उस चंचलता को ढकेल कर लज्जा किस प्रकार स्थान लेती है, यह इस कहानी में बड़ी सुन्दरता से दिखलाया गया है।

तीसरी कहानी 'उसने कहा था' हिन्दी की लोकप्रिय कहानी है। यह कहानी सन् १९१५ की सरस्वती में प्रकाशित हुई। इसका कथानक इस प्रकार है:—

"अमृतसर के बाजार में कभी-कभी एक लड़का और एक लड़की मिल जाते हैं, दोनों बातें करते हैं। तब लड़का पूछता है तेरी कुड़माई हो गयी। लड़की धत् कह कर भाग जाती है। एक दिन जबाव मिलता है, हाँ। तब लड़के को क्षोभ होता है, दुःख से व्याकुल हो जाता है। वर्षों बीत जाते हैं, इस घटना की याद भी नहीं रहती। लहनासिंह फौज में जमादार हो जाता है, लड़ाई पर जाने का हुक्म मिलता है और साथ में सूबेदार का खत कि हमारे गाँव होकर जाना, साथ ही चलेंगे। सूबेदारिनी उसकी बचपन की वही साथिन है। वह लहना पर विश्वास रखती है और उससे अपने पति और इकलौते पुत्र बोधा की प्राण भिक्षा माँगती है। युद्धस्थल में चतुर लहना बीमार बोधा को अपने गरम कपड़े पहिनाता है, उसकी ड्यूटी करता और जर्मन लैफ्टीनेन्ट की जालसाजी से सूबेदार की जान बचाता है, जिसमें उसके एक गोली लगती है। जर्मन धावे के वक्ष पर फिर लहना के एक गोली लगती है लेकिन वह जब तक बोधा और सूबेदार को बिदा नहीं कर देता तब तक लेटता नहीं और सूबेदार से कहता है, "सूबेदारिनी से कहना तुमने जो कुछ कहा था वह मैंने कर दिया।" उनके जाते ही वह पड़ जाता है और उसके सारे जीवन की घटनाएँ चलचित्र की भाँति उन्माद के रूप में उसके मस्तिष्क में आती हैं। इसके पश्चात् उसकी जीवनलीला समाप्त हो जाती है।

यह कहानी चरित्र-चित्रण, आदर्श स्थापना इत्यादि की दृष्टि से उनकी कहानियों में तो सर्वश्रेष्ठ है ही, हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कहानियों में भी उसका उच्चतम स्थान है।

प्लाट की दृष्टि से देखने पर 'सुखमय जीवन' कुछ अधिक नहीं जँचती, हाँ 'बुद्धू का कांटा' और 'उसने कहा था' में काफी मात्रा में कथानक है जो संक्षेप में दिये जा चुके हैं। कहानी की घटनाओं में गुलेरीजी इत्तिफाक पर अधिक निर्भर रहते हैं। यह इत्तिफाक ही था कि 'सुखमय जीवन' में जगदेवशरण को कमला के चाचा ने ठोका नहीं, वरन् अपनी पुत्री उससे व्याह दी, वर्ना कहानी का कोई अस्तित्व न रह जाता। इसी प्रकार 'बुद्धू का कांटा', में इत्तिफाक ही तो था कि वह मुखर भगवन्ती रघुनाथ की पत्नी बन गयी वर्ना रघुनाथ के हृदय में गड़ा हुआ प्रेम का काँटा लेखक निकालने में कैसे समर्थ होता? किसी हद तक इसी प्रकार 'उसने कहा था' में बचपन के साथियों का लहनासिंह और सूबेदारिनी होकर इत्तिफाक से मिल जाना ही कहानी की जान है। वर्ना लहनासिंह के जौहर लेखक कैसे दिखला सकता? तब उसका चरित्र आदर्श और त्याग की पराकाष्ठा तक पहुँचाने में वह कैसे समर्थ होता? इस प्रकार तीनों कहानियों के कथानक देखने पर हमें दैव बड़ी प्रबलता से उनमें घुसा हुआ दिखलाई पड़ता है। जिसकी दया के कारण ऐसी घटनाएँ घटीं कि कहानियाँ इतनी सुन्दर हो गयीं। इस बात के होने पर भी लेखक द्वारा घटनाओं का चयन बड़ा ही सुन्दर होता है और अपनी मंजी हुई शैली से वह उनका वर्णन बड़े स्वाभाविक ढङ्ग से करता है।

चरित्र-चित्रण में गुलेरीजी सिद्धहस्त हैं। उनकी कलम से इन तीन कहानियों में ही संक्षेप में जो चरित्र-चित्रित हुए हैं वे उनकी सामर्थ्य के पर्य्याप्त मात्रा में द्योतक हैं। कालिज के डिग्री प्राप्त विद्यार्थियों में जो किताबों के साथ-साथ अपना मगज भी चाट जाते हैं आपको 'बुद्धू का कांटा' के नायक रघुनाथ के सैकड़ों भाईबन्द मिलेंगे। बहुत ही स्वाभाविक चरित्र-चित्रण हुआ है। गांव की लड़की भगवन्ती जैसी कूदने-फाँदने वाली है वैसी मुखर भी हो सकती है यह कहानी के पढ़ने में साफ मालूम हो जाता है, पर गुलेरीजी द्वारा चित्रित स्त्री-पात्रों की परीक्षा करने पर एक बात मालूम होती है कि उनके स्त्री-पात्र कुछ मुखर और निःसंकोच अधिक हैं। कहीं-कहीं तो यह शक होने लगता है कि शायद गुलेरीजी ने लज्जा और संकोच को जो भारतीय नारी का मुख्य गुण समझा जाता है अपने पात्रों में नहीं दिखाया वरन् उनकी चञ्चलता और मुखरता को ही अधिकतर चित्रित किया है। देखिए—

बाबूजी क्या बाइसकिल में पंचर होगाया?

एक तो चश्मा, उस पर रेत की तह जमी हुई, उस पर ललाट से टपकते हुई पसीने की बूदें, गर्मी की चिढ़, और काली रात की-सी लम्बी सड़क, मैंने देखा ही न था कि दोनों ओर क्या है। यह शब्द सुनते ही सिर उठाया तो देखा कि एक सोलह-सत्तरह वर्ष की सुन्दर कन्या सड़क के किनारे खड़ी है।

"हाँ हवा निकल गयी है और पंचर भी हो गया है, पम्प मेरे पास है नहीं। काला नगर कुछ बहुत दूर तो है नहीं, अभी जा पहुँचता हूँ।"

अन्त का वाक्य मैंने सिर्फ ऐंठ दिखाने के लिए कहा था। मेरा जी जानता था कि पांच मील सौ मील के-से दीख रहे थे।

"इस सूरत से तो आप कालानगर क्या कलकत्ते पहुँच जाएंगे। जरा भीतर चलिए, कुछ जल पीजिए, आपकी जीभ सूख कर तालू से चिपट गयी होगी। चाचाजी की बाईसिकल में पम्प है और हमारा नौकर गोविन्द पंचर सुधारना भी जानता है।

नहीं······नहीं···!

नहीं नहीं क्या, हां हां!

यों कह कर बालिका ने मेरे हाथ से बाईसिकिल छीन ली और सड़क के एक तरफ होली।"···'सुखमय जीवन।'

इस स्थान पर बालिका के इस तरह से बोलने और साइकिल छीन लेने का स्वागत तो सभी करेंगे, पर भारत में कै फीसदी पढ़ी-लिखी और फारवर्ड लड़कियां भी एक अनजाने व्यक्ति के साथ ऐसा कर सकेंगी? जब यह बात अपने समाज में पायी नहीं जाती और मनोवांछित भी नहीं समझी जाती तो उसके लिपिबद्ध करने में ही क्या आनन्द है?

भगवन्ती तो अपनी चुहलबाजी में इतनी दिवानी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है कि औचित्य और अनौचित्य की भी सीमा लांघ जाती है, इस बात का तो उसके मन में शायद ख्याल ही नहीं आता कि उसकी अमुक बात किसी के लिए दुखदाई होगी इसलिए वह उसे न कहे, वह कहती है, "वाह जी वाह ऐसे बुद्धू के आगे भी कोई लहँगा पसारेगी ?"

फिर भी भगवन्ती के चरित्र में एक अलौकिकता है, एक जीवन है जिसे लेखक ने यों समझाया है:—

"गांव की लड़कियाँ हड्डियों और गहनों का बंडल नहीं होतीं। वहाँ वे दौड़ती हैं, कूदती हैं, तैरती हैं, हँसती हैं, गाती हैं, खाती हैं और पचाती हैं। शहरों में आकर वे खूंटे से बंध कर कुम्हलाती हैं, पीली पड़ जाती हैं, भूखी रहती हैं, सोती हैं, रोती हैं, और मर जाती हैं।"

भगवन्ती की वाकपटुता देख कर स्काट की 'ववीन मेरी' का स्मरण हो जाता है।"···बाबू श्यामसुन्दरदास

पुरुष पात्रों में 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू के कांटा' के के नायक तो साफ़ बुद्धू हैं जिनको भगवान की दया से जोरदार प्रेमिकाएं मिल जाने के कारण बुद्धि से भी कहानी के अन्त में ही भेंट होती दिखाई देती है। 'उसने कहा था' का लहनासिंह पूरा मर्द है, प्रेमी, स्वार्थ-त्यागी, प्रेम के लिए बलिदान करने वाला चतुर, चालाक, पर बात के लिए मर मिटने वाला। अपने बचपन के प्रेम का बदला वह प्रेमिका के पति और पुत्र की रक्षा करके चुकाता है और यह आदर्श सम्मुख रखता है कि प्रेम करना चाहे आसान हो पर उसका निभाना कठिन कार्य है। गुलेरीजी की मानव सृष्टियों में लहना का-सा चरित्र एक भी नहीं।

वार्तालाप लिखने में गुलेरीजी बड़े सिद्धहस्त हैं। कथोपकथन में उनके वाक्य अधिकतर छोटे पर गठीले होते हैं और भावों का निर्वाह उनमें बड़ी सफलतापूर्वक किया जाता है। भावों के अनुसार वाक्यों में परिवर्तन भी होता है, व्यङ्ग्य और हँसी के समय तो वे कमाल ही कर दिखाते हैं :—

रघुनाथ डोरी से लोटा न फांस सका, डोरी उलझ गयी तब एक स्त्री ने हँस कर कहा:—पटवारी है, पैमाइश की जरीब फैलाता है।

दूसरी बोली:—ना, बाजीगर है, हाथ-पांव बांध कर पानी में कूद पड़ेगा और फिर सूखा निकल आएगा।

तीसरी बोली:—क्यों लल्ला, घरकों से लड़ कर आये हो ?

चौथी ने कहा—क्या कुए में दवाई डालोगे ? इस गांव में तो बीमारी नहीं है।

इतने में एक लड़की बोली:—काहे की दवाई और कहाँ का पटवारी। अनाड़ी है, लोटे में फांसा देना नहीं आता। भई मेरे घड़े को मत कुंए में डाल देना, तुमने तो सारी गैल ही रोक दी। यों कह कर वह सामने आकर अपना घड़ा उठा ले गयी।

पहली ने पूछा—भई, तुम क्या करोगे ?

लड़की बात काट कर बोली—कुंए को बाँधोगे।

पहली—अरे, बोलो तो।

लड़की—मां ने सिखाया नहीं।

पहली—क्या चाहते हो, बोलते क्यों नहीं ?

लड़की—फारसी बोलेंगे।

रघुनाथ ने शर्म से कुछ आंखें ऊँची की, कुछ मुंह फेर कर कुंए से कहा, मुझे पानी पीना है, लोटे से निकाल रहा हूँ, निकाल लूँगा।

लड़की—परसों तक।

स्त्री बोली—तो हम पानी पिला दें। ला भगवन्ती घड़ा उठा ला, इनको पानी पिला दें।

लड़की गगरा उठा लायी और बोली—ले भाभी के पालतू, पानी पीले, शरमा मत, तेरी बहू से नहीं कहूँगी···

'बुद्धू का कांटा'

इससे भी बढ़ कर व्यंगोक्तियाँ भगवन्ती के मुँह से लेखक ने कहलाई हैं जिन्हें पढ़ कर उसकी वाक्चातुरी और लेखक की कुशलता पर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। इसी तरह लहनासिंह ने लेफ्टीनेन्ट साहब की जाँच करने के लिए जो बातें उससे की हैं वह भी बड़ी कुशलतापूर्वक लिखी गयी हैं और वे लेखक के मनोविज्ञान के पंडित व देश व काल की परिस्थितियों को समझने की साक्षी हैं।

गुलेरीजी की भाषा सरल, स्पष्ट, प्रसादगुण से परिपूर्ण और प्रवाहमय है, मुहावरों की स्थान-स्थान पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें ऐसी झड़ी लग जाती है कि एक समा बँध जाता है। भाषा में मुर्दापन कहीं नहीं आता, न कभी चुस्तपन की कमी अथवा भाव व्यंजना में कमजोरी ही दीख पड़ती है। सर्वत्र एक चुहलबाजी और जिन्दादिली का आभास मिलता है। प्रकति-वर्णन करते समय अथवा किसी दृश्य का सूक्ष्म वर्णन करते समय गंभीरता आती है पर निर्जीवता कभी नहीं आती :—

"पहाड़ी जमीन, जहाँ रास्ता कोस भर ऊँचे और उसके दस मील का चक्कर काट लो, बिना पानी सींचे हुए हरे मखमल के गलीचे से ढकी हुई जमीन, उस पर जंगली गुलदाउदी की पीली टिमकियों और बसन्त के फूल, आलू बुखारे और पहाड़ी करोंदे की रज से भरे हुए छोटे-छोटे रंगीले फूल जो पेड़ का पत्ता भी न दिखने दें, क्षितिज पर लटके हुए बादलों की बर्फीली पहाड़ियों की चोटियाँ जिन्हें देखते आँखें अपने आप बड़ी हो जाती हैं और जिनकी हवा की सांस लेने से छाती बढ़ती हुई जान पड़ती है, नदी से निकली हुई छोटी असंख्य नहरें जो सांप के-से चक्कर खा-खा कर फिर प्रधान नदी की तलहटी में जा मिलती··· एक ओर आम के पेड़ थे जो बौरों और कैरियों से लदे हुए थे, उनके सामने धान के खेत थे जिनमें से पानी किलचिल-किलचिल करता हुआ पिघल रहा था।"

कितना सूक्ष्म और स्वाभाविक दृश्य वर्णन है, बिल्कुल चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। धानों के खेत के पानी का किलचिल-किलचिल करते हुए बहना उसके शब्द और दृश्य दोनों का प्रतिनिधित्व इन दो शब्दों द्वारा ही हो जाता है। शुद्ध हिन्दी लिखने के साथ कहीं-कहीं संस्कृत की पदावली या कोई उक्ति भी बीच-बीच में आ जाती है, जैसे दंतवीणोपदेशाचार्य। अंग्रेजी इत्यादि के शब्दों का भी वे बीच-बीच में प्रयोग कर देते हैं। इससे भाषा में जीवन और चलताऊपन आता है पर इनका प्रयोग खलता उस जगह पर है जहाँ वाक्यावलि कठिन हो जाती है और औसत पाठक की समझ से परे की वस्तु हो जाती है। अक्सर संस्कृत की कठिन उक्तियाँ कहानी में आ जाती हैं अथवा कोई अन्तर्कथामूलक इंगित आ जाता है जो पाठक नहीं समझ पाता। जैसे: "बड़े से बड़ा महाराज थैलियों के मुँह खुलवा कर भी शास्त्र-जड़ लोगों से यह नहीं कहला सकता कि 'अष्ठ वर्षा भवेद्गौरी' पर हरताल लगा दो।" फिर भी उनकी भाषा बलशाली, आकर्षक भावमूलक और विनोदपूर्ण होती है।

इन सब दृष्टियों से देखने पर गुलेरीजी में कहानीकार की हैसियत से बड़ी जबरदस्त प्रतिभा थी जैसा कि गुलेरीजी के सुपुत्र को किसी सज्जन ने लिखा था: वह अक्षरशः सत्य है : यदि गुलेरीजी 'उसने कहा था' जैसी दस कहानियाँ लिख जाते तो निःसन्देह विश्व-कहानी-साहित्य में उनका स्थान विक्टर ह्यूगो, टालसटाय, मोपांसा तथा तुर्गनेव से बहुत ऊंचा होता। 'उसने कहा था' की जोड़ का न होने पर भी 'बुद्धू का कांटा' एक अच्छी कहानी है और जब हिन्दी साहित्य के आलोचकों की दृष्टि उस पर पड़ेगी और वह जनता के सम्मुख आवेगी तो गुलेरीजी की कीर्ति में और चांद लग जायेंगे, इसमें कोई शक नहीं।

* *

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरद की नारी

[श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरिक्सा]

उलझन जीवन का आकर्षण है, विश्व का आकर्षण है। उलझन की सुलझन में ही आनन्द है, रस है।

कहानी भी उलझन को लेकर आती है, बढ़ती है और उसी का समाधान करती हुई समाप्त हो जाती है। शरत कलाकार हैं और उपन्यासकार भी। उनकी सभी कृतियाँ समाज की साकार उलझनें हैं। समाज की रूढ़ियों, असमताओं के बीच प्रेम को लाकर वे एक उलझन पैदा करते हैं। उसे बढ़ाते जाते हैं, जिससे कहानी का रस सूखने नहीं पाता। उस उलझन को बल करके सुलझाने वाले पुरुष-पात्रों का चित्रण उन्होंने बहुत कम--नहीं के बराबर किया है। इसी से उनकी रचनाओं की समस्या गहरी हो जाती है। इसी से उनके उपन्यास व्यर्थ प्रेम की निश्वासों में डूबते-उतराते हैं। इसी से उनकी नारी, पुरुष की अपेक्षा बहुत अधिक दृढ़, स्वाभिमानी और कर्मशील होती है। इसी से उनके उपन्यास एक प्रकार से नायक-प्रधान न होकर नायिका-प्रधान हो गये हैं। शरत की रचनाएँ घटनात्मक होते हुए भी चरित्र-प्रधान होती हैं। मनोवैज्ञानिकता को छूता हुआ एक दो नारी या पुरुष का चरित्राँकन उनमें अवश्य होता है। अपनी विशिष्ट विशेषताओं को अन्त तक स्थिर रख सकने से उनके वे काल्पनिक पात्र पाठकों के निकट जीवित से हो गये हैं।

पुरुष पात्रों को जाने दीजिए, बात आज उनकी नारी को लेकर हो रही है। शरत की नारी और उलझन साधारण पाठकों को पर्यायवाची से जँचते हैं।

पार्वती (देवदास), अचला (गृहदाह), विजया (दत्ता), विराज (विराज बहू), रमा (पल्ली समाज), सद (स्वामी), हेय (पथ-निर्देश), कुसुम (पंडितजी), अबला, राजलक्ष्मी (श्री कान्त), भारती (पथेरदावी) किरणमयी (चरित्र-हीन), शैल (निष्कृति)। सभी ऐसी प्रतीत होती हैं। किन्तु वास्तव में उलझन शरत की नारी में नहीं वरन् उसकी सामाजिक विषमता में होती है, जिसके फलस्वरूप वह मृदु, प्रेममयी, वत्सला और सुनारी होने पर भी कठोर, माननी और विकट हो उठती है। शरत के पुरुष-पात्रों का भीरु, डरपोक और पलायन शील होना भी उसका एक करण है। पुरुष की कायरता उनकी नारी को आत्माभिमान और कर्त्तव्यपरायणता सिखा जाती है। यह शरत की अपनी आदर्शवादिता थी कि अन्त में उसी भीरु, नपुंसक पुरुष की अन्तिम इच्छा को शिरोधार्य करके उनकी नारी अपना जीवन सफल करती है। उसके ही इङ्गित पर नाचती है। किन्तु इससे उसका गौरव कम नहीं होता है। देवदास की पारो गंवई की लड़की है। देवदास को उसने शैशव से प्यार किया है, उसकी उचित अनुचित इच्छा को शिरोधार्य माना है। उसके प्यार में दुविधा नहीं, अविश्वास नहीं, अखण्ड विश्वास को लेकर वह उस रात को देवदास के चरणों में अपने को समर्पित करने आती है। लेकिन मातृ, पितृ और समाज से भीत देवदास उस समय उस सौभाग्य को सम्हाल रखने की सामर्थ जुटा नहीं पाता। पारो का आहत अभिमान चोट खाकर तड़प उठता है।

दस दिन बाद देवदास स्वयं उससे वही प्रस्ताव करता है तो वह कह देती है--तुम्हारे माता पिता हैं। मेरे नहीं? उनके राजी होने या न होने की जरूरत नहीं? और फिर--तुम पर मेरी तनिक भी श्रद्धा नहीं। मैं जिनके पास जा रही हूँ वे धनवान, बुद्धिमान, शान्त और स्थिर हैं, वे धार्मिक हैं·······यह है उस ठुकराए हुये प्रेम की प्रतिक्रिया। इसे ध्यान में रखने पर विवाह के बाद भी पार्वती देवदास को जो प्यार करती रही है, वह अप्रत्याशित नहीं लगता। नहीं पारो उलझन रही आती है। उसे हम असती कह सकते हैं, 'किन्तु अपनी चीज स्वयं ले जा रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ' कहने वाली सुसराल से सोलह कहारों सहित देवदास को लिवाने आने वाली पारो को हम भीरु नहीं कहेंगे। उसके प्रेम में दैन्य का कोई अंश था यह कह सकना भी कठिन है। प्रेम के स्वरूप का मांगलीकरण करके उसने जो उसे दीन-दुःखियों और भुवनमोहन सभी पर बिखेर दिया है, इससे वह और भी उदात्त हो उठी है। पथ-निर्देश की हेम पार्वती से भी अधिक साहसी है। मा बलात् उसे अन्यत्र व्याहना चाहती है, तो हेम निःसंकोच होकर गुणेन्द्र से कहती है—"बातचीत क्या होती है पत्थर! तुमने सम्बन्ध किया है, तुम चाहो तो तोड़ सकते हो। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, गुणी दा! मेरी इस बात को मानो"। गुणेन्द्र की होने के लिए मा और समाज दोनों से वह विद्रोह करने को तैयार है। परन्तु गुणेन्द्र में ऐसा साहस कहाँ? शरत के पुरुष में इतनी हिम्मत कभी हुई ही नहीं। गुणेन्द्र की भीरुता के कारण हेम व्याह दी जाती है, फिर भी उसके विधवा होने पर जब गुणी उपदेश देता है—कि "जो साध्वी-सती होती है वह अपने पति से प्रेम करती है। मरते समय मन में यह भावना रखती है कि वह अपने पति के पास जाती है।" तो हेम उत्तर देती है—"मुझे तुम लोगों ने जबरदस्ती व्याह दिया। मैं भी सती-साध्वी हूँ, क्योंकि मरते समय मैं भी तुम्हारे पास जा रही हूँ, यही भावना मन में रक्खूँगी।"

लेकिन हाय रे गुणी, तब भी वह उस अचल अविरल नेह को दुलरा न सका। देवदास की भांति जब स्वयं अपने मन का बाँध अवश हो उठता है, तब उसे अपनी बनाना चाहता है। तो हेम उसे तिरस्कृत कर देती है। "विधवा का विवाह? राम राम!"

प्रतिक्रिया का यह रूप शरत की नारी में बहुत स्पष्ट है। किन्तु फिर भी जो वह उसी पुरुष के लिए मरती है, उसके इंगित पर नाचती है, यह समझ में नहीं आता। शायद नारी की अंत-गति पुरुष की छाया हो जाने में ही है? शरत इसके कायल थे, तभी उनके उदार-से-उदार नारी-चरित्र पुरुष से उच्च और महान् होते हुए भी उसके आगे घुटने टेक कर क्षमा मांगते हैं।

हेम ने व्याह से इन्कार कर दिया था, किन्तु गुणी दा का स्थान उसके मन में पति के आसन पर ही था। रूठ कर चले जाने पर भी उसकी बीमारी सुन कर वह दौड़ी आती है। नियति के सब से बड़े दंडस्वरूप गुणेन्द्र मौसी के सामने उसे अपनी 'बहिन' कह देता है तो वह काठ हो जाती है। तिस पर भी वह उसकी उसी आशा-इच्छा को शिरोधार्य करती है।

'गृहदाह' की अचला भी कम प्रखर नहीं है। वह असली नहीं है। परिस्थितियों की विषमता से जाने-अनजाने, वह सुरेश को आकर्षित करती है; सुरेश उसे ले भागता है। फिर भी अपनी पवित्रता वह बनाये रखती है। यथार्थ मनोविज्ञान से यह बात ठीक नहीं जंचती, किन्तु शरत के पुरुष में तो वह नीचता (मैं साहस कहूँगी) है ही नहीं, तब भी अन्त में महीम उसे क्षमा नहीं कर पाता। उद्धत, प्रखर और अम्लान शरत की नारी जो अपने तेज से उनकी रचना को प्रदीप्त किये रहती है, अंत में पुरुष के सामने घुटने टेक देती है। न जाने क्यों? विराज स्वामी को अन्तःकरण से प्यार करती है, फिर भी वह किसी की कड़ी बात नहीं सह सकती। झूठे लांछन से मर्माहत होकर वह उसी जमींदार के साथ घर से निकल जाती है और इसके कारण बहुत आपदाएँ सहती है। उसके दुःख का अंत नहीं रहता। सो क्यों? शरत समाज को बहुत महत्व दे देते हैं।

प्रेममयी नारी की यह विडम्बना शरत-साहित्य में बहुत मिलती है। हाँ नारी के मातृ-स्वरूप की विजय उन्होंने सदैव दिखायी है। बिन्दो, नारायणी, कुसुम या अन्य किसी को देखिए। शरत की नारी में मूक अभिमान और सहज स्नेह का अपूर्व मिश्रण है। उसी के बल पर उनकी नारी उलझन बनती है निशब्द रह कर वह पुरुष की सेवा करती है, परन्तु मूर्ख पुरुष उस निगूढ़ प्रेममयी सेवा का मूल्य आँक नहीं पाता है। अथवा उसका मूल्य चुकाने की सामर्थ्य ही नहीं रखता। वह देखता है केवल उसके अचल-अटल न झुकने वाले स्वभाव की ऊपरी कठोरता को। विपदा में नरेन्द्र विजया को, नीलाम्बर विराज को, श्रीकान्त राजलक्ष्मी को, देवदास पारो या चन्द्रमुखी को याद करते हैं और अवसर मिलने पर उन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गोद में मुँह छिपाते हैं। किन्तु वैसे वे उन्हीं के मार्ग-दर्शक बनने का दावा पेश करते हैं। उनसे पीछा छुड़ाने को उन्हें आध्यात्मिकता का उपदेश देकर बहिन बना छोड़ते हैं।...... किन्तु उससे उनकी नारी का मूल्य या गौरव कम नहीं हो जाता। मानसिक द्वन्द्वों के जिस माया-जाल में उनकी विजया जैसी डूबती-उतराती है, शायद रवि बाबू की सुचरिता को भी वैसी डुबकियाँ नहीं लगानी पड़तीं। अभिभावकहीना वह बालिका रासबिहारी के चंगुल में भीता हरिणी-सी है तो भी उसकी तेजस्विता बड़े ही मूकभाव से दुविधा और अन्याय के अवसर पर उसे बल प्रदान कर देती है। नारी का नारीत्व बड़े ही स्पष्ट स्वरूप में 'दत्ता' में प्रस्फुटित हुआ है। 'बामनेर मेंये' की 'सन्ध्या' और 'पल्ली समाज' की 'रमा' भी ऐसी ही हैं। शरत की सभी नारियाँ माता पहले हैं, बाद में और कुछ। शैल, मंझली बहू, नारायिणी, बिन्दो इत्यादि का तो कहना ही क्या? वे तो मा हैं हीं। उनके समस्त नारी पात्र विशाल मातृत्व के प्रतीक हैं। पुरुष पर जिस ढंग का प्रेम शरत की नारी करती है, उसमें दया-माया स्नेह का ही अंश अधिक होता है। सभी को अपने पुरुष की देख-भाल नन्हें शिशु की भांति करनी पड़ती है। मानों नारी का एकमात्र महत्व पुरुष के जलपान, भोजन और शैया-निर्मित करने, वालों मे उंगलियाँ फेरने-भर का है। इस गौरव के आसन पर बैठ कर ही शरत की नारी की इतिश्री हो जाती है। उपन्यासों में इस कारण से अत्यधिक पुनरुक्ति हो जाने पर भी उनकी नारी के सम्मुख श्रद्धा से सिर झुक जाता है। 'चरित्रहीन' की सावित्री अपने इसी बल पर पाठक की घृणा का शमन कर जाती है।

किरणमयी उनके सब से विशिष्ट पात्रों में है, उतना मनोवैज्ञानिक चित्रण शायद उनकी और किसी नारी का नहीं है। अतृप्त प्रेम की ज्वाला से विकल वह तेजस्वनी नारी अपने यौवन भरे देह-मन की तुष्टि चाहती है। इस से वह समय-समय पर अद्भुत आचरण कर बैठती है। त्यागमय प्रेम की उपलब्धि के लिए वह मृत्यु-शैय्या पर पड़े स्वामी की सेवा इतनी लगन से करती है कि स्वयं सुरबाला तक चकित रह जाती है, पर दो दिन में जब उसका वह सहारा भी टूट जाता है; तब वह उपेन्द्र पर झुक जाती है। उपेन्द्र के पहले डाक्टर अनंगमोहन को भी वह अपनी ओर आकर्षित करती रही है, परन्तु वह सब कुछ प्रतिक्रिया के रूप में हुआ है। ऐसे ही उपेन्द्र की उपेक्षा पाकर वह दिवाकर को ले उड़ती है। घृणा से पाठक का मन कर उठता है छी! छी!—किन्तु शरत ने प्रेम और सैक्स की जितनी स्पष्ट व्याख्या किरणमयी के द्वारा करायी है—वह उनके नये दृष्टिकोण का परिचय देती है। यूँ तो बलात् की आदर्शवादिता उस किरण में भी आगयी है कि दिवाकर जब दूर भागता था तब बल कर के उसे अपनी शैया पर ही सुलाना और जब वह उसके मोह में फंस जाता है तब ६ मास तक साथ रह कर भी उसे अपनी देह न सौंप सकना, परन्तु किरण की यह विचित्रता ही उस उपन्यास का प्राण है, उसे नष्ट करके शरत कहां टिकते? उनकी इस चरित्रहीना नारी का चित्रण भी म्लान नहीं हो पाया है। उनकी नारी की चरम परिणति रसोई घर के आस-पास भले ही हो जाती हो पर वे उसे अकारण गिरने नहीं देते। त्याग, पवित्रता, स्नेह और वात्सल्य उनकी नारी की जन्मगत विशेषताएँ हैं। उनके पुरुष जितने निर्बल भीरु और कायर हैं, उनकी नारी उतनी ही साहसी है।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेखर : एक जीवनी *

डा० श्रीकृष्ण सक्सेना, एम० ए०, पी० एच० डी०

'अज्ञेय' के नये उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' के प्रकाशन से न केवल हिन्दी के प्रथम कोटि के उपन्यासों की गिनती में एक की वृद्धि हुई है, बल्कि कई दृष्टियों से एक अपूर्व रचना हिन्दी को उपलब्ध हुई है। यह महान् ग्रन्थ अंगरेजी अथवा अन्य यूरोपीय-भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के समान ही प्रभाव रखता है। मनोवैज्ञानिक सूझ की गहराई में, मानव के चित्र और हृदय के गूढ़तम रहस्यागारों तक पहुँचने की सामर्थ्य में यह उपन्यास विदेशी रचनाओं से किसी तरह भी कम नहीं ठहरता। लेखक में कल्पना को मूर्त्त करने की असाधारण शक्ति है। और उसका वह पूरा प्रयोग भी करता है। पुस्तक पर सर्वत्र एक महान कलाकार की प्रतिभा की गहरी छाप है।

'शेखर' एक सच्चे क्रान्तिकारी मानस की गठन, प्रवृत्तियों और कार्यों का गहरा अध्ययन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। 'क्रान्तिकारी' शब्द से हमारा अभिप्राय निरे राजनैतिक क्रांतिकारी का नहीं है, क्योंकि जैसा कि लेखक ने स्वयं कहा है, सच्चा क्रान्तिकारी किसी विशेष क्षेत्र में 'इस या उस दुर्व्यवस्था का ही विरोधी नहीं होता, बल्कि ऐसेपन का ही एतादृशत्व मात्र का विरोधी होता है।'

समाजशास्त्र के ग्रन्थों में, जीवनियों और इतिहासों में कई जगह क्रान्तिकारी मानस का अध्ययन देखने को मिलता है। किन्तु 'अज्ञेय' ने साहित्यकार की सहानुभूति से चिरवंचित इस श्रेणी के व्यक्ति के चरित्र का मनोवैज्ञानिक अध्ययन और चित्रण एक कल्पना और संवेदनशील उपन्यास के आकर्षक माध्यम द्वारा किया है। एक ही पात्र के बहुमुख और रहस्यमय चरित्र का उद्घाटन करते हुए लेखक ने अपने अद्वितीय ढङ्ग से अनेक माननीय समस्याओं पर तीखा प्रकाश डाला है। रूढ़ि और स्वाधीनता, चरित्र और व्यक्तित्व, बालशिक्षण और वयस्क प्रेम, सामाजिक और नैतिक कर्त्तव्य, जीवन के अर्थ और परम लक्ष्य के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न लेखक ने उठाये हैं; किन्तु समस्याओं के निरूपण में कहीं भी शिथिलता या पण्डिताऊपन नहीं आया है। जीवन-नाटक के क्रियागत विकास के साथ-साथ जिज्ञासाएँ और विवेचना मानो स्वतः प्रसूत होकर आगे आती जाती हैं, और पाठक सहसा अपने को जीवन की गहनतम समस्याओं के बीच खड़ा हुआ पाता है।

[२]

किसी भी उपन्यास में, जो कि वास्तव में महान है, अवश्यमेव एक ऐसे व्यक्ति का चरित्र चित्रित होता है जो कि 'विद्रोही' अथवा 'जिज्ञासु' है—अर्थात् सम्पूर्णता की खोज कर रहा है। ऐसे आदर्शों का चित्रण धुँधला और अस्पष्ट होता है, किन्तु कलाकार के हाथों चित्रित होने पर वह एक सर्वाङ्गीण पूर्णता की भावना उत्पन्न करता है, आदर्श की उपलब्धि चाहे हो या न हो। 'शेखर' इसका अपवाद नहीं है। उसका चरित-नायक सदा विद्रोही है, और अपना विद्रोहेच्छा को ही अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य मानता है। हम प्रायः विद्रोही को घृणा का सन्देश-वाहक समझ लेते हैं; 'अज्ञेय' ने भी चिरन्तन घृणा को महत्व दिया है. किन्तु उसने प्रेम को उसका अनिवार्य प्रतिबिम्ब माना है "क्रान्तिकारी की बनावट में एक विराट व्यापक प्रेम की सामर्थ्य तो आवश्यक है ही, साथ ही उसमें एक और वस्तु नितान्त आवश्यक, अनिवार्य है, घृणा की क्षमता।" किन्तु यह घृणा निहिलिस्ट की घृणा से भिन्न और उच्चतर

* लेखक—श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन , मू० ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटि की है। वह एक शीतल, सात्विक और बौद्धिक घृणा है—"एक कभी न मरने वाली, जला डालने वाली, घोर मारक, किन्तु इतना सब होते हुए भी एक तटस्थ, सात्विक घृणा की क्षमता, यानी ऐसी घृणा जिसका अनुभव हम अपने सचेतन मस्तिष्क से करते हैं; ऐसी नहीं जो हमें भस्म कर डालती है और पागल करके अपना दास बना लेती है।"

[३]

'शेखर' पढ़ते समय बार-बार जिज्ञासा होती है कि शेखर जो साधारणतया 'अज्ञेय' का ही प्रतिबिम्ब है—पहले क्रान्तिकारी है या कि कलाकार ? यह सच है कि सभी महान् कलाकार महान् विद्रोही भी होते हैं—रूढ़ि के विरुद्ध, समाज के विरुद्ध, राज्य के विरुद्ध बल्कि प्रत्येक ऐसी वस्तु के विरुद्ध जो कि लीक में पड़ गयी है, स्थिति-शील होकर जर्जर हो गयी है, और जीवन-धारा के सतत प्रवाह में अवरोध पैदा कर रही है। किन्तु सभी महान् विद्रोही अनिवार्यतः महान कलाकार नहीं होते। वहीं पर 'अज्ञेय' का शेखर अपवाद रूप है। शेखर की मौलिक प्रेरणा स्वातन्त्र्य की प्रेरणा है जो कि सब प्रकार की बाधाओं के प्रति विद्रोह करती है। शेखर अबाध रूप से शेखर ही होना चाहता है, अपूर्व होना चाहता है, वह नहीं समझ पाता कि क्यों वह किसी दूसरे के साँचे में ढले, क्यों अपने माता-पिता की, मित्रों-शिक्षकों की या किसी की भी प्रतिकृति हो, क्यों एक पैटर्न पर निर्मित हो, क्यों व्यक्ति न बन कर 'टाइप' बने। उसका यह तीव्र व्यक्तिवाद ही उपन्यास की धुरी है।

किन्तु यह सब देखते हुए भी धारणा होती है कि शेखर एक कलाकार ही है। उसके विद्रोह के मूल में विराट भव की, 'सत्यम् सुन्दरम्' की अदम्य माँग है। शेखर पहले कलाकार है, बाद में विद्रोही या और कुछ। परिस्थितियों के थपेड़ों ने ही उसे विद्रोह का पुजारी बना दिया है। यदि हम 'अज्ञेय' का यह कथन मान भी लें कि विद्रोही बनते नहीं, उत्पन्न होते हैं, तो भी इस बात की सचाई कम नहीं होती क्योंकि जीवन इतना अधिक विकृत और असुन्दर है कि कोई भी संवेदनशील व्यक्ति उससे विद्रोह की ओर प्रेरित होगा। शेखर द्वारा अकस्मात् सुने गये माता के वचनों वाली घटना इसका उदाहरण है—"मैंने तो कभी उसका विश्वास नहीं किया, और मुझे तो इसका भी विश्वास नहीं है!" इस एक वाक्य को सुन कर ही शेखर विद्रोही हो गया। इस घटना को पढ़ कर हठात् बायरन के जीवन की एक ऐसी ही घटना स्मरण हो आती है, जिसमें प्रेमिका के द्वारा 'वह लंगड़ा' के हृदयहीन संकेत से इंगित होकर बायरन स्वयं विलासी और हृदय हीन 'डान जुआन' में परिणत हो गया.........कलाकार की आत्मा एक सधे हुए वाद्य की तरह है, जिसे कोमल स्पर्श से ही छूना चाहिए। शेखर विद्रोह करता है तो इसीलिए कि वह कलाकार है। 'सत्यम् सुन्दरम्' की पुकार उत्सर्ग और नकार द्वारा व्यक्त होती है। उपन्यास में बार-बार ऐसे प्रसंग आते हैं जिनसे जान पड़ता है कि शेखर के लिए विद्रोह ही सत्य, शिव और सुन्दर के समान एक आत्यन्तिक वस्तु है। किन्तु यह मानना कठिन है कि कलाकार कभी भी विशुद्ध और आत्यन्तिक नकारात्मक स्थिति पर टिक सकता है—कलाकार तो अनिवार्यतः वह व्यक्ति है जो कि कोई स्वीकारात्मक आग्रह लेकर आता है। कलाकार अगर किसी वाहन पर आरूढ़ होता है, तो इसीलिए कि आगे बढ़ कर फिर अपने पैरों पर खड़ा हो सके; किन्तु सम्पूर्ण नकार तो बाघ की सवारी की तरह है—जब तक सवार बाघ की पीठ पर है, तब तक तो ठीक, किन्तु रुकना या उतरना असम्भव ! कलाकार के लिए नकार प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य एक स्वीकारात्मक स्थिति का रास्ता है।

किन्तु शेखर के मानसिक विकास का अध्ययन करते हुए उसके चिरंतन नकार और घृणा के दृष्टिकोण की ओट में क्रमशः एक स्वीकारात्मक भूमिका के संकेत मिलते चलते हैं। हम देखते हैं कि उसका तीव्र विद्रोह, जो ऊपरी दृष्टि से स्वयं अपनी सिद्धि है, वास्तव में एक हेत्वाभास (?) एक Rationalisation है, जिसका उद्देश्य एक अधिक बुनियादी संघर्ष को छिपाना है।

[४]

कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि विद्रोह का यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शीकरण शेखर के प्रेम की तन्मयता में बाधक होता है मानो शेखर प्रेम से डरता है। ऐसा नहीं कि उसने इसकी अनुभूति को जाना ही नहीं, किन्तु यह सन्देह अवश्य होता है, कि उसने कभी प्रेम में आत्मसमर्पण नहीं किया। सम्भव है, इसका कारण यह हो, कि क्रान्तिकारी स्वभाव से ही इतना उत्कट व्यक्तिवादी और अभिमानी होता है कि उसके लिए वह सम्पूर्ण आत्मसमर्पण, और आत्मापकर्ष सम्भव ही नहीं होता जो कि प्रेम में आवश्यक होता है। यदि यह शंका ठीक है, तब इसे शेखर के लिए एक भारी ट्रेजेडी समझना चाहिए, क्योंकि व्यक्तिवाद और मौलिकता के अभिमान तथा प्रेम के आत्मसमर्पण का संघर्ष जीवन की मौलिक समस्याओं में से एक है, जिसे हल करना विद्रोही का भी और कलाकार का भी परम कर्त्तव्य है। शशि, शारदा, शीला आदि के साथ शेखर के सम्पर्क के कोमल स्नेह-पूर्ण और अत्यन्त छायामय वर्णन को पढ़ कर बार-बार यह भावना होती है कि प्रत्येक बार शेखर भटक गया है। वही शेखर जो प्रकृति के आगे इतना विनम्र हो सकता है उसके संसर्ग से अनायास ही अपने व्यक्तित्व को बिल्कुल मिटा सकता है, समुद्र के निकट, पर्वतों और वनों में आत्म-विभोर होकर खो सकता है, एक स्त्री के सामने ऐसी तन्मयता नहीं प्राप्त कर सकता यद्यपि वह उसे अपने व्यक्तित्व के और अपनी आत्मा के सम्पूर्ण आग्रह से चाहता है ? इस परिस्थिति में वह सदा ठिठक कर हट जाता है, भाग खड़ा होता है..............कभी-कभी अनुताप भी होता है, वह इस झिझक और हिचकिचाहट पर विजय पा लेने का यत्न भी करता है, किन्तु व्यर्थ। सम्भव है शेखर के चरित्र के इस पहलू पर उपन्यास के अगले दो भागों में और प्रकाश पड़े। उस समय तक शेखर की इस अक्षमता पर कोई निश्चित राय न बना कर उससे सहानुभूति रखना ही उचित होगा।

[५]

उपन्यास में एक और बात उल्लेखनीय जान पड़ती है। वह है बालक शेखर के दार्शनिक विचारों की गहराई। अभी वह शैशवावस्था के बाद नहीं पहुँचता, कि इतनी युक्तिपूर्ण, तर्क-संगत, और गूढ़ बातें सोचने लगता है जो कि एक प्रौढ़ और सुशिक्षित दार्शनिक के लिए उपयुक्त होतीं। माना कि शेखर एक असाधारण प्रतिभाशाली बालक है, और उसे औसत बाल्यकाल के माप-दण्डों से नहीं नापना चाहिए, तथापि कहीं-कहीं उसकी विचारधारा इतनी परिपक्व दीखती है कि चित्रण की सचाई पर सन्देह होने लगता है। शंका होती है कि परिपक्व अवस्था के लेखक 'अज्ञेय' ने (अर्थात् शेखर ने) बालक शेखर की बुद्धि पर अनेक विचारों का आरोप कर दिया है जो कि वास्तव में उसके बाल्यपन में उपस्थित नहीं थे। यद्यपि यह भी मानना पड़ेगा, कि 'अज्ञेय' ने स्वयं शेखर के मुँह से यह शंका प्रकट करवा कर अपना पक्ष पुष्ट कर लिया है—

"एक स्वर पूछता है, यह सब तुमने कैसे जाना ?

कभी-कभी वह स्वयं सोचता है, तब उसे इसका कोई समुचित उत्तर नहीं मिलता। ये सब चित्र सुनी हुई बातों का फल है, या उसकी अपनी स्मृति के, या उसने सोचते-सोचते ही, आत्म-सम्पादन की शक्ति से अपने को विश्वास दिला लिया है कि ये दृश्य उसने देखे, ये अनुभव से प्राप्त किए ?" —(शेखर पृष्ठ ५७)

तथापि ऐसे दो-एक सन्दिग्ध स्थलों के रहते हुए भी शेखर एक महान् रचना है। उपन्यास अभी पूरा जनता के सामने नहीं आया है, और उसके शेष दो भागों के शीघ्र प्रकाशन की बड़ी व्यग्रता और उत्कंठा से प्रतीक्षा की जायगी, किन्तु पहला भाग पूरे उपन्यास का एक अंश होकर भी सभी महान कला-कृतियों की तरह स्वतः सम्पूर्ण है, और जैसा कि लेखक ने भूमिका में लिखा है पहला भाग पढ़ कर ही हम शेखर में अपना प्रतिविम्ब पाते हैं, और फिर उससे स्नेह करने लगते हैं। सचमुच शेखर बड़ा आदमी हो न हो, अच्छा हो न हो, किन्तु सदा और सर्वथा ईमानदार है।

इन्हीं कारणों से शेखर के आगामी भागों की प्रतीक्षा करते हुए भी पहले भाग पर सम्मति प्रकट करना अनुचित नहीं जान पड़ता। साहित्यिक रचना की दृष्टि से 'शेखर' एक अपूर्व वस्तु है, और उसके प्रकाशन से हिन्दी की गौरव वृद्धि हुई है।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मुक्त *

[श्री गुलाबराय एम० ए०]

वर्तमान भारत में दो प्रभाव-केन्द्र हैं, एक महात्मा गांधी और दूसरे स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर। गांधीवाद का हिन्दी-साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्दजी, जैनेन्द्रजी, गुप्त बन्धुओं, तथा अन्य कवियों की कृतियों में यह भिन्न-भिन्न रूपों में परिलक्षित होता है।

'उन्मुक्त' में वर्तमान युद्ध की परिस्थिति को एक काल्पनिक लोक में अवतरित किया गया है। इसकी घटनास्थली है कविकल्पना का कुसुम द्वीप जो कि सौरभ और कला से पूर्ण होते हुए भी विचारों में दृढ़ है। इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"कुसुम द्वीप यह वही—प्रकृति ने जिसे सजा है।
जलधि-वक्ष पर कल्प-कमल-सा यह उठ आया,
सलिल श्री का शान्ति-सदन यह है मन भाया।
चारों ओर उदार क्षेत्र प्रान्तर पुर वन हैं;
निर्झर सरित तड़ाग कुण्ड गिरिकुञ्ज सघन हैं।
जीवन यहाँ अरुद्ध, मृदुल-मारुत का झोंका,
गत जब, तब भी अगत, सुरभि का स्मरण अनोखा।"

प्रकृति की ऐसी सुरम्य स्थली भी लौह द्वीप की रण-लिप्सा से न बची। लौह द्वीप नाजी जर्मन का प्रतिरूप है जो कारण-अकारण को नहीं देखता, जयकेतु कहता है कि कुसुम द्वीप का दोष जरा भी नहीं है—

"यही हमारा दोष, नहीं हम पर धन-इच्छुक;
अपने में सन्तुष्ट अवगुणों के निन्दक हैं;
यही हमारा दोष सभी के शुभ चिन्तक हैं।"

भारत की भी कुछ ऐसी ही दशा है। सब के भीतर एक विराट आह्वान सुनाई पड़ने लगता है :—

"उठो, उठो! चल पड़ो, व्यथित होने का अवसर
आज किसी को कहाँ। आज तो जीवन-संगर
समुपस्थित है।"

यद्यपि कुसुमवती, मृदुला, गुणधर सभी अहिंसावादी हैं तथापि सभी इस रण-भेरी के राग से मोहित हो उठते हैं। इस काव्य में पुष्पदन्त युद्ध के पक्ष में है और गुणधर अहिंसावाद का आधार लेकर युद्ध के विपक्ष में। दोनों के पक्ष प्रबल हैं, पुष्पदन्त की युक्ति सुनिए:—

"सोचने का किसको
अब अवकाश कहाँ। निश्चित है वीरों का
एक ही सुपरिणाम। एक ही सुगति है।
मृत्यु और जीवन के इस-उस कूल में
एक ही विजय भूमि निश्चित है उनकी।
सोचूं समझूँ क्या और ? सोचना समझना
उनके लिए हो, जिन्हें शंका, द्विधा, भय हैं;"

गुणधर युद्ध के लिए राजी तो हो जाते हैं किन्तु उनके मन में एक कसक रहती है जो आगे चल कर तीव्र हो उठती है और उन्हें युद्ध से विरक्त कर देती है। वन्दी हो कर वह अपने को उन्मुक्त समझता है। गुणधर में गाँधीजी की आत्मा बोलती हुई दिखाई देती है सुनिए:—

मेरा मत जानते हैं आप, फिर सुनिए,—
वैसे मारकास्त्रों का प्रयोग रणस्थल में
वीरोचित कार्य नहीं; यह है अधम की
हिंसानीति; शूरता जो दिखती है इसमें
वह छलना है, भीरुता है छद्म-रूपिणी।
प्राण धन जाने का अमोह इसमें है जो,
वह है निषिद्ध लोभ निन्य द्यूतजीवी का।"

युद्ध से विरति कराने वाले शान्तिवाद का ऐसा अच्छा काव्य-समर्थन मुश्किल से ही मिलेगा। इसी के कारण पुष्पदन्त की आज्ञा से गुणधर वन्दी होता है और इसी में वह अपनी मुक्ति मानता है। "वन्दी नहीं आज मैं विमुक्त

लेखक—श्री सियारामशरण गुप्त, मूल्य १।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यञ्जय हूँ" गुणधर की पत्नी मृदुला यद्यपि सेवा-व्रत में दीक्षित है तथापि वह द्वीप की रक्षा के लिए भस्मक अस्त्र से सुसज्जित करा कर एक वायुयान भेजती है। यान की दुर्गति होती है, वह शत्रु के हाथ में पड़ जाता है और कुसुम द्वीप की पराजय होती है। अन्त में यह दिखलाया गया है कि इस पराजय के कारण पुष्पदन्त जो पहले युद्ध के पक्ष में थे अहिंसावादी रख बन जाते हैं। उनके कथन में अहिंसावाद और भी निखर आया है—

"प्रतिहिंसा में छिपा हुआ निज का अभिमानी
कोई हिंसक क्रूर स्वयं हम में बैठा था;
जो बैरी में वही हमारे में पैठा था।
हार हमारी हुई, हेतु इसका है केवल,—
हम में कपट, असत्य, पाशविक, हिंसा का बल
बैरी जितना न था।"

× × ×

"हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल,
जो सब का है, वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर—
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।"

इसका कारण भी बतलाया गया है—

"हिंसक भी नहीं है निरा दानव ही दानव;
सोया है अज्ञान दशा में उसका मानव।
चेतेगा वह नहीं ग्राम्य गुरु के ताड़न से।
रोष रहित सप्रेम स्वयं के कष्ट सहन से
कर उसका उन्नयन स्वयं उन्नत होंगे हम।"

सारा अहिंसावाद इसी भित्ति पर आश्रित है कि 'हिंसक भी है नहीं निरा दानव ही दानव' लेकिन यदि हो तो क्या करना चाहिए? क्या "विषस्य विषमौषधम्" की बात ठीक नहीं है? हृदय-परिवर्तन उसी का हो सकता है जिसमें मनुष्यत्व है। इसके अतिरिक्त अहिंसावाद चाहे हत्याकाण्ड को रोक ले, किन्तु पराजय के देश का घातक परिणाम नहीं रोक सकता। आखिर आततायियों के विरुद्ध अर्जुन को भी लड़ना पड़ा। पराजय में जो सत्य का दमन और रोना भी पाप बन जाता है वह राष्ट्र के आत्मबल का घातक होता है। शक्ति का दुरुपयोग न करते हुए विजय लाभ के लिए यत्नवान होना मनुष्य-धर्म है, विजय प्राप्त कर शत्रु के साथ न्याय का व्यवहार करना मानवता है।

यह सैद्धान्तिक मतभेद या कठिनाई होते हुए भी मानना पड़ेगा कि काव्य की दृष्टि से इसमें बड़े सुन्दर चित्र उपस्थित हुए हैं। रणस्थली को जाते हुए सैनिकों का वर्णन देखिए:—

"दृश्य अब कैसा था!
वाद्य बजता था मन्द्र घोष भरे कंठों से
सैन्य जन गाते हुए जा रहे थे, सम में
थाप पड़ती थी एक साथ पदक्षेपों की।"

युद्ध के विनाशकारी प्रभाव का भी एक चित्र देखिए:—

जब तक विह्वल दृष्टि जाय ऊपर को डाली,
फैल गई सब ओर विकट-उत्कट उजियाली
बरस पड़े विध्वंस-पिण्ड सौ-सौ यानों से।
सुना सभी ने बधिर हुए जाते कानों से
उनका क्या मैं कहूँ—घोष-दुर्घोष भयङ्कर,
प्रेतों का-सा अट्टहास, शत-शत प्रलयङ्कर,
उल्काओं का पतन, वज्रपातों का तर्जन,
नीरव जिनके निकट—हुआ ऐसा कटु गर्जन।
कुछ ही क्षण उपरान्त एक अर्धांश नगर का,—
युग-युग का श्रम-साध्य साधना फल वह नर का,—
ध्वस्त दिखाई दिया, चिकित्सालय, विद्यालय,
पूजालय, गृह-भवन, कुटीरों के चय के चय
गिर कर अपनी ध्वस्त-चिताओं में थे जलते।
कहीं उजलते, कहीं सुलगते, धुआं उगलते।

कितना सुन्दर सजीव और भयोत्पादक चित्रण है। ईश्वर की कृपा से भारतवर्ष इस दशा से बचा हुआ है। गुप्तजी प्राचीन वातावरण में नवीन परिस्थितियों का अवतरण करने में विशेष सफल हुए हैं। उन्मुक्त छन्द में एक उन्मुक्त आत्मा का यह शान्तिमय संदेश हिन्दी-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बनेगा।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य समीक्षा

समालोचना

उच्च विषयक लेखमाला—लेखक—श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम० ए० भाषा तत्व रत्न । प्रकाशक—श्रीरामनारायणलाल पब्लिशर और बुकसेलर इलाहाबाद । पृष्ठ संख्या १९६, मूल्य १।।)

प्रस्तुत पुस्तक के लेख अधिकांश में धार्मिक और सांस्कृतिक हैं । एक आलोचना भी है जो मेरी ही पुस्तक 'फिर निराशा क्यों' ? की । लेख प्रायः सभी विचारात्मक हैं केवल 'लुका-छिपी' भावात्मक और भक्ति-प्रधान है । इनमें से रामानुज सम्बन्धी दो लेख और वैष्णवधर्म की उत्पत्ति और विकास शीर्षक लेख तुलसी और सूर के विद्यार्थियों को विशेष उपयोगी होंगे क्योंकि इन लेखों से उक्त महाकवियों की धार्मिक पृष्ठभूमि पर अच्छा आलोक पड़ेगा । इस पुस्तक में श्रीकृष्णजी की उपासना के सम्बन्ध में जो लिखा गया है वह है तो अधिकतर डाक्टर भण्डारकर की पुस्तक के आधार पर ही किन्तु उस सामग्री को विद्यार्थियों के सुलभ बना कर लेखक महोदय ने बड़ा उपकार किया है । मैं यह नहीं कहता कि भण्डारकर या सान्याल महोदय के सभी निष्कर्ष मान्य हैं किन्तु यह सामग्री बहुत उपयोगी है और कम-से-कम इतनी बात तो अकाट्य रूप से प्रमाणित कर देती है कि वासुदेव पूजा पाणिनि के समय ईसा से चारसौ या पाँचसौ वर्ष पूर्व से ही थी । उपनिषदों में श्रीकृष्णजी को घोर आंगिरस ऋषि का शिष्य बतलाया गया है । सान्यालजी ने घोर आंगिरस के सिद्धान्तों का श्री मद्भागवद्गीता के साथ-साम्य दिखा कर इस बात को पुष्ट किया है कि उपनिषद् के कृष्ण और गीता के उपदेष्टा एक ही थे । तर्क की दृष्टि से तो यह युक्ति बहुत दूर नहीं जाती किन्तु अन्य प्रमाणों की पुष्टि यह अवश्य करती है । गीता में सभी उपनिषदों के सिद्धान्त हैं 'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः' उपनिषदों में भी कृष्ण देवकी पुत्र कहे गये हैं यह बात अधिक महत्व रखती है ।

'नदियागौरव' में नव्य-न्याय का इतिहास और वहाँ की शास्त्रीय परम्परा की अच्छी झलक मिलती है । यह जान कर कुछ लोगों को आश्चर्य होगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु जैसे प्रगाढ़ भक्त थे वैसे ही वे नव्य न्याय के धुरन्धर विद्वान थे । विशिष्टाद्वैत की व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

"विशिष्ट का अर्थ है—चेतन तथा अचेतन विशिष्ट ब्रह्म । अद्वैत का अर्थ है अभेद । वाद का अर्थ है सिद्धान्त । चेतन तथा अचेतन भाग विशिष्ट ब्रह्म का, अभेद या एकत्व । इस एकत्व-निरूपक सिद्धान्त का नाम है विशिष्टाद्वैत ।" ये लोग ब्रह्म में चेतन-अचेतन दोनों की एकता मानते हुए संसार को सत्य मानते हैं ।

इस पुस्तक में वेदों और पुराणों के सम्बन्ध में भी अच्छा प्रकाश डाला गया है । वेदों के काल-निर्णय के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक की ज्योतिष गणना सम्बन्धी विवेचन का भी सार दिया है ।

'वेदसंहिता में, विषुवत-रेखा में मृगशिरा (orion) नक्षत्र की अवस्थिति का उल्लेख पाया जाता है और ब्राह्मण युग में भी इसी रेखा में कृत्तिका (pleider) नक्षत्र की अवस्थिति का परिचय मिलता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय लोकमान्य तिलक तथा विद्वान्-श्रेष्ठ याकोबी ने ज्योतिष-गणना के द्वारा दिखलाया है कि ईसा के २५०० वर्ष पूर्व कृत्तिका नक्षत्र में एवं ४५०० वर्ष पूर्व मृगशिरा में महा-विषुव-संक्रान्ति संघटित हुई थी। इसके द्वारा वेदसंहिता के प्राचीन मन्त्रों का दर्शन-काल माननीय तिलकजी ने ईसा से ६००० वर्ष का निकटवर्ती प्रमाणित किया है। मेक्समूलर ने वेदों का काल १२०० से १००० वर्ष ईसा पूर्व माना है।

हिन्दी में प्राचीन खोज सम्बन्धी साहित्य की कमी है। ऐसे लेख उसकी आंशिक पूर्ति करते हैं।

तुलसी दर्शन—सम्पादक—कमलधारीसिंह 'कमलेश' साहित्यरत्न। सहायक सम्पादक—शुभकरण सुराणा। प्रकाशक—श्री माहेश्वरी विद्यालय। शोभाराम बैसाख स्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक में भिन्न-भिन्न लेखकों के तुलसी सम्बन्धी निबन्ध और कविताओं का संग्रह है। इसमें कुछ लेखक विद्यार्थी भी हैं। विद्यार्थियों के लेख होते हुए वे उपेक्षणीय नहीं हैं। 'गुणाः पूजा स्थानं गुणाषु न च लिङ्गं न च वयः' कुछ लेख और कविताएँ इतनी उत्कृष्ट हैं कि उनके विद्यार्थियों द्वारा लिखे गये होने में सन्देह होता है। तुलसी की कृतियों का सिंहावलोकन तथा तुलसीकालीन सामाजिक रहन-सहन शीर्षक लेख विशेष महत्व के हैं। 'मानस कवि और उर्मिला' में जो उर्मिला सम्बन्धी उपेक्षा का कारण देने का प्रयत्न किया है वह यह है कि तुलसीदासजी ने लक्ष्मण को सेवाव्रत में आदर्श रूप से रत रखने के लिए उर्मिला का उल्लेख बचाया है। यह युक्ति जचती नहीं है। तुलसी सभी बातों को महत्व नहीं दे सके थे। —गुलाबराय

अलंकार-दीपक—लेखक और प्रकाशक—श्री श्यामजी शर्मा, काव्यतीर्थ भदवा, पोष्ट कुलहरिया, शाहाबाद। मूल्य ।=)

प्रस्तुत पुस्तक में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का वर्णन किया गया है। कुल अलङ्कार ६१ हैं और हम समझते हैं कि प्रधान-प्रधान अलंकार इनमें सभी आगये हैं। इसमें लक्षण दोहों में हैं और रीतिकाल के कवियों का अनुकरण है पर अन्तर केवल यही है कि जहाँ व्रजभाषा के कवियों की भाषा व्रज है वहाँ यहाँ खड़ी बोली है। कहीं-कहीं गद्य का भी आश्रय लिया गया है, वह वहीं जहाँ दोहे से काम नहीं चल सका है। इसका आधार विश्वनाथ का "साहित्य-दर्पण" है। यही कारण है कि विषय स्पष्टता से व्यक्त किया जा सका है।

साहित्य के विद्यार्थियों को इस पुस्तक से अलंकारों के लक्षण याद करने में सहायता मिलेगी। लेखक के साथ हमारा भी यही विश्वास है। —कमलेश

कविता

किरण-बेला—लेखक-श्री अञ्चल। प्रकाशक-सुखी-जीवन ग्रन्थमाला दारागञ्ज, प्रयाग। मूल्य १)

किरण-बेला अञ्चलजी की कविताओं का तीसरा संग्रह है। इस संग्रह में अञ्चलजी पर प्रगतिवाद की स्पष्ट छाप है। मैं तो रोमांस और प्रगति जीवन के ही दो पहलू मानता हूँ। रोमांस यदि उजेले पाख की चांदनी छिटकाता है तो प्रगतिवाद कृष्णपक्ष की भीषणता को सामने लाता है। इस संग्रह की कविताओं में उसी काली रात की विकराल छाया अङ्कित दिखायी देती है और उसके मिटाने के लिए क्रांति का दानव खड़ा किया गया है जिसमें रुधिर की पिपासा उद्दीप्त है:—

"तू देख रहा दुख की रजनी का यह वीराना अन्धकार,
पग-पग पर जिनके श्वान खड़े उन शिशुओं की तृष्णा अपार
यह नस्ल जिसे कहते मानव, कीड़ों से आज गई-बीती
बुझ जाती तो, आश्चर्य न था; हैरत है पर कैसे जीती।"

"छिछली संस्कृति, यह घिसा, खोखला वैभव का ऐश्वर्य-शिखर
पाषाणी शोषण परिधि—यहाँ सोते तूफान महासागर।"

वर्तमान से तो इस कविता का प्रत्यक्ष असन्तोष है ही किन्तु मध्ययुग और प्राचीन युग से भी कवि को कोई आकर्षण नहीं। कवि ने भविष्य का कोई स्वप्न भी नहीं रचा है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मध्य-युग स्वर्णिम विगत की भव्यता मुझको न भाती,
तुम सनातन छवि जिन्हें कहते मुझे वे मुँह चिढ़ाती।"

कवि का मूल ध्येय है क्रान्ति, विध्वंस और प्रलय न मर्ज रहे और न मरीज—

"आज सृजन की कैसी चिन्ता महा प्रलय विध्वंस मचाओ
कौन तुम्हें अनहोनी कहता महा मरण के दीप जलाओ।"

यह पुकार किसी अंश में सार्थक-सी हो जाती है जब हम शोषित मानवता के नीचे के-से चित्र देखते हैं—

"और कई बच्चों की मां आ रही उधर से अन्न बटोरे
आञ्चल में कुछ लिए चबाती कुछ, बिखरे धोती के डोरे।
वही देखती पेड़ तले यह खड़ी मानवी-सी कृश जर्जर
देती बांध फटे दामन में थोड़े से दाने अकुला कर।
किन्तु खड़ी रहती वह जड़ पत्थर निज निर्मोही-सी प्यासी
घर के विकते तो बीतेंगी पेड़ तले फिर रातें त्रासी।"

अञ्चलजी ने वर्तमान मानव-समाज के बड़े करुणाजनक चित्र खींचे हैं जैसे 'आज चलीं तुम घूँघट खोले', 'वह मजदूर की अंधी लड़की', 'दोपहर की बात' में शोषित जनता के रंगहीन चित्र हैं। ऐसे चित्र कवि के मुख से आग उबलवाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं, देखिए—

"भूखों नंगों की मिट्टी पर मुट्ठी-भर का महल बनाना
लख लुटती नारी की लजा व्यभिचारी का हँसते जाना।
जब बेवश माता के आगे घुट-घुट शिशु के प्राण निकलते
तब कवि के रोंये-रोंये रो कितने हाहाकार उगलते।"

किन्तु प्रश्न यह है कि यह अन्ध विध्वंसक ज्वाला के आगे बचेगा क्या ? क्या वर्तमान समाज में कुछ सुन्दर नहीं ? क्या मरण ही एक मात्र महौषधि है ? कवि को मरण की क्यों इतनी आकुलता है ? मरण कभी-कभी आवश्यक होता है किन्तु नित्य प्रति के व्यापक मरण से क्या लाभ ? संसार में सुधार के और सब उपाय नितान्त निरर्थक नहीं है, फिर भी कवि पुकारता है :—

"जीवन का बलिदान चढ़ाने, खड़े मुन्तजिर हम दीवाने,
महाध्वंस के अग्रदूत हम, आज उठे विप्लव धधकाने।
घोर युद्ध की भूख हमें, अब तो हम से स्थिर रहा न जाता,
हम बेचैन खड़े अकुलाते; किन्तु मरण-त्यौहार न आता।"

जब तक मरण त्यौहार न आवे तब तक बेचैन हो कर सुध-बुध खो देने से क्या लाभ ?

पुस्तक में निरा क्रन्दन ही नहीं है किन्तु उसमें कहीं-कहीं सरस गीत भी हैं जो इस हा-हा-कार में एक सुखद हलकापन पैदा कर देते हैं—

"क्या तुम मुझको याद करोगी ?
जब संगीत भरी लतिकाएँ, वृक्ष तरंगित होंगे प्रतिक्षण
मेरे दर्द भरे नग़मों को होंटों पर लाकर कुछ उन्मन।
क्या सुगंधि-सी आतुर हो बन-बन में ढूँढ़ चलोगी मुझको
मेघ गगन से गिरते-गिरते, क्या तुम मुझको याद करोगी !"

किन्तु ऐसी कविताओं को कवि ने बहकना कहा है। जीवन में रोमांस और आर्त क्रन्दन के प्रति करुणा दोनों ही आवश्यक हैं।

—गुलाबराय

ग्रामबाला—लेखक—श्री कैलाशचन्द्र पीयूष, प्रकाशक—श्री भारती निकेतन, मुहल्ला बल्लीमारान, दिल्ली। मूल्य १)

नवयुग की साम्यमयी प्रवृत्तियों के अनुकूल इस पुस्तक का विषय ग्राम के लोग हैं। उसी जीवन की एक घटना इसमें पद्यबद्ध की गयी है। इसकी नायिका एक ग्रामबाला है जिसका यौवन उसके क्षीण वस्त्रों में से फूटा पड़ता है। ऐसे प्रकृत, स्वस्थ सौन्दर्य का पीयूषजी ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। देखिएः—

"रक्तवर्ण रेजी की घांघरी व कब्जा ही
उसके उन अंगों को ढकते थे शक्ति लगा
जो कि नित्य-नित्य प्रति विकसित ही होते थे
अनजाने भूरि भार यौवन का ले-लेकर
भर-भर कर नव उमङ्ग
अङ्ग प्रकट होते थे।"

पक्षियों से खेत की रखवाली करते समय का दृश्य भी खूब अच्छा है। देखिएः—

"चढ़ कर जब डौंचे पर "हुई हुई" करके वह
गोफिया फिराती तो—
छा जाती थी अपूर्व लालिमा सुबाला के
सुगठित, विशाल, मञ्जु, मटमैले अंग में।
"चर्र मर्र" कर उठता सहसा मचान सभी
पक्षी उड़ जाते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तज कर निज सुख-ग्रास
हो करके भय-त्रसित
फड़-फड़ा पत्त युग्म
वियत व्योम मध्य
लोल मारुत की लहरों में"

इस पुस्तक में उसी जीवन-नाटक का करुणा-जनक चित्र है जो इस जीवन की धूपछाँह भरी रंगस्थली पर प्रायः देखा जाता है। दो प्रेमी हृदय मिलने नहीं पाते कि बीच ही में कोई तीसरा आकर रंग में भंग डाल देता है। फल होता है रुदन और पीड़ा। नर्वदा और सम्मन एक दूसरे के उपयुक्त हैं पर नर्वदा का विवाह होता किसी अन्य ही से है। इसमें दो एक मनोवैज्ञानिक चित्र भी बड़े सुन्दर हैं। जब नर्वदा सम्मन से कह देती है कि उसकी मां ने कहा है कि वह बड़ी हो गयी है अब उससे न मिला करे तब सम्मन को जो निराशा होती है वह पठनीय है। उसको किसी कार्य में रुचि नहीं रहती—

"ख्याति प्राप्त करके ही
होगा क्या उसका अब
पूर्ण कर सका वह जब
लघुतम-सी चाह भी न"

सम्मन की उदासीनता रोग के रूप में प्रतीत होने लगी और उस सम्बन्ध में ग्रामीणों की टीका-टिप्पणी बड़ी मनोरञ्जक है। वह उनके प्रचलित विश्वासों की परिचायक है—

"कहता था कोई
"है रोग यही भूतिया"
रात-रात मालिश कर सोता था चौड़े में
नित्य दूध पी राख भी न धरता था
चुटकी-भर मुख में निज,"

पुस्तक में कहानी का प्रवाह अच्छा है परन्तु कहीं-कहीं अधिक वस्तुवादिता आ गयी है। कहीं-कहीं मुहाविरे भी ग्रामीण आ गये हैं जो शुद्ध भाषा के साथ मेल नहीं खाते 'दीदा ही टिकता है तेरा कुछ दिवस से न।' कहीं-कहीं योम जैसे फारसी शब्द बे-मेल हो गये हैं।

सुन्दर प्रकृत चित्रण के लिए पुस्तक बड़ी अच्छी है और नगर के दृश्यों से ऊबे हुए लोगों को विश्रामदायिनी सिद्ध होगी। —चिरञ्जीलाल 'एकाकी'

शाद्वल—श्री लीलाधर त्रिपाठी। प्रकाशक—साहित्योद्यान ७० विक्टोरिया पार्क, काशी। मूल्य १)

'शाद्वल' में श्री लीलाधर त्रिपाठी की ६१ रचनाएँ संग्रहीत हैं। संग्रह को पूरा पढ़ जाने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि कवि ने अपने सामने कोई विशेष दृष्टिकोण नहीं रक्खा या यों कहें कि जिसे काव्यगत 'संदेश' की संज्ञा दी जाती है, वह वस्तु कवि में प्रखर नहीं है वरन् समय-समय पर विभिन्न विषयों पर लिखने को उसे बाध्य होना पड़ा है। यह कहते हुए हमें कवि की "चाहता तो था कि चुप रहूँ पर रह न सका। लेखनी अलग थी कागज अलग पर न जाने दोनों कब मिल गये। कैसे, कुछ पत नहीं!" वाली 'वाग्द्वार' की पंक्तियों पर अविश्वास करने का साहस यदि नहीं होता तो इसीलिए कि कवि में दर्द जरूर है और उसमें का प्रवाह तरल है। यही कारण है कि कहीं-कहीं अत्यन्त सुन्दर पंक्तियाँ 'शाद्वल' में मिल जाती हैं। एक स्थान पर कवि कहता है—

"जीवन क्या है? अविराम अश्रु के
सागर में बहते रहना।
जीवन क्या है? जन-ज्वाला में,
चुपचाप शांत जलते रहना।"
—'अमर अभिलाषा'

जीवन की यह व्याख्या यद्यपि पुरानी पड़ गयी है और प्रगतिशील दृष्टिकोण के खिलाफ है परन्तु यह ऐसा सत्य है जिसे अपनाये बिना काम नहीं चल सकता।

कुछ-एक कविताएँ नवीनता से भरी हैं। उनमें 'समाधि की घास' शीर्षक कविता बहुत सुन्दर है। इस कविता में कवि ने अपने हृदय के भावों को बड़े मनोरञ्जक ढंग से रक्खा है। उदाहरणार्थ नीचे की पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

"हे समाधि की घास! उसे
किस हेतु छिपाती जाती हो?
अपने अँचल से ढँकने में
कहदो क्या सुख पाती हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो प्रशांत शीतल शरीर को
अङ्कम में लपटाती है,
वह समाधि की वेदी, ज्वाला,
तेरी अरे, घटाती है।"

जहाँ-जहाँ कवि ने अपनेपन की रक्षा करते हुए सीधी-सादी भाषा में भाव प्रकट किये हैं वहाँ तो वह कुछ पढ़ने के लिए पाठक को मजबूर भी करता है परन्तु जहाँ निराला और पन्त की तरह अंतुकान्त या कोमल-कांत-पदावली के फेर में पड़ा है वहाँ उसकी कविता केवल शब्द-जाल हो कर रह गयी है और पढ़ते-पढ़ते जी ऊब उठता है। 'अभाव', 'विपिन्न', 'पुकार' आदि कविताओं में पूरा-पूरा चित्र कवि शायद इसीलिए नहीं उतार सका है।

आशा है भविष्य में कवि अपनी प्रतिभा को अपने प्राणों के दीपक के प्रकाश से ही विकसित और प्रकाशित करेगा।

सुन्दर सतसई—श्री सुन्दरप्रसादजी भटनागर। प्रकाशक—सेठ व्रजलालजी बागड़ी, कोटा। मूल्य ॥)

रहीम और वृन्द की-सी सरल चलती हिन्दी में लिखे हुए यह दोहे नीति और धर्म की विशेषता से भरे हैं और, जैसा कि लेखक ने भी भूमिका में स्वीकार किया है, यह दोहे पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए लिखे गये हैं। ब्रह्मचर्य, सत्य, विश्वास, परतंत्रता, प्रेम, देशभक्ति, परोपकार, स्वार्थ आदि सभी सद्गुणों और दुर्गुणों पर लिखा गया है और विद्यार्थियों के लिए काम की वस्तु हैं, पर कन्यादान और भाग्यवाद की शिक्षा विद्यार्थियों को देना अनुचित है विशेषतः किसी भक्त कवि के लिए जो दुनियादारी से ऊपर है। आशा है विद्यार्थियों का ध्यान रख कर ऐसे विषयों के दोहे निकाल दिए जायँगे। वैसे दोहे सरस, चुभते हुए और प्रभावोत्पादक हैं। —कमलेश

कहानी

खाली बोतल—(कहानी-संग्रह) कहानीकार—भगवतीप्रसाद बाजपेयी। प्रकाशक—नेशनल लिटरेचर कम्पनी, १०५ कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १६५, मूल्य १)

हिन्दी के सुविख्यात साहित्यकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'खाली बोतल' उनकी १० नवीन कहानियों का संग्रह है। वाजपेयीजी की कहानियों की टेक्नीक या कारीगरी के विषय में कुछ कहना व्यर्थ-सा ही है, क्योंकि उस पर तो उन्हें पूरा कमाल हासिल है ही। 'हिलोर' और 'पुष्करिणी' की कहानियों के बाद उन्होंने इन कहानियों की कारीगरी में कोई विशेष उन्नति या परिवर्तन नहीं प्रदर्शित किया है। यह अवश्य है कि 'खाली बोतल' की कहानियों के प्रारम्भ उतने अनाकर्षक और कलाहीन नहीं हैं, जैसे कि उनकी कहानियों के अक्सर हुआ करते थे। परन्तु साथ ही उनके 'अन्त' जैसे प्रभावशाली, कवित्वमय और कलात्मक पहले होते थे, वैसे ही अब नहीं होते। कहना चाहिए कि 'खाली बोतल' की कहानियों के आदि और अन्त में एक सामञ्जस्य आ गया है, जो कला की दृष्टि से प्रशंसनीय है। वाजपेयी कवि भी कम नहीं हैं, यह पाठक शायद न जानते हों; पर कभी-कभी उनकी कविता व्यर्थ ही कहानी के मार्ग में आकर अड़ जाती है। "झर झर झर झर रे वेदना के गान!" एक ऐसा वाक्य है, जो उनकी रचनाओं में रह-रह कर आता है और अब इतना बासी हो गया है कि बुरा लगने लगा है। प्रस्तुत संग्रह की "मैना" कहानी इसी वाक्य से समाप्त होती है और इसी से उसका सारा सौन्दर्य जैसे एकबारगी ही नष्ट हो जाता है। यदि उसका अन्त यहीं हो जाता, एक वाक्य पहले—"आह यह नींद कितनी प्राणान्तक है, कैसी मधुर! जीवन को लेकर मृत्यु उसी को तो यहाँ छोड़ गई है!" तो कितना सुन्दर रहता!

इस संग्रह की सर्वोत्तम कहानी "अँधेरी रात" है। कजली से एक बार परिचय होने पर, पाठक उसे कभी भुलाए नहीं भूल सकता, ऐसा मेरा विश्वास है। यह कहानी वैसे मैं आज से तीन वर्ष पूर्व ही कहीं पढ़ चुका हूँ, किन्तु आज तक कजली को नहीं भूला हूँ। कजली वाजपेयीजी की अद्भुत कला-सृष्टि है। यों 'हारजीत' का प्रबोध भी एक समस्या-चरित्र है और कहानी कई एक दोषों के होते हुए भी बहुत सुन्दर है और मन में बैठ जाती है। 'खाली बोतल' के रोमांस की जो अस्पष्टता है, उसी से इसमें जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ गयी है। केदार बाबू का चरित्र लेखक ने स्थूल और संक्षेपतम रेखाओं से अङ्कित किया है और इसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है। इनके अतिरिक्त 'कबाड़ा' भी अच्छी कहानी है। 'लिली' एकदम असफल है।

इस संग्रह की कहानियों में वाजपेयी मनोविश्लेषक तो हैं ही, किन्तु उनका विचारक भी उन्नत रूप में दिखायी पड़ता है। प्रतीकमय भाषा द्वारा अपनी दार्शनिकता को अभिव्यक्त करना उनकी विशेषता है—

"पहले खाली पड़ी हुयी थी,—अब चूर-चूर हो गयी है!" —(खाली बोतल)

"इसी प्रकार जा-जाकर वह सदा लौटता रहा है।" —(गमनागत)

"बाबूजी सोते क्या हैं, लकड़ी पर खराद के स्वर की नक्काशी करते हैं!..........पेट क्या है, दलदल को पैरोडी है।" —(हारजीत)

अन्तिम उदाहरण में व्यंग्य और विनोद का सुन्दर समन्वय है। विनोद की पुट तो सदैव ही वाजपेयीजी की कहानियों में रहती है और यह स्वस्थ जीवन का एक प्रमाण है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी के पाठक 'खाली बोतल' को जीवन से भरा हुआ पायेंगे और पारखी उसमें भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कला उन्नत रूप में देखेंगे।

—कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा

विज्ञान

मनुष्य का विकास—(अर्थात् आदमी किस तरह आजकल की शकल में आया) लेखक—श्री ज्योतिलाल भार्गव। प्रकाशक—राष्ट्रीय-प्रकाशन-मण्डल मछुआटोली, पटना। मूल्य सादी जिल्द ।≈) सजिल्द ॥≈)

यह पुस्तक खासतौर से उन लोगों के लिए लिखी गयी है जिन्होंने प्रौढ़ होकर शिक्षा प्राप्त की है। मनुष्य को लिखा-पढ़ा कर उसे पढ़ने को भी तो कुछ सामग्री देना चाहिए।

इस पुस्तक से विकासवाद के सिद्धान्त अत्यन्त सरल रीति से बतलाये गये हैं और इससे वे लोग ही नहीं लाभ उठा सकते जिन्होंने प्रौढ़ होकर शिक्षा प्राप्त की है वरन् वे भी जिन्होंने शिक्षा तो शुरू से प्राप्त की है और डिग्री भी हासिल कर ली है, किन्तु विज्ञान से अछूते रहे हैं। पुस्तक अपने उद्देश्य में बहुत कुछ सफल हुई है। विकासवाद के सिद्धान्तों को साधारण भाषा में अवतरित करना सहज बात नहीं। इस पुस्तक में चित्रों का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया गया है। यह बात इसकी सफलता में बहुत कुछ योग देती है। इसमें एक 'किन्तु' भी है वह यह कि कहीं-कहीं अँग्रेजी के शब्द जैसे के तैसे रख दिये हैं जैसे 'यह जैली जो एक लसदार चीज होती है हमेशा अपनी शक्ल बदलती रहती है और हमारे बदन में पाये जाने सफेद कारपुस्किल की बहन है' बिचारा प्रौढ़ कारपुस्किल क्या समझेगा? फिर अगर बदन की बजाय खून और कारपुस्किल के बजाय कीड़ा ही लिख दिया होता तो कुछ अता-पता मिल जाता। ऐसे ही सेल (cell) शब्द का प्रयोग है। पुस्तक के भीतरी कवर पर लिखा है—नाथूराम, डार्विन सर जे, सी, बोस और आर्थर मी के आधार पर। मालूम नहीं ये नाथूरामजी कौन हैं? डारविन के पहले इनका नाम देना कुछ हास्यप्रद हो जाता है इसलिए नहीं कि ये हिन्दुस्तानी हैं। खैर यह ऊपरी मतभेद होते हुए भी पुस्तक फिर भी बहुत उपयोगी है।

वैज्ञानिक-जल-चिकित्सा—मूल बङ्गाली के लेखक—श्री कुलरञ्जन मुखोपाध्याय। अनुवादक—प्रोफेसर रामइकबालसिंह बी० ए०, बी० एल०। प्रकाशक—श्री विनयभूषण मित्रा, वैज्ञानिक-जल-चिकित्सालय ११४/२ बी० हजारा रोड, कालीघाट, कलकत्ता। मूल्य १)

पुस्तक में केवल जल-चिकित्सा ही नहीं वरन् प्राकृतिक चिकित्सा के प्रायः सभी उपचार धूप-चिकित्सा, मिट्टी के प्रयोग, खाद्य-चिकित्सा आदि बतलाये गये हैं। खाली पानी पीने के नियन्त्रण से भी बहुत से रोग दूर हो सकते हैं। पानी प्रचुर मात्रा में पिया जाना चाहिए। वह प्रायः सभी रोगों में लाभदायक है लेकिन भोजन के समय पानी पीना हानिकारक होता है। पानी या तो भोजन के डेढ़ घण्टे पहले या तीन घण्टे बाद पीना चाहिए। खाने के समय पानी पीने से पाचन-रस जो पाकस्थली से उत्पन्न होते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक तौर से काम नहीं करते। प्राकृतिक-चिकित्सा का मूल सिद्धान्त है शरीर से मलों या विजातीय द्रव्यों को बाहर निकाल देना।

भिन्न-भिन्न प्रकार के उपचारों को अच्छी तरह समझाया गया है। रोग के इलाज की अपेक्षा रोग से बचने के लिए जो भोजन सम्बन्धी नियम बतलाये गये हैं वे विशेष महत्व के हैं। उनसे सभी लाभ उठा सकते हैं। जैसे कि दो आहारों के बीच में काफी अन्तर देना इत्यादि। शाक उबाल कर खाने चाहिए, घी में भुजिया बना कर नहीं इत्यादि। लेखक महोदय उस चाय के पक्ष में नहीं हैं जिसका भारतीय पेय के नाम से खूब ढिंडोरा पीटा जाता है। उसमें रात की चौकीदारी कराने के सिवाय और कोई गुण नहीं है।

भोजन और स्वास्थ्य—लेखक-डाक्टर सत्यप्रकाश और डाक्टर सन्तप्रसाद। प्रकाशक—श्री दुलारेलाल भार्गव। अध्यक्ष गंगा पुस्तकमाला कार्यालय मूल्य सादी जिल्द १), सजिल्द १।।)

यद्यपि इस पुस्तक के लेखक औषधि के डाक्टर नहीं हैं तथापि यह पुस्तक साधिकार लिखी गयी है। इसमें भोजन के तत्वों तथा उनके प्रभाव का सुव्यवस्थित वर्णन है। इस पुस्तक में मुख्य-मुख्य खाद्य-पदार्थों का विश्लेषण दिया गया है, उसी के साथ उसमें विटेमन की मात्रा भी बतलायी गयी है। जैसे गाय के दूध, मूली, टमाटर, करमकल्ला आदि में विटामिनों की मात्रा अधिक होती है। भिन्न-भिन्न अन्नों पर अलकोहल का प्रभाव बतलाते हुए मद्यपान की खराबी भी बड़ी प्रभावोत्पादक रीति से दिखायी गयी है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थियों के अन्तः स्राव जिनको ग्रन्थकार ने ओजस् पदार्थ (होरमोन) कहे हैं हिन्दी की स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकों के लिए कुछ नयी चीज हैं। इनका और भी विशद वर्णन होता तो अच्छा होता। पुस्तक में चित्रों का अभाव कुछ खटकता है।—गुलाबराय

विमान—लेखक—श्री गिरधारीलाल शर्मा 'गर्ग' प्रकाशक—ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर, । पृष्ठ २२६, मूल्य १।।)

वर्तमान युद्ध में हवाई शक्ति का प्राधान्य है। सारा युद्ध वायुयानों के सहारे से चल रहा है। ऐसी दशा में प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत सभी ओर से होगा। इस पुस्तक में वायुयान के जन्म से शुरू के अब तक के विकास का पूरा विवरण दिया गया है। सब तरह के वायुयानों और उनके संचालनों का भी वर्णन है। बैलून, ग्लाइंडर्स, सैलकाइट, पैराशूट आदि वायुयानों में क्या भेद है, उनका रूप कैसा होता है व किस काम आते हैं आदि बातें विस्तार से सचित्र समझाई भी हैं। हवाई युद्ध कैसे होते हैं यह भी संक्षेप में बताया गया है। इस प्रकार अपने विषय का पूर्ण वर्णन इस पुस्तक में मिलता है। बालकों के हाथ में ऐसी पुस्तक देकर उनका ज्ञान बढ़ाना चाहिए। —म

चारु-चिकिसा (उत्तरार्द्ध)—सम्पादक और प्रकाशक—वैद्य गोपीनाथ जी गुप्त। चिकित्सक, श्री दिगम्बर जैन आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय; कोटा। पृष्ठ १६४। मूल्य १।।)।

स्वर्गवासी मसीह-उल्मुल्क हाफिज मुहम्मद अजमल खाँ साहब देहली के ४६६ नुसखे इस पुस्तक में दिये गये हैं। अन्त में औषधें बनाने की सरल-विधि भी लिखी गयी है। पुस्तक बहुत उपयोगी और संग्राह्य है, परन्तु मूल्य कुछ अधिक है। —सत्येन्द्रनाथ वैद्य

आध्यात्म

पातञ्जल योग-प्रदीप—ग्रन्थकार स्वामी श्री ओमानन्द सम्पादक—श्री जगदीश एम० ए०। प्रकाशक—प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद। मूल्य ५०० पृष्ठ की पुस्तक का ५)

यह पुस्तक खण्डों में निकल रही है और अभी इसके ६ खण्ड आचुके हैं। पुस्तक में षड्दर्शन समन्वय नाम की एक विस्तृत भूमिका है जिससे योग शास्त्र के समझने के लिए आवश्यक दार्शनिक जानकारी प्राप्त हो जाती है। योग-दर्शन के सूत्रों की विस्तृत व्याख्या की गई है जिसमें अन्वय के साथ शब्दार्थ भी दिया गया है। अन्य शास्त्रों के प्रमाण देकर सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है और उनकी संगति बिठलायी गयी है। पुस्तक संग्रहणीय है हिन्दी में ऐसी टीकाओं की बहुत आवश्यकता है।

—गुलाबराय

प्राण-प्रतिष्ठा—ले०-ब्रह्मर्षि श्रीसत्यदेवजी। प्रका०-साधन-समर कार्यालय, बरहानपुर, कलकत्ता। मूल्य ॥)

साधना के लिए दो प्रकार की प्रतिष्ठा मानी गयी है एक सत्य-प्रति जिसमें भक्त या साधक सत्य का अभ्यास करता है और दूसरी प्राण-प्रतिष्ठा जिसमें वह प्राण या परब्रह्म के स्वरूप का अनुभव करते मोक्ष को प्राप्त होता है। इस पुस्तक में जैसा कि नाम से प्रकट है 'प्राण' प्रतिष्ठा' के अभ्यास का पचास पृष्ठों में बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया है। पुस्तक भक्तों के काम की है और उन्हें इसे जरूर पढ़ना चाहिए।

—कमलेश

स्फुट

आनन्द शब्दावली—संकलन कर्त्ता-श्री रामचन्द्र वर्मा। प्रकाशक-शिक्षा विभाग, विलासपुर राज्य (शिमला) पृष्ठ ८३ आकार बड़ा, मूल्य लिखा नहीं।

प्रस्तुत पुस्तक शब्दों का संग्रह है, यह पुस्तक जहाँ छात्रों के लिए उपयोगी है, वहाँ शिक्षकों तथा लेखकों के लिए भी। शब्दों के चुनाव का क्रम विकासवाद सिद्धान्त पर किया गया है। पुस्तक में कुल ६ सूचियां हैं प्रत्येक सूची में पृथक्-पृथक् अकारादि क्रम से शब्दों का संग्रह किया गया है। पहली सूची में उन्हीं शब्दों को स्थान दिया गया है जो कि पहले व दूसरे दर्जा के लिए उपयोगी तथा आवश्यक है। इसी प्रकार दूसरी सूची में दरजा तीन के लिए शब्द संग्रह है। छठी सूची तक आठवें दर्जे तक के सभी आवश्यक शब्दों का समावेश किया गया है। एक वर्ग के शब्दों को एक ही स्थान पर रखने का प्रयत्न किया गया है, जिससे पढ़ने-पढ़ाने वालों को सुविधा हो। लेखक के कथनानुसार जो सूची जिस दर्जे के लिए नियत है पाठ्य पुस्तकें तय्यार करते समय साधारणतया उस दरजे के पाठों में उसी सूची के शब्दों का प्रयोग आवश्यक है। पुस्तक में करीब ५५००० शब्दों का समावेश है। हिन्दी भाषा के ज्ञान के लिये ५५००० शब्द कुछ कम नहीं हैं। यदि इस शब्दावली के अनुसार प्रत्येक दर्जे की पाठ्य पुस्तकें तैयार की जायँ तो छात्रों को विशेषतः प्रारंभिक दर्जों के छात्रों की विशेष सुविधा होगी। पुस्तक में शब्दों का अर्थ नहीं है परन्तु लेखक की इच्छा है कि भविष्य में पुस्तक की कलेवर वृद्धि के साथ शब्दार्थ का भी संकलन हो और तब यह एक छोटा-सा कोष बन जाय। पुस्तक में बाल्मीकि, मनु, रामकृष्ण, सरस्वती, सीता मिथिला आदि शब्दों का संग्रह नहीं है जब कि ईसामसी मुहम्मद, रमजान, रोजा, निकाह, तलाक तोबा, हिजरत, हिजरी, हाजी, हाफिज आदि शब्दों को स्थान मिला है।

—हरिदत्त शास्त्री

अभागे दम्पति—लेखक-श्री व्यथित हृदय। प्रकाशक-भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस। पृष्ठ संख्या १६४। मूल्य १।)

भारतीय गृहस्थ की विषमताओं का एक सूक्ष्म विश्लेषण, श्री व्यथित हृदयजी ने इस पुस्तक में करने का प्रयत्न किया है। आज हमारा व्यक्ति क्यों असन्तुष्ट, दुखी और आनन्दविहीन है, क्यों प्रत्येक नर-नारी, तृष्णा, अतृप्ति और अशान्ति की आग में जल रहा है उसी का बहुत ही सुन्दर और ओजपूर्ण वर्णन पुस्तक के पत्रों में मिलेगा। मोहनी नाम से एक स्त्री ने कुछ पत्र अपनी सखी सरला को लिखे हैं और उसमें अपने निजी जीवन की कठिनाइयों, भारतीय समाज के बन्धनों और स्त्रियों के शोषण की ओर ध्यान दिलाया है। उधर फणिन्द्र नाम का एक युवक अपने अभिन्न मित्र रमेश को यह समझता है कि हमारी इच्छा के अनुरूप स्त्री के होते हुए भी हमारा गार्ह्यस्थ जीवन क्यों जला जा रहा है, पाश्चात्य सभ्यता का हमारे जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ा है, आदि आदि।

पुस्तक में बिना किसी पक्ष का प्रतिपादन करते हुए हमारे दैनिक जीवन के अन्तर्द्वन्द्व को जो समझने की चेष्टा की गयी है वह स्तुत्य है। भाषा ओजपूर्ण और प्रभावोत्पादक है।

पुस्तक में दो-एक बातें विशेषतः लक्ष्य होती हैं। यह कि लेखक ने अपने अध्ययन का क्षेत्र केवल समृद्ध व पढ़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखे मध्यमवर्ग के व्यक्ति को ही रक्खा है। दूसरे नारी समस्याओं पर विशेष जोर दिया है, पुरुष-पक्ष को उतना महत्व नहीं दिया है। तीसरे भारतीय संस्कृति का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से सारी पुस्तक में होते हुए भी इस संस्कृति के अनुकूल कोई कार्योपयोगी हल नहीं सुझाया गया है। पुस्तक केवल कठिनाइयों का वर्णन करती है, उसके दूर करने के सुझाव नहीं देती।

पुस्तक में एक व्यक्ति सदा रोज या दूसरे तीसरे दिन किसी मित्र को पत्र लिखता है। परन्तु उस मित्र या सखी का कोई पत्र नहीं आता। यदि उसके नाम से भी कुछ पत्र दे दिये जाते तो यह परिपाटी कुछ अधिक स्वाभाविक जँचती।

कागज छपाई सफाई सब सुन्दर है, पर १६४ पृष्ठ की पुस्तक का १।) मूल्य अधिक जँचता है।

अनोखी दुनिया—लेखक व प्रकाशक-वही। पृष्ठ संख्या ११६। मूल्य १।=)

इस छोटी-सी पुस्तक में संसार के १६ चमत्कारों का वर्णन है। कुछ प्रकृति के चमत्कार हैं, जैसे चार मन का मोटा आदमी या आदमी खाने वाला पेड़, तो कुछ विज्ञान के। शीशे की रेलगाड़ी या बनावटी मनुष्यों के कारनामे इसमें आते हैं।

बालकों को इस प्रकार संसार की गति समझाने वाली पुस्तकों में यह बड़े काम की चीज है। भाषा भी ऐसी है जिसे बच्चे जल्द समझ जायँगे। टाइप भी मोटा है।

पर ब्लाक ठीक नहीं छपे हैं जिससे उनकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। प्रूफादि की गलतियाँ भी भार्गव भूषण प्रेस जैसे प्राचीन प्रेस में नहीं होनी चाहिए थी। अंग्रेजी शब्दों का उच्चारण प्रचलित उच्चारण से भिन्न है। Transfusion को ट्रान्सफिउसोन और एडिनबरा को एडिनवर्ग लिखा गया है। वैसे उच्चारण करने में भी सभी स्वतन्त्र हैं पर बालकों को यह उच्चारण गलतफहमी पहुँचा सकता है। —जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

हिमालय के अंचल में—लेखक-ओम्प्रकाश भार्गव। प्रकाशक-साहित्य-मन्दिर, दौलतगञ्ज, लश्कर। पृष्ठ ६८, मूल्य ॥)

उमेशजी की यह नयी पुस्तक देखने में आयी। यात्रा सम्बन्धी पुस्तक है। देहरादून में अध्ययन करते समय जहाँ-जहाँ भी उन्हें कैम्प के लिए जाना पड़ा, उन्हीं का वर्णन उमेशजी ने इसमें किया। यह पुस्तक अन्य यात्रा सम्बन्धी पुस्तकों से भिन्न है—

१—एक तो उमेशजी की वर्णन-शैली ही ऐसी है कि पढ़ने वाले को आकृष्ट कर लेती है। एक बात को वे इस तरह घुमा-फिरा कर लिखते हैं कि पढ़ने में आनन्द आता है। इससे उनकी काव्य-प्रतिभा का अनुमान हो सकता है।

२—हिमालय के अञ्चल में उन्होंने वर्णन करते समय वहाँ के प्रचलित गीतों का भी समावेश किया है। उदाहरण के लिए—"वालो तेरा पीछा नहिं छोड़दां" यथेष्ट है। इससे पुस्तक सुरुचिपूर्ण हो गयी है।

३—जहाँ-जहाँ भी उमेशजी गये और जहाँ-जहाँ का भी उन्होंने वर्णन किया है, उन्होंने वहाँ का कुछ न कुछ इतिहास जरूर जाना है। यहाँ तक कि प्रचलित किम्बदन्तियाँ भी देना वे भूले नहीं हैं।

४—यदि वहाँ कोई घटना पहले हो गयी थी, तो साथ के चलने वालों से उन्होंने उसे भी मालूम कर लिया है और पुस्तक में जहाँ-तहाँ समावेश कर दिया है। उदाहरण के लिए 'सब-इन्सपेक्टर' साहब के गिरने की घटना काफी है। वे २००० फीट गहरे गढ़े में ऐसे गिरे कि लाश का भी पता न चला।

५—हिमालय के पावन अञ्चल में कुछ दिन रह कर ही भार्गवजी वहाँ के निवासियों में घुल-मिल गये। इससे उन्हें वहाँ के रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों का अच्छी तरह ज्ञान हो गया और फिर उन्होंने उनको इस पुस्तक में लिख डाला।

अन्त में इतना कहूँगा कि उपरोक्त पुस्तक general knowledge बढ़ाने के लिए बहुत अच्छी है। इससे यह भी पता चलता है कि वहाँ के अधिकतर निवासी विवाह को तो कुछ समझते ही नहीं।

—योगेन्द्रनाथ

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

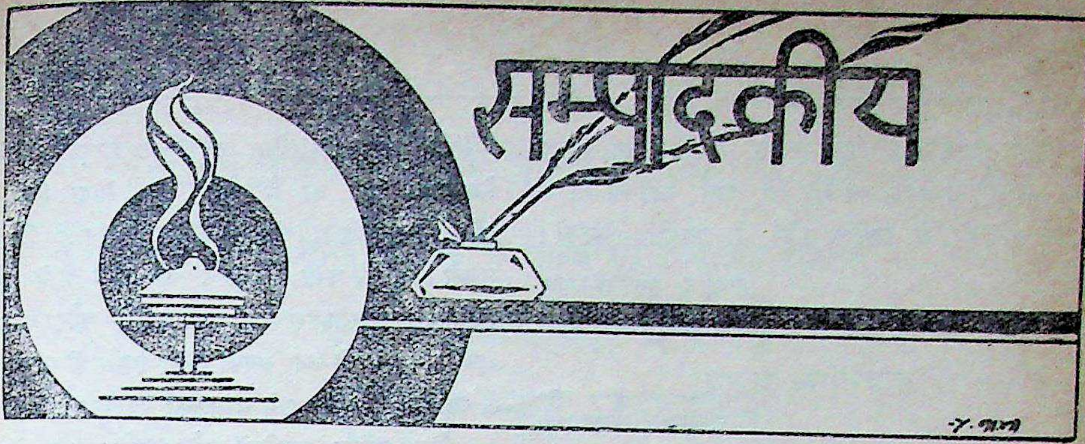

लिफ़ाफ़ा आन्दोलन की गूंज

पिछले सितम्बर के साहित्य-संदेश में हमने श्री किशोरी-दासजी वाजपेयी के लिफ़ाफ़ा आन्दोलन पर प्रकाश डालते हुए एक छोटी-सी टिप्पणी दी थी। उसके फलस्वरूप श्री काशी नागरी प्रचारणी सभा काशी ने हमारे पास श्री वाजपेयीजी का पत्र और अपना स्पष्टीकरण भेजा है। आगे इस पत्र-व्यवहार को पाठकों की जानकारी के लिए हम अविकल रूप से प्रकाशित कर रहे हैं।

वैसे तो यह आन्दोलन अब समझौते की ओर जा रहा है किन्तु अभी उसके मार्ग में कुछ बाधाएँ भी हैं। पहले तो यह कि "तू डाल-डाल मैं पात-पात" की नीति से काम नहीं चलेगा। व्यावहारिक चीज यह है कि एक बार वाजपेयीजी स्वयं काशी पधारने का कष्ट अवश्य करें और अपनी मन: तुष्टि के लिए उस सामग्री को देखलें, क्योंकि अँधेरे में रखी हुई सामग्री के बारे में एक यह सन्देह भी उठता है कि सचमुच वह प्रकाशन के योग्य है भी या नहीं। कारण कि स्वयं द्विवेदीजी की शायद यह इच्छा थी कि यह गुप्त वस्तु प्रकाश में न आवे। सभा के द्वारा प्राप्त हुए पत्र में भी इस बात की ओर इशारा है कि उस लिफ़ाफ़े से कुछ सम्मानितों की मान-हानि हो सकती है और उस मानहानि का जिम्मा सभा अपने ऊपर नहीं लिया चाहती। हमारे विचार से वाजपेयीजी भी किसी सम्मानित की मानहानि के पक्ष में नहीं होंगे और न स्वर्गीय आचार्य ही थे। वाजपेयीजी का ध्येय यही तो है कि स्वर्गीय द्विवेदीजी की स्मृति-रक्षा हो। यह स्मृति रक्षा जब तक दूसरों की मान रक्षा के साथ हो सके तो अत्यन्त श्रेयस्कर है।

नागरी प्रचारिणी सभा और वाजपेयीजी इस प्रकाशन की समस्या को और एक प्रकार से भी हल कर सकते हैं—वह यह कि कुछ विद्वानों की एक समिति उस पत्र-व्यवहार को देख कर छापने या न छापने के निर्णय के सम्बन्ध में बना दी जाय और वह अपनी सम्मति प्रकाशित करावे और इस सम्मति के आधार पर श्री वाजपेयीजी के खर्चे से उक्त सामग्री छप जाय।

नागरी प्रचारिणी सभा की चिट्ठी

सं० २१४६ । ४६ बनारस ४-१०-१९४१

प्रिय महाशय,

सितंबर' ४१ के साहित्य-संदेश में पृष्ठ ४४ पर 'लिफाफा आंदोलन' शीर्षक देकर आपने द्विवेदीजी के कागद-पत्तरों के सम्बन्ध में जो टिप्पणी प्रकाशित की है उसके लिए धन्यवाद देते हुए यह निवेदन करना है कि वाजपेयीजी न तो कागद-पत्तर देखने स्वयं काशी आना चाहते हैं और न अपने विश्वास के किसी सम्मानित व्यक्ति से ही यह काम लेना चाहते हैं। अब वे उन कागद-पत्तरों को ब्योरेवार या संक्षिप्त रूप में मुद्रित देखना चाहते हैं और इसके लिए आवश्यक खर्च देने को लिख रहे हैं। सभा के पास यथेष्ट धन होता तो वह वाजपेयीजी की बात मानकर उनकी सूची छपवा देती। किन्तु अर्था-भाव के कारण उसके कितने ही महत्व के काम रुके पड़े हैं। इस दशा में यही मार्ग रह जाता है कि वाजपेयीजी अपने मन का प्रबन्ध करके (यह इसलिए कि उनको किसी पर विश्वास नहीं है) सूची प्रस्तुत करावें और उनका जी चाहे तो अपने दायित्व पर उसे प्रकाशित करालें। बात यह है कि उन पत्रों में से किसी के लेखक महोदय यदि मानहानि का दावा कर बैठे तो सभा उस झगड़े में अपने को फँसाना पसंद न करेगी। वाजपेयीजी को काशी आने के लिए पत्र लिखे गये तो उन्होंने एक रजिस्ट्रीशुदा पत्र भेजा जिसकी प्रतिलिपि साथ में नत्थी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विषय में 'साहित्य-सन्देश' की दिलचस्पी समझ कर यह सूचना भेजी जा रही है। आप चाहें तो इसे या इसके मथितार्थ को साहित्य संदेश में प्रकाशित कर लें।

संलग्न १ भवदीय, पुरुषोत्तमलाल
प्रधानमन्त्री की ओर से

वाजपेयीजी का पत्र

कनखल (सहारनपुर)
श्रीमान् मन्त्रीजी, ८-६-४१
काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

श्रीमन्,

आचार्य द्विवेदीजी के कागज-पत्र या 'कागज-पत्तर' सभा में सुरक्षित हैं, उन्हें जनता की सुलभता के लिए प्रकाशित करा देना चाहिए, ब्यौरेवार, यदि पूर्ण रूप से नहीं, तो सबका संक्षिप्त विवरण ही सही, यदि सभा प्रकाशित न करा सके, तो मुझे यह सेवा सौंपी जाय, मैं स्वयं वहाँ उपस्थित होकर प्रकाशन की सब व्यवस्था कर लूँगा, यदि सभा मुझे प्रकाशन करने के लिए न दे और खुद ही प्रकाशित करना चाहे, पर इस समय वह आर्थिक संकट में हो, तो मैं इस सामग्री के प्रकाशन-खर्च का इन्तजाम कर-करा दूँगा। इतना दान सभा को दे-दिला जायगा कि उक्त कार्य सम्पन्न हो सके। यदि यह अन्तिम विकल्प स्वीकार हो, तो कृपया लिखिएगा कि कितना खर्च जरूरी होगा।

पत्र के पहुँचने में कोई बाधा न हो इसलिए रजिस्ट्री भेज रहा हूँ। —किशोरीदास वाजपेयी

साहित्य क्षेत्र से विदा

"लगातार पचीस वर्ष तक दिमागी परिश्रम करते-करते थक कर अब विश्राम के लिए मैं साहित्य-क्षेत्र से विदा ले रहा हूँ। हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग और हिन्दी-मन्दिर प्रेस को मैंने दिल्ली के सस्ता-साहित्य-मण्डल को दे दिया है। युवावस्था में गाँव की गलियों से निकल कर मैं शहर की सड़कों पर आया था, अब फिर उन्हीं गलियों और खेत के मेड़ों की ओर लौटा जा रहा हूँ।

अब मैं उन साहित्यिक मित्रों से, जिनके प्रेम और कृपा का मैं सदा सुख अनुभव करता रहा हूँ, और उन परिचित तथा अपरिचित साहित्यिक बन्धुओं से, जिनके प्रेम और कृपा का मैं पात्र हूँ, विदा लेता हूँ। और उन सबसे हाथ जोड़कर निवेदन करता हूँ कि यदि मुझसे किसी को कभी कोई कष्ट पहुँचा हो तो वे अपनी स्वाभाविक उदारता-वश मुझे क्षमा कर दें और कष्टों को भूल जायँ। मैं तो उन सबकी सुखद स्मृति ही अपने साथ ले जा रहा हूँ, और उसे सँभालकर रक्खूँगा।

हिन्दी मन्दिर बुकडिपो और हिन्दी-मन्दिर प्रेस की हैसियत से मैं सर्वसाधारण के लिए यह सूचना प्रकाशित करा रहा हूँ, कि उक्त बुकडिपो और प्रेस पर जिनका आज तक कुछ पावना था उसे मैं अपनी जानकारी के अनुसार चुकता किये जा रहा हूँ। फिर भी भूल से किसी का कुछ रह गया हो तो पत्र-द्वारा हिसाब भेज कर वे मुझसे अपना पावना ले लें। और जिन पर आज की तारीख तक हिन्दी-मन्दिर बुकडिपो या प्रेस का कुछ पावना बाकी है, वे कृपा करके उसे मेरे नये पते पर मुझे भेज दें।

हिन्दी-मन्दिर बुकडिपो अभी अपने ही नाम से कायम है। उससे जिनका पुराना सम्बन्ध था, वह अब समाप्त हो रहा है। नये संबंध के लिए अब हिन्दी-मन्दिर प्रयाग को या सस्ता साहित्य-मण्डल को, नये सिरे से लिखना चाहिए।"

नया पता— रामनरेश त्रिपाठी
१ संत-निवास, सुलतानपुर २५-६-४१

पं० रामनरेश त्रिपाठी अब प्रकाशन कार्य से विराम लेकर गाँवों की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। उन्होंने ग्राम-गीतों का संग्रह कर शहर में रहते हुए भी गाँवों की सेवा की है, अब तो उनका गांवों से सीधा सम्पर्क हो जाने के कारण वे इस कार्य में भली प्रकार अपना समय दे सकेंगे। ऐसे पुण्यव्रती लोगों के लिए तो घर ही बन था किन्तु अब तो वे विचार के क्षेत्र से कार्य के क्षेत्र में जा रहे हैं। फिर भी हम उनसे प्रार्थना करेंगे कि यदि ग्राम-वास में उन्हें कुछ रत्न हाथ लगें तो वे उनके लिए सन्यासवृत्ति से काम न लें और उनको प्रकाश में लाते रहें। हमने यदि उनके साथ कभी धृष्टता की हो तो हम भी उसके लिए क्षमा-याचना करते हैं। इस समय 'शुभास्ते सन्तु पन्थानः' या 'खुदा हाफिज' के सिवाय हम कह भी क्या सकते हैं?

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलभ साहित्य माला की नई योजना

अन्य नामी लेखकों के ग्रन्थ भी प्रकाशित होनेलगे

मूल्य, पृष्ठ-संख्या, टाइप आदि वही

पाटन का प्रभुत्व

बम्बई की कांग्रेस-सरकार के गृह-सचिव और गुजराती के प्रतिभाशाली लेखक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का यह ऐतिहासिक उपन्यास दो भागों में प्रकाशित हो गया है और दूसरा उपन्यास 'गुजरात का नाथ' प्रेस में जा रहा है।

फ्रान्स के अमर लेखक ड्यूमा ने जिस तरह अपने देश के इतिहास के आधार पर एक दूसरे से सम्बद्ध कई उपन्यास लिखे हैं उसी तरह मुन्शी ने गुजरात के इतिहास को लेकर चार उपन्यास लिख कर गुजराती साहित्य में अमर कीर्ति प्राप्त की है, ये उपन्यास इतने सुन्दर सरल और मनोरंजक हैं कि गुजरात में घर-घर पढ़े जाते हैं। इनका एक-एक पात्र हृदय में हमेशा के लिए घर कर लेता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की कमी को देखते हुए हमारा विश्वास है कि इनका खूब सत्कार होगा। दोनों भागों का मूल्य दस-दस आना।

सुनीता और परख-स्पर्धा

इसी माला में श्री जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों के ये दो भाग भी छपे हैं। इनका मूल्य भी दस-दस आना है। 'सुनीता' का मूल्य पहले तीन रुपया था।

राधा (भावनाट्य)

पं० उदयशंकर भट्ट हिन्दी के नामी कवि और नाटक-लेखक हैं। उनका यह पद्यबद्ध भाव-नाट्य बिलकुल ही नये ढंग की रचना है। मूल्य दस आना।

शरत्-साहित्य

१६ भाग निकल चुके हैं। 'शेष-प्रश्न' प्रेस में जा रहा है और 'श्रीकान्त' चतुर्थ पर्व ही प्रकाशित होगा।

नोट—पास के बुकसेलरों से खरीदिए। नहीं तो फिर हमसे मँगाइए। सूचीपत्र के लिए पत्र लिखिए।

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय**, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमला

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]

सम्पादक—श्री बाबूराम विष्णु पराड़कर

सहायक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

मैनेजर—'कमला' गायघाट, बनारस

'कमला' का प्रथम उद्देश्य नारी समाजकी सेवा करना, भारतीय नारीकी विभिन्न समस्याओं तथा प्रश्नों पर विचार करना और नारी समाजको समुन्नत बनाना है। नारी-समाजकी उन्नतिके उपादान-शिक्षा, गृहस्थी, कला, कौशल आदि विषयों पर प्रकाश डालना भी पत्रिका का उद्देश्य है। महिलाओं को 'कमला' से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए। 'आज' काशी।

अधिकांश लेख महिलाओंके लिखे हुए हैं और भारत में नारी-जागृतके प्रमाण माने जा सकते हैं। पत्रिकाकी छपाई बँधाई भी अच्छी है, चित्र बहुत हैं और दाम कम। 'लीडर' प्रयाग।

'भाभीके पत्र' के यशस्वी लेखक श्रीयुत व्यथित हृदय की दूसरी देन

अभागे दम्पति

समाजका विष और अमृत। विवादग्रस्त दाम्पत्य-जीवन का प्रकाशमय चित्र

दाम्पत्य जीवन का [illegible] रूप, स्त्री पुरुषों के मनका हाहाकार, नारीकी दृष्टि में पुरुषकी दृष्टि नारी, पुरुषके प्रति नारीकी [illegible], नारीके प्रति पुरुषका विचार—स्त्री पुरुषके सजीव पत्रोंमें पढ़िए।

भाव और भाषा [illegible] बहुत मजेदार, बहुत चित्ताकर्षक।

अवश्य एक प्रति आज ही खरीदिए और अपने दाम्पत्य जीवन को सुन्दर बनाइये।

पृष्ठ संख्या १७५ सजिल्द मूल्य १)

भूमिका—लेखक—सम्पादक शिरोमणि श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर।

हजारों प्रशंसा पत्र प्राप्त

आपकी पत्नी की सबसे अधिक प्रिय वस्तु

जानते हैं क्या

॥ भाभी के पत्र ॥

आज ही एक प्रति खरीद कर उपहार रूप में दीजिए। पृष्ठ सं० १५० सजिल्द मू० १)

भूमिका लेखक—श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़, बेढब बनारसी

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर बैठे डाक्टरी का पूरा ज्ञान करना हो

तो

नीचे लिखी पुस्तकें मँगाइये

डाक्टरी चिकित्सा—डाक्टरी रीति से रोगी का निदान, लक्षण, चिकित्सा—मू० ६)

एलोपैथिक मेटेरिका मेडिका—डाक्टरी औषधियों का पूरा वर्णन, बनाने की विधि, मात्रा, विरोधी दवाओं के नाम मू० ६)

इन्जैक्शन चिकित्सा, चरित्र—[सुई द्वारा इलाज] मू० १।)

डाक्टरी नुसखे—बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा परीक्षित मूल्य १)

चिकित्सा के कर्तव्य—मूल्य १।।)

प्रसिद्ध देशीय औषधियों के अँग्रेजी डाक्टरों द्वारा परीक्षित प्रयोग—कीमत १)

कम्पाउन्डरी शिक्षा—मूल्य ।।)

भारतीय वनस्पतियों पर विलायती डाक्टरों के अनुभव—कीमत २)

याद रखो—अगर आपको तन्दुरुस्त रहना है तो इनकी बातें याद रखो। कीमत ।)

कायाकल्प—घर बैठे कायाकल्प करने की विधि व औषधियें—कीमत ।)

जच्चा-बच्चा—सन्तान पैदा होने से लेकर बच्चे के पालन पोषण की विधि—की० ।)

सन्तति निग्रह—जो लोग सन्तान पैदा होना पसन्द नहीं करते, उसकी निर्दोष विधियाँ तथा बिना दवा के उपाय बताते हैं—कीमत ।)

छप कर तैयार हैं

नये साल की डायरियां, जंत्रियां व पंचांग छप कर तैयार हैं। बुक्सेलरों को मंगाने में शीघ्रता करनी चाहिये। भाव के लिये पत्र-व्यवहार करिये।

पुस्तकों का पैकिंग माफ, डाकखर्च मनीआर्डर जुदा पड़ेगा।

मँगाने का पता—सुख संचारक कम्पनी लि०, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकों में नया जीवन नया भाव और नया उत्साह भरने वाला

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र

वार्षिक मूल्य ३)] **बालक** [नमूने का अङ्क ।-)

सम्पादक

श्रीरामलोचनशरण बिहारी

सञ्चालक—

दर्जनों सर्वाङ्ग सुन्दर साहित्यिक पुस्तकों का भारत-प्रसिद्ध प्रकाशक

पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय (बिहार प्रान्त)

☞ यह पत्र गत बारह बरसों से हिन्दी प्रेमी बालक-बालिकाओं की सेवा कर रहा है। बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश और बम्बई प्रान्त की सरकारों तथा अलवर-राज्य के शिक्षा-विभाग द्वारा स्कूलों के लिए स्वीकृत है। इस साल से इसका आकार पहले से बढ़ा कर ठीक इसी 'साहित्य सन्देश' के बराबर कर दिया गया है, जिससे इसके पाठकों को प्रचुर सामग्री अनेक नये और आकर्षक चित्रों के साथ मिलती है।

बीमा कराते समय यदि आप :—

१—कम किश्त, २—उदार नियम और ३—उत्तम व्यवहार

चाहते हैं तो आपको

लक्ष्मी इन्श्योरेंस कं० लि०

की ही पालिसी लेनी चाहिए

यह शुद्ध भारतीय कम्पनी अपनी अपूर्व उन्नति द्वारा अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी है।

विशेष जानकारी के लिये पत्र व्यवहार कीजिये :—

श्रीयुत चन्द्रधर जौहरी, सेक्रेटरी, यू० पी० ब्राञ्च

३५ कैन्टरोड, लखनऊ।

आर्गेनाइजर्स—आगरा, कानपुर, बनारस, रायबरेली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-संसार में नई एवं अभूतपूर्व योजना !!!

मासिक किश्त (Monthly Instalment System) की व्यवस्था !

श्रेष्ठ कलाकारों के उच्चकोटि के मौलिक कहानी-संग्रह, सरस उपन्यास, मनोरम हास्यरस इत्यादि का यदि आप रसास्वादन करना चाहते हैं तो हमारी नई योजना से लाभ उठाइये।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

श्रीमती ऊषा देवी मित्रा की नवीन कृति
"पथचारी"
एक भावपूर्ण, मौलिक, सामाजिक उपन्यास
मूल्य १।)

श्री जी० पी० श्रीवास्तव की नवीन रचना
"भय्या अक़िल बहादुर"
हास्यरस की अनूठी पुस्तक
मूल्य १)

पं० यज्ञदत्त शर्मा, एम. ए. का लिखा हुआ एक सामाजिक मौलिक उपन्यास
'ललिता' मूल्य १)

श्री पं० सरजूप्रसाद पांडेय का सुललित खण्ड काव्य
राजर्षि मूल्य ।।।)

सुन्दर, कलापूर्ण कहानियों के लिए श्रेष्ठ कलाकारों के श्रेष्ठ कहानी-संग्रह पढ़िये

श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह की चुनी कहानियों का नया संग्रह
"पड़ोसी" मू० १।=)

श्री पहाड़ी की उच्चकोटि की १२ मनोवैज्ञानिक कहानियों का अपूर्व-संग्रह
"छाया" मूल्य १)

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कलापूर्ण कहानियों का कला-पूर्ण संग्रह
"खाली बोतल" मू० १।)

श्रीमती ऊषादेवी मित्रा की ललित कहानियों का मनोरम संग्रह
"महावर" मूल्य १)

श्री चतुरसेन शास्त्री की लोह लेखनी से लिखा हुआ ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह
"वीरगाथा" मूल्य १)

श्री व्यथितहृदय लिखित संसार के महान् पुरुषों का जीवन चरित्र
"पुरुषार्थी जीवन"

आज ही नियमावली, एजेंसी और सूचीपत्र के वास्ते लिखें।

हमारी प्रकाशित हिन्दी, अंग्रेजी तथा बंगला की सभी पुस्तकें यहां मिलेंगी।

मिलने का पता :—नेशनल लिटरेचर कम्पनी १०५ कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य जगत को दो उपहार

ओस के बूंद

[लेखक—कलाकार भगवतीप्रसाद बाजपेयी]

जो पाठक बाजपेयीजी की कहानियों तथा उनके उपन्यासों से परिचित हैं, उन्हें इस कविता संग्रह को पढ़ कर यह मान लेना पड़ेगा कि बाजपेयीजी कवि की हैसियत से भी कितने सफल और उच्च हैं। नये दृष्टिकोण से लिखी हुई उनकी सर्वाङ्ग सुन्दर कविताएँ इसमें दी गयी हैं मूल्य ॥।)

किरण-वेला

[लेखक—कविवर "अञ्चल"]

'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' का यशस्वी कवि अपने इस कविता-संग्रह में सर्वथ प्रगतिशील होकर सामने आया है। आज का युग, अपनी जटिल समस्याओं के साथ ऐसे ही कवि की वाणी की प्रतिष्ठा करता है। एक-एक कविता सामाजिक वैषम्य और विप्लव का चित्र सामने उपस्थित कर देती है। मू० १)

जर्मन युद्ध में युवती

उद्भ्रान्त किन्तु संयमित प्रेम; जलता उबलता देश प्रेम; अद्भुत साहस; आश्चर्य-जनक कौशल; विचित्र घटनाक्रम; विकट युद्ध; विस्मय से डराने वाली कूटनीतपूर्ण चालें; संसार में उथल-पुथल मचा देने वाले सनसनी-दार कार्यों का जीता जागता हृदय-हारी वर्णन इसमें एक साथ ही मिलेगा।

आकर्षक सचित्र गेटअप, उत्तम कागज छपाई; पृष्ठ २७५, मूल्य केवल १॥)

पापी धर्मात्मा

राजनीतिक विवशता के तड़पते-बोलते चित्र, विशाल वैभव के दुर्दमनीय दृश्य. एवं पैशाचिक काण्ड; राजकुमारियों की भीषण प्रणय लीलाएँ; धर्म के विकृत सत्यानाशी स्वरूप तथा निरंकुश शासन के विकराल सच्चे नग्न चित्र इसमें पाठकों को मिलेंगे।

मनमोहक साज-शृङ्गार, बढ़िया कागज-छपाई, पृष्ठ २१६, मूल्य १।)

महामना मालवीयजी, माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन, यूनिवर्सिटियों के वाइसचांसलर प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक आदि जिनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे हैं और जिन्हें हर एक हिन्दू को अपने पास रखना चाहिए, वे ही हैं :—

वाल्मीकि रामायण

सम्पूर्ण ७ काण्ड, ६६१ सर्ग सचित्र ५६० पृष्ठ मूल्य १॥।≋)

श्रीमद्भागवत

सम्पूर्ण १२ स्कंध, ३३५ अध्याय, अनेक रङ्ग-बिरंगे चित्र, मूल्य १॥।≡)

महाभारत

सम्पूर्ण सवा लाख श्लोकों की कथा (अध्याय प्रति अध्याय पृष्ठ १००० मूल्य ५)

(रूपान्तरकार पं० भगवानदास अवस्थी एम० ए०)

ज्ञानलोक दारागंज, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब कोई बेकार न रहेगा

जिसके पास 'दौलत की खान' पुस्तक है वह एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक है। बेचारे गरीबों आदमियों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे अपना जीवकोपार्जन करके कोई रोजगार कर सकें। यदि थोड़ा पैसा भी है तो उन्हें आसानी से थोड़ी लागत का रोजगार शुरू करने का तरीका ज्ञात नहीं जिसके कारण वे सर्वथा बेकार हैं, हमारी इस पुस्तक को मंगा कर पढ़ें। आप मामूली लागत और मेहनत से अपने शहर और कस्बों व गांवों में इज्जत के साथ काम शुरू करके थोड़े ही दिनों में अमीर बन जायँगे। लोग ऐसी पुस्तक को पाकर छिपाने की कोशिश करते हैं क्योंकि मनुष्य थोड़े ही दिनों में इस पुस्तक से एक बड़ी भारी सम्पत्ति का मालिक बन सकता है।

यदि आप [१] विलायत के बेकारों की भांति केवल कलम दवात के सहारे घर बैठे डाक द्वारा या पचासों आश्चर्यजनक किन्तु बेहद सरल एवं बिला पैसे की युक्तियां द्वारा अच्छी आमदनी करना चाहते हैं। [२] संसार की सुविख्यात कम्पनियों के पेटेन्ट और कई गुणे नफे में बिकने वाली प्रसिद्ध वस्तुओं के मामूली लागत के सच्चे नुस्खे बनाकर मालामाल होना चाहते हैं। विलायत की नई वस्तुओं के नमूने सर्वोत्तम व्यापारिक सलाह तथा संसार की प्रत्येक वस्तु का पता मुफ्त देने वाली फर्मों के पते जानने [३] २, ४, ६ आने से लेकर १०, २०, ५० रुपये की लागत के बेशुमार लाभ के बीसियों सरल रोजगार [४] प्रत्येक व्यापार एवं धन्धे में अच्छी सफलता पाने के गुप्त भेद [५] प्रत्येक बाजार एवं परिवार में धड़ाधड़ बिकने वाली पचासों आसान साधारण लागत और अत्यधिक नफे की वस्तुओं के बनाने तथा बेचने की विधियाँ जान कर अपनी बेकारी, बेरोजगारी, खर्च की तंगी और गुलामी की मार मिटाना चाहते हैं, तो आज ही इस पुस्तक को मंगाइये। मूल्य फी पुस्तक १॥) एक रुपया आठ आना, डाक खर्च ॥)

रूपविलास कम्पनी, नं० ४, कानपुर।

आयुर्वेद की परीक्षा देने वालों के लिये खुशखबरी !

चिकित्साचन्द्रोदय

पहिला भाग

आयुर्वेद विद्यापीठ की उत्तमा परीक्षा में शामिल !

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग को ही पढ़ने से आचार्य-परीक्षा तक में आसानी। परीक्षार्थी इसे ही मँगा कर पढ़ें। मूल्य ३) डाकखर्च ॥।≈)

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

नोट—याद रखो, चिकित्साचन्द्रोदय ७ भाग पढ़ कर अनेकों परीक्षार्थी आयुर्वेदाचार्य-परीक्षा में संस्कृत वालों से अच्छे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक खुश खबर

नये वर्ष से 'जीवन-साहित्य' के मूल्य में कमी

२००० ग्राहकों को पत्र मुफ्त

इस अंक के साथ 'जीवन-साहित्य' का पहला वर्ष समाप्त होता है। कठिनाइयों और यूरोपीय युद्ध के कारण छपाई तथा कागज की घोर महँगी के बीच 'जी० सा०' अगले अङ्क से नये वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इन कठिनाइयों के बावजूद 'जी० सा०' अपने पाठकों और हिन्दी-प्रेमियों की सेवा नये साधनों और नये रूपों में करने को अग्रसर हो रहा है।

पाठकों को सुन कर खुशी होगी कि नये वर्ष से ग्राहक बनने वालों के लिए 'जी० सा०' का वार्षिक मूल्य २) के बजाय १।।) हो जायगा। जो पुराने ग्राहक हैं और नये वर्ष में ग्राहक बने रहना चाहते हैं उनसे १) ही लिया जायगा। जो 'मण्डल' के ग्राहक हैं उनसे भी १) लिया जायगा। जो १।।) देकर 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बनेंगे उनको एक वर्ष के लिए 'मण्डल' का भी ग्राहक मान लिया जायगा और उनको 'मण्डल' की शाखाओं और प्रधान कार्यालय से पुस्तकें एक वर्ष तक पौने मूल्य में मिलेंगी। खादी भण्डारों तथा एजेण्टों से =) रुपया कमीशन पर मिलेंगी पर।

ललचाने वाली खास बात

तो यह है कि जो सज्जन १०) की कीमत की मण्डल की पुस्तकें एक मुश्त खरीदेंगे उनको

'जीवन-साहित्य' एक वर्ष तक मुफ्त

दिया जायगा। ग्राहक १०) की पुस्तकें लेकर, 'मण्डल' की सब शाखाओं तथा प्रधान कार्यालय से 'जीवन-साहित्य' मुफ्त में ले सकेंगे। इस प्रकार १०) की पुस्तकें लेने पर तथा 'जी० सा०' मुफ्त में प्राप्त कर लेने पर ग्राहकों से मण्डल की पुस्तकें एक वर्ष तक पौने मूल्य में मिलती रहेंगी। इन १०) की पुस्तकों पर ग्राहकों को 'मण्डल' के नियम नं० ७ के अनुसार =) रुपया कमीशन मिलेगा।

इसके अनुसार अगले दो महीनों तक ही ग्राहक पुस्तकें मँगा सकेंगे।

व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त भारतीय पुस्तकालयों के लिए !

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा का

संग्रहालय

साहित्य-रत्न-भण्डार आगरा में हिन्दी-पुस्तकों का संग्रह इतना विशद, इतना उत्तम और इतना उपयोगी है कि भारत के सभी बड़े-बड़े पुस्तकालय यहीं से अपनी माँग पूरी करते हैं। नई-से-नई पुस्तकें जल्द-से-जल्द यहाँ आ जाती हैं और काफी स्टाक में रहती हैं। जिन लोगों ने एक बार भी यह संग्रहालय देखा है, वे इसकी व्यवस्था और पुस्तकों का संचय देख कर दंग रह गये हैं। हमारी अपील है कि आप जब कभी आगरा पधारें तो इस भण्डार का निरीक्षण अवश्य करें और जब भी हिन्दी पुस्तकों की आवश्यकता हो, इसको अपना आर्डर भेजें। सभी बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएँ और सभी श्रेष्ठ प्रकाशकों की पुस्तकें यहाँ हर समय तैयार मिलती हैं।

सुन्दर छपाई के लिए

साहित्य प्रेस का नाम याद रखिए

आपको कुछ भी छपाना हो

हिन्दी-अँग्रेजी के पत्र व पुस्तकें, नोटिस, समाचार-पत्र,
रिपोर्ट, सूचीपत्र, लेटरपेपर, बिल, कैशमीमो, रसीद आदि

—तो—

सदैव 'साहित्य प्रेस' को लिखिए

क्यों ?

इसलिए कि आपका काम शुद्ध और सुन्दर छपेगा और समय पर
किफायत के साथ छाप कर दिया जायगा।

'साहित्य-सन्देश' इसी प्रेस से छप कर निकलता है।

नोट—साहित्यिक पुस्तकों के शुद्ध और कलात्मक-मुद्रण का यहाँ विशेष रूप से प्रबन्ध है।

पत्र-व्यवहार का पता—साहित्य प्रेस, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

JUL 1983
Vasanun B

बीमा कम्पनी ही क्यों ?

अधिक ब्याज दे सकने का कारण !

बीमा कम्पनी और बैंकों की रुपया देने लेने की नीति में बड़ा अन्तर है। बैंक अपना रुपया कभी लम्बी मियाद के लिए देना पसन्द नहीं करतीं क्योंकि उन्हें कभी भी रुपए की जरूरत पड़ सकती है, और इसीलिए वे ज्यादा ब्याज भी पैदा नहीं कर पातीं। इसके विपरीत बीमा कम्पनियां सदा यह चाहती हैं कि अगर उनका रुपया सुरक्षित है तो वह ज्यादा से ज्यादा समय के लिए लगा रहे और इसीलिए रुपया सुरक्षित रखते हुए भी वे ब्याज अच्छी पैदा कर लेती हैं और इस दृष्टि से वे बैंकों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं और इसीलिए वे अपने ग्राहकों के लिए अच्छी ब्याज पैदा कर सकती हैं।

स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड

ने सारा खर्च काट कर और जोखिम के लिए रुपया अलग निकाल कर भी ६) प्रतिशत से अधिक ब्याज पैदा किया है और उसी से प्रभावित और उत्साहित होकर स्वदेशी ने अपने यहां रुपया जमा करने की नई योजना निकाली है कि जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति १००) से लेकर १०,०००) तक कम्पनी में डिपाजिट के रूप से निम्न ब्याज पर जमा कर सकता है :—

एक वर्ष का मुद्दत पर	...	३) प्रतिशत
दो वर्ष की मुद्दत पर	...	३।।) प्रतिशत
तीन वर्ष की मुद्दत पर	...	४) प्रतिशत

ब्याज हर छटे महीने मिलता है। विधवाओं, बच्चों और संस्थाओं को यह सूद हर महीने भी मिल सकता है।

सफलता का प्रमाण

रुपया जमा करने की यह योजना जनवरी सन १९४० से शुरू हुई है। इस थोड़े से समय में ही उसमें काफी सफलता मिली है और अधिकाधिक मिलती जा रही है। प्रमाण लीजिए—

१ जनवरी से ३० जून १९४० तक	६ मास में जमा हुए—	३६,४३४) रु०
१ जुलाई से ३१ दिसम्बर १९४० तक	६ मास में जमा हुए—	१,००,८४८) रु०
१ जनवरी से ३१ जनवरी १९४१ तक	एक मास में जमा हुए—	२६,०५१) रु०
१३ मास में कुल रुपया जमा हुआ		१,७०,२३३) रु०

कम्पनी की मजबूती का प्रमाण

उसने अपने बीमेदारों को आजीवन और मियादी बीमे पर १८) तथा १४) प्रतिवर्ष बोनस दिया है। और हिस्सेदारों को कई वर्ष से ६) प्रतिशत मुनाफा दे रहा है।

विशेष ब्यौरा जानने के लिए लिखिए या मिलिए —

श्रीचन्द दोनेरिया मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर

स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

महेन्द्रजी के लिए साहित्य प्रेस, ४३ ए० सिविल लाइन्स आगरा से मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त
गुरुकुल पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब कोई बेकार न रहेगा

जिसके पास 'दौलत की खान' पुस्तक है वह एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक है। बेचारे गरीब आदमियों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे अपना जीवकोपार्जन करके कोई रोजगार कर सकें। यदि थोड़ा पैसा भी है तो उन्हें आसानी से थोड़ी लागत का रोजगार शुरू करने का तरीका ज्ञात नहीं जिसके कारण वे सर्वथा बेकार हैं, हमारी इस पुस्तक को मंगा कर पढ़ें। आप मामूली लागत और मेहनत से अपने शहर और कस्बों व गांवों में इज्जत के साथ काम शुरू करके थोड़े ही दिनों में अमीर बन जायँगे। लोग ऐसी पुस्तक को पाकर छिपाने की कोशिश करते हैं क्योंकि मनुष्य थोड़े ही दिनों में इस पुस्तक से एक बड़ी भारी सम्पत्ति का मालिक बन सकता है।

यदि आप [१] विलायत के बेकारों की भांति केवल कलम दवात के सहारे घर बैठे डाक द्वारा या पचासों आश्चर्यजनक किन्तु बेहद सरल एवं बिला पैसे की युक्तियां द्वारा अच्छी आमदनी करना चाहते हैं। [२] संसार की सुविख्यात कम्पनियों के पेटेन्ट और कई गुणे नफे में बिकने वाली प्रसिद्ध वस्तुओं के मामूली लागत के सच्चे नुस्खे बनाकर मालामाल होना चाहते हैं। विलायत की नई वस्तुओं के नमूने सर्वोत्तम व्यापारिक सलाह तथा संसार की प्रत्येक वस्तु का पता मुफ्त देने वाली फर्मों के पते जानने [३] २, ४, ६ आने से लेकर १०, २०, ५० रुपये की लागत के बेशुमार लाभ के बीसियों सरल रोजगार [४] प्रत्येक व्यापार एवं धन्धे में अच्छी सफलता पाने के गुप्त भेद [५] प्रत्येक बाजार एवं परिवार में धड़ाधड़ बिकने वाली पचासों आसान साधारण लागत और अत्यधिक नफे की वस्तुओं के बनाने तथा बेचने की विधियाँ जान कर अपनी बेकारी, बेरोजगारी, खर्च की तंगी और गुलामी की मार मिटाना चाहते हैं, तो आज ही इस पुस्तक को मंगाइये। मूल्य फी पुस्तक १।।) एक रुपया आठ आना, डाक खर्च ।।)

रूपविलास कम्पनी, नं० ४, कानपुर।

आयुर्वेद की परीक्षा देने वालों के लिये खुशखबरी !

चिकित्साचन्द्रोदय

पहिला भाग

आयुर्वेद विद्यापीठ की उत्तमा परीक्षा में शामिल !

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग को ही पढ़ने से आचार्य-परीक्षा तक में आसानी। परीक्षार्थी इसे ही मँगा कर पढ़ें। मूल्य ३) डाकखर्च ।||=)

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

नोट—याद रखो, चिकित्साचन्द्रोदय ७ भाग पढ़ कर अनेकों परीक्षार्थी आयुर्वेदाचार्य-परीक्षा में संस्कृत वालों से अच्छे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य जगत को दो उपहार

ओस के बूंद

[लेखक—कलाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी]

जो पाठक वाजपेयीजी की कहानियों तथा उनके उपन्यासों से परिचित हैं, उन्हें इस कविता संग्रह को पढ़कर यह मान लेना पड़ेगा कि वाजपेयीजी कवि की हैसियत से भी कितने सफल और उच्च हैं। नये दृष्टिकोण से लिखी हुई उनकी सर्वाङ्ग सुन्दर कवितायँ इसमें दी गयी हैं मूल्य ।।।)

किरण-वेला

(लेखक— कविवर "अञ्चल")

'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' का यशस्वी कवि अपने इस कविता संग्रह में सर्वथा प्रगतिशील होकर सामने आया है। आज का युग, अपनी जटिल समस्याओं के साथ ऐसे ही कवि की वाणी की प्रतिष्ठा करता है। एक एक कविता सामाजिक वैषम्य और विप्लव का चित्र सामने उपस्थित कर देती है। मू० १)

जर्मन युद्ध में युवती

उद्भ्रान्त किन्तु संयमित प्रेम; जलता उबलता देश प्रेम; अद्भुत साहस; आश्चर्य-जनक कौशल; विचित्र घटनाक्रम; विकट युद्ध विस्मय से डराने वाली कूटनीतपूर्ण चालें; संसार में उथल-पुथल मचा देने वाले सनसनी-दार कार्यों का जीता जागता हृदय-हारी वर्णन इसमें एक साथ ही मिलेगा।

आकर्षक सचित्र गेटअप, उत्तम कागज छपाई; पृष्ट २७५, मूल्य केवल १।।)

पापी धर्मात्मा

राजनीतिक विवशता के तड़पते बोलते चित्र, विशाल वैभव के दुर्दमनीय दृश्य एवं पैशाचिक काण्ड; राजकुमारियों की भीषण प्रणय लीलाएँ धर्म के विकृत सत्यानाशी स्वरूप तथा निरंकुश शासन के विकराल सच्चे नग्न चित्र इसमें पाठकों को मिलेंगे।

मनमोहक साज-शृंगार बढ़िया कागज छपाई, पृष्ठ २१६, मूल्य १।)

महामना मालवीयजी, माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन, यूनिवर्सिटियों के वाइसचांसलर प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक आदि जिनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे हैं और जिन्हें हर एक हिन्दू को अपने पास रखना चाहिए, वे ही हैं:—

वाल्मीकि रामायण

सम्पूर्ण ७ काण्ड ६६१ सर्ग सचित्र ५६० पृष्ठ मूल्य १।।।≡)

श्रीमद्भागवत

सम्पूर्ण १२ स्कंध ३३५ अध्याय, अनेक रङ्ग-बिरंगे चित्र, मूल्य १।।।≡)

महाभारत

सम्पूर्ण, सवा लाख श्लोकों की कथा (अध्याय प्रति अध्याय पृष्ठ १००० मूल्य ५)

(रूपान्तरकार पं० भगवानदास अवस्थी एम० ए०)

ज्ञानलोक, दारागंज, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरत् साहित्य का २०-२१ वां भाग

शेष प्रश्न

शरद् बाबू के तमाम उपन्यासों से यह एक बिल्कुल ही जुदे ढङ्ग का उपन्यास है और प्रेम-तत्व का स्वरूप ऐसे ढङ्ग से पेश किया है कि बड़े-से-बड़े क्रांतिकारी विचारों वाले भी भड़क उठें। इसकी नायिका 'कमल' एक अद्भुत चरित्र स्त्री है। जिसका एक-एक विचार सारी पुरानी धारणाओं पर पानी फेर देने वाला है। मूल्य सवा रुपया

पाटन का प्रभुत्व

गुजराती के नामी लेखक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का यह ऐतिहासिक रोमांस भी हमने सुलभ साहित्य भाषा में निकाला है। मुँशी गुजराती के बंकिमचन्द्र गिने जाते हैं। दो भागों का मूल्य सवा रुपया

अन्य नये प्रकाशन

कुलीनता—(नाटक) सेठ गोविन्ददास जी	मूल्य १)
राधा—(भाव नाट्य) पं० उदयशङ्कर भट्ट	मूल्य ॥≈)
सुनीता—(उपन्यास) जैनेन्द्रकुमार	मूल्य ॥≈)
परख-स्पर्द्धा—(उपन्यास) जैनेन्द्रकुमार	मूल्य ॥≈)
दो चिड़ियां—(कहानियाँ) „	मूल्य ॥≈)
मानव—(कविता) श्रीमन्नारायण अग्रवाल	मूल्य ॥≈)
दो फूल—(कहानियाँ) श्रीमती सत्यवती मलिक	मूल्य १।)
शिवाजी—(इतिहास) सर जदुनाथ सरकार	मूल्य १॥)
उर्दू हिन्दी कोश—(देव नागरी में) रामचन्द्र वर्मा	मू० २॥)

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, गिरगांव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त बन्धुओं की श्रेष्ठतम रचनाएं

श्री मैथिलीशरणजी के ग्रंथ

साकेत	३)	शकुन्तला	।=)
गुरुकुल	२)	पंचवटी	।=)
मंगलघट	२)	नहुष	।=)
यशोधरा	१।।)	झंकार	।।=)
द्वापर	१।।)	पत्रावली	।–)
त्रिपथगा	१।)	बक-संहार	।=)
सिद्धराज	१।)	वन-वैभव	।=)
हिन्दू	१)	सैरन्ध्री	।=)
भारत-भारती	१)	वैतालिक	।)
जयद्रथ-बध	।।)	गुरु तेग बहादुर	।)
चन्द्रहास	।।।)	शान्ति	।)
तिलोत्तमा	।।)	रंग में भंग	।)
स्वदेश-संगीत	।।।)	विकट भट	=)
अनघ	।।।)	आस्वाद	।=)
किसान	।=)		

गुप्तजी द्वारा अनुवादित

रुबाइयात उमर खैयाम	३)
पलासी का युद्ध	१।।)
मेघनाथ-बध	३।।)
वीरांगना	)
विरहणी वज्राङ्गना	।)
स्वप्न वासव दत्ता	।।=)
गृहस्थ गीता	।)

श्री सियारामशरण गुप्त की रचनाएं

आर्द्रा	१)	दूर्वादल	।।=)
विषाद	।–)	आत्मोत्सर्ग	।=)
मौर्य्य-विजय	)	पुण्य पर्व [नाटक]	।।।)
अनाथ	।)	मानुषी [कहानी संग्रह]	१)
बापू	।।)	गोद [उपन्यास]	१।)
मृण्मयी	१।)	अन्तिम आकांक्षा [उपन्यास]	१।।)
पाथेय	१)	नारी [उपन्यास]	१।।)
उन्मुक्त	१।)	झूंठ-सच [निबंध]	२)

मिलने का पता—**साहित्य-सदन, चिरगांव, झांसी।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी संसार में नई एवं अभूतपूर्व योजना !

मासिक किश्त (Monthly Instalment System) की व्यवस्था !

श्रेष्ठ कलाकारों के उच्चकोटि के मौलिक कहानी-संग्रह, सरस उपन्यास, मनोरम हास्यरस इत्यादि का यदि आप रसास्वादन करना चाहते हैं तो हमारी नई योजना से लाभ उठाइये।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

श्रीमती ऊषा देवी मित्रा की नवीन कृति **"पथचारी"** एक भावपूर्ण, मौलिक, सामाजिक उपन्यास मूल्य १।)	श्री जी० पी० श्रीवास्तव की नवीन रचना **"भय्या अक़िल बहादुर"** हास्यरस की अनूठी पुस्तक मूल्य १)
पं० यज्ञदत शर्मा, एम. ए. का लिखा हुआ एक सामाजिक मौलिक उपन्यास **'ललिता'** मूल्य १)	श्री पं० सरजूप्रसाद पांडेय का सुललित खण्ड काव्य **राजर्षि** मूल्य ॥।)

सुन्दर, कलापूर्ण क़हानियों के लिए श्रेष्ठ कलाकारों के श्रेष्ठ कहानी-संग्रह पढ़िये

श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह की चुनी कहानियों का नया संग्रह **"पड़ोसी"** मू० १।=)	श्री पहाड़ी की उच्चकोटि की १२ मनो- वैज्ञानिक कहानियों का अपूर्व संग्रह **"छाया"** मूल्य १)
श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कलापूर्ण कहानियों का कला-पूर्ण संग्रह **"खाली बोतल"** मू० १।)	श्रीमती ऊषादेवी मित्रा की ललित कहानियों का मनोरम संग्रह **"महावर"** मूल्य १)
श्री चतुरसेन शास्त्री की लोह लेखनी से लिखा हुआ ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह **"वीरगाथा"** मूल्य १)	श्री व्यथितहृदय लिखित संसार के महान् पुरुषों का जीवन चरित्र **"पुरुषार्थी जीवन"**

आज ही नियमावली, एजेंसी और सूचीपत्र के वास्ते लिखें।

हमारी प्रकाशित हिन्दी, अङ्गरेजी तथा बंगला की सभी पुस्तकें यहां मिलेंगी।

मिलने का पता :—नेशनल लिटरेचर कम्पनी १०५ कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर बैठे डाक्टरी का पूरा ज्ञान करना हो

तो

नीचे लिखी पुस्तकें मँगाइये

डाक्टरी चिकित्सा—डाक्टरी रीति से रोगों का निदान, लक्षण, चिकित्सा—मू० ६)

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—डाक्टरी औषधियों का पूरा वर्णन, बनाने की विधि, मात्रा, विरोधी दवाओं के नाम मू० ६)

इन्जैक्शन चिकित्सा, चरित्र—[सुई द्वारा इलाज] मू० १।)

डाक्टरी नुसूखे—बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा परीक्षित मूल्य १)

चिकित्सा के कर्तव्य—मूल्य १।।)

प्रसिद्ध देशीय औषधियों के अँग्रेजी डाक्टरों द्वारा परीक्षित प्रयोग—कीमत १)

कम्पाउन्डरी शिक्षा—मूल्य ।।)

भारतीय बनस्पतियों पर विलायती डाक्टरों के अनुभव—कीमत २

याद रखो—अगर आपको तन्दुरुस्त रहना है तो इसकी बातें याद रखो। कीमत ।)

कायाकल्प—घर बैठे कायाकल्प करने की विधि व औषधियें—कीमत ।)

जच्चा-बच्चा—सन्तान पैदा होने से लेकर बच्चे के पालन पोषण की विधि-क़ी० ।)

सन्तति निग्रह—जो लोग सन्तान पैदा होना पसन्द नहीं करते, उसकी निर्दोष विधियाँ तथा बिना दवा के उपाय बताये हैं—कीमत ।)

छपकर तैयार हैं

नये साल की डायरियां, जंत्रियां व पंचांग छप कर तैयार हैं। बुक्सेलरों को मंगाने में शीघ्रता करनी चाहिये। भाव के लिये पत्र-व्यवहार करिये।

पुस्तकों का पैकिंग माफ, डाकखर्च मनीआर्डर जुदा पड़ेगा।

मँगाने का पता—सुख संचारक कम्पनी लि०, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

"भारत"

जीवन बीमा के क्षेत्र में सर्वोत्तम

❁ दृढ़ता में अद्वितीय

❁ सेवा में विश्वास योग

❁ विचार-व्यवहार में उन्नत

❁ दावों के भुगतान में तत्पर

अर्थात्

सुरक्षित और सर्वोत्तम

सन् १८९६ से

भारत इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड

प्रधान कार्यालय
भारत बिल्डिंग
लाहौर

शाखायें—समस्त भारतवर्ष, बर्मा, लंका और अफ्रीका।

कृपया विवरण के वास्ते मि० एम० के० जैन ब्रांच सेक्रेटरी,
ताज बिल्डिंग आगरा को लिखिएगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ५]　　आगरा—मार्गशीर्ष १९९८ वि०; दिसम्बर १९४१　　[अङ्क ४

उपन्यासालोचन के मान

[श्री कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा]

उपन्यास की आलोचना के मान क्या हैं? इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है और वह अधिकांश में सकील है। आलोचनाएँ प्रायः इतनी आडम्बरपूर्ण होती हैं कि प्रायः शब्द-जाल में आलोच्य पुस्तक का असली रूप छिप जाता है।

पाठक लोग भी अपनी-अपनी अलग राय रखते हैं। वे भी कई प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो केवल पाठक हैं और दूसरे वे जो कुछ लिखते भी हैं। पाठक कहीं तो किसी लेखक को रसातल तक पहुँचा देते हैं और कहीं आकाश पर उठा देते हैं। जो लिखते हैं वे अपनी बात को कुछ अधिकार से कहना चाहते हैं। पाठक अपने दृष्टिकोण से रचना पर निर्णय देते हैं। यदि वे गांधीवादी हैं तो उनके लिए प्रगति कूड़ा-करकट है और यदि प्रगतिवादी हैं तो गांधीवादी लेखक की रचना में झाड़-झङ्खड़ के सिवाय वे कुछ नहीं देखते।

तो मुझे सोचना पड़ता है कि किसी रचना की आलोचना इस प्रकार कैसे की जाय कि वह यदि सबके नहीं, तो अधिकांश की तो समझ में आ जाय—और वास्तव में वह उसकी सचाई को पकड़ ले।

रचना की सचाई ग्रहण करना ही आलोचक का ध्येय हो सकता है और मेरी समझ से होना भी चाहिए। पाठक या आलोचक यदि स्वयं अपने व्यक्तित्व को आलोच्य रचना पर आरोपित करेगा, तो उसकी वास्तविकता को पूर्णतया पा नहीं सकेगा; अंशतः पा सकता है, पर आंशिक सचाई से हमें क्या फायदा? यदि आंशिक सचाई ही आलोचना का ध्येय हो, तो फिर आलोचना करने की आवश्यकता ही नहीं रहती, आलोचक को तो सब के सम्मिलित दृष्टिकोण से—सब की आँखों से रचना को देखना होता है। रचना का आंशिक सत्य जो है वह तो उसके जितने भी पाठक हैं, उतने भागों में बँटा हुआ है और आलोचक के लिए यह सहज ही सम्भव नहीं कि उन सब को जान सके और जान कर उन्हें विचाराधीन कर सके। आलोचक को रचना में जो चीज देखनी है, वह है उसमें सन्निहित लेखक का व्यक्तित्व और दृष्टिकोण, वे परिस्थितियाँ जिनमें वह रचना की गयी है और उसकी टैकनीक या कारीगरी।

टैकनीक के मामले में मैं ऑस्कर वाइल्ड (Oscar wild) की यह बात किसी कदर ठीक मानता हूँ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भी किताब अच्छी या बुरी नहीं होती। अच्छाई या बुराई तो इसमें है कि वह लिखी कैसे गयी है। यानी रचना की शैली पर ही किताब की अच्छाई या बुराई निर्भर है। अपनी बात को और ज्यादा अच्छी तरह समझाने के लिए ही शायद वाइल्ड ने यहाँ तक कह दिया है कि कला न नैतिक है और न अनैतिक।

रचना की कारीगरी के विषय में मुझे जो भी कहना है, वह उपन्यास पर भी लागू समझा जाये। चीनी कला के आदर्शों की भाँति मेरी भी अपनी यह धारणा है कि प्रत्येक भाव, भावना या वस्तु को व्यक्त करने का केवल मात्र एक ही ढंग हो सकता है, एक ही प्रकार हो सकता है। उस एकमात्र ढङ्ग को पा लेना ही कलाकार की सफलता है, उसकी सच्ची सम्पूर्ण कला है। कलाकार सदैव ही ऐसी सम्पूर्णता पा सकता है, या नहीं, यह उसकी सृजन-क्षमता पर निर्भर है। जो कलाकार जितना ही उस सम्पूर्णता के निकट होगा, वह उतना ही सफल, उतना ही श्रेष्ठ होगा और जो उस सम्पूर्णता को प्राप्त ही कर लेगा, वह सर्वश्रेष्ठ और सफलतम कलाकार होगा और उसका वास्तव में वही स्थान होगा, जो इस सृष्टि के कलाकार का है। रवीन्द्रनाथ टेगोर ऐसे ही कलाकार हैं।

इसी सिद्धान्त के आधार पर मेरा अनुमान है कि सङ्गीत में विविध राग-रागनियों की, चित्रकला में विविध शैलियों की और कविता में विविध छन्दों की सृष्टि हुई और मुक्त-छन्द तक को आश्रय मिला। गद्य और पद्य का अन्तर भी वास्तव में शैली का ही है। यदि आलोचक इस बात को मान ले, तो फिर शैली का महत्व और उसका स्वरूप क्या है, यह स्पष्ट हो जायगा। जिन कलाकारों की शैली सदैव एक रहती है, मैं उन्हें दिवालिया समझता हूँ, कला उनके पास नहीं होती। रवीन्द्र में शैली की असीम विविधता मिलेगी, पर शरद में नहीं, किन्तु शरद की शैली की एकता निन्द्य नहीं है, क्योंकि उनके कथानक भी लगभग एक से ही होते हैं। पर प्रेमचन्द में यह बात नहीं। कथानक के परिवर्तन के साथ उनकी शैली परिवर्तित नहीं होती, इसलिए पाठक अक्सर ही उनके पृष्ठ के पृष्ठ छोड़ कर आगे पढ़ने लगता है। शरद अपने पाठक की दिलचस्पी कभी नहीं खोते। यही कारण है कि विशुद्ध कलाकार के नाते शरद प्रेमचन्द से ऊँचे ठहरते हैं। यों तो मानवता को जितनी देन प्रेमचन्द की है, शायद उसकी शतांश भी शरद की नहीं है।

तो उपन्यास की आलोचना करते समय सर्वप्रथम हमें यह देखना है कि उसकी जो टैकनीक है, कारीगरी है, शैली है वह उसके कथानक के अनुकूल है या नहीं। इस अनुकूलता को परखना आलोचक की परख-शक्ति पर निर्भर है और बहुत कुछ उसके अभ्यास पर भी। यदि आलोचक उपन्यासों को उनकी शैली ध्यान में रख कर पढ़ता रहता है तो उसे आलोच्य-उपन्यास की शैली का औचित्य परखते देर नहीं लगेगी। और इस विषय में कोई नियम अथवा सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किये जा सकते, सिवाय एक के—वह यह कि उपन्यास पढ़ते-पढ़ते जी तो नहीं ऊबता, मन तो नहीं उचट जाता, उसमें दिलचस्पी तो कम नहीं होती जाती, यानी कि वह रोचक है या नहीं, यह देखना चाहिए। उपन्यास का रोचक होना उसका अनिवार्य गुण है, क्योंकि साहित्य में कहानी व उपन्यास ही है, जो जनता के निकटतम होता है। उसे समझने के लिए दिमागी कसरत न करनी पड़े, यही अपेक्षित है। यदि करनी पड़े तो समझ लीजिए कि उस उपन्यास को उपन्यास कहलाने का हक ही नहीं, चाहे फिर जीवन का उसमें कितना ही सार क्यों न भरा हो। हम कहानी और उपन्यास पढ़ना चाहते हैं, न कि ऐक्सपोनैंशल थियोरम (Axponantial Theorem) लोगेरिथम सीरीज (Logarithm Series) डिफरेंशल कैल्क्यूलस (Differential calculas)

लेकिन किसी रचना में पाठक का मन लगता है या नहीं, यह पाठक के मन की साँस्कृतिक और सामयिक परिस्थितियों पर आश्रित है। संस्कृति-सभ्यता से कला का सीधा सम्बन्ध है। उन्नत संस्कृति उन्नत कला को जन्म देती है। यही कारण है कि कला की कसौटी पर देश की सभ्यता आँकी जाती है। कला जीवन-विकास का माप है, प्रतिबिम्ब है। यदि पिरामिड मिश्र की संस्कृति के द्योतक हैं तो ताजमहल मुगल सभ्यता का परिचायक। किन्तु यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ लेना भूल होगी कि कला की श्रेष्ठता तक जन-साधारण की पहुँच थी। वे तो केवल विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा सृष्ट थीं और विशिष्ट वर्गों में ही उनका प्रसार था, प्रचार था।

युग की उत्कृष्टतम कला उसकी संस्कृति की उच्चतम-लेविल है, जैसे नदी के पुल पर एक माप-स्तंभ यह सूचित करता है कि इसका जल अधिक-से-अधिक इस ऊँचाई तक पहुँच चुका है, वह यह नहीं बतलाता कि जल का फैलाव कितने मील तक हो गया था। तो कला की उत्कृष्टता भी तत्सम्बन्धी उत्कृष्ट संस्कृति के फैलाव को सूचित नहीं करती। यह आवश्यक नहीं कि अजंता की चित्रकला को तत्कालीन जनता समझती हो, ठीक उसी तरह जैसे आज के बंगाल स्कूल और सररियलिस्ट तथा प्रतीक-वादी स्कूलों की चित्रकारी सभी नहीं समझते। ठीक यही बात साहित्यिक कला के विषय में भी सच है। जो लेखक जितनी ऊँची संस्कृति में जन्मित और पोषित होगा, वह उतनी ही उँची कला सृजित कर सकेगा, और वही पाठक उसे समझ भी सकेगा जो उसी सांस्कृतिक स्थिति से सम्बद्ध है। संस्कृति से मेरा अभिप्राय ड्राइंगरूमी कल्चर मात्र से नहीं है, और न केवल आर्थिक वर्गों के रहन-सहन और आचार-विचार से। उच्चवर्ग का भी एक व्यक्ति निपट मूर्ख और असभ्य हो सकता है, और निम्न वर्ग का भी एक व्यक्ति विज्ञ और शालीन हो सकता है। विज्ञता का माप उसकी समझने और ग्रहण करने की शक्ति है। केवल यूनिवर्सिटी की डिग्री नहीं। पर व्यक्ति के संस्कृत होने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य-सा ही है, यों अपवाद भी होते हैं। वह शिक्षा चाहे अक्षर की हो, स्वर की, तूलिका की या गति की हो साहित्यिक कला समझने के लिए अक्षर-ज्ञान, संगीत-कला समझने के लिए स्वर-ज्ञान, नृत्य-कला समझने के लिए गति-ज्ञान और चित्रकारी समझने के लिए तूलिका ज्ञान आवश्यक-से ही हैं।

तो कला का सम्बन्ध व्यक्ति की संस्कृति से ही अधिक है, जो विकास के क्रम में मिली होकर उसकी जन्मजात होगी और प्रतिभा का नाम पायगी, या जो फिर शिक्षा, संपर्क और वातावरण से प्राप्त हो सकती है। यह स्पष्ट हो गया होगा कि रचना में पाठक का मन लगना पाठक की मन-स्थिति और संस्कृति पर क्यों आश्रित है। 'चन्द्रकान्ता' पढ़ने वाले का मन यदि शेखर पढ़ने में न लगे, तो 'शेखर' उपन्यास बुरा है, यह कहना गलत होगा। किन्तु यदि उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानियाँ पढ़ने वाला 'सितारों के खेल' न पढ़ सके तो अवश्य ही उसका उपन्यासकार असफल है। यह बिलकुल दूसरी बात है कि उस पाठक को "सितारों के खेल" पसंद न आये यानी उसमें प्रतिपादित सिद्धान्त या उसका चरित्र-चित्रण पसंद न हो।

तो उपन्यास की आलोचना करने में हमें देखना यह है कि वह जिस सांस्कृतिक स्वर के व्यक्तियों के लिए लिखा गया है वे उसे मन से पढ़ सकते हैं या नहीं। उपन्यास की कारीगरी में एक और चीज पर ध्यान देना होगा। हालांकि उसका ताल्लुक मन लगने से ही है। उपन्यास में अति-रंजना, अल्परंजना और व्यर्थता सुपरप्लुअस मैटर नहीं होनी चाहिए। वर्णन में सामञ्जस्य उपन्यास-शैली की जान है। साहित्य में शैली का सामञ्जस्य फोटोग्राफर के फोकस की तरह न होकर कार्टूनिस्ट के कार्टून में अभिव्यक्त अति और अल्प के सामञ्जस्य के समान होना चाहिए।

साहित्य जीवन का यथातथ्य प्रतिबिम्ब समतल दर्पण (Plane Mirror) में प्रतिच्छायित प्रति-बिम्ब की भांति नहीं होता। कैलीडस्कोप (Kaliedos-cope) में प्रतिबिम्बित चूड़ियों और काँच के रंग-बिरंगे टुकड़ों के रंग-बिरंगे अनेक सकोण (एंग्यूलर) पैटर्नों की भांति ही साहित्य में भी, जीवन के बहुरंगी सकोण पैटर्न-तिरछे, सीधे, गोल होते हैं। रचना में उससे असम्बद्ध बातों के लिए कोई स्थान नहीं। वह वाक्य, वह शब्द, जो उपन्यास की प्रगति और उसके अन्तिम ध्येय की ओर उन्मुख न हो, नितांत व्यर्थ है। वातावरण और बैकग्रांउड (पृष्ठभूमि) का महत्व तभी है, जब वह उसमें स्थिति, पात्र, या पात्रों के क्रिया-कलापों अथवा घटनाओं पर अपना प्रभाव डालता हो। इस बात की आवश्यकता नाटककार खूब समझता है, परन्तु मैं कहता हूँ कि यह उपन्यासकार के लिए भी उतनी ही अनिवार्य है। अगर मुझे कहीं रेल से बाहर जाना है, तो जब तक कोई विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना न होने वाली हो, तब तक तांगे, स्टेशन, कुली टिकिटघर, रेल के डिब्बे आदि किसी के भी वर्णन की जरूरत में नहीं समझता। यदि मेरे जाने में रुकावट पड़ती है, रेल का समय निकला जा रहा है, तो मुझे तांगे की चाल दिखानी होगी और फिर एक तांगे या मोटर से राह में उसकी टक्कर भी या ऐसी ही कोई बात। भगवतीप्रसाद बाजपेयी से लेकर जैनेन्द्र तक और जैनेन्द्र से लेकर नवीन लेखकों तक के उपन्यासों और कहानियों में आपको फिजूलियात का ढेर मिलेगा, जिसके बिना ज़रूर ही काम न सिर्फ चलता, बल्कि अच्छी तरह चलता और चीज़ें और भी बढ़िया बन जातीं। कलाकारिता इसी में है कि जितना आवश्यक है, इससे एक भी अक्षर कम या ज्यादा न हो। अल्परंजना की जगह अतिरंजना, अतिरंजना की जगह अल्परंजना और अति और अल्प की जगह समरंजना भी अभिव्यक्ति में नहीं होनी चाहिए। जहाँ जितनी ज़रूरत हो, उतना ही हल्का-गहरा रंग दिया जाय। यह ज़रूरत समझना लेखक का काम है, और परिस्थित पर निर्भर है। आलोचक इस विषय में कोई नियम-उपनियम नहीं बना सकता। हाँ, कार्टूनिस्ट की प्रणाली आदर्श बनाई जा सकती है। उसे यदि मुख के भाव प्रदर्शित करने हैं, तो वह शरीर का शेष भाग चाहे दो सीधी रेखाओं में दिखाकर बस कर देता है। मुख में भी यदि नाक प्रमुख है और व्यक्ति नक्कू है, तो उसकी नाक कार्टूनिस्ट विशेष रूप से उभार देगा। काँट-छाँट की कारीगरी में वह बड़ा कुशल होता है। उपन्यासकार को भी इसमें ऐसा ही कुशल होना चाहिए।

पर एक मनोरंजक बात है। बहुत से लेखक यह जानते हैं कि हमारे उपन्यास या कहानी में इतनी बातें व्यर्थ हैं। पर वे व्यर्थ बातें उन्होंने जान-बूझ कर और मजबूरन लिखी होती हैं क्योंकि वे जानते हैं कि प्रकाशक से १) रु० प्रति पृष्ठ ठहरा है, तो जितने ही अधिक पृष्ठ होंगे, उतने ही रुपये मिल जांयेगे। कभी-कभी इसका उल्टा भी होता है—जो चीज़ तीन-सौ पृष्ठों में लिखी जानी चाहिए, वह दो-सौ या डेढ़-सौ पृष्ठों ही में लिख दी जाती है। क्योंकि प्रकाशक कहता है कि मैं १५०) रुपये से ज्यादा नहीं दूंगा, या डेढ़-सौ पृष्ठ से अधिक का उपन्यास नहीं छापूँगा। अब बेचारा उपन्यासकार है कि उसके पास तत्काल लिखने के लिए एक ही कथानक है, उसी की खींचतान कर प्रकाशक की मांग के अनुकूल उसे बनाना ही पड़ता है।

स्वाभाविकता एक और भी कसौटी है, जिस पर उपन्यास परखना और भी जरूरी है। यहाँ पर मैं उपन्यास के दो भेद करूँगा; स्वाभाविक उपन्यास और अस्वाभाविक उपन्यास। स्वाभाविक वह जिसका कथानक स्थूल और सूक्ष्म यथार्थ पर आधारित हो और जिसमें अनुभूति आत्म-कल्पना * से रंगी हो! इस श्रेणी में सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं। अस्वाभाविक उपन्यास वे हैं, जिनमें सिर्फ़ दिमागी कल्पना रहती है। इस श्रेणी में तिलिस्म, जासूसी, अय्यारी और व्यंगादि के उपन्यास आते हैं, उदाहरणार्थ चन्द्रकान्ता, भूतनाथ, अँग्रेजी के 'गुलिवर की यात्रा "ऐलिस इन दी वण्डर लैण्ड" आदि, अरबी में अलिफलैला। दिमागी कल्पना के उपन्यासों में जितनी अस्वाभाविकता होगी, वह उतनी ही उनके लिए अधिक स्वाभाविकता होगी और रोचकता बढ़ाने वाली होगी। पर यह न भूल जाना चाहिए कि इस कोटि की रचनाओं में भी मानव जीवन का सत्य होता है और उसके लिए कल्याण की भावना भी। अनेक रचनाएँ विशुद्ध विनोद और मनोरञ्जन के लिए भी होती हैं, जिनका महत्व हमारे लिए ताश के खेल, सरकस या मदारी के तमाशे से ज्यादा नहीं होता। पर मन-बहलाव भी तो मानव की उन्नति और विकास के लिए एक आवश्यक प्रसाधन है। इस सम्बन्ध में फिलहाल मैं इतना ही कहूँगा।

स्वाभाविक श्रेणी के उपन्यसों में आलोचक को स्थूल यथार्थ की अभिव्यक्ति परखनी होगी। स्थूल यथार्थ

---

*कल्पना—अँग्रेजी के Fancy फैन्सी और इमेजिनेशन (Imagination) से जिस मस्तिष्क और आत्मा सम्बन्धी कल्पना का भिन्न बोध होता है, दुर्भाग्यवश हिन्दी में उसके लिए केवल एक शब्द 'कल्पना' ही है इनका अन्तर समझना आवश्यक है —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथानक के वस्तुभाग (दृश्य, वातावरण, चित्रणादि) से सम्बद्ध है, और सूक्ष्म यथार्थ उनके पात्रों के क्रियाकलाप और मनोविज्ञान से। देखना यह होगा कि जो दृश्य वातावरण आदि उपन्यास में उपस्थित किये गये हैं, वे असंगत और अस्वाभाविक तो नहीं है, जैसे मौसम तो गर्मी का चल रहा है, और पात्र सर्ज का सूट पहने हुए है, जून का महीना है, शाम साढ़े सात बजे होती है और दिखा दिया गया है कि पाँच ही बजे चिराग जल गये और सूरज डूब गया। यह तो मैंने मोटी बातें बतलाई। उपन्यासों में ऐसे अनेक स्थल आते हैं, जहाँ असंगति बारीकी से ढूँढ़नी पड़ती है, जैसे पात्र को मोटर चलाना तो आता नहीं, या इसके विपरीत इसका कहीं पहिले निर्देश नहीं किया गया हो, और यकायक दिखा दिया जाये कि मौका पाते ही वह मोटर ले उड़ा! जिस उपन्यासकार को अदालती कार्यवाही के तरीके न मालूम हों, वह एक मुकदमे की पेशी की तस्वीर कैसे खींच सकता है; जिस लेखक ने कभी छुरी काँटे से न खाया हो, वह अगर यह लिख दे कि रमेश ने दांये हाथ में काँटा पकड़ा और बाँये से छुरी, तो असंगत ही होगा। पर जहां स्थूल यथार्थ का सूक्ष्म यथार्थ से संगम हो, विपरीत बातें यथार्थ और स्वाभाविक हो भी सकती हैं—जैसे अगर रमेश नशे में है, या बाये हाथ से ही काम करने का आदी है, तो यह लिखना गलत नहीं होगा कि उसने बाँये हाथ में छुरी ली और दाहिने में काँटा।

सूक्ष्म यथार्थ में क्या स्वाभाविक है और क्या अस्वाभाविक यह परखने के लिए आलोचक को मनोविज्ञान का पण्डित होना आवश्यक है। कहाँ, कब, किस पात्र का चरित्र-चित्रण उसकी स्वाभाविकता के अनुकूल नहीं रहा यह समझ लेना बड़ी बारीकी का काम है। पात्र की स्वाभाविकता इसलिए कहा गया है कि पात्र-विशेष विशिष्ट हो सकता है यानी साधारण औसत आदमी से कम ज्यादा (सब नार्मल और एब नार्मल) औसतवर्ग (नार्मल) के पात्र में यदि उपन्यासकार अनायास और अकारण ही कोई ऐसी अजीब बात दिखाता है, जो उसके समूचे स्वभाव से मेल नहीं खाती, तो वह असंगत और अस्वाभाविक होगी। यदि दिखाता है, तो उसका मनोवैज्ञानिक समीकरण होना चाहिए; यदि वह भी नहीं है, तो उसे यह प्रदर्शित करना चाहिए कि यह पात्र एक उलझन है एक समस्या है; यह भी संसार का एक वैचित्र्य है। गरज़ यह कि जो उपन्यासकार पात्र के विषय में जो भी लिखे, उसका उचित कारण उसके पास होना चाहिए। सामाजिक उपन्यासों में अलिफलैला के पात्र अनुचित होंगे। यह दूसरी बात है कि प्रताप नामक पात्र ने बचपन में हातिमताई और अलाउद्दीन के चिराग की कहानियाँ पढ़ी हैं, और वे उसके मन में इस तरह जम कर बैठ गयी हैं, कि वह किशोर होने पर भी उन्हीं के स्वप्न देखा करता है और एक दिन किसी मदारी के पीछे चल देता है।

पात्र आमतौर से दो प्रकार के कहे जाते हैं; व्यक्ति (Individual) और टाइप (Type) व्यक्ति वह, जिसमें अपनापन हो; अपनी चारित्रिक विशिष्टताएँ हों। टायप वह, जो किसी वर्ग-विशेष का प्रतिनिधि हो—यानी वह उस वर्ग के रीति-रिवाज, आचार-विचार, रहन-सहन, विशिष्टताओं आदि की इकाई हो; उसके चरित्र में इन सब गुणों का प्रदर्शन होता हो। और वैसे ही पात्र उस वर्ग में इफ़रात से मिलते हों। पात्र कैसा ही हो, व्यक्ति या वर्गीय, अच्छा, बुरा या समान। आलोचक को केवल देखना यह है कि वह जैसा भी है, वैसा ही उसका चित्रण सफलतापूर्वक हुआ है या नहीं। यदि बुरा है; तो उसकी बुराइयाँ, यदि अच्छा है, तो उसकी अच्छाइयाँ और यदि समान, है तो उसकी अच्छाई और बुराई, दोनों समान रूप से उभर कर आनी चाहिएँ। उसकी परिस्थितियों के साथ उसके चरित्र का साम्य होना चाहिए; यदि विपर्य्य है, तो देखना चाहिए कि उसके स्वभाव में प्रतिक्रिया-वृत्ति है या नहीं। किसी उपन्यास के किसी पात्र के अच्छे-बुरे होने से वह उपन्यास और उसका लेखक बुरे नहीं हो जाते। लेकिन औसत पाठक यही कहता है—"अजी 'सितारों के खेल' की लता कैसी खराब लड़की है। 'अश्क' जी तो बड़े वैसे मालूम पड़ते हैं—उपन्यास बिल्कुल खराब है!" यदि आलोचक को किसी उपन्यास के बारे में ऐसी ही राय सुनने को मिले तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह समझ ले उसका लेखक अवश्य ही सफल हुआ है।

स्वाभाविक कथानक में दो और चीजें जो बहुत जरूरी है; लेखक की स्वानुभूति और सच्चाई (सिंसीयरिटी)। सचाई यों तो लेखक की प्रत्येक रचना में होनी चाहिए, पर उपन्यास में इसका होना निहायत जरूरी है। अपने विश्वासों और इच्छाओं के विरुद्ध और दूसरों के कहने से अगर वह वास्त ता का गला घोंट कर कुछ लिखता है, या उसे विकृत कर प्रदर्शित करता है, तो वह न केवल अपने को धोका देता है, वरन् दूसरों को भी और फलस्वरूप जीवन के प्रति असत्य प्रचार कर उसका अहित करता है, जब कि साहित्य का ध्येय सदैव ही शिवं, है। स्वानुभूति बिना यदि लेखक लिखेगा, तो उसके लिखे में जान और सचाई दोनों ही कम होंगी पर यह तो संभव नहीं कि लेखक को सभी अनुभव हो-ही-हों, तब भी वह यदि दूसरों के अनुभव का सहारा लेता है, तो उनकी सचाई बिना जांचे, उन्हें अपना बना कर अपनी रचना में स्थान देना उचित नहीं। इसके सिवा बहुत से अनुभव ऐसे हैं, जो लेखक किन्हीं विवशताओं के कारण अपनी स्थूल इन्द्रियों से न प्राप्त कर सकता हो, तो वह अपनी सूक्ष्म ऐन्द्रिक-शक्तियों, प्रतिभा, धारणाशक्ति, (इनट्यूइशन) निरीक्षण द्वारा प्राप्त कर सकता है। जैसे पात्र यदि जहर खाकर मरता है, या शराब पीकर एक विचित्र सनसनी (सैन्सेशन) अनुभव करता है, तो उपन्यासकार के लिए यह तो अनिवार्य नहीं कि विषपान करके मृत्यु की, या शराब पीकर उसकी सनसनी की अनुभूति प्राप्त करे। यों तो जिस लेखक को ये अनुभूतियाँ यथार्थ में भी हुई हों, तो उसकी रचना में इनकी अभिव्यक्ति सत्य और सजीव होगी।

उपन्यास का कथानक यदि किसी सामाजिक वर्ग से संबंधित है, तो आलोचक को देखना यह है कि उसके रचयिता ने उसे उस वर्ग में से लिखा है या उस वर्ग पर—यानी उसका स्थूल और सूक्ष्म यथार्थ वास्तविक है, या केवल कल्पित, या तत्संबंधी प्रचिलित धारणाओं से लिया गया है। आज के प्रगतिवादी लेखक अक्सर ही समझा करते हैं कि जो चीज किसान मजदूर अथवा गाँधी और अहिंसा के समर्थन में नहीं लिखी जाती, तो वह कुछ नहीं, और अगर कुछ है तो या तो बूर्जुआ है, या गाँधीवादी के दृष्टिकोण से कहूँ, तो साम्यवादी है, हिंसात्मक है। मैं यदि उच्चवर्ग को लेकर कोई कथानक रचूँ, तो मुमकिन है कि अधिकतर प्रगतिवादी पाठक और समालोचक उसे बूर्जुआ कहें और छिः कह कर ठुकरादें। बौद्धिक असमानता तो हमारे समाज में आर्थिक असमानता से भी अधिक गहरी और व्यापक है। धन तो समान रूप से एक बार बाँटा भी जा सकता है, पर बुद्धि की पूँजी उसके पूँजीपतियों के पास से लेकर, उसके अभाव से पीड़ित लोगों में नहीं बाँटी जा सकती। मध्य और उच्च वर्ग का उपन्यासकार जिस बौद्धिक ऊँचाई से लिखता है, क्या उस तक प्रोलेतेरियत वर्ग की पहुँच है या हो सकती है? फिर प्रोलेतेरियत वर्ग पर उसी के लेखक द्वारा जो कुछ लिखा जायगा, वही असली प्रोलेतेरियन साहित्य होगा। प्रोलेतेरियत वर्ग के ही लेखक की रचना में उस वर्ग की सच्ची तस्वीर होगी, जान होगी, कला होगी। जो लेखक मजदूर, किसानों के जीवन में रह कर उसमें घुला-मिला नहीं, वह क्या उनके जीवन की सत्य अभिव्यक्ति कर सकता है? मानवता के नाते उनके प्रति हार्दिक सहानुभूति बौद्धिक रूप में प्रदर्शित करने से तो लेखक उनके जीवन की सम्पूर्ण सचाई से हमें अवगत नहीं करा देता।

तो आलोचक को उपन्यास का कथानक परखते समय यही देखना है कि जिस वर्ग या जिन व्यक्तियों को लेकर उसकी रचना की गयी है, उसके या उनके स्थूल और सूक्ष्म यथार्थ की सही अभिव्यक्ति और मनोवैज्ञानिक सामञ्जस्य उसमें कहाँ तक सफल हुआ है। इस सफलता की मात्रा पर ही उस उपन्यास के सत्यं और सुन्दरं का निर्णय आलोचक को करना होगा। बिना शिवं के सुन्दरम् अधूरा रहता है। जो सत्यं और शिवं है, वह सुन्दर अवश्य होगा। तो एक नवीन मान उपन्यासालोचन का और भी है। सारे उपन्यास को परख लेने के बाद उपन्यासकार का ध्येय देखना होगा। कला कला के लिए है, यह बात जरा गलत समझी जाती है। कला स्वयं मानव-विकास की द्योतक है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए कला कला के लिए हैं, का अर्थ यह है कि वह मानव की उत्तरोत्तर उन्नति के लिये है। साहित्य या कोई भी कला स्वयं अपना अन्त या ध्येय नहीं है। ध्येय है वही जीवन और उसका विकास यह विकास तथा उन्नति जीवन के निर्माण में है और विध्वंस में भी। विध्वंस में इसलिए कि निर्माण उसी के आधार पर होता है। प्रत्येक निर्माण में कुछ न कुछ विनाश सन्निहित होता है, चाहे उसका रूप उग्र हो या शांत, परोक्ष हो या प्रत्यक्ष। यदि किसी उपन्यास में किन्हीं रूढ़ियों, कुरीतियों, किसी समाज, किसी व्यवस्था के ध्वंस की विकालत की गयी है, तो वह बुरा तो नहीं है। देखना यह है कि वह विध्वंस सारी मानवता को ही तो नष्ट नहीं करना चाहता; यदि नहीं तो उसमें मानवता के लिए कल्याण की भावना है। यदि ऐसा नहीं है तो वह घातक है, बुरा है। निर्माण का ध्येय रखते हुए यदि उपन्यासकार केवल उपदेश देने लगे तो वह कला खो बैठेगा। व्यंजना और लक्षणा का ध्यान तो उसे सदैव रखना ही पड़ेगा। लेखक बिल्कुल तटस्थ हो कर अपना व्यक्तित्व अलग रख कर रचना कर सकता है, यह मैं असंभव समझता हूँ। यह मैं अवश्य मानता हूँ कि उपन्यासकार को अपना व्यक्तित्व अपने पात्रों पर लाद नहीं देना चाहिए, उन्हें अपनी इच्छानुसार नचाना नहीं चाहिए, व्याख्यानदाता या उपदेशक नहीं बनना चाहिए। यदि उसे उपदेशक बनना ही पड़ता है, तो वह अपने कथानक से ही अपना मंतव्य स्पष्ट कराने में असफल हुआ, इसीलिए वह असफल कलाकार है। किस सीमा के परे कला कोरा उपदेश हो जाती है, यह बतलाना कठिन है। रचना सामने आने पर अभ्यासी समालोचक यह अवश्य आसानी से समझ सकता है। मैं यह नहीं कहता कि हमें उपदेशों की जरूरत नहीं, पर मैं उपन्यासों की बात कर रहा हूँ; बच्चों की कहानियाँ या मनुस्मृति की नहीं।

ऐतिहासिक उपन्यास के विषय में मैंने कुछ नहीं कहा। ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जायँ, यह मैं नहीं चाहता। पर वे लिखे ही गये हैं, लिखे जाते हैं, और लिखे जायँगे, तब कुछ कहना जरूरी है। ऐतिहासिक उपन्यास में स्थूल-यथार्थ का महत्व कम होता है और सूक्ष्म यथार्थ का अधिक। इतिहास अभी तक हमारे शासकों के जीवन का लेखा रहा है, और तत्सम्बन्धी राजनीतिक उथल-पुथल का भी। जनता का, समाज का इतिहास उसमें नहीं के बर बर आया करता है। यों जनता की राजनीति उसके समाज में ही शामिल होती है। तो कितने ही सौ वर्ष बाद प्रसाद 'स्कन्दगुप्त' लिख कर क्या हमें स्कन्दगुप्त के जीवन का सत्य परिचय दे सकते हैं? कुछ छोड़ी-सी-आधी सच्ची, आधी झूठी ऐतिहासिक घटनाएँ और तत्कालीन संस्कृति के दो-चार धूमिल भग्नावशेष क्या स्कन्दगुप्त की जीवन कथा सच-सच कह देते हैं। तब किस आधार पर स्कन्दगुप्त लिखा गया? आलोचक किस स्थूल और सूक्ष्म यथार्थ की कसौटी पर उसे कसे? एक ही रास्ता रह जाता है; केवल मानवता और मनोविज्ञान की तुला पर हम उसे तोलें— स्कन्दगुप्त की दृष्टि से नहीं, प्रसाद द्वारा सृजित स्कन्दगुप्त नामक मानव की दृष्टि से। ऐतिहासिक रचना करने में लेखक केवल अपनी कल्पना ऐच्छिक विचारधारा (विशफुल-थिंकिङ्ग) और आदर्शों के सहारे करता है। स्कन्दगुप्त इतिहास का स्कन्दगुप्त न होकर 'प्रसाद' स्वयं है, उनके विचारों, आदर्शों और इच्छाओं का एक शाब्दिक समूह है। इस नाते वह उतना ही महत्व रख सकता है, जितना कि किसी भी उपन्यास का कोई भी पात्र। ऐतिहासिक पात्र न वर्गीय होता है, न व्यक्ति—वह दोनों का अनमोल-मिश्रण होता है।

जो मान उपन्यास की आलोचना करने के लिए मैंने स्थिर किये हैं, मेरा अनुमान है वह हिन्दी के साधारण पाठक को भी ग्राह्य होंगे? उपन्यास क्या है?—इसका उत्तर मैंने अभी तक नहीं दिया। किसी एक त्रुटिहीन, सम्पूर्ण परिभाषा में, उपन्यास का परिचय देना कठिन ही है। फिर भी मैं कहूँगा कि उपन्यास वह गद्य-रचना है, जिसमें जीवन के स्थूल और सूक्ष्म यथार्थ का सामञ्जस्य करते हुए, उसकी वास्तविकता की कलात्मक और रोचक अभिव्यक्ति, इस प्रकार की गयी हो कि वह जीवन के लिए कल्याणकारी होकर मानव विकास में सहायक हो।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय से हिन्दी पत्रकार कला का विकास

[श्री शिवदानसिंह चौहान]

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सन् १६०३ में 'सरस्वती' का सम्पादन करना शुरू किया। उस वक्त भी हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं की काफी तादाद थी और उनसे भी कहीं ज्यादा पत्रकारों की। लेकिन पत्रकार-कला नाम की कोई चीज न थी।

पत्र-पत्रिकाओं में 'हिन्दी प्रदीप', आनन्द कादम्बिनी भारत-जीवन, भारत-मित्र, उचित वक्ता, सारसुधानिधि, हिन्दी बंगवासी, आर्यमित्र, हिन्दुस्तान, हितवार्ता, और नागरी प्रचारिणी पत्रिका खास थीं। ज्यादातर पत्र कलकत्ते से निकलते थे और हिन्दी पाठकों पर उन्हीं का सब से ज्यादा असर था।

इन पत्र-पत्रिकाओं के संपादक हिन्दी के मशहूर लेखक होते थे। यह बड़े-बड़े लेखक जो अक्सर संस्कृत-फारसी के भी पण्डित थे, उस वक्त हिन्दी के गद्य का स्वरूप बनाने और हिंदी का प्रचार करने में लगे हुए थे। इनमें बाबू बालमुकन्द गुप्त, पण्डित बदरीनारायण चौधरी, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० गोविन्दनारायण मिश्र, पं० माधवप्रसाद मिश्र, पं० चन्दधर शर्मा गुलेरी, पं० पद्मसिंह शर्मा; पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र; पं० सदानन्द मिश्र, पं० रामचन्द शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दरदास, लाला भगवानदीन और बाबू गुलाबराय जैसी ऊँची चोटी के लेखक थे।

यह पत्र दो किस्म के थे। एक साप्ताहिक दूसरे मासिक-त्रैमासिक। साप्ताहिक पत्रों में सम्पादकीय टिप्पणी देश-विदेश की खबरें, बाजार के भाव; और कभी-कभी एक दो छोटे-छोटे लेख रहते थे। यह पत्र दो या ज्यादा से ज्यादा चार सफे के और कोई-कोई तो एक आफिस-टेबिल की साइज के इसलिए होते थे कि छोटी साइज के पत्रों को देख कर पाठक कहता "यह कैसा पतला-पतला सा अख़बार है।" इन समाचार पत्रों का सम्पादन ठीक से न होता था! अङ्गरेजी के अखबारों से अनुवाद करके खबरें दी जाती थीं। तार, संवाददाता, सहकारी संपादक, बाकायदा दफ्तर, प्रूफरीडर बगैरह की जरूरत न पड़ती थी। खबरों की भाषा बड़ी चटकती-मटकती और लच्छेदार होती थी। जिसकी नाजो-अदा से खबर का तो कचूमर निकल जाता था। महत्व के अनुसार मोटी पतली हैडलाइनें देकर खबर छापने का उन दिनों चलन न था। खबरों का चुनाव, उनका डिस्प्ले, उनकी भाषा आज की पत्रकार-कला के बहुत पीछे थी, आर्यसमाज और सनातनधर्म के झगड़े और बालविवाह, विधवाविवाह के सवालों को लेकर देश में चले समाज-सुधार आन्दोलन की चरचा तो उनमें खूब रहती थी, लेकिन राजनैतिक विषयों की चरचा या सरकार के कार्यों की नुक्ताचीनी बहुत कम होती थी।

इसके अलावा जो मासिक-त्रैमासिक पत्र थे उनमें सम्पादन कला की कमी खटकती थी। उन पत्रों का रूप-रंग तो मामूली दर्जे का होता ही था, लेखों का चुनाव, उनमें तरमीम, उनका सम्पादन आदि भी न होता था, विषय भी इने-गिने होते थे।

इस तरह सम्पादन कला और पत्रकारकला उस वक्त या तो थी ही नहीं या अपने प्रारम्भकाल में थीं। इसके दो कारण थे; पहला, तो यह कि पाठक बहुत कम थे और ग्राहक बढ़ाने का मसला हमेशा सामने रहता था। अक्सर पत्रों के सौ दो-सौ से ज्यादा ग्राहक न होते थे। फिर पत्रकारकला पर ध्यान देने या उसका विकास करने के साधन जुटाने का मौक़ा ही कहां था? इसीलिए ज्यादातर पत्र लीथो पर छपते थे।

दूसरा सवाल था भाषा का। उस वक्त तक हिन्दी के गद्य की कोई साफ़ सुथरी शक्ल न बन पायी थी। प्रांतीय प्रयोगों, व्याकरण की गलतियों और अलंकारों की भरमार

---

* आल इण्डिया रेडियो लखनऊ के सौजन्य से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भाषा चुलबुली और व्यंगपूर्ण होते हुए भी बेढंगी थी, यहां तक कि लिखावट का भी कोई स्टैन्डर्ड रूप न था।

आचार्य द्विवेदी ने सब से पहले लेखों का संपादन, संशोधन करना शुरू किया, बाकायदा विषयों का चुनाव कर सरस्वती को सजधज के साथ निकाला और जिस एक कारण से हिन्दी पत्रकार कला ही नहीं, बल्कि समूचे गद्य-साहित्य का विकास रुका हुआ था, उसे उन्होंने मिटा दिया। यानी हिन्दी के गद्य की भाषा का स्वरूप निश्चित कर दिया।

व्याकरण की गलतियां दूर करने के लिए उन्होंने सरस्वती में एक लेख "भाषा की अनस्थिरता" नाम से लिखा। कुछ दिनों के लिए हिन्दी पत्रकार कला में बड़ी सरगरमी रही और इस मसले पर लोगों ने विद्वतापूर्ण विचार प्रगट किये। बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने जब आत्माराम के नाम से भारतमित्र में द्विवेदी जी के खिलाफ लिखा तो पंडित गोविन्दनारायण झा ने "आत्माराम की टेंटें" नाम के लेख में उनको जोरदार जवाब दिया। इन्हीं दिनों पंडित सखाराम देउस्कर ने विभक्तियों का सवाल उठाया। पं० गोविन्दनारायण मिश्र ने कलकत्ते की 'हितवार्ता' में एक पांडित्यपूर्ण लेखमाला निकाली, जिसमें उन्होंने कहा कि विभक्तियों को शब्दों के साथ लिखना चाहिए। लाला भगवानदीन और आचार्य द्विवेदी ने इसका विरोध किया। इससे लेखक दो दलों में बट गये। इस बहस और चरचा से यह फायदा हुआ कि अब लेखक अपनी भाषा के बारे में सतर्क रहने लगे और हिन्दी गद्य का स्वरूप स्थिर हो चला।

आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी के गद्य की साहित्यिक भाषाएँ बनायी और उनके समय के दूसरे लेखकों ने हिन्दी के समाचार पत्रों की। इससे नये-नये विषय सामने आये और उनकी अपनी-अपनी शैलियां और शब्द योजनाएँ बन चलीं। इन लेखकों और पत्रकारों की कोशिश से हिन्दी के गद्यसाहित्य और पत्रकार-कला के विकास के लिए अनुकूल जमीन तैयार हो गयी।

सरस्वती की देखादेखी इन्दु, लक्ष्मी, प्रभा, प्रतिभा, शारदा, मनोरमा, मर्यादा बहुत-सी पत्रिकाएँ निकलने लगीं। खास-खास विषयों को लेकर भी पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं।

हम पहले कह चुके हैं कि क्यों द्विवेदीजी के जमाने में राजनैतिक विषयों को लेकर बहुत कम चरचाएँ रहती थीं। लेकिन समाचार पत्रों और पत्रकार-कला का किसी देश के राजनैतिक जीवन से गहरा सम्बन्ध रहता है। इसलिए जैसे ही भाषा का मसला हल हुआ, और दूसरी ओर बंगभंग आन्दोलन से देश में राजनैतिक चेतना की लहर फैली, हिन्दी पत्रकार-कला की यह कमी भी दूर हो चली। बाबू बालमुकन्द गुप्त ने लार्ड कर्जन के खिलाफ अपना "शिवशम्भू का चिट्ठा" लिखा जो कलकत्ते के भारतमित्र में धारावाहिक रूप से छपा। श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने गम्भीर राजनैतिक लेख लिखने शुरू किये। हितवार्ता, भारतमित्र और हिन्दुस्तान में राजनैतिक चरचाएँ होने लगीं। इसी बीच में पं० सुन्दरलाल का कर्मवीर, प्रताप और अभ्युदय निकले। इन पत्रों ने हिन्दी भाषी जनता की राजनैतिक चेतना पर गहरा असर डाला। यह पत्र राष्ट्रीय थे और इनकी पूरी सहानुभूति राष्ट्रीय आन्दोलनों के साथ रही। अभ्युदय को पंडित मदनमोहन मालवीय और पं० कृष्णकान्त मालवीय का सहयोग प्राप्त था। पिछला महायुद्ध जब छिड़ा तो हिन्दी पत्रकार-कला का विकास रुक-सा गया। क्योंकि लड़ाई के जमाने में उन पर और भी पाबन्दियां लग गयीं। सन् १९२० तक यही हाल कायम रहा।

युद्ध के बाद देश की राजनैतिक फिजां बदल गयी। राजनैतिक बेचैनी बढ़ी और असहयोग और खिलाफ़त आन्दोलन का जमाना आया। इस हलचल के युग ने श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर और श्री गणेशशंकर विद्यार्थी जैसी दो जबरदस्त पत्रकार हस्तियां पैदा कीं। सन् १९२० में बनारस से दैनिक आज निकला। पराड़करजी उसके सम्पादक हुए। उन्हीं दिनों कानपुर का साप्ताहिक प्रताप, दैनिक बना और स्वर्गीय श्री गणेशशंकरजी ने उसका संपादन-कार्य संभाला। अंगरेजी पत्रकारकला का गहरा अध्ययन किये ये दोनों व्यक्ति सही मानी में पत्रकार थे। इन्होंने हिन्दी की पत्रकारकला की कायापलट करदी। आजकल की पत्रकारकला के अन्दर महत्व की खबरें पाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उन्हें आकर्षक ढंग से फैलाने के अलावा उन खबरों के अच्छे बुरे असर के बारे में जनहित की दृष्टि से राय जाहिर करना एक बहुत जरूरी फर्ज होता है। और देशों में समाचार पत्रों की ताकत सभी क़बूल करते हैं, क्योंकि वे जनता की राय का इजहार करते हैं और फौरी सवालों पर जनता को अपनी राय कायम करने में मदद देते हैं। 'आज' और 'प्रताप' ने हिन्दी पत्रों में एक नयी शक्ति पैदा करदी जिससे वे देश की राजनैतिक गतिविधि पर असर डालने योग्य हो गये। पराड़करजी और गणेशशंकरजी की टिप्पणियाँ सुलझी, गंभीर और देश की कौमी करवटों, इरादों और तमन्नाओं को इजहार करनेवाली होती थीं, इसलिए आज और प्रताप का प्रभाव इतनी तेज़ी से बढ़ा कि कलकत्ते के समाचार-पत्र हिन्दी भाषी प्रान्तों में अपनी धाक खो बैठे।

अब हिन्दी पत्र भी तार से खबरें मँगाने लगे। संवाददाता तैनात किये गये। खबरों का बाकायदा सम्पादन कर उचित हैडलाइनें देने लगे और अँगरेजी अखबारों की तरह उनमें भी ताजी खबरें रहने लगीं। सन् १९२० के बाद हिन्दी में जितने भी दैनिक अखबार निकले हैं, वे न सम्पादन या पत्रकारकला की दृष्टि से और न जनता पर असर डालने की नजर से आज और प्रताप से आगे बढ़ पाये हैं। सन् १९२० और ३० के बीच में कई दैनिक निकले, जिनमें अर्जुन, विश्वमित्र, लोकमत, वर्तमान, हिन्दी-मिलाप और लोकमान्य खास थे।

इस बीच में अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकायें भी निकलीं, जिन्होंने साहित्य की बड़ी सेवा की। साप्ताहिकों में सैनिक, मतवाला, भविष्य, विश्वमित्र, जागरण, स्वदेश और पाटलिपुत्र आदि अपने-अपने विषय में मशहूर पत्र थे। मासिकपत्रों में माधुरी, सुधा, विशालभारत, विश्वमित्र, चाँद आदि प्रसिद्ध पत्रिकाएँ निकलीं, जिन्होंने महायुद्ध के बाद की सभी साहित्यिक-धाराओं को ग्रहण किया और हिन्दी के कहानी, उपन्यास, कविता, आलोचना साहित्य का विकास करने में प्रशंसनीय कार्य किया।

सन् १९३० से अब तक हिन्दी के दैनिक समाचार-पत्रों में पत्रकारकला की दृष्टि से कोई महत्व का विकास नहीं हुआ, सिवाय इसके कि इस जमाने में दरजनों नये दैनिक प्रकाशित हुए और जनता पर सिर्फ उन्हीं पत्रों का प्रभाव बढ़ा जिनकी नीति राष्ट्रीय और कांग्रेस के पक्ष में थी। लेकिन साप्ताहिक और मासिकपत्रों ने जरूर कई नये कदम उठाये। इस जमाने में देश की राजनैतिक चेतना उग्र हो गयी और उसके साथ-साथ किसान-मजदूरों का समाजवाद के उसूलों के मुताविक सङ्गठन होने लगा, जिससे एक नये किस्म के राजनैतिक साप्ताहिक का जन्म हुआ। वर्ग-संघर्ष की बुनियाद पर जनता और समाजवादी दलों का सङ्गठन इन पत्रों ने किया। इनका काम सिर्फ रायजनी करना ही नहीं, बल्कि रोजमर्रा की तहरीक में जनता की रहनुमाई करना भी था। 'जनता', 'संघर्ष' और 'नया हिन्दुस्तान' ऐसे पत्रों में मुख्य थे। व्यवसाय की दुनिया से पत्रकारकला को अलग कर और एक नये ढाँचे में ढाल कर उन्होंने यह साबित कर दिया कि समाचारपत्र उथल-पुथल के जमाने में एक नेता का भी काम कर सकते हैं जिनके प्रति पाठकों का वही प्रेम, वही वफादारी, इशारे पर कुरबान करने की वही मुस्तैदी हो सकती है जो एक नेता के प्रति कार्यकर्ता की होती है।

मासिकपत्रों में भी इस जमाने में काफी चहल-पहल रही। देश के विद्वानों के सामने राष्ट्रभाषा का सवाल उठा। राष्ट्रभाषा हिन्दी हो, उर्दू हो, या दोनों के मेल से हिन्दुस्तानी हो, इस पर मासिकपत्रों में जोरदार बहसें रहीं। स्वर्गीय प्रेमचन्दजी जो सन् १९३० से ही 'हंस' निकाल रहे थे हिन्दुस्तानी के हामी थे। सन् १९३५ के अखीर में गान्धीजी की सलाह से उन्होंने और श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दुस्तानी का अन्यभाषी प्रान्तों में प्रचार करने के लिए और हिंदुस्तान की सभी बड़ी-बड़ी जबानों को नजदीक लाने के लिए हिन्दी, उर्दू और दूसरी भाषाओं के प्रतिनिधियों के सहयोग से 'भारतीय साहित्य परिषद' की नीव डाली और हंस उसका मुखपत्र हुआ। प्रेमचन्दजी की मृत्यु के समय तक हंस इसी रूप में निकला। उसमें देश की खास-खास जबानों के लेखकों की चीजें देवनागरी लिपि में हिन्दुस्तानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरजुमे के साथ छपती रहीं। भारतीय भाषाओं की एकता साबित करने और उन्हें एक दूसरे के नजदीक लाने की यह अनूठी कोशिश थी, और उसने हिन्दी पत्रकार कला के सामने नये मकसद और फर्ज रख दिये। हिन्दी के मासिक पत्र जगत् में प्रेमचन्द एक बहुत बड़ी हस्ती थे।

इस जमाने में मासिक पत्रों में कई बड़ी अहम बहसें चलीं। पश्चिमी साहित्य की जानकारी रखने वाले लेखक अपने साथ नये विचार लाये थे। इसलिए अब की बहसों में साहित्य के मकसद, उसकी शैली और जिन्दगी के प्रति दृष्टिकोण पर बहसें चलीं जिससे हिन्दी लेखकों को नयी प्रेरणायें मिलीं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के संपादन काल में 'विशालभारत', श्री सुमित्रानन्दन पन्त के 'रूपाभ' और 'हंस' ने यह बहसें छेड़ीं। जमाने की रफ्तार के साथ साहित्य की प्रगति बनाये रखने में इन पत्रों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। मासिक पत्रों की पत्रकारकला की उन्नति की एक यह भी कसौटी होती है। आजकल विशालभारत साहित्यिक चरचाएँ करना छोड़ गाय बैलों की नस्लों की चरचा करने में मग्न है। रूपाभ बन्द हो चुका है। सिर्फ हंस एक ऐसा पत्र है जो नये उत्साह से साहित्य की सब से नयी धारा 'प्रगतिवाद' की रूपरेखा गढ़ने में लगा है। साहित्य-संदेश, माधुरी, सुधा, सरस्वती, वीणा, आरती, विश्ववाणी आदि दूसरी पत्रिकाएँ उपयोगी काम कर रही हैं। लेकिन उनमें से कुछ तो सन् १९१४ और १९३० के बीच की विचारधाराओं में ही बह रही हैं और कुछ नयी प्रगतियों के साथ चलने की कोशिश कर रही हैं। आज हिन्दी पत्रकारकला में जो बात खटकती है वह यह कि एक-दो को छोड़कर कोई बड़ा पत्रकार नहीं है और ज्यादातर आजकल के उथल पुथल के जमाने के लिए रिपवान विंकिल्स हैं। थोड़े में यह हिन्दी पत्रकारकला के विकास का इतिहास है।

हिन्दी पत्रकार कला का विकास अनेक बाधाओं और पाबंदियों के बीच हुआ है। पाठकों और उचित साधनों की कमी आज भी उसका हाथ पैर बाँध देती है। हिन्दी के 'आज' और अङ्गरेजी के 'स्टेट्समैन' के दफ्तरों को देखने से हिन्दी पत्रकारकला की मजबूरियाँ अपने आप मालूम पड़ जायंगी। हिन्दी में रायटर या असोसियेटेड प्रेस जैसी कोई एजेन्सी भी नहीं है और खबरों के लिए अङ्गरेजी तारों का अनुवाद भाषा को तो बिगाड़ता ही है वक्त से ताजी खबरें पहुँचाने में काफी दिक्कतें भी पेश कर देता है। जनमत बनाने के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता पर सख्त कानूनी पाबंदियाँ हैं इतने कम साधनों और इतनी पाबन्दियों के बावजूद हिन्दी पत्रकारकला तरक्की करती आयी है। लेकिन यह तरक्की एक बंधे घेरे में हुई है जिसमें शायद अब गुञ्जायश नहीं रही। इसलिए स्वतंत्र देशों की पत्रकारकला तक पहुँचने की आगे की मंजिलें पूरी करने के लिए इस घेरे को टूटना चाहिए।

* * *

'श्लील-अश्लील, अच्छा-बुरा, पुण्य-पाप, सुन्दर-असुन्दर, इन शब्दों या इनके भावों का मूल्य समाज व नीति के क्षेत्रों में है, दर्शन व विज्ञान में नहीं। दर्शन या विज्ञान के ये शब्द हैं भी नहीं। जब हम श्लील-अश्लील के मूल या मूल स्वरूप तक पहुँचे तब हम दर्शन व विज्ञान में प्रवेश कर गये। यह जान लेने पर भी कि असलियत क्या है उसका सामाजिक रूप क्या है, क्या हो, वह कैसे दिया जाये, यह जानना बाकी ही रहता है। शुद्ध या मूल रूप से स्थूल रूप सदैव दूसरा रहेगा। निराकार, निर्गुण ब्रह्म शुद्ध व मूल सत्य है। मगर उसका यह स्थूल-आकार हमारा संसार उससे कितना जुदा दीखता है। मूलरूप स्थूल शरीर में स्पिरिट का काम देता है। यही बात किसी भाव या ज्ञान की है। यह सच है कि अश्लीलता वस्तु में नहीं भावना में अर्थात् व्यक्ति में है। यह भी माना कि दर्शन-विज्ञान में न कुछ श्लील है न अश्लील। परन्तु हमारे लिये प्रस्तुत जरूरी व असली सवाल तो यह है कि साहित्य-समाज या जीवन में अश्लीलता का स्थान रहे या न रहे यदि न रहे तो उसकी रोक-थाम कहाँ से की जाये? इसका उत्तर हमें समाज-व्यवस्था व नीतिशास्त्र से पाना है, दर्शन व विज्ञान से नहीं। इनका उत्तर यही हो सकता है कि अश्लीलता अवांछनीय है और मेरी राय में उसकी रोक वहीं से की जाये जहाँ से मन में प्रीति या सौन्दर्य के भाव उन्माद का रूप पाने लगे। जब सारासार का विवेक व लोकलाज छूटने लगे, देश, काल, पात्र की मर्यादा भंग होने लगे; तब समझना चाहिए कि उन्माद का प्रवेश हो रहा है।"

—जीवन साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिवाद का स्टैण्ड

[श्री भारतभूषण अग्रवाल एम०ए०]

'प्रगति' की वादिता को लेकर इधर हिन्दी साहित्य में काफी चर्चा होने लगी है। विविध पत्रों में इधर उस पर पक्ष-विपक्ष में निबंध पढ़ने को मिलते हैं। गत साहित्य-सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण भी सीधा प्रगतिवाद से सम्बन्ध रखता था। यह सिद्ध करता है कि सम्प्रति 'प्रगतिवाद' साहित्य चर्चा का सब से महत्वपूर्ण विषय है। मैं इसे 'प्रगतिवाद' के लिए गौरव की वस्तु मानता हूँ। पर यदि अधिकांश हिन्दी-प्रेमियों ने इसे बवण्डर समझ कर उसे बिना सोचे-समझे उसके लिए कटुता और व्यंग्य का प्रयोग करने के स्थान पर उस पर शान्ति और गंभीरता से विचार और मनन किया होता तो हिन्दी साहित्य और 'प्रगतिवाद' दोनों की ही भलाई होती। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि इसमें हिन्दी जनता की अपेक्षा प्रगतिवाद को जानने वालों की ही भूल अधिक है। न जाने कितने प्रकार का खिचड़ी-साहित्य 'प्रगतिशील' के नाम से प्रचार में आता रहा और ये लोग चुप्पी साधे बैठे रहे। यह बात नहीं कि इन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट ही न किया हो, पर प्रगति को समझने में जो श्रम-साधना की आवश्यकता है उसको उन्होंने अपने स्पष्टीकरणों से घटाने के स्थान पर और भी बढ़ा दिया। 'प्रगति' को पूरी तौर पर जानने के लिए एक भारी बौद्धिक परिश्रम (Intellectual effort) की जरूरत है। हिन्दी की जनता अभी यह नहीं कर सकती। इसलिए उन व्यक्तियों को जो 'प्रगति वाद' को समझते हैं, जो वास्तव में गिने चुने हैं, और जिनमें इन पंक्तियों का लेखक नहीं है, उनको चाहिए था कि वे उनके परिश्रम को कुछ कम करते।

'प्रगति' पर एक पुस्तक की कमी मुझे बहुत खटकती है। एक बार 'साहित्य-सन्देश' ने 'प्रगति अंक' निकालने की सोची थी, पर वह कार्यरूप में नहीं हो पायी। हो पाती तो शायद काफी भ्रम और आक्षेपों से 'प्रगतिवाद' बच जाता। हिन्दी साहित्य में ये चक्षुकटु आँधी भी न उठती फिर भी 'प्रगति' के विषय में जो लिखते हैं उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि वे पहले यह जानने की चेष्टा करें कि 'प्रगतिवाद' का सिद्धान्त क्या है। मुझे कहने दिया जाय कि आज के तथाकथित 'प्रगतिशील' साहित्य से उसकी परख न की जानी चाहिए क्योंकि यह शायद चौंकाने वाली बात तो हो, पर यह सच है कि हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य की अभी बहुत कमी है और बहुधा जिस साहित्य को हम 'प्रगतिशील' की तरह जानते हैं, उसका अत्यधिकांश अ-'प्रगतिशील' होता है।

'प्रगति' पर मेरा अध्ययन अधूरा है और उस पर बोलने का, इसलिए, मुझे अभी अधिकार नहीं है। अनेक तर्कों को सुन कर मैं बोलने को आकुल हो उठा हूँ—और फिर इसीलिए चुप रह गया हूँ। कई बार ऐसा भी हुआ कि लिख कर रख लिया, प्रकाशित नहीं किया। पर विगत 'साहित्य-सन्देश' के अङ्क में 'मानव'जी का लेख पढ़ कर तबियत नहीं मानी। वे मेरे मित्र हैं—मुझे उनसे कुछ बातें कर लेने का अधिकार है। शायद यही अधिक उपयुक्त होता कि मैं उनसे व्यक्तिगत रूप से बातें करता। पर फिर 'साहित्य-सन्देश' की मारफत बातें करना अधिक लाभदायक दिखाई दिया। यदि यह बात, या इस लेख में का व्यक्तिगत ढङ्ग (Personal tone) आपको खटके तो मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। मेरा उद्देश्य और कुछ नहीं 'प्रगति' के विषय में कतिपय स्पष्टोक्तियाँ कर कुछ भ्रान्तियों को दूर करना है। मैं भरसक कोशिश करूँगा कि उस व्यंग्यात्मक तरीके से दूर रहूँ जो 'मानवजी' ने अख्तियार किया है।

१—'प्रगति' साहित्य का स्थायी विशेषण हो सकता है यह ठीक है। पर यह 'मानवजी' ने भी स्वीकार किया है कि वह 'प्रगतिवाद' में एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है। पर वह विशिष्ट अर्थ 'किसान, मजदूर, दलित एवं शोषित वर्ग के सुख-दुःख को चित्रित करने का दावा' नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात का आज तक स्पष्टीकरण नहीं हुआ कि 'प्रगतिवाद' द्वन्द्वमूलक पदार्थवाद (Dialectical materialism) पर आधारित है। वह विषयों को सीमित कभी नहीं करता। एक सेठ, वकील और कॉलेज गर्ल का चित्रण करने वाला कलाकार एक किसान या मजदूर के चित्रकार से कहीं अधिक और सच्चा 'प्रगतिवाद' हो सकता है। विषयों की रोक का नाम 'प्रगति' नहीं है। 'प्रगति' का सच्चा स्वरूप उसके दृष्टिकोण में है। वह एक विशिष्ट दृष्टिकोण से संसार और जीवन को देखता, समझता और निर्मित करता है। उस दृष्टिकोण को अपनाने वाला व्यक्ति ही 'प्रगतिवादी' है चाहे वह किसी विषय पर लिखे। वह विशेष दृष्टिकोण क्या है यह मैं न तो यहाँ बताना चाहता हूँ और न मैं पूरी-पूरी तौर पर जानता ही हूँ।

(२) 'निश्चित ही राजनीति के क्षेत्र का 'समाजवाद' 'प्रगति' के नाम से काव्य में आन्दोलन करने, खलबली मचाने आया है।' में 'समाजवाद' के स्थान पर मार्क्सवाद (Communism) रखना पसन्द करूंगा। 'समाजवाद' (Socialism) का रूपान्तर है। उसमें और (Communism) में अन्तर है। (Communism) का अनुवाद 'साम्यवाद' हुआ है, पर बहुधा वह 'समाजवाद' का पर्याय माना जाता है। अतः 'मार्क्सवाद' कहना बहतर होगा। यह सच है कि 'प्रगतिवाद' खलबली मचाने आया है। पर अनधिकारी विघ्नकर्ता परशुराम की तरह नहीं—सच्चे सेवक की भांति। उससे डरने के पहले 'मानवजी' उस हल चल पर ध्यान देने की कृपा करें जो 'छायावाद' ने हिन्दी में मचा दी थी। नए विचारों से आन्दोलन होना स्वाभाविक ही है।

उपरोक्त उद्धृत वाक्य से यह भी जान पड़ता है कि 'मानव' जी केवल 'प्रगतिवाद' से ही नहीं 'साम्यवाद' से भी नाराज़ हैं। 'साम्यवाद' के विषय में कुछ भी कहने का यह स्थान नहीं। फिर भी इतना लिखना अक्षम्य न माना जाना चाहिए कि 'प्रगतिवाद' से भी अधिक भ्रांतियाँ 'साम्यवाद' के सम्बन्ध में जन-साधारण में घर पा चुकी हैं। भारत की संस्कृति में 'साम्यवाद' फिट नहीं होता—यह बात निर्मूल है—क्योंकि साम्यवाद किसी संस्कृति पर चोट नहीं करता।

(३) दूसरे पैराग्राफ से यह तुरत और बखूबी जाना जा सकता है कि पूरे 'प्रगतिवादी' साहित्य के अभाव में कैसे बेमेल और खिचड़ी-साहित्य को 'प्रगतिवादी' मान लिया गया है। 'मानव' जी ने ये चार-चीज़ें गिनाई हैं जिन्हें (उन्हीं के शब्दों में) प्रगतिवादियों ने अपने को जागृति का अग्रदूत सिद्ध करने के लिए समेटा है। (१) समाजवाद (२) राष्ट्रीय भावना (३) यथार्थवाद (४) जड़वाद। यहां फिर एक बात बहुत स्पष्टता से कह दूं कि 'प्रगतिवाद' का आधार इनमें से एक—और केवल एक है—समाजवाद! राष्ट्रीय भावना उसमें आ जाती है—ठीक उसी तरह जिस तरह रास्ते में सराय आ जाती है। वैसे समाजवाद, और इसलिए 'प्रगतिवाद' अन्तर्राष्ट्रीय है—केवल राष्ट्रीय भावना के बलपर, भारत के वैभव और सुख को ही अपना लक्ष्य बनाने वाले जो साहित्यिक हैं—वे 'प्रगतिवादी' नहीं हैं। 'विजयी-विश्व' में मैं स्पष्टतः फासिज्म का भाव पाता हूँ। यहाँ उस बात का भी जिक्र कर दूं जिसे 'मानव' जी समेटने में छोड़ गए हैं—विद्रोह-भावना। अ-लक्ष्य अ-हेतुक विद्रोह, शंकर से नाश, प्रलय, तांडव का अनुरोध अ 'प्रगतिवाद' है। और सोचा जायगा तो मालूम होगा कि उसके बल में अटूट निराशा और भयानक व्यर्थता है। हिन्दी के अधिकांश कवि जो बड़े-बड़े (bombastic) पद-समूहों द्वारा धमनियों में रक्त खौलाने का प्रयत्न किया करते हैं—'प्रगतिवादी' नहीं। 'प्रगतिवादी' विचारक और कलाकार बौद्धिक—भावा-श्रित नहीं—विद्रोह का पक्ष ग्रहण करता है क्योंकि वह सोद्देश्य है। इसलिए नहीं कि वह तोड़ना-फोड़ना पसन्द करता है।

अब रहे यथार्थवाद और जड़वाद। 'मानव' जी दोनों शब्दों के क्या अर्थ लेते हैं—यह स्पष्ट नहीं। पर मेरा ख्याल है कि वे, जैसा कि उनके पूरे लेख को पढ़ने से पता लगता है, यथार्थवादिता से अर्थ स्वाभाविकता से लेते हैं। 'स्वाभाविकता' का प्रयोग यहाँ हमने 'मानवजी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उधार लिया है, हालाँकि उनका अर्थ 'स्वाभाविकता' से अ—'अस्वाभाविकता' न होकर 'वास्तविकता' से है। यानी आदर्श का चित्रण न होकर वास्तविक के चित्रण से यथार्थवाद से जो अर्थ साधारणत: लिया जाता है—उसके कारण यह कहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है कि 'प्रगतिवादी' यथार्थवादी नहीं होता। यह स्वीकारोक्ति चौंकानेवाली ही है पर 'प्रगति वादी' फोटोग्राफिक (वास्तविक) चित्रण का हामी नहीं। सतह पर जो होता है—उसको दर्ज (record) करने वाला क्लर्क वह नहीं है--वह व्याख्याकार है—interpreter है। यथार्थवाद में और मार्क्सवादी यथार्थवाद में यह अन्तर है कि पहला वाद उसका हू-ब-हू चित्र उपस्थित करता है—यदि कुछ परिवर्तन, करता है तो यही कि अच्छे स्थलों को यथासाध्य कम करता हुआ गन्दगी का ही एक ढेर लगा देता है। 'उग्र' की बात छोड़ भी दें तो हाल में भी दो एक ऐसे उपन्यास-कार हो रहे हैं (जिनका नाम लेकर मैं व्यर्थ की कीचड़-उछाल में पड़ना पसन्द नहीं करता) जो समाज के इस पहलू को बड़े अतिरेक और विलास-भाव से देखते हैं। 'प्रगतिशील' का वह रास्ता नहीं है। 'प्रगतिवादी' जिस समाज का भी वह चित्रण कर रहा हो (और सभी वर्ग के समाज का चित्रण करने को वह स्वतंत्र है) उसके अन्तर में कार्य करने वाली जीवन-निर्धारिणी शक्तियों की खोज-खबर लेकर उस समाज के भविष्य की झलक भी देता है। यानी वर्तमान का ही चित्रण वह इस प्रकार करता है कि उसमें उसका भविष्य झलक जाय। इसलिए 'प्रगतिवादी' साहित्य सर्वथा सोद्देश्य है।

जड़वाद के विषय में कुछ कहना मैं पसन्द नहीं करता। ईश्वर का चित्रण करना साहित्य का कार्य है या नहीं, होना चाहिए या नहीं—इस प्रश्न को छोड़ देने की अनुमति मुझे मिलनी चाहिए। हाँ, सर्प को सामने पड़ा देख, इस भरोसे कि उसमें से मुकुट धारी कृष्ण निकल कर आलिंगन कर लेंगे कोई 'प्रगतिवादी' प्रह्लाद की तरह उससे लिपटने नहीं जायगा यह मैं माने लेता हूँ। 'मानव' जी ने लिखा है कि 'संकट में सबसे पहली बात जिसपर मनुष्य संशय करता है वह ईश्वर है यह अपने आप ईश्वर के वायव्य (काल्पनिक) आधार को बताता है।

'मानव' जी के लेख में आगे जो बातें उठाई गई हैं (जो काफी ही हैं) उनमें से कुछ को छूते मैं डरता हूँ। अध्ययन, क्रोध नहीं, ही से यह विवाद सुलझ सकता है। प्रगतिवादी क्रोध में ऊलजलूल बकते हैं तो वह भी बुरा है, और प्राचीन-पन्थी भी घर में सुई ढूँढ़ने के बजाय यदि सड़क पर ढूँढ़ते हैं—तो व्यर्थ है। साहित्य में जो बात व्यर्थ होती है वह हनिकारक होती है—इसके अतिरिक्त कुछ बतें मेरे काम की हैं जिनको स्पष्ट करने के लिए मैं एक स्वतंत्र लेख के विस्तार की माँग पेश कर विदा लेता हूँ।

* *

मिर्ज़ा अज़ीमबेग चगताई

हास्यरस के हिन्दी और उर्दू के प्रसिद्ध लेखक मिर्ज़ा अज़ीमबेग चगताई विकराल काल के अट्टहास में विलीन हो गए। मिर्ज़ा साहब ने उर्दू साहित्य को तीन साल में तीस किताबें दीं। इनकी बिक्री ने उर्दू में एक 'रेकार्ड' कायम किया। रिसालों में मिर्ज़ा साहब इतने ज्यादा चमकने लगे कि एक समालोचक ने झुँझला कर कहा 'चगताई! चगताई के सिवा क्या कोई दूसरा कहानी-लेखक नहीं!'

उर्दू से चगताई साहब ने हिन्दी में प्रवेश किया और शीघ्र ही हिन्दी के पत्रों में भी आपकी कहानियाँ निकलने लगीं। 'शरीर बीबी' और 'कोलतार' के नाम से दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

हिन्दू मुसलिम एकता के आप पक्के हामी थे और धर्म के नाम पर जो झगड़े होते हैं उनके लिये आप कुरान की उस आयत की ओर इशारा किया करते थे जिसमें कहा गया है कि कोई ऐसा मुल्क नहीं जहाँ खुदा ने अपनी किताब और अपना पैगम्बर नहीं भेजा। यही भावना भरी हिन्दुस्तानी संस्कृति आपकी लिखी रचनाओं की पृष्ट-भूमि रहती थी।

—सम्मेलन पत्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गोदान' : एक समालोचनात्मक विश्लेषण

[श्री रामेश्वरप्रसाद गुप्त एम. ए.]

गाँधीजी और गांधीवाद से प्रभावित होकर प्रेमचंद ने 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रङ्गभूमि' में भारत के हिन्दू-समाज और पीड़ित-किसान की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया था। अपनी इन कृतियों में प्रेमचन्द ने गांधीवाद के बताये हुए रास्ते पर इन समस्याओं को सुलझा भी दिया था। किन्तु उनकी संवेदनशील और मार्मिक आँखें तो इस वास्तविकता को फिर भी देखती ही रहीं कि समस्या सचमुच कुछ सुलझी नहीं है। दुख बढ़ता ही गया है। उनका बतलाया हुआ रास्ता तथ्यहीन और ढकोसला मात्र हो रहा है। तब वे सहमे, ठहरे और गूढ़दृष्टि से देखा। इस सहमने में, ठहरने में और एकाग्र और तीक्ष्ण दृष्टि से देखने में उनका अभूतपूर्व मानसिक और भावात्मक विकास हुआ। गांधी जी और गांधीवाद से प्रभावित प्रेमचन्द, गांधी जी और गांधीवाद दोनों को पीछे छोड़ गए; उनको कोसा नहीं, उनको स्पष्टतः तथ्य-हीन भी नहीं बतलाया। उनको केवल अपने भाग्य पर छोड़कर स्वयं आगे को चल दिये। हृदय पर आधिपत्य हुआ—होरीराम का। होरीराम अपने आपको बरबस उनके हृदय की गहराई में अंकित करता हुआ चला जा रहा था। सब कुछ मिटाकर सबकुछ हटाकर, वह उनके अन्तर-तम हृदय में बैठ गया फिर प्रेमचन्द ने अपना हृदय चीरा जैसा होरीराम था वैसा हमारे सम्मुख उपस्थित करके स्वयं विलीन हो गए।—मानो होरीराम के चले जाने पर उनके लिये भी कुछ नहीं रहा और वे भी चल दिए।

बौद्धिक-विकास—बुद्धि पर आधिपत्य हुआ प्रो० मेहता का। २० वीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) तक के विज्ञान, दर्शन और बौद्धिक चिंतन के फलस्वरूप जिस उच्चतम स्तर तक—जिस अन्तिम लिमिट तक एक मनुष्य का मानसिक अथवा बौद्धिक विकास हो सकता था, उतना मानसिक और बौद्धिक विकास प्रो० मेहता का हुआ। प्रो० मेहता का आदर्श विकसित हुआ और वह आदर्श किसी स्वप्नलोक, किसी 'क्षितिज के उस पार का आदर्श नहीं किन्तु इसी लोक के विज्ञान और बौद्धिक चिन्तन पर स्थित आदर्श। हम स्पष्टतया देख सकते हैं कि प्रेमचन्द का भी मानसिक विकास इस हद तक हो चुका था—इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता। इस विकास में वे गांधी जी और गांधीवाद के मध्य युगीय संस्कृति और भावनाओं के आधार को तिलाञ्जलि दे (विज्ञान का अध्ययन किये बिना ही केवल सहानुभूति मात्र से) आधुनिक वैज्ञानिक सत्य और रेशनेलिज्म (Rationialism) के आधार पर अपने आदर्श को स्थित करते हैं। प्रो० मेहता के मानसिक विकास की Prof. Julian Huxley (प्रो० जूलिअन हक्सले) के मानसिक विकास से तुलना कीजिए (Prof. Huxley) को हम Wells, Shaw, Prof. Haldane, Aldons Huxley, B. Russel) आदि के समक्ष आधुनिक युगीन बौद्धिक विकास का प्रतिनिधि मान सकते हैं। और यही दिखलाने के लिये कि प्रो० मेहता का मानसिक विकास आधुनिक वैज्ञानिक और बौद्धिक विकास की कोटि का है। हम उनके विचारों की प्रो० Huxley के विचारों से तुलना करते हैं। प्रो० मेहता—"किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था। यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गई थी कि प्राणियों के जन्म-मरण, दुख-सुख पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है। Prof. Huxley—'I do not believe in the existence of god or gods so far as we can see the universe rules itself." (मैं परमात्मा अथवा देवताओं की सत्ता में विश्वास नहीं करता। जहाँ तक हमें ज्ञात है संसार अपने आप से ही परिचालित होता है। अर्थात् संसार के कार्य-कलापों में कोई ईश्वरीय विधान नहीं। दोनों के विचारों की समता स्पष्ट है। प्रो० मेहता—"अगर ईश्वर के विधान इतने अज्ञय हैं कि मनुष्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ में नहीं आते तो उन्हें मानने ही में मनुष्य को क्या संतोष मिल सकता है।" Prof Huxley—"Even if a god does exist behind or above the universe, we can have no knowlelge of such a power......There are a number of questions that it is no use our asking." (यदि इस संसार के ऊपर या परे किसी ईश्वर की सत्ता मान भी लें तो भी हम ऐसी शक्ति के विषय में कुछ जान नहीं सकते। कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका हल करने के प्रयत्न से कुछ लाभ नहीं। अर्थात् उस अज्ञेय शक्ति के विषय में हम कुछ मान भी लें कुछ कल्पना भी करलें तो उससे मनुष्य को क्या सन्तोष मिल सकता है?) प्रो० मेहता—"द्वैत और अद्वैत का व्यावहारिक महत्व के सिवाय वह और कोई उपयोग नहीं समझते थे। और वह व्यवहारिक महत्व उनके लिए मानव-जाति को एक दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद को मिटाना और भ्रातृभाव को दृढ़ करना ही था।" Prof. Huxley—"If we translate salvation into terms of this world, we find that it means .....also achieving some satisfactory adjustment between ourselves and the outer world including not only the world of nature but the social world of man" (यदि मुक्ति अथवा अद्वैत भावना को इसी संसार की भाषा में परिणित करके देखें, अर्थात् उस की इसी संसार की कोई व्यावहारिक वस्तु मान कर देखें तो उसका यही अर्थ निकलता है कि हममें और वाह्य संसार में जिसमें प्राकृतिक पदार्थ और मनुष्य-समाज दोनों आ गए, कोई सुखद सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाये)।

प्रो० मेहता—"और जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो हमें हँसी आती है। यह मोक्ष और उपासना अहङ्कार की पराकाष्ठा है जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वही ईश्वर है। और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना और मोक्ष है।"

Prof. Huxley-"I believe that there exists a scale of heararchy of values ranging from simple physical Comforts to the highest satisfaction of love, aesthetic enjoyment etc. I do not believe that these are transcendental in the sense of being vouchsafed by some external power ordivi nity; they are the product of human natuie interacting with the outer world. ....Salvation means achieving harmony between different parts of our nature."

(मेरा विश्वास है कि जीवन में शुद्ध शारीरिक सुख से लेकर प्रेम और कलात्मक रसानुभूति आदि तक उत्तरोत्तर मूल्य की कई वस्तुएँ हैं। ये इस अर्थ में अलौकिक (अपार्थिव) नहीं कि ये किसी अज्ञात अथवा परमात्म-शक्ति के फलस्वरूप हैं। ये तो केवल मनुष्य प्रकृति और बाह्य संसार की आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हैं।......मनुष्य प्रकृति के विभिन्न भागों में सामञ्जस्य स्थापित करना ही मोक्ष है।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द अपने अन्तिम वर्षों में मध्ययुगीय और गान्धीवाद के सांस्कृतिक आधार (Basis) को पीछे छोड़ आधुनिक वैज्ञानिक और बौद्धिक (Rational) आधार को अपनाते हैं। विकासमय और प्रगतिशील संसार में वे अपने आपको मानसिक परतन्त्रता में जकड़े हुए पीछे अँधेरे में कैसे छोड़ सकते थे। उनका मानसिक परतन्त्रता के अँधेरे रूप से मानसिक स्वतन्त्रता के आलोक में पदार्पण करना कितना सुखद है।

भावात्मक विकास

ऊपर कह ही आए हैं कि प्रेमचन्द के हृदय पर आधिपत्य हुआ होरीराम का। जिस प्रकार भक्त भगवान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में, प्रेमी-प्रेमिका में विलीन रहते हैं उसी प्रकार प्रेमचन्द होरीराम में विलीन हैं। भक्त भगवान में लीन होकर उनकी खूब व्याख्या करता है, उनके स्वरूप का खूब निरूपण करता है, फिर भी उसके भगवान अदृष्ट से रह जाते हैं। किन्तु प्रेमचन्द के होरीराम का स्वरूप तो इतना सजीव हो उठा है, वह पग-पग पर प्रत्यत्त है— पग-पग पर वास्तविक होरीराम दृष्टिगत है। उसका स्वरूप एक बार देख लेने पर फिर हृदय से भुलाया नहीं जाता। क्या तुमने उसके दर्शन किये हैं! वह मँझले कद का, सांवलापन लिए हुए गेहूँए रंग का जीर्ण-शीर्ण, विपन्न और उदासीन सा, परम्परागत लकीर पर चलने वाला भोला कृषक है। भोला किन्तु छली भी, धर्मात्मा किन्तु स्वार्थी भी—पैसे को दांत से पकड़ने वाला। मानवता विहीन और तथ्यहीन बिरादरी और समाज का पक्का पिछलग्गू किन्तु विधवा झुनिया और चमारिन सिल्लो को आश्रय देनेवाला। ऐसा होरीराम है जो तथ्यहीन परम्परागत संस्कारों और विश्वासों का पुतला है किन्तु जिसमें मानव मोह और सहानुभूति सर्वथा लुप्त नहीं हुए हैं। वह कर्मण्य भी है अकर्मण्य भी। सुख से रोटी पाने की आशा में चौबीसों घंटे पिला रहता है; किन्तु इतना अकर्मण्य कि अपनी लीक से बाहर नज़र उठाकर देखने की तकलीफ नहीं करता। वह संस्कारों और परिस्थितियों के नीचे दबा हुआ इतना भीरु और डरपोक है कि पेट भरने की इच्छा रखते हुए भी अपनी असहायता और विपन्नता में हाथ में आया हुआ पैसा तक उद्विग्न होकर फेंक देता है—और फिर भूखा मरता है। मनुष्य के जीवन में इससे अधिक भयानक ट्रेजेडी (Tragedy) और क्या होगी?

होरीराम के चरित्र में कोई क्रमागत विकास नहीं है। होरीराम के अंतःकरण में (महान चरित्रों के समान) "चेतन" और "अचेतन" का द्वन्द्व नहीं, सूक्ष्म विचार और भावों की उथल-पुथल नहीं। प्रेमचंद ने होरीराम का चरित्र चित्रण नहीं किया है—केवल उसका चित्र खेंचा है। किन्तु चित्र ऐसा है जिसका 'बाहर' भी स्पष्ट और 'अंतर' भी स्पष्ट—होरीराम जैसा है, वैसा का वैसा तल्लीनता से बना बनाया तैयार। इस चित्र की सजीवता और वास्तविकता के सन्मुख "सुमन", "प्रेमशंकर" "सूरदास" आदि के विकासगत चरित्रों की रूपरेखा तक क्षीण पड़ जाती है। वे हम से दूरस्थ हो जाते हैं—एक होरीराम बच जाता है, वह हमेशा के लिए बचा रहेगा। वे बाह्य परिस्थितियां और वे संस्कार जिनके नीचे होरी दबा पड़ा था किसकी उपस्थित की हुई थीं और क्यों— उनसे छुटकारे का क्या रास्ता था, होरी का आदर्श जीवन क्या होता यदि वे परिस्थितियां और संस्कार नहीं होते— इन सबका विश्लेषण और निरूपण प्रेमचंद ने नहीं किया। उनका हृदय तो होरी के प्रति इतना सहानुभूतिपूर्ण हो गया था कि उनकी दृष्टि उधर गई ही नहीं और वे होरी को जैसा वह अपनी परिस्थितियों में था वैसा का वैसा अंकित कर गए। इससे अधिक वास्तविक "सत्य" मैंने और कहीं कुछ नहीं देखा। होरी के जीवन की वास्तविकता को मैं होरी के साथ रहकर भी इतनी नहीं जान सकता था, जितनी मैंने उसकी कहानी पढ़कर जानी। 'गोदान' होरीराम ही की तो कहानी है। इस होरीराम की जीवन-कथा लिखने का प्रेमचंद का क्या उद्देश्य था? कला का क्या उद्देश्य होता है? कोई प्राकृतिक अथवा मानवीय दृश्य आंखों पर अंकित होता है, प्रकृति अथवा जीवन का कोई रहस्य बुद्धि द्वारा उद्घाटित होता है, वह रहस्य अथवा वह दृश्य जब हृदय-भूमि में अवतरित होता है, हृदय की अनुभूति होती है—जब ज्ञान भक्ति में प्रविष्ट होता है, और दृश्य भाव में, जब हृदय बुद्धि द्वारा प्रकाशित उस रहस्य की विराटता और विस्मयता में लीन होकर आनंदातिरेक में मग्न होता है, और उस दृश्य की सुन्दरता, करुणा आदि से एक रस होकर भाव मग्न हो उठता है. तब हृदय उस आनंदातिरेक में उस भाव-मग्नता में अनजाने स्वतः ही चिल्ला उठता है। हृदय के इस चिल्लाने में ही कला और काव्य की निष्पत्ति है। होरीराम का चित्र, बाह्य और आभ्यंतर-"दृष्टि" और 'सहानुभूति' द्वारा प्रेमचंद के अन्तर में अवतरित होकर उनके हृदय पटल पर अंकित हुआ। वे होरीराम में लीन हो गए, उनकी आंखें मिच गईं, वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिल्ला उठे—भाव विभोर होकर । उनका चिल्लाना अंकित हुआ 'गोदान' में । अगर वे इस प्रकार चिल्ला नहीं उठते तो उनके हृदय का भार हलका कैसे होता ?--उनका जीवन ही सफल कैसे होता ? उनके जीवन की महानता और उस महान जीवन की महान सफलता है—"गोदान" का होरीराम । होरीराम अपने स्वार्थ, मोह भीरुता और मानवता को लिए हुए इतना सुन्दर लगता है कि यदि गाँधीजी भी मेरे पास अपनी सत्य और नैतिकता के जोम में आयें तो उनसे भी कहदूँ आपकी और मेरी नहीं पट सकती, आपका मैं साथ नहीं कर सकता, आप चाहे जहाँ जाएँ । किन्तु, यदि होरीराम मेरे पास आए तो मैं उसके गले से लिपट कर नाचूँ, गाऊ, रोऊँ—उसे छोड़ूं नहीं !

महाकाव्य—'गोदान' है तो होरीराम की कहानी किन्तु यह होरीराम है बड़ा विशाल । उसमें एक युवा और एक पूर्ण वर्ग सन्निहित है । 'गोदान' में होरीराम भारतीय किसान, उसकी परम्परा और विश्वासों का प्रतीक है । उसी किसान वर्ग का इसमें सर्वाङ्गपूर्ण चित्र है । इसमें आधुनिक काल के बौद्धिक अथवा मानसिक विकास का निचोड़ भी है । 'गोदान' मेरे लिए उपन्यास नहीं, किन्तु महाकाव्य है । महाकाव्य की शास्त्रिक परिभाषा के अनुसार यह महाकाव्य न हो—यह गद्य है । किन्तु महाकाव्य के समान 'गोदान' का एक जातीय महत्त्व है । इसका नायक विशाल पीड़ित मानव का प्रतिनिधि है और वह एक विशाल मनुष्य वर्ग की भावनाओं और संस्कृति का प्रतिनिधित्व भी करता है । प्रतिपीड़न की धीर और गम्भीर ध्वनि भी इसमें प्रवाहित होती रहती है । तुलसी कृत "मानव"—वेद, पुराण, धर्म-शास्त्र आदि में विदित जो संस्कृति, सभ्यता और चिंतन है, उन सबके समन्वित सारतत्व का महाकाव्य है । यह मध्यकालीन युग में निर्मित हुआ और उसी मध्यकालीन युग की हिंदू संस्कृति, जीवन और चिन्ताओं का चिन्तण इसमें है । इसी रूप में हम 'गोदान' को आधुनिक युग का भारतीय महाकाध्य मान सके हैं । २० वीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) के वास्तविक भारतीय जीवन, चिंता, समस्या, विचार और खिन्न होती हुई अवयव-विच्छेदोन्मुख (disintegrating) संस्कृति का महाकाव्य है । जिस प्रकार हिंदू-धर्म, संस्कृति और जीवन का सर्वाङ्गपूर्णरूप "मानस" में एकत्रित मिलता है, उसी प्रकार आधुनिक भारत के जीवन, मानसिक चिन्ताओं और भावों का सर्वाङ्गपूर्ण रूप एक स्थान पर एकत्रित 'गोदान' के सिवाय अन्यत्र मिलना दुर्लभ है । मेरी दृष्टि में 'गोदान' इसीलिए इस युग का महाकाव्य हुआ । एक अन्तर अवश्य है । "मानस" की राम-कहानी में आदर्शवादिता है, किन्तु होरीराम की कहानी में घोर वास्तविकता । सुना जाता है कि फ्रेंच उपन्यासकार जोला मजदूर-वर्ग की वास्तविक दशा, प्रवृत्ति और भावना जानने के लिए और उनका स्वतः अनुभव करने के लिए उत्तरीय फ्रांस और बैलजियम की कोयले की खदानों में एक नोटबुक हाथ में लिए हुए छः महीने तक घूमा था । किन्तु प्रेमचन्द का हृदय तो जीवन के प्राण ही से भारतीय किसान के साथ रहता आया था—जैसे प्रेमचन्द उस देहाती किसान में ही घुल मिल गये हों । प्रेमचन्द की कला की भित्ति ही देहाती किसान है । जोला (zola) की "जरमीनल" (Germinal) को संसार का एक श्रेष्ठ यथार्थवादी (Realist) उपन्यास माना जाता है किन्तु प्रेमचन्द के 'गोदान' की यथार्थवादिता (Realism) उससे कम नहीं । 'गोदान' के यथार्थवाद (Realism) की भयंकर व्यथा (Tragedy) हृदय को मसोस देती है । यह व्यथा गम्भीर, उदात्त, प्रतापी नायक की दुःखान्त कथा के फलस्वरूप नहीं, यह व्यथा तो हैं निस्सहाय, पीड़ित मानवता के प्रतीक एक अतितुच्छ 'होरी' नामक प्राणी की दुखान्त कहानी के प्रति—वह होरी जो किसी प्रकार जी कड़ा करके अपने जीवन की गाड़ी को धकेले चलता है चाहे वह एक निर्दिष्ट परम्परागत लीक पर ही हो । इस जीवन में उल्लासमय और नवीन कुछ भी नहीं । भारत का यही जीवन तो है वह मृतप्राय किसी न किसी प्रकार धिकलता हुआ चला जाता है । वह किसी को अपमानित नहीं करता, स्वयं अपमानित होता है । किसी को डण्डा नहीं मारता, स्वयं डण्डा खाता है । न तो जीता ही है न मर ही जाता । इससे अधिक दुःखान्त एवं करुणापूर्ण कथा और क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी ? माना 'रवि' और 'शरद' की तरह यह कथा उच्च, सूक्ष्म मानसिक स्तर पर नहीं चलती और न यहाँ सूक्ष्म भावनाओं की अधिक उथल-पथल ही है, माना यह स्थूल, दैहिक स्तर पर प्रवाहित होने वाली कथा है, किन्तु वह स्थूल, दैहिक स्तर है तो आज की एक वास्तविक सत्य ना ! उसके पहले देखे बिना आगे सूक्ष्म स्तर पर कैसे पहुँचना होगा ?

छिन्न होती हुई संस्कृति की झलक

गॉल्सवर्दी (Galsworthy) लिखित अंग्रेजी में 'फार साइट सागा' (Farsyte Saga) एक उपन्यास है। उसमें Soames नामक एक चरित्र जातीय जन्मगत भूस्वामित्व (Racial instinct of ownership) के विचार और भावना का प्रतीक बन कर आता है। दूसरे दो चरित्र हैं (Bossiney and Irene) "बोजिने" और "आयरीन"। ये दोनों सौन्दर्य, कला और प्रेम की सूक्ष्म भावनाओं के प्रतीक हैं। इस भू-स्वामित्व और मानव-हृदय की सूक्ष्म भावनाओं का विरोध (Conflict) उस उपन्यास में प्रदर्शित किया गया है, और यह भी निर्देश किया गया है कि उस वर्ग में, जोकि "स्वामित्व" का प्रतिनिधि है, अंग-विच्छेद होना (Disintegration) प्रारम्भ हो गया है। वास्तव में इङ्गलैण्ड में पुराने (Conservative) जमींदारों और पूँजीवादियों का एक बहुत बड़ा वर्ग है जो जीवन की प्रत्येक घटना अथवा भावना का मूल्य पैसों के आँकड़ों में आँकता है, उसके लिए प्रेम, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, आदि सूक्ष्म भावनाओं का कोई मूल्य नहीं। यदि ये चीजें उसके भौतिक स्वार्थ (Monetary interest) की सिद्धि नहीं करती हों। आधुनिक काल में ऐसा वर्ग हिन्दुस्तान में भी उत्पन्न हो गया है और हमारे समय की यह एक वास्तविक समस्या है—'क्या हम अपने मानवीय व्यक्तित्व (Human personality) हमारी परिवर्तन, प्रेम और सौन्दर्य की भावनाओं को उन लोगों द्वारा कुचलवाते रहेंगे जो भूमि और पैसे के स्वामी हैं। कुछ-कुछ, इसी प्रकार के एक सांस्कृतिक द्वन्द्व का आभास हमें 'गोदान' में मिलता है।

'गोदान' में भारतीय किसान की देहाती संस्कृति का एक मजबूत किला बना हुआ है। किसान की अपनी परम्परा होती है, अपने रस्म, रिवाज और विश्वास होते हैं, उसमें कौटुम्बिक मोह और अपनी बिरादरी और समाज के प्रति अन्ध आदर होता है। परम्परागत भूमि के (Ownership) स्वामित्व की तीव्र भावना भी इसमें होती है। "जमीन ही पर तो किसान की इज्जत और आबरू अवलम्बित है। जिसके पास जमीन नहीं वह गृहस्थ नहीं मजदूर है।" इस भारतीय किसान, उसका परम्परा, भावनाओं और विश्वासों का प्रतीक है—होरीराम ! इसके प्रति विरोध होता है 'गोबार' का जो नई आर्थिक परिस्थितियों और नई भावनाओं का प्रतीक है। होरीराम के कुटुम्ब में होरीराम भूमि-स्वामित्व की भावना, परम्परागत विश्वासों और जातिगत भावनाओं का पुतला है। गोबार—होरीराम का लड़का—इस भू स्वामित्व की भावना, परम्परागत विश्वासों और जातिगत भावनाओं में कुछ भी सार नहीं देखता।

परम्परा के विरुद्ध पहला काम जो गोबर करता है या प्रेमचन्द उससे करवाता है है—एक विधवा का हाथ पकड़ना। ऐसा करते ही पहले तो उसका साहस टूट जाता है और वह शहर की तरफ भाग जाता है। वहाँ कुछ देखता है, कुछ सीखता है। कुछ महीनों के बाद घर लौट कर आता है। माता-पिता से इसी पुरानी परम्परा सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा, और लोकनिन्दा के विषय में कुछ झगड़ा हो जाता है। माँ जब कहती है—"बिना पाले ही इतने बड़े हो गए ?" तो गोबर खरी-खरी सुनाता है—"पालने में तुम्हारा लगा क्या ? जब तक बच्चा था दूध पिला दिया, फिर लावारिस की तरह छोड़ दिया, जो सबने खाया वही मैंने खाया, मेरे लिए दूध नहीं आता था, मक्खन नहीं बाँधा था और अब तुम भी चाहती हो और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा कर्जा चुकाऊँ, लगान दूँ, लड़कियों का व्याह करूँ—जसे मेरी जिन्दगी तुम्हारा देना भरने ही के लिए है।" ये कितने कटु बचन हैं, लेकिन हैं कितने वास्तविक और सत्य। भारतीय जीवन की एक वास्तविक सत्य को सामने लाकर हृदय को तिलिमिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने वाले—होरी के शब्दों के प्रति बुद्धि को यह कहना ही पड़ता है "हाँ सचमुच"। गोबर इसीलिए अपने घर वालों से चिढ़ गया है। "अब उसने सुना और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा। अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पानी होगी, कोई देवता कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने नहीं आवेगा।"

'महतो' का पुत्र 'महतो' ही है—इस परम्परागत भावना के मूल्य को वह कुछ भी नहीं आँकता। इसका कुछ भी आदर नहीं करता—इसे लात मार देता है, उसको किञ्चितमात्र भी चिन्ता नहीं होती कि वह किसान की परम्परा को तोड़ रहा है, उसे समूल नष्ट कर रहा है। इस प्रकार हमें आभास मिलता है कि किसान की संस्कृति और परम्परा में अंग-विच्छेद (Disintegration) प्रारंभ हो गया है। पुरानी भावनाओं और विश्वासों के प्रति नये विश्वासों और भावनाओं का विरोध (Conflict) उपस्थित हो गया है। नई भावनाओं के प्रतीक गोबर का आखिर होता क्या है? प्रेमचन्द गोबर को अपने माता-पिता के प्रति फिर सम्वेदनशील तो बना देते हैं, किन्तु यह देख कर कि घर में कुछ सुधार नहीं हो सकता, वह अपने माता-पिता और घर को अपने भाग्य पर छोड़ कर फिर शहर की ओर नौकरी करने चल ही देता है। आगे गोबर का क्या होता है, क्या होगा, प्रेमचन्द तब देख भी कैसे सकते थे। इतना ही आभास कराना पर्याप्त था कि पुराने घर में चिनगारी लग गई है।

कथावस्तु

'गोदान' की कथावस्तु में एक जटिलता, एक शिथिलता सी प्रतीत होती है। पाठक उपन्यास पढ़ता हुआ ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है तो पहले सहसा यह पता ही नहीं लग पाता है कि कौनसी वस्तु आधिकारिक है और कौनसी प्रासङ्गिक। सबसे पहले होरी आता है और उसका देहातीपन और अच्छाई और बुराई दोनों को लिए हुए उसकी सरल मानवीयता हमारे हृदय को आकर्षित करती है। फिर हम गोबर और झुनिया के (Romance) में पड़ जाते हैं और बहुत देर तक समझते रहते हैं कि शायद उपन्यास उन दोनों की प्रेमकहानी ही हो। फिर बड़े आदमी सामने आते हैं, और उनमें से मुख्यतः प्रो० मेहता और मालती हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। दोनों का चरित्र शनैः-शनैः विकसित होता है और प्रायः उपन्यास के अन्त तक उनकी कहानी चलती रहती है। प्रेमचन्द की बुद्धि और ध्यान मेहता और मालती में खूब अटके हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार हम विश्लेषण करके देखें तो बराबर चार कथा वस्तुएँ उपन्यास में संग्रीहतसी मालूम होती हैं। (१) होरीराम और धनिया (२) प्रो० मेहता और मिस मालती (३) गोबर और झुनिया (४) सिल्लो और मातादीन। यह तो नहीं कहा जा सकता कि ये चारों कथा वस्तुएँ आपस में सम्बन्धित नहीं हैं, इनका कोई केन्द्र ही नहीं है। केन्द्र है अवश्य, किन्तु उस केन्द्र के चारों ओर प्रासंगिक वस्तुएँ अमिट रूप से घनी गुंथी हुई नहीं। माना, होरीराम के कुटुम्ब में गोबर और झुनिया के परम्परा-विरुद्ध कार्य्य का, सिल्लो और मातादीन की कथा एक (Contrast) है,—एक ही समाज में एक ही प्रकार के कार्य के लिए दो विरुद्ध प्रतिक्रियाएँ। किन्तु इसके अतिरिक्त मातादीन और सिल्लो की कथा का अपना एक अलग महत्त्व भी है। एक चमारिन का 'अपने' मातादीन के लिए त्याग, उनके चरित्र की उत्कृष्टता—नारीत्व,—और उस नारीत्व के सम्मुख, उसके जीर्ण-शीर्ण झोंपड़े में घोर स्वार्थी "ब्राह्मण मातादीन" का आत्म समर्पण,—चमार बन कर रहने के लिए प्रस्तुत होना,—यह अपने आप में ही पूर्ण एक सुन्दर झाँकी है। गोबर होरीराम का लड़का है, उसकी कथा अपने पिता से अलग क्या होती? किन्तु पिता और पुत्र की—पुरानी और नई—बनी नहीं। प्रेमचन्द, गोबर और उसके साथ झुनिया को शहर की ओर भगवा देते हैं। प्रेमचन्द उनके भविष्य का कोई सुन्दर निर्माण कर सकते थे, या उनके (गोबर और झुनिया) द्वारा किसी सुन्दर 'भविष्य' का निर्माण करवा सके थे। किन्तु जिस काल में प्रेमचन्द रहते थे उसमें इतनी वास्तविक क्षमता नहीं थी। इसलिए उसको होरीराम के घर से निकलवाकर अधूरा, अलग, नौकरी करने के लिए छोड़ दिया गया।

[शेष पृष्ठ १५३]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजातशत्रु : एक दृष्टि

[श्री यदुनन्दनप्रसादजी]

साहित्य के अन्य क्षेत्रों की भाँति, नाटक के क्षेत्र में भी, प्रसादजी का अपना विशेष स्थान है। उनके नाटक प्रधानतः ऐतिहासिक हैं। वे बड़ी खोज के बाद लिखे जाते हैं तथा गम्भीर ऐतिहासिक अध्ययन पर अवलंबित होते हैं। कई स्थानों पर तो उन्होंने हमारे इतिहास का भी संशोधन किया है। अजातशत्रु द्वारा विम्बसार का बध उन्हें मान्य नहीं। इसमें, प्राचीन बौद्ध कालीन सभ्यता और संस्कृति से पाठकों को अवगत कराना ही हमारे नाटककार का मूल उद्देश्य है। बौद्ध-काल के आरम्भिक दिनों की स्मृति को, इसमें नवीन रूप में सजाकर रखा गया है। यह बुद्ध का आविर्भाव-काल था। इसी जगत का एक व्यक्ति हमारे सामने करुणा का एक नूतन और आशाप्रद संदेश लेकर आया था, किसी ने उसका स्वागत किया और किसी ने उसकी उपेक्षा की। इसी आशा और निराशा के बीच, इस नवीन धर्म का विकास, हमारे कथानक का एक मनोरंजक अंग है। जहाँ विम्बसार, वासवी, पद्मावती और मल्लिका द्वारा इसका पोषण होता है, वहीं अजातशत्रु छलना तथा देवदत्त इसे उखाड़ फेंकने का प्राण-पन से प्रयत्न करते हैं। परन्तु 'नाटककार तो बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक और उसके अनुयायियों के प्रति अपनी स्पष्ट श्रद्धाञ्जलि प्रदान करता है।

ऐतिहासिकता की पृष्ठभूमि पर अवलम्बित होने पर भी कथानक की रोचकता नष्ट नहीं होने पाई है। मगध, कौशल और कोशाम्बी के संबद्ध राज्यों के गृह-कलह, आपस के युद्ध और मैत्री व्यापारों से पाठकों को अवगत कराने का बहुत विशद और सफल प्रयत्न किया गया है। 'अजातशत्रु में लेखक अंतः-पुरों में गया है। वहाँ के निजी राजकीय विलासों में उसने कथानक के सूत्र पाये हैं।' मगध की, कोशल की, कोशाम्बी की, प्रत्येक राज्य की अपनी समस्यायें हैं। फिर भी वे आपस में असम्बद्ध नहीं। प्रत्येक के शासन की तह में विद्रोह की भीषण ज्वाला सुलगती हुई दृष्टिगत होती है। यदि मगध और कौशल में विद्रोह की चिनगारी वहीं के राजकुमारों के हाथों सुलगाई जाती है तो कोशाम्बी में यह सौतिया डाह का प्रतिफलन है। 'अजातशत्रु में सौतें हैं और सौतिया डाह भी।' 'प्रायः सभी नाटकों में न्याय के महत्व को बढ़ाने के लिए, कूटनीति लेखक को प्रिय रही है। अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त सभी में हमें उसी नीतिका चक्र घूमता मिलता है।' यदि प्रसेनजित् ने विश्वासघात से सेनापति बन्धुओं का बध करवा दिया तो उससे मल्लिका का त्याग और महत्व तप्त सोने की भाँति निखर उठा। छलना की कूट-मंत्रणा और कुणीक का अशिष्ट व्यवहार विम्बसार के त्याग को आगे ही बढ़ाने में सहायक हुआ। देवदत्त का विरोध भी यदि कुछ कर सका तो भगवान बुद्ध के महत्व को बढ़ाकर उनके लिए सफलता का मार्ग साफ कर गया। अन्य नाटकों की अपेक्षा 'अजातशत्रु में' लेखक युद्ध व्यवसाय के विरुद्ध रहा है और इसको बहुत दृढ़ता-पूर्वक उसने रखा है।

पात्रों के व्यक्तित्व की ओर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है मानों अजातशत्रु में 'कवि ने परुष को कोमल से बाँध रक्खा है।' पुरुष स्त्रियों के इङ्गित पर नाचनेवाले हैं। इनका व्यक्तित्व स्त्रियों के व्यक्तित्व के नीचे दब-सा गया है। स्त्रियाँ अधिक सतेज और जाग्रत हैं और वे ही 'जाग्रत और जीवित सुकुमार राज-कन्याएँ नाटकीय गति-विधि की नियामक तथा संचालक हैं, उनके व्यक्तित्व की परिधि में घिरे-घिरे पुरुष को हम चलते पाते हैं।' छलना और मल्लिका इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

छलना मगध-सम्राट की छोटी रानी और अजातशत्रु की माँ है। इसी की देख-रेख में सारे मगध राज्य का संचालन होता है। इसे राजमाता होने का गर्व है और वीरप्रसू होने की महत्वाकांक्षा। अजातशत्रु में जो कुछ भी पुरुषार्थ दृष्टिगत होता है, वह इसी के निरंतर उत्साहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते रहने के फलस्वरूप है। इसी प्रकार विरुद्धक का पुरुषार्थ भी उसकी माँ शक्तिमती की महत्वाकाँक्षा का प्रतिफल है।

आर्या मल्लिका हमारे सामने मानवता के लिए एक आदर्श लेकर उपस्थित होती है। न्याय और सहनशीलता की सजीव मूर्ति मल्लिका, हमारे नारी-समाज के सम्मुख अनुकरण की जीवित वस्तु है। इसके जीवन की तह में एक साधना है जो दुखों से पोषित और कठिनाइयों से पल्लवित हुई है। पति की मृत्यु का समाचार पाकर भी यह कर्तव्य से विचलित नहीं होती। यह नारी है और नारी के हृदय में जो हाहाकार होता है उसे यह भी अनुभव करती है। परन्तु हृदय के अन्तर्द्वन्द्वों को छिपाना यह जानती है। इसे अपने पति की वीरता पर अभिमान है ज्यों-ज्यों दुख और कठिनाइयाँ इसके सामने आती जाती है, त्यों-त्यों यह लौकिकता के ऊपर उठती जाती है, और अन्त में, मगध, कोशल और कौशाम्बी के बीच यह एक दैवी-संचालिनी-शक्ति (Ministering angel) सी मालूम पड़ती है। सम्राटों को भी इसकी आज्ञा शिरोधार्य है। न्याय और तपस्या की सीढ़ियों पर यह इतनी ऊँची चढ़ चुकी है कि यह एक मानवी नहीं रह जाती। संसार में ऐसे लोग कम पाये जाते हैं, और, जहाँ है, वे बन्दनीय है।

वासवी मगध-सम्राट् की बड़ी रानी है। यह पति-परायणा है। इसमें दया है, क्षमा है और सहनशीलता है। अपने पति और भगवान गौतम की चिर-अनुगामिनी है। इसकी पुत्री पद्मावती, सम्राट उदयन की रानी है। इसमें माँ के सब गुण हैं। पति के लिए यह प्राण तक दे सकती है। पति की तलवार को भी यह प्रसाद के रूप में ग्रहण करती है।

मागन्धी क्या है, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता पहले एक साधारण गृहस्थ की लड़की है, फिर सम्राट उदयन को छोटी रानी है, फिर काशी की प्रसिद्ध वारविलासिनी और तत्पश्चात् आम्रपाली के रूप में हमारे सामने आती है। आरंभ से अन्त तक यह नियति का खिलौना बनी रही। इसके हृदय में अतृप्त बासना है। इसी से यह नियति का शिकार बनी क्योंकि यौवन की उद्दाम तरंगों पर सर्वदा नियति का प्रकोप होता आया है। रूप का गर्व इसे बहुत ऊँचा उठाकर ले गया और अब उसने इसे उतना ही नीचे पटक दिया! वासना के प्रवाह में भगवान बुद्ध पर भी इसने अपनी निर्लज्ज दृष्टि डाली थी। "मैंने अपने जीवन के प्रथम वेग में ही आपको पाने का प्रयास किया था।...... आज मैं अपने स्वामी को, अपने नाथ को अपनाकर धन्य हो रही हूँ।.......प्रभु! मैं नारी हूँ, जीवन भर असफल होती आयी हूँ। मुझे इस विचार के सुख से वंचित न कीजिए।"

अब पुरुष पात्रों की ओर चलें। मगध का सम्राट् बिम्बसार भगवान बुद्ध का अनुगामी है। गौतम के इशारे पर वह राज्य तक छोड़ देता है। यह दार्शनिक सिद्धान्त वाला व्यक्ति है और सदा जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में व्यस्त है। मानव-जीवन में जो पीड़ा है, जो चीत्कार है, उससे यह व्यथित है। यह अनुभव करता है कि यदि "मैं सम्राट न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती—पवन की किसी लहर को सुरभित करके धीरे से उस थाले में चू पड़ता—तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता।"

अजातशत्रु और विरुद्धक दोनों नाटक के सजीवतम पात्र हैं। इनके जीवन में गति है और है यौवन का विद्रोह। दोनों महत्वाकाँक्षी हैं। सम्राट बनने की लालसा ही इन्हें जघन्य से जघन्य कर्म की ओर प्रवृत्त करती है और यही इनके पतन का मूल कारण है। अच्छे में; बुरे में, सब में, स्त्रियाँ ही इनकी प्रेरणा और इनके पुरुषार्थ की संचालिका हैं। उन्हीं की मंत्रणा से इनका पतन होता है और उन्हीं के उपदेश से इनका उत्थान। इनके जीवन में ऐसे ऐसे अवसर आये हैं जब ये साधारण मनुष्यता की सतह से नीचे गिरे मालूम पड़ते हैं। परन्तु फिर भी मल्लिका और वासवी प्रभृति देवियों के सम्पर्क में आकर, इनका उद्धार होता है! यही है प्रसाद का आशावाद। मनुष्य नीच से नीच पतित से पतित हो जाता है पर उसका भी उद्धार होता है। हम सब को समय से सबक सीखना होता है और हम सम्हलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसादजी की शैली भावात्मक है। इसमें वस्तु जगत की घटनाओं की भावावेशमयी अभिव्यञ्जना होती है। फलतः भाषा गतिशील चित्रमयी और आकर्षक है। गद्य में भी हमें पद्यात्मक अभिव्यञ्जना की अनुभूति होती है। यद्यपि पात्रों के साथ भाषा की शैली बदलती नहीं फिर भी कथोपकथन की शैली मनोवैज्ञानिक होती है और विचारों के अनुरूप हो उसमें कर्कश एवं मधुर पदावलियों का प्रयोग होता है। शैली की भावात्मकता पात्रों को भी भावुक बना देती है। भाषा में निम्नकोटि के पात्र भी भावुक दीखते हैं। भाषा में चमत्कार लाने के लिए वाक्यों के व्याकरण-सम्मत बनावट में उलट-फेर किया गया है। यथा—"हाय रे मानव! क्यों इतनी दुराभिलाषाएँ बिजली की तरह तू अपने हृदय में आलोकित करता है?...... जीवन की शान्तिमयी सच्ची परिस्थितियों को छोड़कर व्यर्थ के अभिमान में तू कब तक पड़ा रहेगा?"

'प्रसाद'जी की लाक्षणिक-वैचित्र्य-पूर्ण भाषा में कल्पना की क्रीड़ा के लिए यथेष्ट अवकाश है। जहाँ-जहाँ भी कल्पना के छींटे हैं, भाषा बड़ी सुन्दर हो गयी है। परन्तु लाक्षणिकता और भावुकता के बाहुल्य के कारण कहीं-कहीं इनकी शैली बुद्धि को सहज-ग्राह्य नहीं होती। 'प्रसाद' जी की शैली द्विवेदी युग की नहीं वरन् छायावाद-युग के अरुणोदय की प्रतिनिधि शैली है। इस प्रकार 'प्रसाद' के छायावाद का प्रभाव उनके नाटकों में भा स्पष्टरूपेण लक्षित है।

* *
*

गोदान : एक समालोचनात्मक विश्लेषण

[पृष्ठ १५० का शेषांश]

अब रही प्रो० मेहता और मिस मालती की कथा—प्रो० मेहता और मालतीदेवी के मानस मस्तिष्क, हृदय, और जीवन के अन्य तत्त्वों का विकास होता चलता है—वह विकास क्रमानुगत होता है, और साथ में मेरे मानस, मेरी बुद्धि और हृदय का भी विकास होता चलता है (सहानुभूति द्वारा कल्पना में ही सही)। किन्तु, अन्त में जाकर उन दोनों का विकास इतने सूक्ष्म तत्त्वों से परिपूर्ण हो जाता हैं - ('उपासक' मेहता अपने 'उपास्य' मालती में लय होने जारहे थे - फिर, निश्चय हुआ, नहीं, वे स्त्री पुरुष बन कर नहीं, मित्र बन कर रहेंगे) कि, वह मेरी सामान्य अनुभूति के बाहर कीं वस्तु हो जाती है, मैं पिछड़ जाता हूँ। मेरे लिए वे कुछ धुंधले से हो जाते हैं और मेरा और उनका साथ छूट जाता है। प्रेमचंद भी उन्हें छोड़ देते हैं और फिर उन्हीं होरीराम और धनिया के साथ आगे बढ़ते हैं जिनके साथ उनका हृदय लगा हुआ है। अन्त तक वे उन्हीं के साथ रहते हैं। यहीं उनके उपन्यास का केन्द्र और प्राण है। प्रो० मेहता के आने से जो होरीराम और धनिया का साथ छूट गया था, पाठक फिर उन्हीं का साथ पकड़ता है। मृत्यु-पर्यन्त-अन्त तक उनका साथ रहता है। अब भी वह साथ नहीं छूटता।

'गोदान' अलग ही एक वस्तु है। उसकी समानता प्रेमचंद के अन्य किसी उपन्यास से नहीं की जा सक्ती। 'गोदान' का होरीराम "रामायण" के राम से भी बड़ा है। रामायण के 'देवताराम' ने तो १४ वर्ष के बनवास और थोड़े काल के लिए सीताहरण से ही मेरे हृदय को करुणा से द्रवित किया था—किन्तु—'गोदान' का मानव होरीराम तो अपनी "पीड़ित मानवता" से मुझे प्रतिपल दुःख देरहा है ना!

* *
*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मुक्त

[रचयिता—श्री सियारामरामशरण गुप्त]

(आलोचक—प्रो० नगेन्द्र एम० ए०)

रचयिता उन्मुक्त का विश्लेषण करने से पूर्व उसके व्यक्तित्व का थोड़ा विश्लेषण करना संगत होगा। कवि सियारामशरण का व्यक्तित्व पीड़ा से बना हुआ है। उनका श्वास-रोग और एकाकी जीवन ये दोनों आज एक सुदीर्घकाल से उनके जीवन सहचर हैं स्वभावतः—उनमें करुण चिंतन का प्राधान्य है। हिन्दी जगत से उपेक्षा पाकर यह पीड़ा अवश्य ही उनका कम्प्लैक्स बन जाती यदि कवि के अतर्क्य आस्तिक संस्कारों का प्रतीप प्रभाव उस पर न होता। यही आस्तिकता उसे पीड़ा को आनन्द का माध्यम मानने के लिए बाध्य करती है और वह दुख में सुख पराजय में विजय और निर्बलता में बल प्राप्त करता है। ऐसी मनस्थिति के कवि के लिए गांधीवाद का आकर्षण अनिवार्य है। गांधीवाद पीड़ित एवं पराजित देश की जितनी शुद्ध और स्वस्थ अभिव्यक्ति है, कवि सियारामशरण का काव्य गांधीवाद का उतना ही सच्चा प्रतीक हैं।

बुन्देलखण्ड की श्यामला भूमि, रुग्ण कवि का एकान्त वास, युद्ध के भीषण समाचारों को मोटे मोटे अक्षरों में देने वाले दैनिक पत्र। कवि श्वास-रोग से पीड़ित है। पत्रों में हत्याकाण्ड के समाचार पढ़कर उसकी व्यथा द्विगुण हो जाती है। जी घुटने लगता है। मन के बोझ को हलका करने के लिए वह बाहर देखता है। बसुन्धरा का हरा अञ्चल उसे शरण देता है और वह कुछ स्वस्थ होकर कविता लिखता है जिसका सुफल होता है 'उन्मुक्त'।

उन्मुक्त रूपक है : लौह द्वीप के अधिपति ने समस्त संसार को अधिकृत करने का रक्तमय अनुष्ठान किया है ताम्र-द्वीप, रौप्य-द्वीप ध्वस्त हो चुके। अब कुसुम द्वीप पर आक्रमण हुआ है। कुसुम-द्वीप वासी वीरता पूर्वक लड़ते हैं। उनका सेनानी पुष्पदन्त अपनी समस्त शक्ति लगा देता है—यहां तक कि भस्मक किरण का भी उपयोग करने को बाध्य हो जाता है। परन्तु भाग्य साथ नहीं देता। भस्मक किरण से संयुक्त उनका विमान बीच ही में खराब होकर शत्रु के हाथ में पड़ जाता है और तुरन्त ही कुसुम द्वीप भी अधिकृत हो जाता है।

कुसुम-द्वीप के शक्ति संचालक तीन व्यक्ति हैं। पुष्पदंत, गुणधर और मृदुला। वैसे तो ये तीनों ही अहिंसा में विश्वास रखने वाले हैं, परन्तु पुष्पदंत और मृदुला आत्म-रक्षा के निमित्त हिंसा का प्रयोग न्याय्य समझते हैं। इसके विपरीत गुणधर एकान्त अहिंसा का उपासक है। आरम्भ में वह भी देश की विपत्तियों का विचार कर शस्त्र ग्रहण कर लेता है। परन्तु युद्ध की विभीषिका का प्रत्यक्ष दर्शन करने के उपरान्त, साथ ही पुष्पदंत को भी भस्मक किरण का अवैध उपयोग करते देख वह एक दम युद्ध से विरक्त हो जाता है। पुष्पदंत उसे मृत्यु-दण्ड देता है परन्तु दण्ड-विधान पूर्ण होने से पूर्व ही ये तीनों समभोगी के रूप में मिलते हैं। अब पुष्पदंत भी अपनी भूल स्वीकार कर लेता है, और अहिंसक मरण को ही जीवन की मुक्ति मानकर ये तीनों बार उन्मुक्त हो जाते हैं।—अतः उन्मुक्त हिंसा की निष्फल भीषणता प्रदर्शित करता हुआ सत्य और अहिंसा की स्थापना करता है। आधुनिक युद्ध का एक मात्र प्रतिकार अहिंसा है क्योंकि उसी में सब का हित सुरक्षित है और विजय वही है जिसमें सब का हित हो –'सर्वोदय' हो।

सब के हित में लाभ करो निज विजय श्री का!

यही उन्मुक्त का संदेश है। पराधीन देश के दार्शनिक और कवि विश्व को और क्या संदेश दे सकते हैं? हो सकता है कि इसे सुनकर कुछ (लोग और उनमें किसी अंश तक मैं भी शामिल हूँ।) उसी प्रकार खिन्न हो उठें जिस प्रकार कतिपय अङ्गरेज गांधी जी के ऐसे ही संदेश को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनकर हो उठे थे। परन्तु उसके पीछे मानव-करुणा से ओत-प्रोत एक तपोमयी आत्मा की तड़प है, जिसका प्रभाव अनिवार्य है।

इस प्रकार उन्मुक्त की कथा उपलक्ष मात्र है और उसकी समस्त घटनाएँ प्रतीक हैं कवि की उन भावनाओं की जो युद्ध के नृशंस समाचार सुन-सुन कर उसके एकाकी मन में जागृत हुई हैं। आप सहज ही उन्हें कथावस्तु में से पृथक कर देख सकते हैं।

पहला चित्र आधुनिक युद्ध के सूत्रधार का है—

देखा मैंने सभी ओर घनघोर तिमिर है।
उड़ गये ज्योतिष्क-पिण्ड शशि ग्रह तारादल,
नहीं कहीं कुछ, शून्य धरातल शून्य नभस्थल।
फिर भी, फिर भी बोध हुआ ऐसा कुछ मन में,
कोई कुटिल कराल निखिल के प्रेत विजन में
शवसाधन में लीन; एक बस एक वही है;
और अन्य वह अचल पड़ी आक्रान्त मही है।
किसी लोभ के ज्योतिहीन जन्मान्ध अतल में,
हुआ निखिल खग्रास!

आगे स्वयं अभियान का अवलोकन कर लीजिए :—

बरस पड़े विध्वंस पिण्ड सौ-सौ यानों से।
उनका क्या मैं कहूँ– घोष दुर्घोष भयंकर;
प्रेतों का-सा अट्टहास; शतशत प्रलयंकर,
उल्काओं का पतन, वज्रपातों का तर्जन,
नीरव जिनके निकट,—हुआ ऐसा कटु-गर्जन।
कुछ ही क्षण उपरान्त एक अर्धांश नगर का,
युग-युग का श्रम-साध्य साधनाफल वह नर का,—
ध्वस्त दिखाई दिया चिकित्सालय, विद्यालय,
पूजालय गृह-भवन, कुटीरों के चय के चय,
गिर कर अपनी ध्वंस चिताओं में थे जलते।

चौथा चित्र है युद्ध में होने वाले नारीत्व के अपमान का—

'सुनो हुआ, हेमा का फिर क्या;
सद्योधिक उस मांस-पिण्ड का, उष्ण रुधिर का
लोभी नरपशु उसे जिलाये रहा रात भर
सैन्य शिविर में! पढ़ो पढ़ सको यदि धीरज धर
तो पढ़लो यह पत्र।'—

कवि की पुण्य भारती उस अत्याचार का वर्णन करने में शर्मा जाती है और वह एक तीखा व्यंग्य कस कर रह जाता है :

'धिक् धिक्।
कुत्सित घृण्य जघन्य अरे ओ उच्च सांस्कृतिक!
तुम ऐसे हो।'

'उन्मुक्त' का सब से मार्मिक एवं महत्वपूर्ण प्रसंग है सुश्रूसालय। यह रुग्ण कवि की आत्मा की सीधी अभिव्यक्ति है। कवि के समान ही आहत गुणधर (जो सचमुच उन्हीं का प्रतिरूप है) सुश्रूषालय में पड़ा हुआ पिछले दिन की घटना का स्मरण कर रहा है। यह घटना भी युद्ध-सम्बन्धी एक कठोर विचित्रता ही की प्रतीक है। आज से बहुत दिन पूर्व – लगभग १०० वर्ष पूर्व कार्लायल ने इस पर व्यंग्य किया था :

'...For example, theire dwell and toil in the British Village of Dumdrudge usnally some five hundred souls. From these by certain 'natural enemies' of the french there are successively selected say thirty able bodied men... And now to that same spot in the south of spain are thirty similar French artisans from a French Dumprudge in like manner wending; till at length, after infinite effort the two parties come into actual justaposition Straightway the word 'Fire' is given, and they blow the souls out of one another...Had these men any quarrel? Busy as the deril is' not the smallest! They lived far enough apart; were the enterest strangers.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

How there ? Simpleton ! their governors had fallen out, and instead of shoting one another had the cunning to make these poor block-heads shoot.

(Sartor Resartou Carlylo)

यही तथ्य कविता की गहराई लेकर इस प्रसंग में व्यक्त हुआ है। एक मरणासन्न शत्रु-सैनिक को किसी अपरिचित भाषा में कराहते देख कर गुणधर को युद्ध की विषमता का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और उसकी मानवात्मा पिघल पड़ती है :—

अब यह किसका शत्रु, पड़ गया मैं संशय में।
अविकृत मानव-मात्र, सभी का सहज सगोत्री
हम सब-सा ही मरण-यज्ञ में एक सहोत्री।

अतः यह भेद-भाव भूल कर सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए उस सैनिक के पास जाता है, परन्तु आहरे वंचित मानव! मरण प्राय यह सैनिक अपनी बची हुई शक्ति समेट कर गुणधर पर वार कर बैठता है। बस यहीं पर मानवता की चरम विजय है—गुणधर उस पर रोष नहीं दया करता है—

'वह सैनिक भी न था और कुछ, वह था मानव;
ऐसा मानव लाभ उठा जिसकी शिशुता का
किसी इतर ने चढ़ा दिया था उस पशुता का,
ऊपर का वह खोल। आत्म-विस्मृति ने छाकर
उसका बोध विलोप कर दिया था, मैं उस पर
रोष करूँ या दया ?'

जिस प्रकार बरसात में विद्युत अथवा आंसुओं के बीच आँख की ज्वाला जल उठती है, इसी प्रकार इन-द्रवित भावनाओं में वीरता भी कहीं-कहीं चमक उठी है और युद्ध का गौरव-पक्ष भी उपेक्षित नहीं रहा :

'—याद ऐसा भट आया
छिन्न शीर्ष जो कटे हुए धड़ का मन भाया
देख रहा हो समर-पराक्रम खुले नयन से।
आ उतरा ज्यों वहाँ मरण के वातायन से
लोचन का फल-लाभ।

आगे कुछ ध्वंस के चित्र हैं जिनमें से एक में अबोध शिशुओं की हत्या का दृश्य है—यहाँ स्वर्गगत बच्चों के द्वारा मानव नृशंसता की आलोचना कराई है। इसके उपरान्त पराजय है—कुसुमद्वीप ने शस्त्र समर्पित कर दिये अधिकार सौंपते हुए योरोप के अनेक प्राइम मिनिस्टरों की रुद्ध वाणी मानो 'उन्मुक्त' के महामात्य के कण्ठ में फूट पड़ी है—

'प्रत्यय है मुझको—
द्वीप की नहीं है हार, हार यह मेरी है।
आप में से कोई किसी माङ्गलिक वेला में
आकर नवीन बल बुद्धि से, महत्ता से
आज की पराजय को जय में बदल दें,
मेरी यही कामना है।
भावी उस नेता को
आज का पराजित मैं रुद्ध निज वाणी से
अर्पित प्रणाम किये जाता हूँ विनय से,
अच्छा नमस्कार!

परन्तु सचमुच यह पराजय कुसुम द्वीप की नहीं है। यह हिंसा की पराजय है। पुष्पदन्त भी अपनी भूल स्वीकार करता है—

अच्छा ही यह हुआ कर सके निज में अनुभव
है कैसा पाशविक हिंस्र ज्वाला का ताण्डव।

अन्त में इस युद्ध की समस्या का समाधान है—

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल
जो सब का है वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर—
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।

बस यही कवि की आस्तिकता उसको मुक्त करती है। अन्यथा दैहिक, दैविक और (युद्ध की) आत्मिक—तीनों प्रकार की पीड़ाएँ मिल कर उसे कुछ और ही बना देतीं। इसी के बल पर विनाश में भी मा वसुमती की सृजन-शक्ति को क्रियाशील देख कर उसे परितोष होता है—

आश्वासित समाश्वसित हूँ,
तुझे देख कर हरित भाव से आशान्वित हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख रहा हूँ जहाँ क्रोध कुत्सित पाशव का
रूप विकट वीभत्स, जहाँ मूर्छित मानव का
शतशः खराडीकरण दलन विदलन कर कर के;
उसी ठौर पर उसी ठिकाने के थल पर से
फूट पड़े हैं नये-नये अंकुर वे शोभन।
जिसे घृणा की गई उसीके लिए नमित है
धरणी की वह सुमन मञ्जरी मृदुलान्दोलित।
स्नेह-सुरभि की लोल लहर ही है उत्तोलित
इधर उधर सब ओर।

युद्ध की विभीषिकाओं का वर्णन पढ़ सुन कर ऐसी-ही भावनाएँ कवि के मन में उठी हैं जिनको उसने अपूर्व कौशल के साथ अन्वित कर एक कहानी का रूप दे दिया है। यद्यपि वास्तविक गौरव इन भाव-चित्रों का ही है, फिर भी कथा का संघटन एकदम निर्दोष है, उसके विकास में सहज क्रम, गति में अनुकूल प्रवाह और वृत्त-वर्णन में रोचकता लाने का सफल प्रयत्न है—उदाहरण के लिए मृदुला और जागरिता का अवचेतनात्मक वार्तालाप लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कहानी का आधार भी उसी के योग्य है। कवि ने इसके निमित्त अखराड देश काल को चुना है, जिसका विराट आकार समस्त दिग्मराडल को समेटे हुए वर्तमान, भूत और भविष्य के तीन पदों पर स्थित है। सियारामशरणजी अपने ढङ्ग के अकेले टेकनीशियन हैं। उनकी टेकनीक में मीनाकारी और श्रीविलास चाहे अधिक न हो, परन्तु उसका 'सहजगुण' असंदिग्ध है। आज के जैसे एकान्त कवित्व-शून्य युद्ध को भी उन्होंने न केवल प्राणों की पीड़ा में डुबो कर ही, वरन कवि-कौशल के द्वारा भी काव्यमय बना दिया है। आज अनेक प्रगतिवादी कलाकार प्रत्यक्ष को काव्यमय बनाने की कला उन्मुक्त से सीख सकते हैं।

इसी प्रसङ्ग में मैं कुछ उदाहरण कवि की नित्य प्रौढ़तर होती हुई अभिव्यञ्जना-शैली के उपस्थित करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता—

१—रौप्य द्वीप तो है ध्वस्त; नाम अब उसका
और कुछ हो गया है,—जैसे किसी जन की
मृत्यु हो गई हो, वह निम्न किसी योनि में
जाकर दिखाई पड़े, पोंछ कर स्मृति से
अपना अतीत एक साथ।

२—स्वेद-सनी बन गई सलोनी तेरी रोटी।
हो उठा है कैसा मन।

अन्त में हमें यह देख कर सुख होता है कि सियारामशरणजी की कविता उत्तरोत्तर गम्भीर और प्रौढ़ होती जा रही है। उनकी पिछली कृति 'बापू' एक महान कविता थी—उन्मुक्त उससे भी महत्तर है। इस श्रेणी की कविता पिछले दो-एक वर्षों में कष्ट-प्राप्य ही रही है।

कवि सियारामशरण की काव्य-साधना अन्तर्मुखी है। उसमें चिन्तन और अनुभूति का प्राधान्य है। वाह्य जीवन का उपयोग कम होने के कारण उसमें जीवन का वह खट्टा-मिठ्ठा रस नहीं है जो उनके अग्रज मैथिली बाबू के काव्य में है। परन्तु हर एक स्थान पर आपको तपः पूता आत्मा का छना हुआ विशुद्ध रस मिलेगा, जिसमें चाहे स्वाद बहुत अधिक न हो, परन्तु शान्ति अनिवार्य है। गांधीवाद के दो पक्ष हैं—एक व्यवहार-पक्ष, दूसरा दर्शन-पक्ष। व्यवहार-पक्ष के कवि हैं मैथिलीशरण गुप्त और दर्शन-पक्ष के कवि हैं सियारामशरण। अथवा हम यह कह सकते हैं कि गांधीवाद के दो पक्ष हैं—एक ओज पक्ष, दूसरा तप-पक्ष। ओज-पक्ष के कवि आज अनेक हैं जिनमें नबीन अग्रणी हैं, तप-पक्ष का एक अकेला कवि है सियारामशरण गुप्त।

* *
*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किरण-बेला

[श्री रामकृष्ण 'भारती']

हिन्दी काव्य अनेक धाराओं और प्रवृत्तियों में से गुजर चुका है। आज भी अनेक प्रवृत्तियाँ उसे विभिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर कर रही हैं। इन्हीं में से प्रगतिवाद, एक है। कवि 'अञ्चल' उस प्रगतिवाद का अग्रदूत है वह रोमांसवाद, यथार्थवाद तथा छायावाद आदि प्रवृत्तियों से प्रभावित न होकर जीवन और संघर्ष के बोझ से टूटे युद्ध से निचुड़े और चुसे अन्धविश्वासी, पराजित और निराश मानव की अन्तिम विजय के गीतों का गायक है।

प्रस्तुत संग्रह कवि अञ्चल का तीसरा संकलन है। इससे पहले कवि के दो कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं प्रस्तुत संकलन में प्रायः सब कविताएँ प्रगति की ओर संकेत करती हैं। पहली ही पन्थ-दान शीर्षक कविता में कवि कहता है:—

"संघर्ष की लहरों पर तिर तेरी अङ्गार तरी चलती,
असफल विद्रोहों के सर पर, तेरी नूतन ज्वाला जलती।"

× × ×

हो यह समाज चिथड़े-चिथड़े शोषण पर जिसकी नीव पड़ी,

कवि इस संसार से असन्तुष्ट है, वह ललकारता है—
यह मूढ़ों की निर्मित दुनिया मिट्टी में मिल जाये धँस कर।"

कवि के प्रति सम्बोधन करते हुए कवि कहता है:—
"संघर्ष करेंगे कवि, देखो, ये भूखे अध नंगे जर्जर!
शोषित शापित मानव स्वरमय होता, किस जागृति में उठकर।

कवि 'विद्रोही' बनकर इस विषमतामय संसार के विषय में यथार्थ कहता है:—

"आज लगते हैं हथौड़ों से करोड़ों आर्त प्राणी,
एक-सा आघात जिनका, एकसी दुर्धर्ष वाणी।"

"बढ़ते आते···" शीर्षक कविता में कवि 'प्रगतिवाद का संदेश सुनाते हुए कहता है :—

"हम लक्ष्यों के संस्थापक, हम मानवता की माप सजग,
युग पलायन हो तो भी संग्राम हमारा प्रति नव पग,
हम शक्ति-पुञ्ज हम हैं उनके संघर्ष हमारा महा प्रबल,
क्या बाँध हमारे जीवन की झंकड़ियाँ सकती गति चंचल।"

× × ×

"हम घिसी व्यवस्था के दुश्मन हम नूतन जग के विन्यासी,
हम घोर यातना के सैनिक नव युग नब भावी के द्रष्टा,
हम नई चेतना के पोषक सच्ची आजादी के स्रष्टा।"

पूंजीवादी व्यवस्था से पीड़ित मानव समाज की वर्तमान दुरवस्था का चित्र खींचते हुए कवि कहता है:—
"पूंजीवादी मानव गण की निष्ठुर आकृतियों के बंदी,
मानव को पशुचिर मूक बना तुम दानव बन शोषण करते।
तुम जो श्रेणी के भेद बढ़ा जनता को चूस उदर भरते।"

मूक नारी समाज का चित्र कवि ने कितना मार्मिक चित्रित किया है? भिन्नतुकान्त पद्धति में कवि कहता है—

"हवा रोती, रोते तूफान, तुम भी रोती हो?
फटे दामन में छाती खोल—
लिए अपना दरिद्र यौवन,
नग्न निर्लज्जा नारी आज,
बनी शव-सी नीरव निष्प्राण।"
त्रस्त दलित पाषाण।

एक और कविता में कवि महाक्रान्ति का आवाहन करते हुए देश की वर्तमान विषमता का कारुणिक चित्र उपस्थित करता है:—

भूखे शिशुओं की चीत्कारें सोख रहीं नयनों का पानी,
सूखी निचुड़ी चुसी हड्डियाँ करती विप्लव की अगवानी,
मुट्ठी भर दानों की तृष्णा महाक्रान्ति की आग लगाती,
आज क्षुधा इन कंकालों की सोये ज्वाला मुखी जगाती।"

× × ×

किरण-बेला—लेखक-श्री अञ्चल, प्रकाशक—सुखी जीवन ग्रन्थमाला दारागंज, प्रयाग। पृष्ठ संख्या १२८ मूल्य १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वनित हुआ इनके क्रन्दन से नभ न तनिक पर झुका जमाना,
दलित प्रपीड़ित मानवता ने चिरजीवी संघर्ष न जाना,

× × ×

उर में आज क्षुधा की ज्वाला दृग में इन्किलाब का सपना,
टूट चले गृह के लघु बन्धन आज जगत का रौरव अपना।'

कवि ने अपनी कुछ कविताओं में अन्तर की पीड़ा और बेचैनी को भी प्रकट किया है।'अन्तर्गति' कविता ऐसी ही है। कवि कहता है:—

"आज पतझड़ है चमन में, और मेरा पिक अकेला,
यह खिज़ाँ छायी प्रलय-सी आज पुलकों की न वेला,
एक दीपक भी न जलता, आज सब सूनी लताएँ।'

कवि संसार की वर्तमान रूप-रेखा से असन्तुष्ट है, वह झुंझला कर उसका महानाश चाहते हुए कहता है:—

"आज सृजन की कैसी चिन्ता,
महा प्रलय विध्वंस मचाओ।
कौन तुम्हें अनहोनी कहता,
महामरण के दीप जलाओ।"

इसी प्रकार कवि "दानव" आदि कविताओं में वर्तमान जगत की विषमता का यथार्थ वर्णन करता है।

कवि की प्रायः सभी कविताओं में अतृप्ति, निराशा और बेचैनी है, किन्तु कहीं-कहीं आशा का सन्देश भी है। 'महापथिक' शीर्षक कविता ऐसी ही है—कवि कहता है:—

"मत बन्द करो गति ओ राही, मत रुकने का सामान करो।"

'मरण त्योहार' शीर्षक कविता में कवि मृत्यु को निमंत्रण दे रहा है। युग का प्रतिनिधित्व करते हुए कवि आवाहन करता है :—

रोक सकेगा कौन हमें, हम विद्रोही, हम युग-निर्माता।

× × ×

"हम बेचैन खड़े अकुलाते, किन्तु मरण त्योहार न आता।"

× × ×

"जीवन और मरण ये दोनों, एक हमें हम तरुण सिपाही।"
हमको लड़ना ही भाता, हम काँटों के उन्मादक राही।"

"मजदूर की अन्धी लड़की" शीर्षक कविता भी अच्छी बन पड़ी है। कविवर "निराला" की मिन्न तुकान्त शैली पर कवि का यह सफल प्रयास है

बीच बीच में कवि बेचैन हो जाता है—और वह कह उठता है :—

"किन्तु मेरे पास क्या है, तीव्र तृष्णा, दग्ध भाषा,
रुद्ध प्राणों में भरी अज्ञात भूखों की पिपासा,
और लगता है, न मर भी तो सकूंगा मैं अचंचल,
एक मानव में घिरे विच्छेद के कितने अमंगल।"

'हवेली' शीर्षक कविता में भी कवि ने इसी पूंजीवाद तथा शोषण के मिल आदि प्रधान अस्त्रों का यथार्थ, किन्तु भीषण दृश्य अङ्कित किया है।

'झरना' शीर्षक कविता से कवि ने झरने का सुन्दर वर्णन किया है।

"तीन चित्र" शीर्षक कविता में कवि ने 'पुरुष और नारी', "जमीदार और किसान" तथा "पूंजीपति और मजदूर' यथार्थ के उपस्थित किये हैं। पुरुष और नारी की तुलना करते हुए कवि कहता है :—

"एक खड़ा उल्लास लुटाता, एक जमा करती निज पीड़ा,
गूंगी और भरी आंखों से देख रही मानव की क्रीड़ा।

कवि अञ्चल के इस संग्रह में,—जैसे कि ऊपर के दृष्टान्तों से स्पष्ट है—प्रायः सभी कविताएँ प्रगतिशील हैं। इनमें वर्तमान विषमता के क्रूर तांडव का यथार्थ वर्णन किया गया है। कहीं-कहीं कवि इन विषमताओं का वर्णन करते हुए अपने निराश हृदय के गीत गाने लगता है। कवि यत्र-तत्र क्रान्ति का आवाहन करता है। इस 'पूंजी-वाद' को उसने खूब कोसा है।

हो सकता है, कुछ साहित्यिक छायावादी मित्र इस संग्रह को पढ़ते हुए अप्रसन्न और क्षुब्ध हो उठें, किन्तु कवि को युग के अनुसार चलना चाहिए। इसी में उसके कवित्व की श्रेष्ठता है।

छायावाद के प्रतिनिधि कवि 'पन्त' जब प्रगतिवाद के नेता हो गये, अञ्चल जैसे नवयुवक कवियों का इस ओर पग बढ़ाना अस्वाभाविक नहीं है। इन शब्दों से हम 'अञ्चल' के इस संग्रह का स्वागत करते हुए पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे यदि आज के मानव को देखना चाहते हैं, तब वे इस संग्रह को अवश्य पढ़ें।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य समीक्षा

आलोचना

विभूतिमती व्रजभाषा—लेखक-श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'। प्रकाशक—व्रजसाहित्य ग्रन्थमाला, वृन्दावन, मथुरा। पृष्ठ संख्या ६६, मू० ।≈)

नाम-माहात्म्य के "व्रजाङ्क" में श्री हरिऔधजी का एक लेख प्रकाशित हुआ था वही इस पुस्तक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत है।

खड़ीबोली के पद्य को परिमार्जित रूप में उपस्थित करने का श्रेय श्री हरिऔधजी को अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक प्राप्त है। वे खड़ीबोली कविता के आदि स्थापकों में से हैं और समस्त हिन्दी संसार में बड़ी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। आज वे ही विभूतिमती व्रजभाषा की महत्ता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हुए उसके ऊपर जो आक्षेप किये गये हैं उनका परिहार करते नजर आते हैं। व्रजभाषा के हितैषियों के लिए यह बात बहुत ही आनन्द की होनी चाहिए। पर स्वयं हरिऔधजी के लिए यह बात नयी नहीं है। आप व्रजभाषा के प्रकाण्ड पण्डित हैं साथ ही आपने व्रजभाषा में कविता भी बहुत सुन्दर लिखी हैं। रस कलस इसका प्रमाण है। —व्यास

काव्य

हिन्दी के कवि और काव्य (भाग ३)—संपादक एवं संग्रहकर्ता—श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी संयुक्त-प्रान्त इलाहाबाद। मूल्य सादी-जिल्द ३) कपड़े की जिल्द ३।।) पृष्ठ संख्या २६६।

यह इस पुस्तक का तीसरा भाग है। पहले भाग में वीर-काव्य है दूसरे में संत-काव्य है और तीसरे में प्रेममार्गी कवियों का काव्य। इस संग्रह में जायसी नूरमुहम्मद उस्मान व निसार तथा आलम के काव्य का बहुत सा अंश दिया गया है जिससे उन कवियों की शैली का ही नहीं वरन् उनके द्वारा वर्णित कथा का भी बहुत-कुछ आभास मिल जाता है। इसमें निसार कृत यूसुफ जुलेखा तथा आलम कृत माधवानल कामकन्दला अप्रकाशित ग्रन्थ है। इस में दो खण्ड हैं—पहला समालोचना खण्ड दूसरा संग्रह खण्ड। जायसी की समालोचना दूसरे खण्ड में है, मालूम नहीं, यह भेद-भाव किस आधार पर किया गया है। आलोचना खण्ड में कथाओं का भी सारांश दिया गया है। आलोचनाओं के कुछ अधिक गम्भीर और विस्तृत होने की आवश्यकता थी। जायसी की पद्मावत को लेखक ने अन्योक्ति ही माना है। यदि ऐसा ही मानना था तो उसके साथ शुक्लजी के मत का जो उसे समासोक्ति मानते हैं खण्डन भी हो जाना उचित था। फिर भी संग्रह की दृष्टि से यह बहुत ही उपादेय है। —गुलाबराय

यामिनी—रचयिता—श्री जयनाथ 'नलिन'। प्रकाशक, वाणी-मंदिर, अस्पताल रोड लाहौर। मूल्य १)

'यामिनी' में श्री 'नलिन' की कविताओं और गीतों का संग्रह है। उनकी कविताओं में स्पष्ट रूप से छायावाद का प्रभाव लक्षित है लेकिन वह प्रभाव उनकी कविता में दुरुहता नही लाया है। हृदय की कोमलतम अनुभूतियों को रूप देने में छायावाद ने बड़ा भारी काम किया है। 'यामिनी' के कवि ने अपने अन्तर के उद्‌गारों को बड़ी सफलता से चित्रित किया है। प्रायः सभी कविताएँ प्रेम से अपना केन्द्रीय सम्बन्ध रखती हैं और उनमें प्रेम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न मनोदशाओं का कुशलता से रूपांकन किया गया है। कई कविताएँ तो बेजोड़ और हृदयहारी हैं। 'चलती बार' शीर्षक कविता इस दृष्टि से पठनीय है—

वह अँगडाई में आलस-सा धीरे से उड़ उच्छ्वास चले।
हम अपने जी की कहने को सहमे सकुचाए पास चले।
निष्फल प्रयत्न, उद्योग सफल, बैठा-सा दिल टूटा-सा तन।
अभिलाष विवश, अरमान प्रबल खोया-सा जी रोया-सा मन।
वह अपने जी की कह न सकी मैं अपने जी की कह न सका।

इसी प्रकार 'परदेशी' कविता में भी कवि ने करुण-निवेदन को सबकी वस्तु बना दिया है—

'परदेशी की प्रीति बुरी है', यह कहता सारा जग आया,
परदेशी का कौन परेखा, 'उसकी झूठी ममता-माया।'
"परदेशी की प्रीति साँझ की ज्यों अस्थिर ढलती-सी छाया'
'मिला जन्मभर रुदन कि जिसने परदेशी से प्रेम लगाया।'
ये झूठी उक्तियां उन्हें क्या, सत्य बताओगे परदेशी।
फिर कब आओगे परदेशी॥

'यामिनी' के कवि के हृदय में अनन्त वेदना है। अतृप्ति का ज्वार है, निराशा का अपार सागर हिलोरें ले रहा है पर ये सब उसे रोक नहीं सकेंगे, और वह अपना लक्ष्य पा लेगा। तभी तो वह यह देखते हुए कि उसकी 'आशा-तारिका' तम में लीन हो रही है अपनी जीर्णतरी को सम्बोधित कर कहता है—

तू रख मानस में अमिट आश, पथ विघ्न स्वयं होंगे विनाश,
इस अंधकार के पार बरसता छलिया की छवि का प्रकाश
बन जायेगी स्वर्णिल ऊषा, काजल-सी तिमिर निशा-गहरी।

हो सकता है, प्रगतिवादियों को 'यामिनी' के गीतों और कविताओं में रस न मिले, उन्हें एक व्यर्थ-रूदन का रूप ही देखे परन्तु सरस-हृदय वाले प्रत्येक व्यक्ति को 'यामिनी' की एक-एक कविता अपनी जान पड़ेगी, अपना ही हृदय उनमें बोलता दीखेगा। —पद्मसिंह शर्मा

आभा—श्रीमती तारापांडे, प्रकाशक—शिक्षासदन ४-११३ गोवर्द्धन सराय, बनारस। पृष्ठ सं० ७७ मू. ॥≈)

सात्विक और शायद शाश्वत कविता के लिए दो तत्वों की आवश्यकता सदा से रहती आयी है—एक करुणा और दूसरा विस्मय। 'विस्मय' भावों को वाणी प्रदान करता है और 'करुणा' उन भावों में जीवन उंडेलती है।

आज बुद्धिवाद के युग में हम विस्मय के प्रति जानकार हो गये हैं और हमारी करुणा का घट रीता हो चला है। फलतः कविता सूख रही है और साहित्य में बुद्धि का गद्य पनप रहा है। पर जो कवि आज भी विस्मय और करुणा को साथ लिये चल रहे हैं वे अमर हैं। बंगला के रवीन्द्र और हिन्दी के गुप्तजी में इन्हीं तत्वों का संयोजन है।

श्रीमती तारापांडे की कविता में भी हमें इन्हीं दो तत्वों की प्रधानता दिखलायी पड़ी वे विस्मय में भर कर पूछती है:—

"नहीं जानती कहाँ पहुचना चल कर
कब पहुँचेगी जीवन-नौका तट पर
कौन जलावे ज्योति हृदय के भीतर
है सब रहस्य अज्ञात।"

वेदना की तीव्र अग्नि में तप कर 'आभा' के गीत हमारे सामने आये हैं। इस वेदना की परिणति निराशा में होती है, और तब लगता है कि इन गीतों में कहीं जीवन का अभाव उतर आया है—

जानती यह भी नहीं मैं, कौन सच है कौन अपना।
प्राण देकर भी यहाँ, कोई बना क्या मीत अपना?
समझती हूँ सत्य है दुखः, अमर है मेरी निराशाः।

इस सम्बन्ध में कवियित्री के विचार और भी दृढ़ तथा स्पष्ट हैं और अपनी पूरी शक्ति के साथ चोट भी करते हैं:—

सुख केवल दो दिन का सपना, दुःख ही है मानव का अपना।
जो भूला यह सत्य उसी की, आत्मा नित संशय में भूली!

नारी कवित्रियों में श्री तारादेवी का स्थान एक खास ऊँचाई पर है उनके संगीत भरे यह छोटे-छोटे गीत उनकी नित नूतन प्रगति में और भी योग देंगे ऐसी आशा है। —व्यास

अश्रुगीत—श्री कालीप्रसाद 'विरही', सरस-साहित्य प्रकाशन मंडल, गुना-नई सराय (गवालियर) पृष्ठ ५९, मूल्य ॥)

चौबीस लिरीक का यह छोटा-सा संग्रह जैसा कि नाम से ध्वनित है सभी गीतों का आलंबन-स्वभाव करुण-रस है। करुणाप्रसादजी के 'आँसू' से लगाकर आज तक हिन्दी कविता की अन्तर्चेतना की धारा रही है। करुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भी हो, सब कवि अपनाते हैं और उसमें सुख पाते हैं व्यक्तिरूप से मैं इस प्रकार को अश्रुपूजा का कायल नहीं पर निराशावाद छोड़ दें फिर भी इस संग्रह में कई काव्य-गुण विद्यमान हैं। थोड़े में बहुत कहने की सूत्रात्मक शैली मनोभावों के सूक्ष्म आवेग-प्रयोगों की छटा और 'मैं' को जानने का दर्द। छन्द की बन्दिश भी कई स्थलों पर ढीली हैं।

आज प्यास फिर 'महा-मिलन' की—
जाग उठी है इस जीवन में
रुक न सकूँगा अब पल भर भी
बेचैनी बढ़ती क्षण-क्षण में

तुम और मैं, कली औ फूल के गायक 'विरही' का अश्रु-गीत महामिलन की वेदना से सिक्त है। भावुकों को यह पुस्तक खूब रुचेगी।

क्या हम आशा करें कि विरहीजी अपनी कविता में शब्दों पर एकाकी उद्धरण-चिन्ह (single inverted comas) लगाना कम कर देंगे, और अपनी रचनाओं में अश्रु से अधिक गीत्यात्मकता को जगाएंगे। कविता संख्या ७, ११, १२, २३ सुन्दर रचनाएँ हैं। २३ उनमें सर्वोत्कृष्ट है।

दुर्गावती—लेखक राजेश्वर गुरु, प्रकाशक—किरण-कुञ्ज, जबलपुर, सोलडिस्ट्रीब्यूटर्स तेजमल सौभाग्यमल, जबाहरगंज जबलपुर, पृष्ठ पैंतालीस, मूल्य छः आने।

राजेश्वरजी जबलपुर में मिले थे तब उनका पहिला कहानी संग्रह 'शेफाली' छपा नहीं था। ता० २६-६-३८ को मैंने उनकी कविता के विषय में एक पत्र में लिखा था—'कवि का प्रकृत जीवन और जगजीवन के प्रति एक उदात्त' विस्मय भाव नजर आता है। मृत्यु और प्रेम पर कई स्थलों पर कुछ पंक्तियाँ हैं। पर सर्वत्र है एक अबोध जिज्ञासामयता। जीवनानुभूति की इसी प्राथमिक अवस्था में से कवि का मनोलोक पथक्रमण कर रहा है इसी से जीवन का सोल्लास पक्ष एक आशा से कुतूहल से देखा गया है।...

'कविता आभास नहीं भी हो। पर संकेत तो यह जरूर है। वह वास्तव और स्वप्न के बीच की एक स्वरमोहिनी कड़ी अवश्य है। वह हमें क्षुद्र से भव्य की ओर ले जावेगी, वह बतलाएगी कि हाड़-मांस के ये श्वास-प्रहरी ही सब कुछ नहीं। उनके संकल्पों का एक विराट् अर्थ भी है। उस अर्थ को जानना जहाँ दर्शन का कार्य है कविता उस अर्थ की ओर पथदर्शन है। कविता तंद्रा भी हो तो बोधिसत्त्व की समाधि-पूर्व तन्द्रा है। राजेश्वर की कविताओं में वह सार्थक संकेत परिपुष्ट रूपेण है।...'

और आज उनका यह दूसरा संग्रह, अथवा कि रानी दुर्गावती पर एक मुक्त और रूढ दोनों छंदों में एक पद्यबद्ध आख्यानक हमारे सामने है। उन्होंने अपनी पुरानी सार्थक संकेतशीलता और जीवन के प्रति एक आशात उत्सुकता को इसमें भी निभाये रखा है। जितना कि कथानक की सीमा में वे रख सके हैं।

कहानी

कानन--रचयिता-श्री जानकीवल्लभ शास्त्री, प्रकाशक-पुस्तक भण्डार लहेरियासराय। मूल्य १॥)

'कानन' संग्रह की पहली कहानी है। यही शेष दस कहानियों में सब से बड़ी है, शायद इसीलिए इसका नाम ही संग्रह का नाम रख दिया है। इस कहानी के पात्रों में ललित, लीला और स्वयं कानन हमारे बीच के हैं। लीला समाज की भूल का शिकार होती है और ललित जैसे लज्जालु युवक भागने के सिवाय कर ही क्या सकते हैं पर कानन जैसी समझदार लड़कियाँ स्पृहणीय अवश्य हैं।

शास्त्रीजी की कहानियों में कानन' को छोड़ कर शेष कहानियाँ हड़बड़ी में लिखी जान पड़ती हैं। संयम और पूर्णता के लिए जैसे लेखक समर्थ होते हुए भी प्रयत्न न कर सका है। 'भाई-बहिन', 'गंगा', 'विनाश के पथ पर', 'मीना', 'वेश्या', 'रोयन का राग' समाज के कलंक और हमारी हीनता की द्योतक हैं।' पंडितजी बिलकुल बिहारी ही हैं। 'पैसे की पहचान' और 'दो दोस्त' कहानियों में जन-रुचि और मानव-हृदय की कमजोरियों का सुन्दर वर्णन है।

शास्त्रीजी के इस संग्रह का हम स्वागत करते हैं और उनके प्रतिभा के विकास की कामना भी। कारण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्री जी में भाषा और भावों से समन्वित शैली का समुचित सुयोग है। --पद्मसिंह शर्मा

नाटक

अन्तःपुर के छिद्र (बौद्ध कालीन नाटक)--लेखक--श्री गोविन्दवल्लभ पंत। प्रकाशक--गंगा पुस्तक-माला, लखनऊ। मूल्य सादी जिल्द।≈) सजिल्द ॥), पृष्ठ संख्या ६२।

इस नाटक का कथानक उस समय से सम्बन्ध रखता है जब कि भगवान बुद्ध इस संसार में अपने क्षमा और दया सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे। उस समय वत्सराज उदयन कौशाम्बी में राज्य करते थे। उनके दो रानियाँ थी। प्रधान महिषी का नाम था पद्मावती और दूसरी रानी का नाम था मागंधी।

राजमहल के पास होकर भिक्षा के लिए जाते हुए भगवान बुद्ध के अलौकिक सौन्दर्य ने पद्मावती को आकर्षित कर लिया था। उनके दर्शन पाने की सुविधा के लिए उसने अन्तःपुर की दीवाल में एक छेद कर लिया था और उस छेद के सहारे महाराज उदयन का चित्र रख दिया था। इसी वास्तविक छिद्र के कारण इस नाटक का नामकरण हुआ। आलङ्कारिक रूप से इसको छिद्र कहेंगे या नहीं इसमें संदेह है। आलङ्कारिक अर्थ लगाये जाने की सम्भावना के कारण इसका नाम आकर्षक हो गया है क्योंकि लोगों की मनोवृत्ति छिद्रान्वेषण की ओर अधिक रहती है। यह रहस्य मागंधी को छिद्र बनाते समय ही मालूम हो गया था। वह इससे दुहरा लाभ उठाना चाहती थी। महाराज की ईर्ष्या को जाग्रत कर पद्मावती और बुद्धदेव दोनों को ही दण्ड दिलाना चाहती थी। बुद्धदेव के पिता ने उनकी मागंधी के साथ शादी करने से इन्कार कर दिया था, इसलिए वह उनके प्रति द्वेष रखती थी। महाराज उदयन बड़े धीर थे। उन पर भी बोधिसत्व के सिद्धान्तों का प्रभाव था। मागंधी ने एक और षड्यंत्र रचा। पद्मावती के यहाँ से स्कन्ध वीणा सीखने के बहाने से उसे मँगाती है और उसमें एक मन्त्रमूर्छित विषैले सर्प को रख देती है। महाराजा उदयन के वीणा बजाने से सर्प की मूर्छा जाग जाती है और वह बाहर निकल कर नाचने लगता है। मागंधी ने पूरे छल-बल से महाराज को धनुषबाण लेने तथा पद्मावती की हत्या के लिए उद्यत कर दिया। भाग्यवश उदयन के तीनों तीर लक्ष्यभ्रष्ट हो जाते हैं। एक तीर उसी छिद्र से बाहर चला जाता है और बुद्धदेव उसे उठाकर राजा को लौटाने चले आते हैं। इतने में सर्प मागंधी को काट खाता है और मालिन द्वारा जिसने सर्प लाकर दिया था महाराज पर सारा रहस्य प्रकट हो जाता है। उनका नेत्रोन्मीलन होता है। उदयन और पद्मावती दोनों ही भगवान बुद्ध की शरण में जाते हैं।

नाटक में तीन अङ्क हैं और भारतीय शिल्प-विधान (Technique) के अनुसार एक-एक अङ्क में एक ही दिन की कथा है और इनके बीच में कोई अन्तर नहीं है। स्थान भी एक ही है केवल कक्ष भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए इसमें संकलनत्रय भी किसी न किसी रूप से निभाये गये हैं। इसमें चरित्र-चित्रण भी बहुत सुन्दर है। महाराज उदयन का भाव परिवर्तन बड़े स्वाभाविक रूप में दिखाया गया है। मागंधी के सर्पदंश में प्रतीकार-भावना की तो तृप्ति होती है किन्तु यदि उदयन को क्षमा करने का अवसर दिया जाता तो बुद्धधर्म की महत्ता और भी निखरे रूप में दिखाई पड़ती और शायद इतिहास की भी रक्षा होती। मैं समझता हूँ मागंधी ने भी बुद्ध की शरण ली थी।

विवाह-मण्डप--लेखिका श्री शारदादेवी मिश्र (पारीक) बी०ए०। प्रकाशक--स्वयं लेखिका, भारत प्रेस जबलपुर। मूल्य १), पृष्ठ संख्या ११६

यह एक सामाजिक नाटक है। इसके कथानक में विधवा के प्रति किये हुए सामाजिक अत्याचारों का उद्घाटन है। इसके कथानक का प्रारम्भ नरेन्द्र, बसन्त और कैलाश के कालेज-जीवन से है। रमा नारायण नाम के चौकीदार की परम सुन्दरी विधवा भतीजी है। ये लोग समाज-सुधार की धुन में रमा का उद्धार करना चाहते हैं विवाह करने का भार वसन्त पर रक्खा जाता है। नरेन्द्र भार लेने को तैयार हो जाता किन्तु वह उमा से प्रेम करता था और वह उसके मृदुल हृदय को आघात नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचाना चाहता था। कैलाश स्वयं उमा से विवाह करना चाहता है और इसलिए वह यह उड़ा देता है कि रमा और नरेन्द्र का गुप्त रीति से पुनर्विवाह हो गया है। कुछ परिस्थितियां भी इस अपवाद को दृढ़ कर देती हैं। फलस्वरुप नरेन्द्र कालेज से निकाल दिया जाता है, और नरेन्द्र के पिता भी इस पर विश्वास कर रमा की नरेन्द्र के साथ शादी होने पर उसे अर्थात् रमा को बीस लाख की सम्पत्ति देने का पत्र लिख देते हैं। रमा का चचा नारायण उसे घर से निकाल देता है। बसन्त भी समाज-सुधार की दुहाई देता हुआ पूरा साहस दिखाने में असमर्थ रहता है। उमा रमा और नरेन्द्र के विवाह के अपवाद से उद्विग्न रहने लगती है और बीमार पड़ जाती है। नरेन्द्र को उसकी सखी तारा बुला ले जाती है। उमा को उन्माद सा हो जाता है। तारा उमा को यह विश्वास दिलाने के लिए कि रमा और बसन्त का विवाह हो गया है उनको वहां बुलाती है किन्तु रमा को देख कर उमा का उन्माद और भी बढ़ जाता है। उमा के पिता उसको पापिनी और पतिता कह कर घर से निकाल देते है। चारों ओर से प्रताड़ित रमा आत्महत्या के उद्देश्य से एक जलाशय में डूबती है। बसन्त उसको निकाल लेता है और अपनाने का वायदा करता है। बसन्त रमा को प्रकृत अवस्था में लाने के लिए उपचार कर रहा था, उसी दशा में कैलाश पहुँच गया और षड्यंत्र बना कर दोनों को पकड़वा दिया। मुकद्दमा होने पर कैलाश सरकारी पक्ष लेता है और तारा रमा की वकालत करती है। मेजिस्ट्रेट पर रमा और बसन्त की निर्दोषिता प्रमाणित हो जाती है। कैलाश वहीं आत्म-हत्या कर सब से अपराध की क्षमा याचना करता है तथा रमा और बसन्त और उमा और नरेन्द्र के विवाह का प्रस्ताव करता है। इन्हीं चार जीवित स्तम्भों का विवाह-मण्डप कल्पित कर लिया जाता है। कैलाश के पश्चात्ताप की ज्वाला ही अग्नि मान ली जाती है। इस नाटक में सब से अधिक महत्व की बात है रमा का आत्म-गौरव। उमा के प्रेम की अनन्यता सराहनीय है। नरेन्द्र और बसन्त की मित्रता भी स्तुत्य है किन्तु दोनों ही कुछ साहसहीन हैं। समाज-सुधार का बीड़ा उठाने से पूर्व हृदय में साहस चाहिए। कैलाश इस नाटक का धूर्तपात्र (Vallian) है किन्तु यह अच्छी बात है कि वह अन्त में सज्जन बन जाता है इसीलिए उसका मरण भी वेदना और ट्रेजिडी का भाव उत्पन्न करता है। इस नाटक में सीन बहुत जल्दी-जल्दी बदले हैं। इससे शायद अभिनय में असुविधा हो।

—गुलाबराय

जीवन चरित्र

पुरुषार्थी-जीवन—लेखक-श्री व्यथितहृदय, प्रकाशक—नेशनल लिटरेचर कम्पनी, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १५६, मू० १)

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के गांधी, रूस के लेनिन, तुर्की के मुस्तफा कमालपाशा, आयरलैंड के डीवेलरा, चीन के सनयातसेन, जर्मनी के हिटलर और इटली के मुसोलिनी की जीवन-गाथाएँ बड़ी प्रवाहपूर्ण भाषा में लिखी गयी हैं।

इन जीवनियों के पाठकों को पुस्तक में चरित्रनायकों के घटना संवत् और सिलसिलेवार तफसीलें पढ़ने को नहीं मिलेंगी और न इसमें अखबारों के कटिङ्ग और प्रामाणिक पुरुषों के आप्त वाक्यों और उद्धरणों की भरमार ही, पर पुस्तक के लेखक ने पात्र के जीवन की कुञ्जी को पहचाना है और उसे अपनी श्रद्धा का दान देकर चित्रित किया है।

पुस्तक किशोरों के लिए अत्यन्त उपादेय है। हम इसका स्वागत करते हैं।

—व्यास

दर्शन

भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास—लेखक-श्री देवराज। प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या ४३७, मूल्य १॥)

यद्यपि भारतीय दर्शनशास्त्र के अंग्रेजी में तीन या चार इतिहास निकल चुके हैं और इन्होंने योरोप में भारतीय दर्शनों का मान कराने में बहुत कुछ योग दिया है तथापि हिन्दी में इस विषय की क्रमबद्ध एक भी पुस्तक का न होना राष्ट्रभाषा के लिए लाञ्छन की बात थी। श्री देवराजजी ने इस कमी को बड़े सुन्दर रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूरा किया है। इसके लिए वे और हिन्दुस्तानी एकेडेमी बधाई के पात्र हैं।

दर्शनशास्त्र का विषय बड़ा जटिल और गम्भीर है। और बहुत काल से चिन्तन प्रणाली विदेशी पद्धति से प्रभावित होने के कारण यह जटिलता और भी बढ़ गई है। प्रस्तुत पुस्तक भी यद्यपि उस विदेशी प्रणाली से प्रभावित है तथापि उसमें भारतीय पुट पर्याप्तमात्रा में है। लेखक ने भारतीय दर्शनशास्त्र की उन भूलभुलैयों को कुशलता पूर्वक बचाया है जो बिना दीर्घकालीन अनुशीलन के बुद्धि को चक्कर में डाल देती हैं। पुस्तक में यत्र-तत्र संस्कृत के भी उद्धरण दिये गये हैं। यद्यपि ये थोड़े हैं तथापि वे मूल सिद्धान्तों को समझाने तथा स्मृति में स्थित रखने के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होंगे।

लेखक का मत है कि दर्शन-शास्त्र जीवन की ही व्याख्या करता है और अन्य विषय ईश्वर प्रकृति आदि प्रासंगिक रूप से आजाते हैं। जीवन से यदि उनका अभिप्राय जीवन के आधारभूत तत्वों से है तो दूसरी बात है, नहीं तो भारतीय दर्शनों ने जीवन को एक प्रकार बन्धन ही माना है और उसके चक्र से मुक्ति पाना ही परम श्रेयस्कर कहा है।

इस इतिहास में भिन्न-भिन्न दर्शनों का ब्यौरा पर्याप्त रूप से दिया है और पाठक को दर्शनों के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी करा देता है किन्तु पारस्परिक विचार-क्रम नहीं दिखाया गया है। भारतीय दर्शनों में कालक्रम तो निश्चित करना कठिन है किन्तु विचार-क्रम अवश्य स्थापित किया जा सकता है।

लेखक ने कुछ बातों पर जैसे कणाद और डेमोक्राइटस के परमाणुवाद में भेद, न्याय के पञ्चावयवी अनुमान की सार्थकता, शांकर मत के अनुयायियों का पारस्परिक भेद इत्यादि पर अच्छा प्रकाश डाला है। भारतीय दर्शनशास्त्र अपार महासागर है। इस ग्रन्थ में क्या-क्या नहीं है या क्या और लिखा जा सकता था, ऐसी बातें लिखना लेखक के साथ अन्याय करना होगा। उसमें जो कुछ लिखा गया है वह यथासंभव बहुत स्पष्ट रूप से लिखा गया है और अधिकांश में सप्रमाण लिखा गया है। यदि इसमें अङ्गरेजी पुस्तकों का आधार भी लिया गया है तो काफी पक्का कर लिया गया है।

आत्मतन्त्र दर्शन—लेखक—श्री नारायण विष्णु जोशी एम०ए०, डी०लिट्०, शुजालपुर मराडी (G.I.P.)। प्रकाशक—स्वयं। पृष्ठ संख्या ३४४, मूल्य ३॥)

यह पुस्तक बड़े मौलिक ढङ्ग से लिखी गयी है, यद्यपि विषय के काठिन्य के कारण इसकी शैली कहीं-कहीं दुर्बोध हो गयी है। इस पुस्तक की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नवीनतम दार्शनिक धाराओं का प्रसङ्गानुकूल उल्लेख आया है।

इस ग्रन्थ की मूलभित्ति यह है कि तत्व के अनुसन्धान में ज्ञान और कर्म दोनों के ही शासन बाधक हुए हैं। जो ज्ञानगम्य है वही यदि सत्य माना जाता है तब हमको अज्ञेयवाद की शरण लेनी पड़ती है और यदि प्रेगमेटिस्ट की भाँति उपयोगिता को ही सत्य की कसौटी मानते हैं तो सत्य में कोई विषयगत (objective) गुण नहीं रह जाता। तत्व के अनुसन्धान में दोनों को ही स्थान है। तत्वज्ञान को दर्शन का सर्वोच्च तन्त्र अवश्य मानना चाहिए। किन्तु यह नहीं बतलाया गया है कि हम ज्ञान के चक्र से कैसे बच सकते हैं?

लेखक ने परम सत्ता को अरूप माना है और उसे शङ्कर की भाँति प्रगतिशील नहीं माना है। उन्होंने सत्ता विषयक तत्व को रूप प्रणयन की शक्ति से सम्पन्न माना है। संसार ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। इस मत से उसके मिथ्यात्व की सम्भावना नहीं। मैं संसार को मिथ्या मानने के पक्ष में नहीं हूँ किन्तु ब्रह्म की प्रगति-शीलता मानने में उसके स्वरूप में कमी प्रतीत होती है।

—गुलाबराय

राजनीति

मानसरोवर पेंफलेट नं० १, २, ३, ४

इन पुस्तकों के प्रकाशन का उद्देश्य बतलाया गया है—'राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालना। जिन आन्दोलनों और प्रश्नों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार पाठक आये-दिन समाचार-पत्रों में पढ़ते रहते हैं उनके बारे में ठोस और ज्ञानवर्धक सामग्री संक्षेप मे देना, और जनता में फैली गलतफहमियों को दूर कर सही मार्ग का प्रदर्शन करना।

प्रतिमास छपने वाली इस सीरीज में साधारणतः ३२ पृष्ठों की सामग्री तीन आने में, ऐसी जंग की परि-स्थिति में इतने बेहद सस्ते दामों में, प्रस्तुत करना, साहस और स-उद्देश्यपूर्ण कार्य है। भारत की आज की सब से बड़ी आवश्यकता है राजनैनिक समस्याओं का शिक्षण। अबतक राजनीति का प्रवाह, कुछ इतना अधिक सश्रद्धा को लेकर चला है कि उसमें सोचने की जरूरत केवल लीडरों को थी, जनता आँखें मूँदे अनुसरणमात्र करती थी। पर युग का बौद्धिक जागरण यहीं नहीं थमा या रुक गया। जनता ज्यों-ज्यों सचेत होती जा रही है वह अनेक हकूकों और फरायज के बारे में जानना चाहती है। अपना स्थान रवि बाबू के शब्दों में इस विराट् पोलिटिक्याल काल-भुजंग की उलझन में। यही जानने की चाहना यह सीरीज तृप्त करना चाहती है। जनता को राजनैतिक शिक्षण देना चाहती है; और भारत के अनपढ़ सर्व-साधारण को विश्व की राज्य शास्त्रगत बारीकियों से परिचित कराना चाहती है। सस्ते दामों की वजह से इनका प्रचारात्मक उपयोग और भी बढ़ गया है। पुस्तकें संग्राह्य हैं, अपने से वाहर की दुनियाँ में दिल-चस्पी रखने वाले प्रत्येक पाठक को चाहिए कि वह एक रुपया भेज कर पहले पांच पैम्फलेट खरीद लें। अभी तो पहले चारों पैम्फलेट श्री रामनरायण यादवेन्दु, राष्ट्रसंघ और विश्वशान्ति जैसी पुस्तकों के अधिकारी लेखक ने लिखे हैं। आगे उम्मीद है कि अन्य लेखक भी इसमें लिखेंगे।

मराठी में य० गो० जोशी और कामरेड गोरे ने इसी प्रकार एक सस्ती आठ आना माला निकाली है, जिसमें प्रासंगिक चर्चा कम, सात्विक चर्चा अधिक है। गांधीवाद, समाजवाद, रायवाद, अराजकवाद, साम्राज्यवाद फासिज्म, कम्यूनिज्म आदि विश्व-राजनीति में प्रचलित इज्मों और वादों का उन पुस्तकों में जनता के लिए सुलभ भाषा में निरूपण है। मेरा अनुरोध है कि यदि मानसरोवर प्रकाशन संस्था इस प्रकार के राजनैतिक शिक्षण की सुन्दर व्यवस्था करे तो बड़ा ही उपयोगी कार्य होगा।

इन पुस्तकों के साथ यदि एक पृष्ठ सहायक पुस्तक-सूची भी रहे तो अच्छा हो। पुस्तकों के नाम ये हैं:—

१—हिटलर की विचारधारा। मूल्य ≡)
२—पांचवा कालम क्या है? मूल्य ≡)
३—पाकिस्तान। मू० ≡)
४—भारत में साम्प्रदायिक समस्या। मू० ≡)

—प्रभाकर माचवे

स्फुट

'ग्राम-सुधार'—लेखक—श्री शंकरसहाय वर्मा, एम. ए०, बी० टी०। प्रकाशक—श्री गंगासहाय वर्मा, गंगा-सदन रोड़, होल्कर राज्य। मूल्य।)

होल्कर राज्य के उत्तर-विभाग के स्कूलों के इन्स्पेक्टर श्री गंगासहाय वर्मा ने यह छोटी सी नाटिका साक्षरता-प्रचार के लिए लिखी है। यह कई स्थानों पर खेली भी जा चुकी है। साक्षरता प्रचार के अतिरिक्त और भी ग्राम-सुधार सम्बन्धी विषयों पर इसमें प्रकाश डाला गया है। पुस्तक प्रचार पाने योग्य है और यदि इसे खेला जाय तो बड़ी लाभप्रद सिद्ध हो।

अपठित भाषा-बोध—श्री राजेन्द्रसिंह गौड़, एम० ए०। प्रकाशक—साहित्य-भवन, लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य ॥)

यह पुस्तक हाईस्कूल के विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए लिखी गयी है। इसमें अपठित (unseen) से सम्बन्धित प्रत्येक विषय रखा गया है। गद्य-पद्य के अवतरण, साहित्य-व्याकरण की आवश्क बातें, कुछ नमूने, पर्यायबाची शब्द, मुहावरे, कहावतें इत्यादि का संग्रह कुशलता से किया है। विद्यार्थियों को ही नहीं हाईस्कूल के अध्यापकों को भी पुस्तक उपादेय साबित होगी।

—पद्मसिंह शर्मा

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

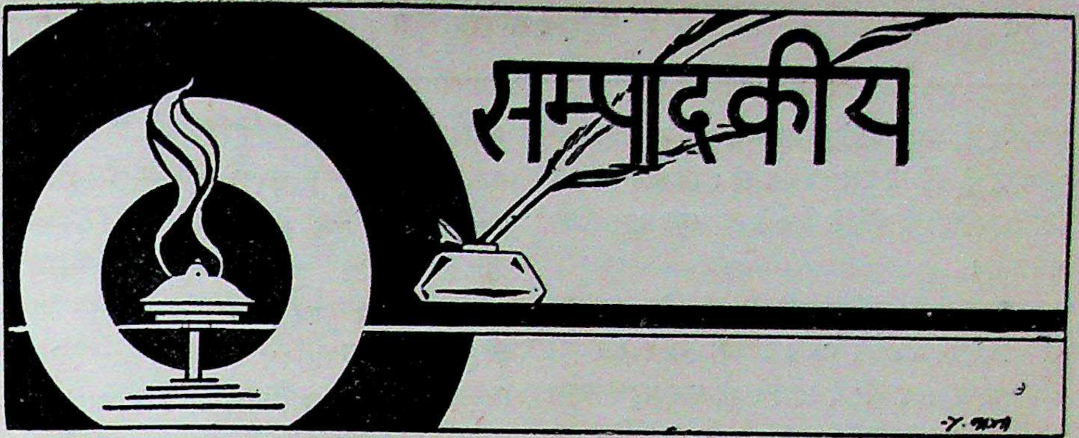

अबोहर सम्मेलन—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अगला अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अबोहर में होगा। अबोहर पंजाब में एक व्यापारिक मंडी है। स्वामी केशवानन्दजी के सद्प्रयत्न और भारी लगन ने इस स्थान को पंजाब जैसे प्रदेश में हिन्दी-प्रचार का एक केन्द्र बना दिया है। सच्ची धुन का एक व्यक्ति भी क्या कर सकता है—अबोहर का साहित्य सदन इसका ज्वलंत प्रमाण है। प्रान्तीय सम्मेलन यहाँ बड़ा शानदार हुआ था। हमें विश्वास है कि यह सम्मेलन भी काफी शान के साथ होगा और इसके द्वारा पंजाब में हिन्दी प्रचार का मार्ग और भी प्रशस्त हो जायगा।

सम्मेलन के सभापति—

सम्मेलन के सभापति प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चाँसलर श्री अमरनाथ झा चुने गये हैं। झा साहब अंग्रेजी के प्रकांड पंडित और हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं के विद्वान हैं। कार्य संचालन में भी आप अत्यन्त दक्ष हैं। आपसे सम्मेलन के अधिवेशन में ही नहीं, आगे भी वर्ष भर तक बहुत अधिक कार्य की आशा की जा सकती है। हमारा विश्वास है कि झा साहब की आधीनता में सम्मेलन के सभी कार्यों में और भी अधिक व्यवस्था और प्रगति दिखाई देगी।

सम्मेलन के अवसर पर जो विभिन्न परिषदें होती हैं उनके सभापति निम्न भाँति चुने गए हैं :—

साहित्य परिषद—श्री भवतीप्रसाद वाजपेयी
समाजशास्त्र परिषद—श्री भगवानदास केला
दर्शन परिषद—श्री भीखनलाल आत्रेय
विज्ञान परिषद—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
राष्ट्रभाषा परिषद—श्री ग० र० वैशम्पायन

उक्त सभी सभापतियों के चुनाव के सम्बन्ध में हम यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि जो भी व्यक्ति चुने गये हैं वे सभी योग्य और विद्वान हैं और हम उन्हें बधाई देते हैं। परन्तु जिस वातावरण में यह चुनाव हुआ है वह बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता।

सम्मेलन का कार्यक्रम—

सम्मेलन के सामने जो काम हैं वे ही इतने अधिक और इतने महत्व के हैं कि उनको ही पूरी तरह निबाह ले जाना बहुत है। ऐसी दशा में नये कामों का प्रस्ताव कार्यकर्त्ताओं के सामने हम रखना उचित नहीं समझते। पर जो काम सम्मेलन कर रहा है उनमें सुधार की बातें सुझाना अनुचित न होगा। अधिकारीगण बुरा न माने तो हम चाहेंगे कि उनके विद्यापीठ का प्रबन्ध ऐसा जरूर हो जाय कि जहाँ हिन्दी साहित्य की ऊंची-से-ऊंची शिक्षा लेने कोई पहुँचे तो उसके लिए वहाँ कुछ आकर्षण हो। सम्मेलन को यह भी प्रबन्ध करना चाहिए कि अधिक-से-अधिक स्थानों पर हिन्दी शिक्षा का प्रबन्ध हो सके। जिन स्थानों पर इस तरह का प्रबन्ध हो, उन्हें यथेष्ट प्रोत्साहन देने की भी जरूरत है। अभी तक इस सम्बन्ध में सम्मेलन की जो नीति है वह बहुत उदार नहीं कही जा सकती। बड़े बड़े शहरों में खास तौर से उन नगरों में जहाँ उत्तमा के परीक्षार्थी बैठते हैं—सम्मेलन को विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान कराने की सुविधा देनी चाहिए। वैसे भी जन साधारण की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113035
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-वृद्धि के लिए अच्छे व्याख्यानों का प्रबन्ध स्थान-स्थान पर हो सके तो बड़ा अच्छा रहे। यह काम ऐसा है जिसमें सम्मेलन को थोड़े से खर्च से ही बहुत लाभ मिल सकता है।

अदालतों में हिन्दी प्रचार करने की ओर सम्मेलन का ध्यान इधर गया है। श्रद्धेय टंडनजी खास तौर पर इस काम की तरफ जोर दे रहे हैं। यह काम बहुत जरूरी भी है पर यह काम तभी हो सकता है जब इसके लिए कुछ धनाढ्यों का सहयोग लेकर शुरू में काफी उदार नीति से काम लिया जाय। सम्मेलन इस काम में पूरा ध्यान दे और स्थानीय हिन्दी प्रेमियों का सहयोग मिले तो यह काम कठिन नहीं है और हमारा तो विश्वास है कि जो काम चालीस वर्ष में पूरा नहीं हुआ वह तीन चार वर्ष में हो सकता है। पर क्या यह सब होगा?

राष्ट्र भाषा प्रचार—

राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए कुछ वर्षों से सम्मेलन ने एक समिति स्थापित कर रक्खी है, जिसका कार्यालय वर्धा में है। इस समिति के प्रधान संचालक काका कालेलकर और श्रीमन्नारायण अग्रवाल हैं। पर इसके सूत्रधार महात्मा गाँधी, राजेन्द्र बाबू और सेठ जमनालाल बजाज हैं। इन नेताओं के कारण इस समिति ने पाँच वर्ष में जो कार्य कर लिया है वह दूसरे लोग शायद पन्द्रह वर्ष में भी पूरा न कर पाते। अब राजेन्द्र बाबू का प्रस्ताव है कि यह समिति स्वतंत्र कर दी जाय। सुना है कि महात्माजी दक्षिण भारत प्रचार सभा की तरह इसे भी स्वतन्त्र करने के पक्ष में हैं। हमारी राय में सम्मेलन को इस प्रस्ताव से डरना न चाहिए। उसके अंग यदि स्वतन्त्र होकर और अधिक कार्य करते हैं तो यह उसके लिए गौरव की ही बात है। फिर भी सम्बन्ध बनाए रखने के लिए समिति को स्वतन्त्र करते हुए भी कुछ ऐसी शर्तें वह लगा सकता है जिससे उसके कार्य संचालन में सम्मेलन का भी थोड़ा बहुत हाथ रहे और वह गति-विधि से भी पूर्ण परिचित रहे। उदाहरण के लिए वह यह शर्त्त कर सकता है कि समिति की प्रबन्धकारिणी में प्रतिवर्ष दो या न्यूनाधिक व्यक्ति प्रतिवर्ष सम्मेलन की स्थायी समिति की ओर से चुने हुए रहेंगे।

साहित्य सहायक समिति—

सर्व श्री हरि कृष्ण 'प्रेमी', व्रजकिशोर 'नारायण' तथा सर्वदयाल सूरी की ओर से एक ऐसी समिति की योजना प्रकाशित हुई है जो कि प्रख्यात और अप्रख्यात सभी प्रकार के साहित्यिकों को उनके साहित्यिक कार्यों में सहायता देगी और इस उद्देश्य से वे भिन्न-भिन्न भागों के साहित्यिकों की सूची चाहते हैं। इस सूची में वे उन लोगों की भी नामावली चाहते हैं जिन्होंने कि अभी लिखना शुरू ही किया है। वे उस नामावली के साथ उनकी कृतियों के नमूने भी चाहेंगे जिससे कि वे उनकी सहायता कर सकें। नियमों की जानकारी तथा समिति से लाभ उठाने के लिए इन महानुभावों से १० अस्पताल रोड लाहौर के पते पर पत्र-व्यवहार किया जाय।

इस सम्बन्ध में हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि इस प्रकार की आयोजना दो तीन बार हो चुकी है। उनमें इलाहाबाद का लेखक संघ कुछ दिनों पनपा भी था लेकिन फिर निष्क्रिय हो गया। इस आयोजना में हम चाहेंगे कि केवल लेखक ही शामिल न रहें वरन् ऐसे सहृदय व्यक्ति भी हों जो लेखकों से सहानुभूति रखते हों और जिनका समाज में प्रभाव भी हो। इसमें प्रकाशक लोग भी रक्खे जायँ क्योंकि कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो कि स्वयं प्रकाशक हैं। हम उनके अनुभव से भी लाभ उठाना चाहते हैं। यह संघ परस्पर सहानुभूति और सहयोग पर आश्रित रहे। यह संघ अपने कार्यक्रम में साहित्यिक उत्पादन के नियन्त्रण को भी स्थान दे। साहित्य की जो आवश्यकताएँ हों उनकी पूर्ति के लिए लेखक और प्रकाशकों को मिलावे अथवा स्वयं प्रकाशन का प्रबन्ध करें। आशा है कि यह समिति शीघ्र ही दृढ़ भूमि पर खड़ी हो सकेगी।

सूर और तुलसी का काव्य—

यद्यपि सूर और तुलसी पूर्ण मानव जाति के कवि थे तथापि उनके काव्य की एक साम्प्रदायिक आधार भूमि है जिससे उनके काव्य ने शक्ति और गति ग्रहण की है। कवि पर जाति का, समय का और परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। सूर और तुलसी में निजी प्रतिभा थी किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे इन प्रभावों से परे न थे। साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के जान लेने से बहुत सी बातों की कुञ्जी मिल जाती है। जहाँ सूर और तुलसी इन सम्प्रदायों के प्रवर्तकों से उपकृत हुए हैं वहाँ इन्होंने सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के सार भाग को भाषा में अवतरित कर उनको भी लाभान्वित किया है। किन्तु कवि और दार्शनिक की पद्धति में भेद होता है। सूर और तुलसी के अध्ययन का जितना महत्व काव्य और भाषा की दृष्टि से है उससे कुछ ही कम सम्प्रदाय की दृष्टि से है। सम्प्रदाय वाले यदि काव्य प्रेमियों को सहयोग प्रदान करें तो इन महाकवियों का अध्ययन और भी अग्रसर हो सकता है।

काव्य के विद्यार्थियों ने इन महाकवियों का साम्प्रदायिक दृष्टि से भी अध्ययन किया है किन्तु इस पर अभी सम्प्रदाय वालों की छाप नहीं लगी है कि वह कहाँ तक प्रामाणिक है। न उन्होंने अभी तक हिन्दी में ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थ निकाले हैं जो सूर और तुलसी के दार्शनिक विचारों के अध्ययन में हमको सहायता दें। इसके अलावा सूर और अन्य अष्टछाप के ग्रन्थों के वैज्ञानिक संस्करण निकलने में भी शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय का सहयोग वाञ्छनीय है क्योंकि उनके दैनिक कीर्तनों में अष्टछाप के कवियों की कुछ जीवन-परम्परा भी है और इस प्रकार के संस्करण निकलने में उनकी सम्प्रदाय का गौरव भी बढ़ेगा। व्रज साहित्य के प्रचार के लिए व्रजसाहित्य मण्डल और आगरे की नागरी प्रचारिणी सभा खास व्रज के केन्द्र में हैं। काँकरोली में अष्टछाप के कवियों का संग्रह भी है। हर्ष की बात है कि वहाँ की गद्दी के अधिकारी महाराज व्रजभूषणलालजी हिन्दी में अभिरुचि रखते हैं। उनका सहयोग इस पुण्य कार्य में अत्यन्त वाञ्छनीय है।

हाल ही में २४ नवम्बर को सूरत में श्री गोकुलेश जयन्ती के अवसर पर एक दिन अष्टछाप के कवियों के ऊपर व्याख्यानों की आयोजना हुई थी। वहाँ की गद्दी के अधीश्वर महाराज श्री ने इस कार्य में बड़ी रुचि ली। शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय की ओर से यह एक सराहनीय प्रयत्न हुआ है किन्तु यह सागर में बूँद की बराबर है। साम्प्रदायिक दृष्टि से अष्टछाप के कवियों के अध्ययन के लिए सम्प्रदाय के आचार्यों का सहयोग प्रार्थनीय है। वे लोग सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रामाणिक रूप बतलाकर तथा ग्रन्थों के प्रकाशन में आर्थिक सहायता देकर हिन्दी का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं। तुलसी के सम्बन्ध में हमारी यह अपील रामानन्दी और रामानुजी सम्प्रदाय के आचार्यों से है।

अष्टछाप के कवियों के दार्शनिक सिद्धान्तों पर विद्वानों के लेख और प्रश्नों का 'साहित्य-संदेश' और मथुरा की 'व्रज भारती' परस्पर सहयोग के साथ स्वागत करेंगे।

नई पुस्तक मालाएँ—

हिन्दी में दो नयी पुस्तक मालाएँ हाल ही में निकली हैं—प्रयाग के इण्डियन प्रेस से सरस्वती सीरीज तथा कलकत्ता से अभिनव भारती ग्रंथ माला। दोनों का ही उद्देश्य भिन्न-भिन्न विषयों का प्रामाणिक साहित्य उपस्थित कर जनता की ज्ञान वृद्धि करना है। सरस्वती सीरीज की पुस्तकों का मूल्य ॥) है और अब तक २४ पुस्तकें निकली हैं किन्तु अभिनव भारती पुस्तक माला की पुस्तक का मूल्य आकार के अनुकूल १) से २) तक है और अभी सात पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन दोनों मालाओं का हम हृदय से स्वागत करते हैं। इनका विशेष परिचय हम अगले अङ्क में देंगे।

दुःखद वियोग—

स्वनाम धन्य, आदरणीय डाक्टर गंगानाथ झा का विगत मास में स्वर्गवास हो गया। आपका पांडित्य, आपकी संस्कृति और आपका कार्य सभी कुछ भारतीय संस्कृति के लिए अभिमान की बात थी। हम आपके कुटुम्बियों विशेष कर आपके सुयोग्य सुपुत्र श्री अमरनाथ झा के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

इन्दौर के पं० श्रीनिवासजी चतुर्वेदी एम० ए० का भी गत मास में देहावसान हो गया। आप होलकर कालेज में संस्कृत के प्रधान अध्यापक थे। हिन्दी के भी आप विद्वान और लेखक थे। अल्प आयु में ही आपके निधन से हमें बहुत दुःख है। हम आपके कुटुम्बियों के साथ भी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113035

अङ्क नहीं मिलते—

चतुर्थ वर्ष के स्फुट अङ्क कोई नहीं बचे हैं। पाँचवें वर्ष का पहिला यानी सितम्बर ४१ का अङ्क भी न शेष नहीं है। उनके लिए लिखना व्यर्थ है।

पुरानी फायलों के सम्बन्ध में—

साहित्य सन्देश की पुरानी फायलें निम्न दर पर मिल सकती हैं। मूल्य मनिआर्डर से पेशगी आना चाहिए साथ ही प्रत्येक जिल्द के लिए ।≈) पोस्टेज के लिए भी।

१—पहले और दूसरे वर्षों के २४ अङ्कों में से ८ अङ्क शेष हैं। उनकी सजिल्द फायल का मूल्य २)

२—तीसरे वर्ष की १२ अङ्कों की पूरी सजिल्द फायल का मूल्य ३)

३—चौथे वर्ष के ८ अङ्कों की सजिल्द फायल जिसमें तीन विशेषाङ्क—उपन्यास अङ्क, शुक्लाङ्क और परीक्षा अङ्क भी हैं—का मूल्य ३) परीक्षा-अङ्क अब नहीं मिलता।

उपन्यास अंक, परीक्षांक और शुक्लांक की कुछ फुटकर प्रतियाँ शेष हैं। उनका मूल्य मनिआर्डर से पेशगी आना चाहिए। तीनों अंक एक साथ लेने पर पोस्टेज सहित २।) में मिल सकेंगे।

भृगु-संहिता (भाषा-टीका)

स्वर्ण अवसर ३ मास तक आधा मूल्य

गत ७२ वर्षों का जिनका जन्म है व आगे १० वर्षों का होगा, संसार भर के सभी देशों के मनुष्यों की जन्म-कुण्डलियों का भूत, भविष्य, वर्तमान तीन जन्म का हाल, स्त्री, पुत्र, द्रव्य, सुख, दुःख, लाभ, हानि, किस संवत् तक आयु, फिर कहां जन्म होगा इत्यादि, साधारण पढ़े-लिखे भी फल कह सकते हैं। फल सुनते ही लोग कहते हैं कि कर्ण-पिशाचिनी सिद्ध है। कई ज्योतिषी सिद्ध बन गये। समाचार-पत्रों ने समालोचना की और सर्टिफिकेट आये हैं। मूल्य ७), तीन मास तक आधा मूल्य ३॥), पोस्टेज ॥।) फिर सौ रुपये में भी न मिलेगी।

✻ भृगु-संहिता कुण्डली खण्ड ✻

संवत् १६२० से २००० तक सौ वर्षों के पृथ्वी भर के मनुष्यों की जन्म-कुण्डली इसमें मिलेगी। नष्ट जन्म-पत्री बना लो। मूल्य २), पो० ॥), तीन मास तक आधा मूल्य १)

✻ मूक प्रश्न भास्कर ✻

गुप्त प्रश्न बताने का अनूठा ग्रन्थ, मूल्य २), तीन मास तक आधा मूल्य १); पो० ।–) पता—

ज्योतिष रत्न पं० अयोध्याप्रसाद मिश्र,
Jhansi झांसी, नं० 44

'रत्नाकर पुस्तकमाला' के पांच रत्न

पेशगी भेजने वालों को यह पूरा सैट २) में मिलेगा अन्यथा पूरे दाम ही लगेंगे।

१ सरल चिकित्सा भण्डार—इसमें पैर के अँगूठे से शिर तक के समस्त रोगों पर आयुर्वेदाचार्य छोटेलाल ने अपने प्रयोग जो कठिन से कठिन रोगों को दूर करने में अपने सानी के अजीब हैं लिखे हैं। इसको पास रखने से साधारण व्यक्ति भी कठिन से कठिन रोगों को मुक्त कर सकता है। की० १)

२ बाल-रोग—यह रत्नाकर का विशेषांक है। जिसका सम्पादन वैद्य गोपालप्रसादजी कौशिक ने किया है इसमें बालकों के गर्भ से होने के वक्त उत्पन्न होने वाले समस्त रोग की चिकित्सा निदानपूर्वक वर्णन है। पुस्तक के अनुकूल चलने से बालकों को किसी प्रकार के रोग का भय नहीं रहता है। मू०१)

३ नाड़ी-परीक्षा—यह पुस्तक वैद्यों के बड़े काम की है, सरल हिन्दी भाषा में ऐसी ऐसी विधियाँ लिखी गई हैं कि इसके मनन करने से एक योग्य वैद्य बन सकता है। नवीन वैद्यों की तो रिजर्व निधि है। मूल्य भी केवल ≈) मात्र

४ अर्श-चिकित्सा—इस पुस्तक के लेखक ने गुजरात वैद्य सम्मेलन से स्वर्ण पदक प्राप्त किया है। हर प्रकार की बवासीर के उत्तम उत्तम प्रयोग और इलाज लिखा है। मंगा कर लाभ उठाइये।

५ विष-चिकित्सा—इस पुस्तक में स्थावर जंगम दोनों प्रकार के विषों का वर्णन। जैसे—स्थावर विष संखिया हरताल, मिलावा, कुचिला इत्यादि का शोधन मारण व इनके सेवन से हानि और दूर करने के उपाय तथा जंगम विष जैसे—सर्प, बिच्छू, बर्र आदि के काटने के लक्षण और उनके विष नष्ट करने के उपाय भली भांति लिखे गये हैं। मूल्य ॥) प्रति।

पता—मैनेजर 'रत्नाकर' कार्यालय नं० २८ इटावा यु० पी०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त भारतीय पुस्तकालयों के लिए !

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा का

संग्रहालय

साहित्य-रत्न-भण्डार आगरा में हिन्दी-पुस्तकों का संग्रह इतना विशद, इतना उत्तम और इतना उपयोगी है कि भारत के सभी बड़े-बड़े पुस्तकालय यहीं से अपनी माँग पूरी करते हैं। नई-से-नई पुस्तकें जल्द-से-जल्द यहाँ आ जाती हैं और काफी स्टाक में रहती हैं। जिन लोगों ने एक बार भी यह संग्रहालय देखा है, वे इसकी व्यवस्था और पुस्तकों का संचय देख कर दंग रह गये हैं। हमारी अपील है कि आप जब कभी आगरा पधारें तो इस भण्डार का निरीक्षण अवश्य करें और जब भी हिन्दी पुस्तकों की आवश्यकता हो, तो इसको अपना आर्डर अवश्य भेजें। सभी बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएँ और सभी श्रेष्ठ प्रकाशकों के प्रकाशन और विशेषयोग्यता तथा सम्मेलन परीक्षा आदि की पुस्तकें यहाँ हर समय तैयार मिलती हैं।

सुन्दर छपाई के लिए

साहित्य प्रेस का नाम याद रखिए

आपको कुछ भी छपाना हो

हिन्दी-अँग्रेजी के पत्र व पुस्तकें, नोटिस, समाचार-पत्र,
रिपोर्टें, सूचीपत्र, लेटरपेपर, बिल, कैशमीमो, रसीद आदि

—तो—

सदैव 'साहित्य प्रेस' को लिखिए

क्यों ?

इसलिए कि आपका काम शुद्ध और सुन्दर छपेगा और समय पर
किफायत के साथ छाप कर दिया जायगा।

'साहित्य-सन्देश' इसी प्रेस से छप कर निकलता है।

नोट—साहित्यिक पुस्तकों के शुद्ध और कलात्मक-मुद्रण का यहाँ विशेष रूप से प्रबन्ध है।

पत्र-व्यवहार का पता—साहित्य प्रेस, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीमा कम्पनी ही क्यों ?

अधिक ब्याज दे सकने का कारण !

बीमा कम्पनी और बैंकों की रुपया देने लेने की नीति में बड़ा अन्तर है। बैंकें अपना रुपया कभी लम्बी मियाद के लिए देना पसन्द नहीं करतीं क्योंकि उन्हें कभी भी रुपए की जरूरत पड़ सकती है, और इसीलिए वे ज्यादा ब्याज भी पैदा नहीं कर पातीं। इसके विपरीत बीमा कम्पनियां सदा यह चाहती हैं कि अगर उनका रुपया सुरक्षित है तो वह ज्यादा से ज्यादा समय के लिए लगा रहे और इसीलिए रुपया सुरक्षित रखते हुए भी वे ब्याज अच्छी पैदा कर लेती हैं और इस दृष्टि से वे बैंकों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं और इसीलिए वे अपने ग्राहकों के लिए अच्छी ब्याज पैदा कर सकती हैं।

स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड

ने सारा खर्च काट कर और जोखिम के लिए रुपया अलग निकाल कर भी ६) प्रतिशत से अधिक ब्याज पैदा किया है और उसी से प्रभावित और उत्साहित होकर स्वदेशी ने अपने यहां रुपया जमा करने की नई योजना निकाली है कि जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति १००) से लेकर १०,०००) तक कम्पनी में डिपाजिट के रूप से निम्न ब्याज पर जमा कर सकता है :—

एक वर्ष की मुद्दत पर	...	३) प्रतिशत
दो वर्ष की मुद्दत पर	...	३॥) प्रतिशत
तीन वर्ष की मुद्दत पर	...	४) प्रतिशत

ब्याज हर छटे महीने मिलता है। विधवाओं, बच्चों और संस्थाओं को यह सूद हर महीने भी मिल सकता है।

सफलता का प्रमाण

रुपया जमा करने की यह योजना जनवरी सन १९४० से शुरू हुई है। इस थोड़े से समय में ही उसमें काफी सफलता मिली है और अधिकाधिक मिलती जा रही है। प्रमाण लीजिए—

१ जनवरी से ३० जून १९४० तक	६ मास में जमा हुए— ३९,४३४)रु०
१ जुलाई से ३१ दिसम्बर १९४० तक	६ मास में जमा हुए—१,००,८४८)रु०
१ जनवरी से ३० जून १९४१ तक	६ मास में जमा हुए—१,६७,७२२)रु०
१ जुलाई से ३० सितम्बर १९४१ तक	३ मास में जमा हुए— ८६,७८०)रु०
२१ मास में कुल रुपया जमा हुआ	३,९४,७८४)रु०

कम्पनी की मजबूती का प्रमाण

उसने अपने बीमेदारों को आजीवन और मियादी बीमों पर १८) तथा १४) प्रतिवर्ष बोनस दिया है। और हिस्सेदारों को कई वर्ष से ६) प्रतिशत मुनाफा दे रही है।

विशेष ब्यौरा जानने के लिए लिखिए या मिलिए —

श्रीचन्द दोनेरिया मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर

स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

महेन्द्रजी के लिए साहित्य प्रेस, ५३ ए० सिविल लाइन्स आगरा से मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri